GL SANS 294.4
MAH

125260
BSNAA

Academy of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No.
वर्ग संख्या
Class No.
पुस्तक संख्या

MAH

Book No.

सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

म हा बं धो

[महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]

३ तदियो अणुभागवंधाहियारो [तृतीय अनुभागवन्धाधिकार]

पुस्तक ४

हिन्दी भाषानुवाद सहित



—सम्पादक—

पण्डित फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति १००० प्रति चैत्र वीर नि० सं० २४८२ विश्वीसं० १० सिड 2



स्व० पुण्यक्षोका माता मृतिंदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साह शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

मारतीय ज्ञानपीय मूर्तिदेवी जैन-प्रन्थमाला

्र प्राकृत ग्रन्थाङ्क ६ **१**

यन्थमाला सम्पादक

डॉ॰ हीरालाल जैन,

एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ॰ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय,

्रा॰ ए॰, डी॰ लिट्॰

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीट

दुर्गाकुण्ड रोड, वनारस

स्थापनादद फास्सुन कृष्ण ९ वीर नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २००० १८ फरवरी सन् १९४४



म्ह्यस्ति । सन्दिश्वरः, शतिक्षास्य सन्तृ कृतान रामगाः । पर

JNANAPITHA MURTIDEVI JAINA GRANTHMALA PRAKRIT GRANTHA NO. 6

MAHABANDHO

[MAHADHAVALA SIDDHANTA SHASTRA]

Tadio Anubhaga bandhabiyaro

Vol. IV

ANUBHĀGA BANDHĀDHIKĀRA

HINDI TRANSLATION



Editor

Pandit, PHOOL CHANDRA Siddhant Shastry

Published by

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

First Edition () 1000 Copies.

CHAITRA VIR SAMVAT 2482 VIKRAMA SAMVAT 2012 APRIL 1956

HERRY ANTHE-EMREY VILLERY

FOUNDED BY:

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRÎ MURTÎ DEVÎ

BHARATIYA JÑANA-PITHA MÜRTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

PRAKRIT GRANTHA NO. 6

IN THIS GRANTHAMÁLÁ CRITICALLA EDITED JAIN ÁGAMO PHILOSOPHICAL PAURÁNIO, LITERARY, HISTORICAU AND OTHER ORIGINAL TEXTO AVAILABLE IN PRÁBRIT, SANSKRIT APATHRANSIA, HINDI KANNADA AND TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

5 ND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors

Dr. Hiralal Jain M. A., D. Litt. Dr. A.N. Upadhye M.A., D. Litt

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

Secy., BHARATIYA JNANAPITHA DURGAKUND ROAD, BANARAS

Founded on Phalguna Krishna 9. Vira Sam. 2470

All Rights Reserved.

Vikrama Samavat 2000

प्राथमिक

धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थोंका उद्धार वर्तमान युगकी सबसे महान जैन साहित्यक प्रवृत्ति कही का सकती है। दिगम्बर जैन परम्परानुसार तो ये ही ग्रन्थ-निधियाँ हैं जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान् महावीरकी द्वादशांग वाणीसे जुड़ता है। धवल और महाधवल दोनों ही पटलण्डागमके 'खण्ड' हैं। कितने हर्पकी बात है कि उधर पट्खण्डागमके पाँचवें खण्ड वर्गणा व उसकी चूळिकाका प्रकाशन पूरा होने आ रहा है, और इधर उसका छठा भाग महाबन्ध भी पूर्ण प्रकाशनके उन्मुख हो रहा है। इस महान शृक्कलाकी कडियाँ भी अब ऐसी आकर जुड़ी हैं कि वर्तमानमें दोनोंका ही मुद्रण कार्य वनारसमें चल रहा है। एक ओर यह कार्य पुरा होने आरहा है, दूसरी ओर श्रावकोत्तम साह शान्तिप्रसादजीके दान व प्रेरणासे विहार सरकारने भगवान महावीरके जन्मस्थान वैशालीमें जैन विद्यापीठकी स्थापनाका निश्चय कर उस ओर समुचित योजना व कार्यका आरम्भ भी कर दिया है। इस जैन विद्यापीठमें भगवान महावीरके उपदेशोंका, उनकी संसारको अहिंसा रूपी अनुपम देनका तथा उनकी परम्परामें समुखन्न प्रचर साहित्यका उच्च अध्ययन व अनुसन्धान होगा। उधर भारतकी राष्ट्रिय एवं राजकीय रीति-नीतिमें अहिंसाने अपना घर कर खिया है और उसकी आनुपंगिक मेत्री, प्रमोद, कारूण्य व माध्यस्य भावनाओंने देशके एक महान सप्रतके हृदयको आलोहित कर 'पञ्चशील' को जन्म दिया है जिसकी अन्तर्राष्ट्रिय क्षेत्रमें भी प्रतिष्ठा हो गई है। परिणामतः युद्धसे त्रस्त तथा सांहारिक अस्त्र-शस्त्रींसे भयाकल मानव-जातिको एक दिन्य दृष्टि एक नई चेतना, एक अपूर्व आशा प्राप्त हुई है। क्या हम इसे महावीर-देशनावी, जैन तत्त्वज्ञानकी धर्म-विजय नहीं कह सकते ? क्या कोई अहए हाथ संसारको इमारी एक विशिष्ट दिशामें नहीं हाका रहा ?

इस स्वर्ण-सन्धिका जैन समाज पृरा लाभ उटा रहा है, यह तो हम नहीं कह सकते, तथापि थोड़े बहुत प्रभावशाली धर्म-बन्धुओंमें जो जागृति उत्पन्न हो गई है उसीके आधारपर हमें अपना भविष्य कुछ अच्छा दिखाई देने लगा है। भारतीय ज्ञानपीठ इसी जागृतिका एक परिणाम है। इसके द्वारा जो धार्मिक प्रन्थोंका प्रकाशन हो रहा है वह एक गौरवकी वस्तु है।

पस्तुत भागके 'सम्पादकीय'में प्रतियंकि पाटमेद भम्बन्धी जो बाद बतलाई गई है, वे प्यान देने योग्य हैं। प्राचीन प्रत्यों के सम्पादक उस पाटपर पहुँचनेका प्रयत्न करता है जो मोलिक प्रतिमें सम्भवतः रहा होगा। किन्तु हमारे सन्मुख यह द्योचनीय परिस्थित उत्पन्न हुई है कि परम्परागत ताडपत्रीय प्रति एकमात्र होते हुए भी उसकी तात्कालिक प्रतिलिपों हारा नाना पाटमेद उत्पन्न हो रहे हैं। अत्यन्त खेदकी बात है कि हमारे धमके इन आकर प्रत्योंके सम्पादनमें भी हम आधुनिक वैज्ञानिक साधनोंका उपयोग करनेमें असमर्थ है। प्नाम महाभारत व बड़ौदामें रामायणके सम्पादन सम्बन्धी आयोजनको देखिये, और हमारे इन श्रेष्टतम सिद्धान्त-प्रत्योंके उद्धार, सम्पादन, अनुवाद व प्रकाशनकी स्थितिको देखिये! आजकी सीधी, सरल और सर्वथा प्रमाणभूत सम्पादन प्रणाली तो यह है कि सम्पादकके सन्मुख या तो प्राचीन प्रतियाँ अपने मोलिक रूपमें उपस्थित हों, या उनके हायाचित्र। आजकल प्रतियोंके डायाचित्र या स्थमचित्रावली (माइक्रोपितम) बड़ी आसानी और किप्तायतमें लिये जा सकते हैं। एक्स चित्रावलीको पढ़नेके लिए प्रतिविभ्वक यन्त्र (प्रोजेक्टर मशीन) भी आज बड़ी सस्ती मिलने लगी है—केवल चार पाँच सो स्पर्यमें ही। लिपिका अज्ञान कोई बड़ी समस्या नहीं है। सम्पादक स्वयं थोड़ेसे प्रयत्न व अभ्याससे अल्पकालमें अपेक्षित लिपिको सीख सकता है और अपने सम्पादनको सोलहों आने प्रामाणिक बना सकता है, यदि उसे यथोचित सुविधाएँ दे दी जावँ।

पं॰ फूलचन्द्रजी शास्त्रीने प्रस्तुत प्रस्थके सम्पादन व अनुवादमें जो विद्वत्तापूर्ण प्रयास किया है, तथा ज्ञानपीठके कार्यकर्ताओंने जो सुन्दर प्रकाशनका उद्योग किया है, उसके लिए वे हमारे भन्यवादके पात्र हैं। इमें भरोसा है कि उनके प्रयत्नसे इस प्रस्थका होष भाग भी शीध ही प्रकाशित हो सकेगा।

> हीरालाल जैन आ. ने. उपाध्याय ग्रन्थमाला सम्पादक

सम्पादकीय

अनुभागवन्ध पर्खण्डागमके छटे खण्डका तीसरा भाग है। इनका सम्पादन व अनुवाद लिखकर प्रकाशनयोग्य बनानेंमें दो वर्षका समय लगा है। कारण कि हमारे सामने श्रन्थकी एक ही प्रति रही है और जो है वह भी पर्याप्त मात्रामें बुटित है। जब दूसरे भागका अनुवाद कर रहे थे तभी इस प्रतिकी यह स्थिति हमारे प्यानमें आई थी। अधिकारी विद्वानोंसे हमने इसकी चरचा भी की थी। उनका कहना था कि जिस स्थितिमें प्रति उपलब्ध है उसे सम्पादित कर प्रकाशन-योग्य बना देना उचित है। यशिष यह सम्भव था कि गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंकी वन्धयोग्य प्रकृतियोंकी तालिकाको सामने रूपकर आवश्यक संशोधन कर दिया जाय। स्थितिबन्ध प्रथम पुस्तकमें कहीं-कहीं ऐसा किया भी गया है। पर ऐसा करना एक तो सब प्रकरणोंमें सम्भव नहीं है। कुछ ही ऐसे प्रकरण हैं जिनमें संशोधन विध्या जा सकता है। अधिकतर प्रकरणोंके लिए तो हमें मुख प्रतिके ऊपर ही आधित रहना पड़ता है। दूनरे भय होता था कि इससे कहीं नई अद्युद्धियोंको जन्म देनेके दोषका भागी हमें न बनना पड़ और इसलिए स्थितिबन्धकी दितीय पुस्तकको हमने मुख प्रतिके अनुसार ही सम्पन्न कर प्रकाशनके वोग्य बनाया था।

इस परिस्थितिसे उत्पन्न किमयों और शृदियोंका हमें भान था ही। स्वभावतः समाछाचकोंका ध्यान भी उस और गया। अतएव हम पाठशोधनके लिए यथोचित सामग्री ग्रात करनेकी ओर विशेष प्रयणशील हुए। भारतीय शानपीठके सुर्थाग्य मन्त्री जितने विचारक हैं उतने ही दूरदर्श भी हैं। उन्होंने सब स्थितिकों समझकर मृड्विद्री प्रतिसे मिलान करनेकी हमें अनुशा दे दी और कहा कि हस कार्यके सम्पन्न करनेमें जो व्यय होगा उसे भारतीय शानपीठ खुशीसे वहन करेगा। आप स्वयं लिखा पढ़ी करके वहाँने प्रति मिलानकी व्यवस्था कर लीजिए। ददनुसार हमने मृड्विद्री श्री पंहित नागराजजी शास्त्रीको लिखा। किन्तु उनका उत्तर आया कि यहाँकी कनडी प्रति दिल्ली जीणोंद्वारके लिए गई है। यहाँ शानेपर हमें और प्रवन्ध-समितिको इस कार्यकी व्यवस्था करनेमें ग्रसन्नता ही होगी। व्यक्तिशः इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए इस हर तरहसे तैयार हैं।

किन्तु इसी बीच यह मां विदित हुआ कि महाबन्धकी ताम्रपत्र प्रति सम्पादित होकर शा० जिन्नवाणी जीणोंद्वार संस्थाकी ओरसे छपी हैं। पलस्वरूप शा० जिनवाणी जीणोंद्वार संस्थाकी ओरसे छपी हैं। पलस्वरूप शा० जिनवाणी जीणोंद्वार संस्थाकी ह्यांग्य मन्त्री श्री सेठ बालचन्द देवचन्द जी शहाको लिखा गया। उस समय वे उत्तर भारतके तीथकींत्रीं पात्राके लिए आये हुए थे, इसलिए उनसे व्यक्तिशः भी सम्पर्क स्थापित किया गया और आवश्यकताका जान कराते हुए प्रत्यक्षमें इस विपयकी वात-चीत की गई। परिणामस्वरूप उन्होंने वर पहुँचनेपर ताम्रपत्र मृद्धित प्रति मिजवानेका आश्वासन दिया। यद्यपि उन्हें कई कारणोंसे प्रति भेजनेमें बिलम्य हुआ हे पर अन्तमे योग्य निछावर देकर यह प्रति भारतीय ज्ञानपीठको उपलब्ध हो गई है जिससे अनुभागवन्धके प्रस्तृत संस्करणमें उसका उपयोग हो सका है इसलिए यहाँ इस प्रसंगसे इन दोनों प्रतिवोंके पाठ आदिके विपयमें साङ्गोपाङ्ग चरचा कर लेना आवस्यक प्रतीत होता है। हमें प्रस्तुत संस्करणके दस पार्म छपनेपर यह प्रति मिल सकी थी, इसलिए इन पार्मोमें न तो हम इस प्रतिके पाठ ही ले सके और न इस प्रतिके आधारसे प्रस्तृत प्रतिमें सुधार आदि कर सके। अतएव सर्वप्रथम यहाँ तकके दोनों प्रतिवोंके पाठमेद देकर इस चरचाको आगे बढ़ाना उपयुक्त प्रतीत होता है। यहाँ और टिप्पणियोंमें जो प्रति इमारे पास प्रेस कार्पाके रूपमे हैं उसका संकेताक्षर आ० है। टिप्पणीमें कहीं कहीं 'मूलप्रती' पद द्वारा भी इसी प्रतिका उल्लेख किया गया है और ताम्रपत्र मृद्धित प्रतिका संकेताक्षर ता० है। इस दोनों प्रतियोंके दस पाम तकके पाठमेदोंकी तालिका इस प्रकार है—

आ॰ और ता॰ प्रतिके पाठभेद

| ãо | ψo | आ ০ | ता० |
|------------|----------------|-------------------------------------|---|
| uş | 9 9 | धुवबंधो अद्धुव बंधो आयु ० | धुव० आयु ० |
| પ | 9 २ | ષ્ઠ ? | s [i] |
| ч | | भुवबंधो णिथ | धुवर्भगो णित्थ |
| Ę | ą | सामित्तस्स कच्चे | सामित्रस्य कम्म |
| ξ | 3 | विवागदेसो पसत्थापसत्थपरूवणा | विभा [पा] गदेसो पसत्थ (त्था) पसत्थपरूवणा |
| ६ | ų | योगपञ्चयं । एवं णेदब्वं | योगपञ्चयं णेदव्वं । एवं याव |
| | | याव अणाहारए त्ति | अणाहारएति णेद्व्वं । |
| • | 3 | जीवविवाग • | जीवविपाका० ^१ |
| 6 | 3 2 | स व्वसंकि लि ट्टस्स ० | सच्यसंकिले (लि) स्स० |
| Q | Ę | आयु० उक्क० अणुभा० कस्स ३ ! | आयु• उक्कः अणु॰ वदृ॰ आयु• (१) उक्कः अणु॰ क॰ १ |
| ٩ | 3 9 | उवरिमगेवजा | उपरिसके (गे) वजा |
| લ | s २ | आच्या ० | अगु॰ (वग॰) |
| g | ५५, ५६ | उक्क० वह० | उक्कः [अणुभागः] वद्यः |
| 30 | • | उक्कः वष्ट० | उक्क • [अणु •] वह • |
| 30 | ક | वणप्कदिपत्ते० | वणकदिपत्ते० |
| 30 | Ę | गो० उक्क० अणु० कस्स० अण्ण० बादर | ० गोद० बादर० |
| 90 | 4 | उद्दिसदि | उदिसदि |
| 3 9 | ષ્ઠ | सागार-जा० | जा (सा) गारजागा० |
| 19 | ૪ | उक्कस्सअणुभा० चट्ट० | उक्कस्स अणुभा० उक्क० वट० |
| १२ | ९ | उवसमस्स | उ वसमयस्स |
| 12 | 38 | णबुंसगे | णपुंसके° [*] |
| 93 | ९ | _ | संकिलि॰ उक्क० वह० |
| 18 | ९ | परिवद्माण० | परिपदमाण० |
| 9 & | 9 | • | अण्ण० अण्णद० (१) देवस्स |
| 98 | ફ | घादि० ४ उक्क० अणुभा० कस्स ? अण | ण० बादि० ४ अणु० क० १ अणु० (अण्ण०) |
| 9 & | 3 2 | उवसमसंप० | उवसम <u>्</u> सहुमसंप्॰ |
| 30 | 6 | अणुभा० कस्स० | अणु० [क० ?] |
| 3 9 | 3 8 | उइस्सं समत्तं। | उ क्कस्स (स्सं) समत्तं । |
| 96 | ¥ | अण्ण० जहण्णियाणु अपज्जसणिब्बर्सा | ए अणु० (ण्णद्०) जहणिणया ए अ पज्ज• णिब्वसीए णिब्बसेए (?) |
| 96 | 9 | तस०२-पंचमण० | तस० पंचमण० |
| 16 | 99 | जहण्णए पज्रस- | जहणिणयापज्जत्त |
| 19 | 9 | जह० अणु० | ज ० ज० (?) अ णु० |
| 18 | 9 9 | । जह० अणुभा० वद्द०। | जह० वद्द०। |

१. ता ॰ प्रतिमें यहाँ सर्वत्र विवाग पदके स्थानमें विपाक पद है। २. ता ॰ प्रतिमें प्रायः सर्वत्र णावुंसग पदके स्थानमें णापुंसक पद उपलब्ध होता है।

| पु० | पं० | আ ্ | ता० |
|--------------------------|----------------|---|---|
| 3\$ | १२ | उवरिमगेवजा | उवरिमके (गे) वेजा ' |
| २१ | ξ | सरीरपजात्ती गाहदि | सरीरपजात्तीहि गाहदि |
| २१ | હ | श्ररण् श्ररिथ य | श्रित्थ य |
| २१ | ~ | वेद०-गामा० श्रोघं। | वंद॰ गामगदि (१) श्रोघं । |
| २२ | 20 | संसमगुद्धिभंगो । | सेसं म (ग्र) खुदिसभंगी । |
| २१ | १३ | से काले | सेकाल (ले) |
| २ १ | १२ | श्चरग्र० चदुगदि० | श्रग्रु० (ग्रगग्रद०) चदुगदि० |
| ာ ဗု | १३ | श्चराग् श्रस्य य | म्रस्थि य |
| २२ | દ્ | वेद० गामा० जह ० श्रग्रु ० तिगदि० | वंद्० गामा० तिगदि० |
| २२ | 5 | श्रवगद्वे० | श्रवगदे० |
| २२ | १२ | कस्स० ? श्रयग्र० मगुस० | क० ? मणुस० |
| २३ | ર | परियत्तमा० महिसम० पज्जत्तिशिवत्तीए | परिव '''पजन्ति गुन्वत्तीप् गिन्वत्तमा० |
| | | ग्विव्वत्तमाग्व े जह े श्र गु ० वद्दे । | मजिक्समपरि॰ जह० वद्द० गोद० |
| | | श्राउ०-गोद० | |
| २३ | Y. | मण्.ज० वे०-गोद० जह० श्रग्रु० कस्स ? | मगापज्जवे गोद• ज० श्रयु० [क० ?] |
| २३ | १३ | बेदो० श्र भिमुह० | छे दो [वट्ठावणा] भिमुह |
| २४ | , | परिवद् | परिपद् ॰ |
| २४ | 3 | श्रग्गा० गोरइ० | श्रमु ः (श्र मग्राद ः) गोरहः |
| ~& | 5.8 | घादि०४ जह० श्रग्रु० कस्स० ? श्रोघं | घादि०४ म्रोघं। |
| રપૂ | Đ | श्रोधिभंगो । | श्रोधिभंगो श्रो घि भंगो (?) । |
| २४ | ₹ | भ्र ग्गु० | श्चगु० (ग्रएग्०) |
| २४ | 3 | श्रयु० कस्स० ? | न्न र्यु (क ० ?] |
| ર પ્ | end to many | श्रगु० ? सत्तमाए | श्रमु॰ क॰ ! श्रयम् ४ सत्तमाप् |
| २७ | ą | कम्माणं णिरयोघभंगो । | कम्माणं उक्कः णिरयोघभंगो । |
| २⊏ | 8 | वर्णप्फदि-िणयोदार्गं च भ्रोघं। | वस्त (ति) सियोदासं च श्रोघं पदा। |
| ≎ ⊏ | દ | एग० उक्क | ते० [उक्क०] |
| २⊏ | 9 | -शियोद० एदे सब्वे पजाता बादरपुढवि० | शियोद० । एदे सन्वे पज्जता बादरपुढवि० • • |
| ર્ફ | દ્ | श्रयु० जह० श्रंतो० । | श्रग्रु० ड० ज० श्रंतो |
| २ | 도 | घादि०४ उक्क० श्रोघं। | र्घाद्०४ ग्रोघं। |
| ₹ 0 | પ્ર | ज हर् यु क्क ० | जहरूप (एणु) कु० |
| ३२ | ş | ञ्चावद्वि० । —ं -ं | जाव हु॰ [सागरीव] माणि । |
| ३ २ ३ २ | ય | एवं संजद-सामाह०-छेदोव० । परिहार० | ण्वं संजदा । सामाह० छेदोव० परिहार० |
| २२ ३२ | Ę | पुष्वकोडी दे०। ग्रथवा | पुष्वकोडीदे०। परिहार० श्रथवा |
| ₹ ₹ ફ ≎ | ٤ | उद्धः जहः एगः, | उ० ए० |
| ₹% | છ જ | संजदासंजदार्गः । चक्खु० तसपज्जतभंगो । | संजदासंजदा । पुरिसभंगो । खवरि |
| ने ४ - | | पुरिसमंगो । श्राहारा० श्रोघभंगो । स्वरि | • |
| ٠ . | 9 | ज ह० भगु० जह० उक्क० एग ० | जि० ए॰ |

रै. ता॰ प्रतिमें यह पाठ च्यागे भी प्रायः इसी रूपमें उपलब्ध होता है। २. ता॰ प्रतिमें परिषद॰ के स्थानमें कहीं कहीं परिपद॰ पाठ भी उपलब्ध होता है।

| १० | | महा दम्ब | |
|--------------|-----------------|------------------------------------|--|
| ão | पं० | শ্বা০ | ता० |
| ર પ્ત | ર | धज ० जह० एग० | শ্বজ ় জাণ্ড ় |
| ર્યુ | २ | एवं श्राउ० याव श्रगाहारग ति । | एवं झाउ० (१) याव श्रगाहारग ति ।ॐ वेद० |
| | | एव श्रोघभंगो | ग्णाम॰ ज॰ ज॰ ए॰ उ॰ चत्तारिस॰ । एवं याव श्रग्राहारग ति ग्रेदब्वं⊛ [चिह्नान्तर्गेतः पाठः पुनरुक्तः प्रतीयते] एवं श्रोघभंगो |
| ₹ % | 8 | ष्रगादियो | श्रगादीया |
| ३६ | ą | गोद० जह० श्रग्रु० जहरगुक्क० एग० 🖟 | गोद् ० ज० ए० श्रज्ज १ श्रंतो० |
| | | म्रज॰ जह ॰ म्रंतो. | |
| રૂ દ્ | ¥ | चत्तारि समयं । श्रज० जह० एग० उक्क० | चत्ताविस ः । ग्रज्ञः ज॰ प्॰ उक्क ॰ |
| | | भवट्टिदी | चत्तारिस० । श्रजा० ज॰ ए० उ० भवट्टिंदी |
| ३६ | = | जह ् एग ० | ज॰ ज॰ ए॰ |
| ३ ६ | 5 | एवं श्रदभवसि० श्रसग्गीसु पंचि– | ए वं श्रव्भवसि० । श्रसएगीसु पंचि- |
| ३७ | ዺ | थावराग्यं च सुहुमपज्जत्तगाग्यं च । | थावराणं च । |
| ३७ | १० | गोदस्स जह० श्रगु० जह० एग०, | गोदस्स वज्ज० ज० ए० |
| ३⊏ | પ્ | श्रजहरू ए० श्रोघभगो । | श्रजहरुणहिदी श्रोघभंगो |
| ₹€ | શ.પ્ર ુહ | जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वेसम॰ । श्रज॰ | ল০ দৃ০ প্ৰজ্ঞান |
| 3, € | 3 | गोद॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ चत्तारि | गोद् ० ज० ए० श्रज्ज ० |
| | | सम० श्रज० | |
| 80 | २ | गोद० जह० जह० एग० | गोद् ० ज॰ एग० |
| 80 | ५,८,१० | जहु॰ जह० एग०, उक्क० बेसम०। श्रज० | ज॰ ए॰ ग्रज्ञ॰ |
| 80 | ६ | चत्तारिसम० । श्रज० | चत्तारिस [श्रज्ञ ०] |
| 6 ? | 8 | जह० जह० एग०,उक्क० बेसम० । श्रज० | অ০ তৃ০ স্কল্ (অह ০) তৃ ০ |
| | | जह० एग०, | |
| ४१ | ₹, ५ | जह० जह० एग०, उक्क० वेसम० श्रज० | ज० ए० ग्रज्ञ० |
| ४१ | 3 | मणपज्जवभंगो । एवं | मगापज्जवभंगो । घादि० ज० एग० श्रजा० |
| | | | ज० श्रंतो० उक्क० बेश्रट्टा० । एवं |
| ٧₹ | ۶ | श्रज• जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं | श्रज्जाः जारु एः उरु बेसः । श्रज्जाः जारु |

| | | = | |
|------------|---------------|--|--|
| ३६ | Ξ. | जह० एग० | ज॰ ज॰ ए॰ |
| ३६ | 5 | एवं श्रदभवसि० श्रसरागीसु पंचि- | प्वं श्रवभवसि० । श्रसण्णीसु पंचि- |
| ३७ | y | थावराग्यं च सुहुमपज्जत्तगाग्यं च । | थावरार्णं च । |
| ३७ | १० | गोदस्स जह० श्रगु० जह० एग०, | गोदस्स वजा० ज० ए० |
| ३⊏ | પ્ | श्रजहरुष्० श्रोवभगो । | श्रजहरुण[हुदी श्रोघभंगो |
| ₹€ | ૧.૫ ,૭ | जह० जह० एग०, उक्क० वेसम० । श्रज० | জ ে ঢ্ ০ গ্ৰ জ |
| 3 , | 3 | गोद॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ चत्तारि | गोद् ० ज० ए० श्रज्ज ० |
| | | सम० श्रज्ञ० | |
| 80 | २ | गोद० जह० जह० एग० | गोद् ० ज॰ एग० |
| 8" | ५,८,१० | जहु॰ जह० एग०, उद्घ० वे सम० । श्रज० | ज० ए० ग्रज्ञ |
| 80 | ६ | चत्तारिसम् । श्रज्ञ | चत्तारिस [ग्रज्ञ०] |
| 6? | १ | जहरु जहरु एगरु,उक्करु बेसमरु । श्रजरु | जि॰ ए० श्रज्ञा० [जह०] ए० |
| | | जह० एग०, | |
| 85 | ₹, ५ | जहरु जह ु एग ु, उक्करु वेसम ् श्रज | ল০ ০০ স্থলত |
| ४१ | 3 | मण्पज्जवभंगो । एवं | मगापज्जवभंगो । घादि० ज० एग० श्रज्ज० |
| | | | ज० श्रंतो० उक्क० बेश्रट्टा० । एवं |
| ४२ | ş | भ्रज• जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं | म्राज्ञ ः ज०ए० उ० बेस०। म्राज्ञ ० ज० |
| | | | ए ० ड॰ तेत्तीसं |
| ४२ | પ્ | तेउपम्मासु | तेउ० पम्मादिसु |
| አ ጸ | 8 | गोदा० जहरु गुस्थि | गोदा० उक्क० गस्थि० |
| 84 | ६ | श्रद्धपोग्गल० । श्राउ० | ब्रद्धपोग्गल ः। सत्तरा गं कः श्रग्रुः जः |
| | | | एग० ङ० वेसम०। भ्राउ० |
| XC | ই | पुरुवि० | ······पु ढ वि० |
| ٧C | દ્ | बे वाससह० | बे माससह० |
| 3¥ | ¥ | चत्तारि वासाणि | चत्तारि वाससहरसाणि |
| ΥĘ | 5 | ष्राउ० [जह० एग०] उक्क० | স্থার০ র০ র০ ए০ র০ |
| 40 | \$ | भग्रु॰ जह॰ एग॰ | घ्रगु० ज० ज० एग० |
| ५० | ₹. | | ঘাৰত ড০ জ০ |
| ዺ१ | દ્ | श्चंतरं । वेउन्वि॰ श्चट्टग्यां | श्रंत॰ । श्रट्टयर्थं |
| | | | |
| | | | |
| | | | |

| पूo | पं० | ষ্ঠাত | না০ |
|-------------|--------------|--|--|
| 4.8 | १ | म्रजु० जहराजु० एग० | স্থ ন্ত সংত্ |
| YY | १ | प्रथवा उक्त० ग रिथ | श्चवस्थवा (?) वा ड ० (?) ग्रास्थि |
| ५ ४ | ¥, | गोदा॰ [उद्धः॰ श्रग्रु॰] जद्दः॰ एग॰ | गोद॰ ज॰ ए॰ |
| 48 | 9 | ष्ट्राउ० (उद्घ० घ्रमुभा०) जह० | श्राड॰ ज॰ |
| પ્રપ્ | ¥ | ग्राउ॰ [उक्क ॰ घ्रगु॰] ज ह ० | श्राउ० ज० |
| Y O | ६ | एत्रमुद्धस्समंतरं समर्त । | × |
| ६१ | ¥ | सन्वट्टा त्ति गोद् | सन्वट्टासि । गोद० |
| ६२ | २ | श्राउ० जह० गागा- | श्राउ० ज ० ग् ागा — |
| ६४ | ₹. | थ ज॰ जह ॰ जह ॰ एग॰ , | श्रज्ञ॰ ज॰ ए॰ |
| ६७ | x | घादि४-गोद० जह० श्रज• ग्रत्थि | घादि४ गोद ज० श्रज्ज० गास्थि श्रंत०। |
| | | श्रंतरं। बेद० | वेद० गाम०ज० म्रज्ज०गात्थि० भ्रंत०। वेद० |
| ६८ | ą | उक्क० छावट्टिसाग० | उ० बा० (छा) वट्टिसाग० |
| 90 | 5 | ग्विगेवज्ञभंगो । | णवके (गे) वेजभंगो । |
| ৬ १ | ₹ | खइए घादि०४ जह० | घादि०४ ज० |
| ७१ | Y | श्रज॰ [जह॰ एग॰, उक्क॰ चशारि सम ॰ । | ग्रज्ञ० ग्रोघं० । श्राउ० |
| | | गावरि गो० उ० बेसम०] द्याउ० | |
| ७२ | X | श्चजि० जह० एग० | श्रज्ञ ० ए० |
| Y er | १३ | उक्कस्सं । एवं सामा गोदासं | उक्कस्सं० गामागोदाग्रं |
| ७६ | ₹ | स्ति० श्रसु० | णि वं (?) श्र णु ० |
| ७६ | ~ | ञ् टागापदिदं बंधदि । | छुट्टाण्यदिदं बंधदि । एवं ग्लामं । |
| ७७ | १३ | पुढवीए तिरिक्खोघं श्रग्रुदिस याव सन्वट्ट | पुढवीए । तिरिक्खोघं घ्रगुदिस याव |
| | | ति सब्वएइंदि० | सवट्ट सि सन्वएइंदि० |
| 6 5 | ४ | उवरिमगेवजा शि सन्त- | उवरिमगेजा ्वजा) ति । सन्व– |
| 6 5 | ૭ | श्रगु॰ वं तिग्गं घादीगं | श्चरापु० बं। घादीसां |
| ७८ | | माय-सामाइ०-छेदो० श्रवगद० | माय० । सामाइ० छेदो० श्रवगद० |
| ૭ ૯ | 3 | श्चत्रंधगा । एवं पगदि बंधदि | स्रबंधगा । ये पगदी बंधदि |
| 30 | \$ 0. | सिया श्रबंधगा य बंधने य, | सिया बंधरो य । |
| ૭દ | ११ | श्चबंधगाय बंधगाय। | भ्रबधगाय बंधगायं (य)। |
| હદ | ११ | बंधगा य, सिया बंधगा य श्रवंधगे य, | बंधगाय । श्रवंधगाय श्रवंधगेय । |
| ૭દ | १२ | तिरिक्खोघं पुढ०-श्राड६-तेउ६-वाड०- | तिरिक्खोघं । पुढवि० म्राड० तेउ.० वाड० |
| | | बाद्रपरो० | बाद्र पुढ० ग्राड० तेउ० वाउ० बाद्रपत्ते० |
| 50 | ६ | श्रयुक्कः विशिषा भंगा । | श्रमुक्क० श्रद्धभंगा । |
| 50 | 3 | गोदस्स जह० श्रज० उक्कस्सभंगो | गोद्स्प वजा० । श्रजा० उक्कस्सभंगो । |
| 5 0 | १२ | श्चगाहारग रिः । ग्वति कम्मइ० श्चगा- | श्रगाहारग शि |
| | | हार० भाउ० सात्थि । | |

पाठभेदके लगभग ये १२५ उदाइरण हैं। इनमें से ता॰ प्रतिके लगभग २२ पाठ ब्राह्म हैं जिनका इमने शुद्धिपत्रमें उपयोग कर लिया है। शेष आ॰ प्रतिके पाठ ही प्राह्म प्रतीत होते हैं। किर भी तुलनात्मक अध्ययनकी दृष्टिसे ये पाठ बढ़े उपयोगी हैं। इससे हमें इस बातका पता लगता है कि विषयके अजानकार व्यक्तियोंके द्वारा प्रतिलिपि कराने पर कितना अधिक उलट फेर हो जाता है और केवल एक

अतिको ब्रादर्श मानकर चलनेमें कितना अनर्थ होता है। जिस प्रतिके ब्राधारसे बनारसमें सम्पादन कार्य हो रहा है उसे स्वर्गीय श्री लोकनाथ जी शास्त्रीने प्रतिलिपि करके भेजा था ख्रौर वह ता॰ प्रतिसे अपेज्ञाकृत शुद्ध प्रतीत होती है ता॰ प्रति जिस रूपमें सुद्धित होकर ताम्रपत्रों पर श्रक्कित की गई है वह उसकी प्राथमिक स्त्रयस्था ही प्रतीत होती है ख्रौर उसमें पर्याप्त संशोधन अपेज्ञित है जैसा कि पूर्वोक्त तालिकासे स्पष्ट है।

पिछले वर्ष श्रीमान सेठ बालचन्द्रजी देवचन्द्रजी शहा यात्रा करते हुए बनारस श्राये थे। उस समय हमारे सहाध्यायी श्री पं इंशिलालजी सि॰ शा॰ भी यहीं पर थे। ताम्रपत्र प्रतियोंकी चरचा उठने पर सेठ सा॰ ने उनका संशोधन होकर शुद्धिपत्र बनना स्वीकार कर लिया था। तदनुसार उन्होंने हमारी सलाइसे यह कार्य पं॰ हीरालालजी को सोंपा था। पण्डितजीके जयधवलाके पाठभेद लेते समय इस कार्य में हमने पूरी सहायता की है। यह कार्य ताम्रपत्र मुद्दित प्रति श्रीर जयधवला कार्यालय की प्रति । में सकापी) के श्राधारसे सम्पन्न हुआ है। इस श्राधारमे हम यह कह सकते हैं कि जयधवला की जो ताम्रपत्र प्रति हुई है उसमें जितनी श्रशुद्धियां हैं उससे कहीं श्रीधक महाबन्धकी ताम्रपत्र मुद्दित प्रति में वे पाई जाती हैं। वस्तुत: मूलप्रतिके श्राधारसे प्रतिलिपि होनेके श्रभी तक जितने प्रयत्न हुए हैं वे सब श्रपर्याप्त हैं। होना यह चाहिये कि इस विषयके एक दो श्रनुभवी विद्वान जिन्हें विषयका श्रनुगम हो। मूडबिदीमें बैठें श्रीर कनडीकी प्राचीन लिपिके जानकार विद्वान कराकर मिलान करते हुए प्रतिलिपि प्रतिमें संशोधन करें तभी मूल कनडी प्रतिका ठीक रूप दिश्रोचर हो सकता है

सम्पादनकी विशेपता

इस समय इमारे सामने दो प्रतियाँ हैं एक प्रेसकापी और दूसरी ताम्रपत्र मुद्दित प्रति । प्रस्तुत भागमें दन दोनों प्रतियोंका इमने समान रूपसे उपयोग किया है। श्राज कल सम्पादनमें किसी एक प्रतिका श्रादर्श मानकर श्रन्य प्रतियोंके पाठ टिप्पणीमें देनेकी भी पद्धित प्रचलित है और कुछ विद्वान इसे सम्पादन की विशेषता मानते हैं। किन्तु इस सम्पादनमें इस ऐसा नहीं कर सके हैं। इस ही क्या धवलाके सम्पादनमें भी इस नियमका पालन नहीं किया जाता है। धवलाके सम्पादनके समय श्रमशवतो प्रति, श्रारा प्रति, कारखा प्रति श्रीर ताम्रपत्र प्रति सामने रहती हैं। इनमेंसे विषय श्रादिको देखते हुए जो पाठ श्राह्म प्रतीत होता है वह मूलमें दिया जाता है श्रीर इतर प्रतियोंका पाठ टिप्पणीमें दिखाया जाता है। इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो एक या श्राधिक सब प्रतियोंके पाठ टिप्पणीमें दे दिये जाते हैं श्रीर विषयादिकी दिस्से जा शुद्ध पाठ प्रतीत होता है वह मूलमें दिया जाता है। यहाँ इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए धवला मुद्रित प्रतिके एक दो उदाहरण दे देना श्रावश्यक सनझते हैं —

घवला पुस्तक १० १० ३३३ की पंक्ति ४ में जहिणियाए यह्दीए वहिदा यह पाठ स्वीकार किया गया है। यह ता० प्रतिका पाठ है ब्रां इसके स्थानमें ब्रा०, ब्रां० ब्रांत का० प्रतिका पाठ जहिणि याए यहदीदा है जा रिष्पणिमें दिखलाया गया है। किन्तु इसके विपरीत इसी पृष्ठका पक्ति १३ में ब्रा॰, ब्रा॰ ब्रांत का० प्रतिका पाठ वहुं में मूलमें स्वीकार किया है ब्रांर ता० प्रतिका 'यहुं सो बहुं सो पाठ टिप्पणीमें दिखलाया गया है। यह तो जहाँ जिस प्रतिके जो पाठ प्राह्म प्रतीत हुए उन्हें स्वीकार करने के उदाहरण हैं। ब्रा॰ एक ऐसा पाठ उपस्थित किया जाता है जो किसी भी प्रतिमें उपलब्ध नहीं होता पर प्रकरण ब्रोर ब्रा॰ से सम्पाद में ने उसे स्वीकार करना ब्रावश्यक माना है। ऐसे स्थल पर सब प्रतियोंका पाठ नीचे टिप्पणीमें दिखलाया गया है ब्रार प्रकरण सङ्गत पाठ मूलमें दिया गया है। इसके लिथे घवला पुस्तक १० १८ ३३२ की पाँचवी टिप्पणी देखिये। यहाँ सब प्रतियोंमें मुबलबणाकरणं पाठ हैं किन्तु इसके स्थानमें सम्पादकोंने शुद्ध पाठ मवलंबणाकरणं उपयुक्त समझ कर मूलमें इसे स्वीकार किया है। घवलाके जितने भाग प्रकाशित हुए हैं उन सबमें इसी नीतिसे काम लिया गया है। सर्वार्थिदि में भी हमें इसके नीतिका ब्रानुसरण करना पड़ा है। वहाँ इम किसी एक प्रतिको ब्रादर्श मानकर नहीं चल सके हैं।

महाबन्ध सम्पादनके समय भी हमारे सामने इसी प्रकारकी कठिनाई रही है। श्यितविन्धके सम्पा

दनके समय दमारे साभने केवल एक ही प्रति रही हैं। इसिलए वहाँ अवश्य ही हमें अपनेको संयत रखकर प्रतियर भगेसा करके चलना पड़ा है। बहुत ही कम ऐसे स्थल हैं जहाँ [] अवेदमें नवे पाठ दिये गये हैं किन्यु अनुभागबन्धके १० फामोंसे आगिके सम्पादनके समय हमें ताम्रपंच मुद्रित प्रति उपलब्ध हो जानेसे विपय आदिकी हिएते। विचारका केव व्यापक हो जानेके कारण हमने इस बातकी अधिक नेप्टा की है कि जहाँ तक बने यह संस्करण शुद्धकपमें सम्पादित करके प्रकाशनके लिए दिया जाय। और हमें यह सुचित करते हुए प्रसद्धता होती है कि इस कार्यमें हमें बहुत अंशोंने सफलता भी पिती है। हमें एस कार्यमें सहार सुप्य निवासी श्रीयत पंच राजनत जी मुख्यार और श्रीयत नेपिचन्द्रजी वकीकका भी प्रमा सहयोग मिल रहा है, क्योंकि इन दोनों बनुओंने इन अन्योंके काल आदि प्रकरणोंका विकेष अन्यास किया है। इन प्रकरणोंकी प्रक्रिया उनके प्यानमें बगबर बेटती जा रही है, इसिलए किपिकारकी अस्पायधानीके कारण जहाँ भी अद्युद्धि होती है उसे हमें व उन्हें प्रकृतियों आदिकी परिगणना कर व स्वामित्व आदि प्रकरणोंको देलकर समक्तमें देर गर्टी लगती। अवश्य ही नागानाम और अत्यवहुत्व आदि कुछ ऐसे प्रकरण है जिनमें अशुद्धियोंका परिमार्जन करना कठित हो जाता है। ऐसी अपस्थामें हम किसी एक प्रतिको आदर्श मानकर चलनेके प्रधातको प्रश्न नहीं है सके हैं।

हमने पहले प्रस्तुत भागके १० फार्मोकी डोनी प्रतियोंके आधारने तालिका हो है उसे देखकर ही पाठक इस बायका द्यानुमान कर सकते हैं कि कई प्रतिशैंको सामने रखे विना मुख पाठकी पृति नहीं हो सकती है । उठाइस्मार्थ प्रस्तुत संस्करणके ⊏१ पृष्ठ पर भागाभागके प्रसंगरी ह्या० प्रतिका **'अगां**ता भागा' पाठ । हमने मुख्ये स्वीकार किया है अस् तारु प्रतिका 'क्रणंतभागों' पाट नीचे हिप्पणीमें दिखाया है, क्योंकि वहाँ छाठा कर्गोंके अनुकुछ अनुमार्गके बन्धक जीव सब जीवेंकि कितने भागप्रमाण हैं इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है। तथा पुरु 🚅 की पंकि भी में ह्यार प्रक्षिक पारके स्थानमें मलमें तार प्रक्रिका पार्ट सर्वकार करना पड़ा है। कारण ेह वर्षे छापके उद्युष्ट छोर छन्द्रुष्ट छन्नागके अन्वक जीवीका कितना चेत्र है इन प्रशनका समापान। किया गता है। किन्तु ग्रा० प्रतिमें उल्हण्या दायी पाठ छूटा हुग्रा है जिसकी पृति 'ता०' धर्तिके। ग्राधारसे की गई ें । इनना सब कुछ बोते हुए भी प्रस्तु । संस्करणमें ऐसे सेकड़ों स्थल हैं जबाँ पाठको कभी देखकर अनकी पूर्वि स्थामित्व द्यादि दृसंग प्रकरणोंके द्याभारने करनी पड़ी हैं । ऐसे स्थली पर दे पाट 🌅 देक्टमें विथे गये है । इससे हम दिसी एक प्रतिको आदर्ज मान कर नहीं चल सके हैं । हमारी समझसे बब दिखी मीथिक अन्थका अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है छौर ऐसा करो हुए किन्टी बीजोंके छाधारमे छुद्र पाठ प्राप्त करना सम्भव होता है तह अशुद्ध पाठोंकी परस्परा चलने देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता । इतना ऋवश्य है कि इस । तरद जो भी पाठ प्रनुत किया जाप एक तो उसकी स्थिति स्वतन्त्र रहनी चाहिए। ग्रीर दूतरे जिन प्रतिर्धेके। श्रावारसे नम्पादन कार्य हो राग हो उनके सम्बन्धमें भी पृरो जागरूकतामें काम लिया जाय । हमने प्रस्कृत संस्करणमें । इसी नीतिका छतुसरण किया है । भात्र ता० प्रतिके छप्रिकतर जो पाठ () या [] ब्रेकेटोंस सम्बन्ध स्खते हैं उन सक्को हम टिप्पर्णामें नहीं दिखा सके हैं । इनको देखकर हमें इस बातका ऋाश्वर्य होता है कि तार प्रतिमें इतने पाठनेट हो कैसे गरे । कनडीकी एक प्रतिके छाधारमे दो प्रतिलिपि हुई एक श्री पं० सुमेरुचन्द्रजीने कराई और दूसरी बनारम होकर छाड़ी। फिर भी इनमें लिपिसम्बन्धी इतना छाधिक व्यत्यय ? इस छाधारस इमें यद कहना पड़ता है कि भाषा और लिपि ब्राटि कई दृष्टियोंसे मूल कनडी प्रतिका ब्रत्ययन होना चाहिए ! इसके बिना कनडी प्रतिके ठीक स्वरूपका निश्चय होना सम्भव नहीं है। इन दोनों प्रतिदोंमें हमें छिपिसम्बन्धी जो मेट हिंद गोचर हुन्ना है उसमेंने कुछको आगे वालिका दंकर दिखलाया जाना है-

- १. भ ग्रीर व श्रद्धरोका व्यत्यय—ता० प्रति पृ० १ पंक्ति ५ में 'विभागदंसो' पाट है जब कि श्रा० प्रति पृ० ६ पंक्ति ३ में यह पाट 'विवागदंसो' उपलब्ध होता है।
- २. ए श्रीर इ स्वरीका व्यत्यय—ता० प्रति प्र० २ पंक्ति प्रभं 'मञ्ज्यमंकिकेर्स पाठ है जब कि श्रा० प्रति प्र० = पंक्ति १२ में 'सव्वसंकिल्डिइस्स०' पाठ उपलब्ध होता है।

- ३. क और ग श्रक्तोंका ब्यत्यय—ता० प्रति पृ० २ पंक्ति १३ में उर्वारमकेयण्जा पाठ है जब कि श्रा० प्रति पृ० ६ पंक्ति ११ में 'उर्वारमगेयण्जा' पाठ उपलब्ध होता है।
- ४. उ स्रोर द्वित्वका व्यत्यय—ता॰ प्रति प्ट॰ २ पंक्ति १३ में 'श्रमु॰ पाठ है जब कि स्रा॰ प्रति पू॰ ६ पंक्ति १२ में इसके स्थानमें 'अग्गु॰' पाठ उपलब्ध होता है।
- ५. 'प्फ' के स्थानमें केवल फ—ता० प्रति पृ० २ पं० रद्र में 'वरणप्रदि पाठ है जब कि छा० प्रति पृ० १० पंक्ति ४ में इसके स्थानमें 'वरणप्रदि' पाठ उपलब्ध होता है।
- ६. ज और पका ब्यत्यय—ता॰ प्रति पृ॰ २१ पंक्ति ५ में सुहुमसंज॰ पाट है। किन्तु इसके स्थानमें स्था॰ प्रति पृ॰ ८२ पंक्ति ११ में 'सुहुमसंप॰ पाट उपलब्ध होता है।
- ७. ब्राकारके हस्य श्रीर दीर्घका व्यत्यय—ता० प्रति पृ० २१ पंक्ति १२ में 'अग्एट' पाठ है । किन्तु ब्रा० प्रति पु० ⊏३ पंक्ति ११ में 'ब्राग्एट्' पाठ उपलब्ध होता है ।
- द्र. त और द का व्यत्यय—ता० प्रति पृ० द४ पंक्ति १८ में 'वस्पाति' पाठ है किन्तु इसके स्थानमें ऋा० प्रति प्र० ३३३ पंक्ति ३ में 'वस्प्किटिका०' पाठ उपलब्ध होता है।

ये ऐसे व्यत्यय हैं जो दोनों प्रतियों में सर्वत्र बहुलतासे पाये जाते हैं। इनके लिया थेड़ि बहुत इप्रत्य श्रक्षरों के भी व्यत्यय उपलब्ध होते हैं उन्हें यहाँ दिखलाया नहीं है। यहाँ यह कह हेना हमे हावश्यक प्रतीत होता है कि इन पाठ-भेदों मेंसे आज प्रतिके पाठ हमें प्रायः उपयुक्त प्रतीत हुए इसिए प्रतिके पाठांके स्थानमें श्रत्य हमने उन्हें ही स्थीकार किया है। दूसरे प्रारम्भके १० मुद्धित फार्मों जहाँ हमें आज प्रतिके पाठांके स्थानमें श्रत्य पाठ स्वीकार करने पड़े हैं वहाँ हमने आज प्रतिके पाठा टिप्पणीमें दिखला दिये हैं। इसके लिए प्रस्तुत मुद्धित प्रतिके ६, १०, ४९, ५४, ५६ और ७५ पृष्ठोंकी टिप्पणी देखिए। इन स्थलों में पहले हम जो आज और ताज प्रतिके पाठा मिलानकी तालिका दे आये हैं उसमें संशोधित पाठा ही दिखला दे गये हैं। यहाँ आज प्रतिके टिप्पणीगत पाठा ही उसके समझने चाहिए।

यहाँ एक बातकी सूचना कर देना श्रीर श्रावश्यक प्रतीत होता है कि मृडविद्रीकी कनडी प्रतिका श्रमु-भागवन्धके प्रारम्भका कुछ अंश श्रुटित है जिसकी पृति हमने उत्तरप्रकृतिअनुभागवन्धके प्रारम्भक स्थलको देखकर की है। किन्तु ऐसा करते हुए हमने जोड़े हुए अंशको व्यवस्थानुसार [] वैकंटमें दिखलाया है। यह ब्रेकेट प्रथम पृष्ठसे प्रारम्भ होकर पाचवें पृष्ठकी ११ वीं पंक्तिमें समाप्त होता है, इसिलए यह अंश जोड़ा हुश्रा समक्तना चाहिए। अन्थके संदर्भमें श्रानुपूर्वी बनी रहे एकमात्र इसी अभिप्रायसे हमने ऐसा किया है। इस प्रकार इस भागका सम्पादन हमने जिन विशेषताओंको ध्यानमें रखकर किया है उसका संदित्त विवरण उक्त प्रकार है।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

विषय-परिचय

बन्धके चार भेट हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध श्रौर प्रदेशबन्धं । इनमेंसे प्रस्तुत संस्करण-में श्रानुभागबन्धका विचार किया गया है !

त्रानुभागका अर्थ हे फलदानशक्ति । कपायोंका ग्रुम और त्राग्नुम जैसा परिणाम होता है । उसके कमों में फलदान शक्तिका प्रांतुर्भाव होता है । योगके निमित्तसे गुण्स्थान परिणादों के अनुसार यथासम्भव ज्ञानावरणादि ब्राट मृल प्रकृतियोंका और मित्रानावरण ब्रादि उत्तर प्रकृतियोंका क्ष्म होता है है ब्रिक्त कर्ममें उसकी प्रकृतिके स्मुनाधिक शक्तिका निर्माण होता है । इसलिए हम प्रकृतिको सामान्य और अनुभागको विशेष कह सकते हैं । यदापि ज्ञानावरण्यं मित्रानावरण् ब्रादि विशेष ही हैं पर ब्रापनी व्रापनी फलदानशक्तिके तारतस्यकी अपेक्षा ये भी सामान्य ही हैं । प्रकृतिकन्धमें कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है इस प्रकारकी विशेषता नहीं उपकृतिकन्धमें कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है इस प्रकारकी विशेषता नहीं उपकृतिकन्धमें कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है इस प्रकारकी विशेषता नहीं उपकृतिकन्धमें कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है इस प्रकारकी विशेषता नहीं उपकृतिकन्धमें कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है इस प्रकारकी विशेषता नहीं उपकृति । यह विशेषता व्यनुभागकन्धमें ही प्राप्त होती । यह विशेषता व्यनुभागकन्धमें ही प्राप्त होती । वह विशेषता कारण पुरुष्यतः यह अनुभागकन्ध ही है ब्रीर अनुभागकन्धका मृत्र कारण कपाय है, इसलिए कर्मक अतो पर प्रकाश होताना ब्रावर्थक है परन्तु प्रस्तुत भागमें अनुभागकन्धका ही विचार किया गया है, इसलिए यहाँ हम एकमाव इसीका उहापोइ करेंगे ।

जीय श्रीर कमें स्वतन्त्र दो द्रव्य हैं। उसमें भी जीव अमृते हे श्रीर कमें मृतिक। एक मृतिकका अन्य मृतिकके साथ बन्ध अपने स्वर्श गुणके कारण होता है। किन्तु श्रमृतिकका मृतिकके साथ बन्ध क्यों होता है। बन्धतत्त्वकी ठीक सरहने समभानेके लिए इस प्रश्नका उत्तर प्राप्त करना श्रावश्यक है। श्राचार्य कुन्दकृन्दने इस प्रश्नका समाधार करते हुए कहा है—

रत्तो वंधदि कम्मं मुंचदि कम्मं विरागसंपत्तो ।

श्राराय यह है कि राग और देपके कारण जीव कमेंसे बन्धकों प्राप्त होता है। इस प्रकार, यद्यांप, इस वचनसे हमें या उत्तर तो मिल जाता है कि जीवका बन्ध किस कारणसे होता है फिर भी यह शंका बनी ही रहती है कि स्वर्श गुणके क्रभावमें जीवका पुद्राख्से सम्बन्ध कैसे होता है, क्यों कि एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके माथ स्पर्श विशेषका नाम ही बन्ध है। पद्रालमें स्पर्शगुण होता है, इमलिए उसका ग्रन्य द्रव्यके साथ बन्ध बन जाता है पर जीव द्रव्यमें इस गुणका ऋगाव होनेसे यह नहीं बग सवता है । यदि यह कहा जाय कि बन्ध पुद्र ल-का पुर लगे होता है और जीव उसमें अनुप्रविष्ट रहता है तो प्रश्न यह होता है कि जीव पुदरालमें खनुप्रविष्ट क्यों हुआ और पुद्रलके स्थानान्तरित होने पर वह उसका अनुगमन क्यों करता है। इस प्रश्नका उत्तर आचार्योंने यह दिया है कि जीव और पद्गलका बन्ध अनिदि कालसे हो रहा है और इस बन्धका मुख्य कारण जीवकी अपनी कमजोरी है। कर्मके निमित्तसे जीवमें योग और कपायरूप परिणमन होता है ग्रौर इस वारण जीवके साथ कर्म सम्बन्धको प्राप्त होता है। यद्यपि जीवमें स्पर्श गुण नहीं है फिर भी . जीवमें विवासान कपाय परिणाम स्पर्शगुणका ही कार्य करता है। जिस प्रकार पुद्गलमें स्पर्श गुणके कारण उसका अन्य पुरुगल-दृष्यके साथ बन्ध होता है उसी प्रकार जीवमें योग व कपायरूप परिणाम होनेके कारण उसका कर्म ग्रौर नोकर्मके साथ बन्ध होता है। किन्तु जीवका यह योग ग्रौर कपायरूप परिगाम स्वाभाविक न होकर नीमित्तिक हैं इसलिए जब तक इस प्रकारके निमित्तका सद्भाव रहता है तभी तक यह बन्ध प्रक्रिया चलती है, इसके अभावमें नहीं। इस प्रकार इस बातका निर्णय हो जाने पर कि जीवका कपायरूप परिस्ताम ग्रीर पुद्रलका स्पर्शसुण मुख्यतः बन्धका प्रयोजक है. यहाँ इन्हीं दोनोंके ग्राधारसे श्रानभाग-

बन्धका विन्तार किया है। तात्वर्ष यह है कि जीवमें जिस मात्रामें क्यायाध्यवसान स्थान होता है कमें उसी मात्रामें जीवके साथ बन्ध होता है। साधारणतः जीवकी कपाय और कार्मण वर्गणाओं का स्पर्ध गुन्ण इन होनों के कारण बन्धको हम हो भागों में विभक्त कर निक्ते हैं—स्थितिबन्ध और अनुभागवन्ध । स्थितिबन्धमें विविच्चित कमें का जीवके साथ कितने काल तक सम्बन्ध रहता है इसका विन्तार किया जाता है और अनुभागवन्धमें कमें का जीवके साथ जो बन्ध होता है वह विघटनके समय जीवमें कितनी मात्रामें और किस प्रकारकी क्रियांक होने में सहायक होता है इस बातका विन्तार किया जाता है। इस बातको स्पष्ट करने के लिए 'टाइमवम' का उटाहरण उपयुक्त होगा। इसमें दो बार्व हिंखोचर होती हैं—प्रथम तो उसका नियत समय पर विस्कोट होना और दूसरे विस्कोटके समय अमुक मात्रामें हलचल उत्पन्न करना । ठीक वही अबस्था कमें की है। कमें भी नियत समय पर ही आत्मामें एक विदेश प्रकारकी नियत मात्रामें हलचल उत्पन्न करके ही अलग होते हैं। शास्त्रकारोंने इस हल्खलको ही उदय या उदीरणा शब्दों द्वारा प्रतिविद्य तस्वार्थसूत्रमें एद्धिएन्छ आन्यार्थने अनुभागकी ह्यास्था करते हुए कहा है 'विपाकोऽनुभवः ।' होता है, इसीलिए तस्वार्थसूत्रमें एद्धिएन्छ आन्यार्थने अनुभागकी ह्यास्था करते हुए कहा है 'विपाकोऽनुभवः ।'

यह अनुभाग बन्धकी अपेन्ना हो प्रकारका है—मृलप्रकृति अनुभागवन्य और उत्तर प्रकृति अनुभाग बन्ध । मृल प्रकृतियाँ ब्राट हैं । बन्धकं समय इन्हें ओ अनुभाग प्राप्त होता है उसे मृलप्रकृति अनुभागवन्य कहते हैं ब्रींग बन्धकं समय उत्तर प्रकृतियोंको ओ अनुभाग प्राप्त होता है उसे उत्तर प्रकृति अनुभागवन्ध कहते हैं । तृतीय अनुभागवन्धाधिकारमें इसी अनुभागका विविध अधिकारों द्वारा विनार किया गया है । वहाँ मृल प्रकृति अनुभाग बन्धका विनार करते समय पहले हो अधिकारों-द्वारा उसका विनार किया गया है । वहाँ प्रविकार ये हें—निवेक प्रकृषणा और स्पर्धक प्रकृत्यणा । जिनका खलासा इस प्रकार है —

नियंक प्रस्पार्गा—प्रति समय को विविधित मूल या उत्तर कर्म वैध्वता है उसका दो प्रकार विभाग होता है—एक तो स्थितिकी अपेचा और दूसरा अनुमागकी अपेचा । आवाध कालको छोड़ कर स्थिति सम्बंध लेकर प्रत्येक समयमे जो कर्मपुष्ण प्राप्त होता है उसे स्थितिकी अपेक्षा नियंक कहते हैं । इस प्रकार प्रत्येक समयमें वैधनेवाला कर्म अपनी स्थितिके अनुसार प्रत्येक समयमें वैधनेवाला कर्म अपनी स्थितिके अनुसार प्रत्येक समयमें विभाजित हो जाता है । मात्र आवाधाक जितने समय होते हैं उनमें नियंक रचना नहीं होती । यह तो स्थितिक अनुसार वर्गीयभाजनका क्रम है । अनुभागकी अपेच्छा जवन्य अनुभाग वाले कर्म-परमागुओंकी प्रथम वर्गणा होती है और प्रत्येक परमागुकों वर्ग कहते हैं । कमवृद्धिरूप अनुभाग राक्तिको लिये हुए अन्तर रहित ये वर्गगणाएँ जहाँ तक पाई जाती है उसकी स्थिक संज्ञा है । ये स्पर्थक देशवाति और सर्वधाति दो प्रकारके होते हैं । ये दोनों प्रकारके स्पर्थक स्थितिवन्धके अनुसार जो नियंक रचना वर्शी है उसके प्रथम नियंक्ष लेकर अन्त तक पाये जाते हैं । ताल्पर्य यह है कि प्रत्येक स्थिति-नियंक्ष देशवाति स्पर्थक केवल चार वातिक्षोंके होते हैं ।

स्पर्धकप्रकृषणा— ऋविभाग प्रतिन्छेदका हम विचार आगे करेंगे। ऐसे अनन्तानन्त अविभाग प्रतिन्छेद एक वर्गमें पाये जाते हैं। तथा वे वर्ग मिलकर एक वर्गणा बनती है और ऐसी अनन्तानन्त वर्गणाएँ मिलकर एक स्पर्धक होता है। विशेषता इतनी है कि प्रथम वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें समान अविभाग प्रतिन्छेद होते हैं। दूसरी वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें एक अधिक अविभाग प्रतिन्छेद होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा तक जानना चाहिए।

ये दो अनुयोगद्वार द्यागेकी प्ररूपणांके मृल आधार हैं। तदनुसार द्यनुभागवन्धका विचार संज्ञा द्यादि चौबीस स्राधिकारों-द्वारा किया गया है। खुलासा इस प्रकार है—

संज्ञा—संज्ञाके दो भेद हैं — व्यातिसंज्ञा श्रीर स्थानसंज्ञा । जो ज्ञानावरणादि श्राट कर्म वतलाये गये हैं वे व्याति श्रीर श्रवाति इन दो भागीमें विभाजित किये गये हैं । व्यातिकर्म भी दो प्रकारके हैं — देशवाति श्रीर सर्ववाति । जो जीवके ज्ञानादि गुणीका पूरी तरहसे वात करते हैं उन्हें सर्ववाति कर्म कहते हैं श्रीर जो एकदेश

था। करते हैं उन्हें देशवाति कर्म कहते हैं। ग्रावातिकर्म जीवके ग्राहाजीवी सम्मोका वात नहीं करते हैं. इसलिए उन्हें अवाति कहते हैं। वाति कभोंका को सर्ववाति और देशवाति अनुभाग है वह उत्कृष्ट आदि भेदोंमें विभा-जित होकर भी उन्कष्ट ब्रान्भागवन्य सर्ववाति ही होता है, ब्रान्त्रुष्ट ब्रान्भाग वन्य सर्ववाति ब्रीर देशपानि दोनों प्रकारका होता है। इसी प्रकार जवत्य अनुसार क्रिय देशवाति ही होता है। और अजवत्य अनुसारक्रिय सर्वेद्याति और देशवाति दोनों प्रकारका धेता है। इस प्रकार वाति संशा प्ररूपणा द्वारा इन सब बातीकी जानकारी मिलती है। स्थान संशायरूपगा-द्वारा कीन सन्ध्य अनुभाग-चवःस्थानिङ है आदि भानीका हान होता है। चाने वातिकमेंका उत्कट - श्रमुमागवना चनुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक श्लीर एकस्थानिक होता है। जपन्य व्यवसागबन्ध एकस्थानिक होता है। क्रौर ब्रजपन्य। ब्रनुसागबन्ध एकस्थानिक, द्विस्थानिक, विस्थानिक श्रीर चरास्थानिक होता है। चार श्रयति कर्मीन उक्षष्ट अनुभागवस्य चतुःस्थानिक होता है। श्रनुकृष्ट श्रत् भागवन्य चरास्थानिक, विस्थानिक श्रीर हिस्थानिक होता है। जवन्य श्रतभागवन्य द्विस्थानिक होता है। श्रज्ञानम् श्रन्भागवस्य द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है । यहाँ धातिकसेनि लता, दार, क्रांग्य और शेल रूपसे चार प्रकारका क्रानुनार माना गया है। जिसमें यह चारों प्रकारका अनुभाग होता है उसे चतुःस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें शेलके बिना तीन प्रकारका अनुभाग होता है उसे विस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें अस्थि और शैलके दिना दो प्रकारका। अनुभाग होता है उसे द्विस्थानिक ग्रनुभाग कहते हैं तथा जिसमें केवल अवा रूप । ग्रनुभाग होता है उसे एकस्थानिक ग्रनुभाग कहते हैं। ऋषाति कर्म दो प्रकारके होते हैं—प्रशस्त और अप्रयस्त । प्रशस्त करोमें गृह, खाँह, शर्कर और अमृतोयम तथा अप्रशस्त कमोंमे नीम, काँजीर, विष और इलाइलोपम अनुभाग माना गया है। यहाँ मी जहाँ यः चारी प्रकारका अनुभाग होता है उसे चतुःस्पानिक अनुभाग कहते हैं। जहाँ अन्तके भेटको। छोडकर तीन प्रकारका ब्रामुभाग होता है उसे जिल्लानिक ब्रामुभाग कहते हैं और जहाँ ब्रान्तके दो विकल्पीकी छोड़कर शेष दो प्रकारका स्मनुभाग होता है उसे द्विस्थानिक स्मनुभाग कहते हैं।

सर्व-नोसर्ववन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मीका अनुभाग बन्ध होने पर वह सर्वबन्ध रूप है या नोसर्वकृष रूप है। इसका विचार इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें किया गया है। जहाँ सब अनुभागका बन्ध होता है उसे सर्वबन्ध कहते हैं और जहाँ उससे न्यून अनुभागका बन्ध होता है उसे नोसर्वबन्ध कहते हैं। मात्र वह खोध छोर आदेशसे हो प्रकारका है इसलिए जहाँ जो सम्भव हो उसे धटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-श्रनुत्कृष्ट वन्ध—शानावरण्यिका स्रनुभागवन्ध होने पर वह उत्कृष्ट बन्ध है या अनुत्कृष्ट बन्ध है, इसका विचार इन दो स्रनुषोगद्वारोंमें किया जाता है। जहाँ स्रोध या स्रादेशने सर्वोकृष्ट अनुभाग प्राप होता है इसे उत्कृष्टवन्ध काते हैं और जहाँ इससे न्यून स्रनुभागवन्ध होता है उसे स्रनुकृष्ट स्रनुभाग वस्य कहते हैं।

जयन्य-ग्रजघन्यवन्ध—इन दोनों त्रित्रुयोगद्वारोमं जो ग्रिनुमागवन्य हुन्ना है वह जवन्य है कि श्राज्ञपन्य, इसका विचार किया जाता है। बन्धके समय जो सबने कम अनुमाग प्राप्त होता है। उसे ज्ञपन्य ज्ञानुमागवन्य कहते हैं और इससे ग्राधिक ग्रजुमागका बन्ध होने पर वह ग्रज्ञपन्य ग्रजुमागवन्य कहलाता है। वह भी ग्रोप ग्रीर ग्रादेशसे दो प्रकारका होता है। यहाँ उत्कृष्ट ग्रादि चारों मेदोंके सम्बन्धमें इतना विशेष ज्ञानना चाहिए कि उत्कृष्टअनुमाग बन्धमें ग्रोघ और ग्रादेशसे सर्वोत्कृष्ट ग्रजुमागका बन्ध लिया जाता है। अरे श्रजुन्तृष्ट ग्रजुमागवन्यमें ग्रोप व ग्रादेशसे उत्कृष्टके सिवा शेष ज्ञपन्य आदि पत्र ग्रजुमागवन्य लिया जाता है। इसी प्रकार अधन्य ग्रजुमागवन्यमें ग्रोघ व ग्रादेशसे सबसे कम ग्रजुमागवन्य विविद्या जाता है। इसी प्रकार अधन्य ग्रजुमागवन्यमें ग्रोघ व ग्रादेशसे सबसे कम ग्रजुमागवन्य विविद्या जाता है।

सादि-श्रनादि-भ्रव-श्रभुवबन्ध—इन चारों अनुधोगद्वारोंमं जो उत्कृष्ट श्रादि चार प्रकारका अनुभागबन्ध बतलाया है वह सादि आदि किस रूप है इस बातका विचार किया जाता है। इसका विशेष खुळासा

महाबन्ध

हमने विशेषार्थ द्वारा इस प्रकरणके समय किया ही है इसलिए वहाँ से जान लेना चाहिए। संनेषमें उसकी संदर्भिट इस प्रकार है—

| कर्म | उ ख्रस | ग्रनुक्ष्य | जघन्य | अजधन्य |
|------------|--------------------|---------------------|---------------------|---------------------|
| ज्ञानाव∗ग् | नादि अध <u>ु</u> व | सादि-ग्रधु य | सादि-ऋध्रुव | सादि ब्रादि चार रूप |
| दर्शनावरग् | ,, | " | ,, | 21 |
| वंदनीय | ,, | मादि ग्रादि चार रूप | ,, | सादि-ग्रभुव |
| मोहनीय | ,, | सादि-ग्रप्रु व | ,, | माटि ग्राटि चार रूप |
| ग्रापु | ,,, | " | ** | सादि ग्रघ्नुव |
| नःम | 33 | सादि ग्रादि चार रूप | 11 | ,, |
| गोत्र | ,, | ,, | मादि स्रादि चार रूप | 1) |
| ग्रन्तगय | सादि-ग्रप्रुव | मादि-ग्रश्रुव | साटि-ग्राधुव | सादि श्रादि चार रूप |

स्वामित्व—यहाँ स्वामित्वको ठीक तरहमं समभानेके लिए इस अनुयोगद्वारके प्रारम्भमं तीन अन्य श्रमुयोगद्वारोकी स्वतन्त्ररूपसं विवेचना की गई है। वे तीन श्रमुयोगद्वार हैं—प्रत्ययानुगम, विपाकदेश और प्रसन्ताप्रशस्तप्ररूपणा। कर्मक्षके प्रत्यय (कारण) चार हैं—मिश्यात्व, श्रमंयम, कपाय और योग। कहीं कहीं प्रमादके साथ वे पाँच भी कहे गये हैं पर प्रमादका श्रन्तभाव असंयम और कपायमें मुख्यरूपसे हो जाता है, इसिलए यहाँ वे चार ही कहे गये हैं। इन चारोमेंसे किसके निमित्तसे किस कर्मका बन्ध होता है इसका विचार प्रत्ययानुगममें किया जाता है। यहाँ इस बातका निर्देश करना श्रावश्यक प्रतीत है कि इन कारणोंके रहने पर यथासम्भव विविच्चत कर्मके श्रमुभाग बन्धमें न्यूनाधिकता श्राती है, इसिलए श्रमुभागबन्धके स्वामित्वका निर्देश करते समय इस श्रमुयोगद्वारका निर्देश किया है।

वन्धके समय कर्मका जो अनुभाग प्राप्त होता है उसका विपाक जीवमें, पुद्रलमें या अन्यत्र कहाँ होता है इसका विचार विपाक देशमें किया गया है। तदनुसार कर्मों के चार भेद होते हैं—जीवविपाकी, भवविपाकी, पुद्रलविपाकी छोर चेत्रविपाकी। चार घाति कर्म, वेदनीय और गोत्रकर्म ये छह कर्म जीवविपाकी हैं, क्योंकि इनके उद्यसे जीवमें अज्ञान, अदर्शन, सुख, तुःख, मिथ्यात्व, राग, डेप, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुप्ता, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, नपुंसकवेद, उच्च, नीच, अदान, अलाभ, अभोग, अनुपभोग और अवीर्यरूप परि-सामोंकी उपित्त होती है। आयुकर्म भवविपाकी है, क्योंकि नारक आदि भवोंमें इसका विपाक देखा जाता है।

नामकर्म जीव विपाकी, पटगलविपाकी श्रीर केवविपाकी तीनों रूप है, क्योंकि एक तो इसके उदयमे नारक त्रादि श्रवस्थात्रोंकी श्रीर श्रीदारिक श्रादि शरीरोंको प्राप्ति होती है। दुसरे विग्रहगतिमें शरीर ग्रहणके पूर्व जीव-के प्रदेशोंका ग्राकार पूर्व शरीरके समान बनाये रखना इसका कार्य है। यद्यपि उत्तर कालमें टीकाकारीने वेदनीय कर्मको पुदुगलविपाकी मानकर बाह्य नामग्रीकी प्राप्ति भी इसका कार्य बतलाया है; परन्तु यह विचार कर्म-सिद्धान्तको मृल मान्यताके विरुद्ध प्रतीत होता है। यहाँ तो वेदनीयको जीवविषाकी माना ही है। घवला निबन्धन अनुयोगद्वारमें भी 'वेदणीयं सुखदुक्खिम्म िणबद्धं' अर्थात वेदनीय कम सुख और दुःखमें निबद्ध है ऐसा कहा है। बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति इसका अर्थ है बाह्य सामगीका स्वीकार सो यह भाव कपायके सङ्ख्या ही होता है. खतः बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति वेदनीय कर्मका कार्य न होकर क्ष्पायके सद्धायका फल है। यथिप अस्टिन्ट परमेप्टीके समवसरण ह्याटि बाह्य सामग्री देखी जाती है फिर भी उसमें उनके समकार भाव न होनेसे उसके सद्भावको प्राप्ति नहीं कहा जा सकता है। कारण कि जहाँ छरिहन्त परमेप्टी विश्वकान होते हैं यहाँ उसका सद्भाव देवींक धर्मानगगवश होता है । उनके गमन- करने समय- कमलादिकी रचना भी- देवींके- धर्मानुरागका फल है। उत्तर कालमें वेटनीय कर्मकी ब्यास्यामें जो ख्रान्तर पड़ा है वह छन्तर गोवकर्सकी व्यास्यामें भी दिखलाई देता है। यहाँ इसे जीवविषाकी कहा है। घवला निबन्धन स्त्रन्योगद्वारमें भी 'गोदमण्याणम्ह णिबन्धं' गोत्र कर्म ब्राह्मामें निवद है ऐसा कहा है। इसका ब्राशय यह है कि गोत्रकर्मक उदयन जीवकी उच्च ब्रीर नीच पर्यायका निर्माण होता है। उसका सम्बन्ध वर्णोंक साथ नहीं है। यही कारण है कि कर्मभामिं ब्राह्मण ब्राटिका भेट किये विना सब मनुष्येंके उच्च या नीच गोत्रका उट्य बनलाया है। ब्राह्मक बर्गामें उच्चगोत्रका उदय होता है ग्रीर अमुक वर्गमें नीच गोत्रका ऐसा विभाग वहाँ नहीं किया गया है। क्योंकि वर्णका सम्बन्ध ब्राजीविकासे है इसलिए नामके समान वे काल्पनिक हैं। इच्चाक ब्राटि वंदीके सम्बन्धमें भी यही बात समक्तनी चाहिए। कमेंकि इन विभागोंके कारण भी अनुभागबन्धमें विविधता आती है। इसलिए स्वामित्वके पूर्व इन विभागोंका निर्देश किया है।

सब कर्म दो भागों में विभक्त हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त । दूसरे शब्दों में इन्हें पुण्य और पापकर्म भी कहते हैं। बन्धके समय प्रशस्त परिणामों से जिन्हें अधिक अनुभाग मिलता है वे प्रशस्त कर्म कहे जाते हैं और अप्रशस्त परिणामों के जिन्हें अधिक अनुभाग मिलता है उन्हें अप्रशस्त कर्म कहते हैं। चार वातिकर्म ये अप्रशस्त हैं और अधित कर्म प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकारके हैं। इस कारण अनुभागवन्धके स्वामित्यमें अन्तर पड़ता है यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार इन तीन श्रानुयोगद्वागेंका निर्देश करके श्रागे स्वामित्वका विचार किया गया है। जैसा कि पूर्वमें निर्देश किया है चार घातिकर्म श्रप्रशस्त हैं श्रतएव इनका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य उत्कृष्ट संक्लेशक्ष्य परिगामोंते ही होगा श्रोर ये परिगाम संशी पर्यात मिध्याद्वष्टिक जाएन अवस्थामें साकार उपयोगके समय ही हो सकते हैं। यही कारण है कि ऐसी योग्यतासम्पन्न जीवको ही इन कमोंक उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्धक कहा है। चार श्रघातिकर्म यद्याप प्रशस्त श्रोर श्रप्रशस्त दोनों प्रकारके होते हैं पर सामान्यसे उत्कृष्ट श्रनुभाग कथा इन कमोंमें प्रशस्त परिणामोंसे ही प्राप्त होता है, इसलिए इन कमोंका चपकश्रेष्णिमें जहाँ वन्धवपुनिस्त्रित्त होती है वहाँ उत्कृष्ट श्रनुभागक्ष्य श्रप्रमत्तसंयत गुग्रस्थानवक ही होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट श्रनुभागक्ष्य श्रप्रमत्तसंयत गुग्रस्थानमें कहा है। यह उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार है। जधन्य स्वामित्वमें कम बदल जाता है। यत यह है कि जिन कमोंका उत्कृष्ट संक्लेश परिग्रामोंसे उत्कृष्ट श्रनुभागक्ष्य होता है उनका अनुभागक्ष्य उत्कृष्ट विश्रुद्ध परिणामोंसे होगा यह स्वाभाविक वात है। यही कारण् है कि चार घातिकमोंके जधन्य श्रनुभाग क्ष्यका स्वामी श्रपनी च्युच्छित्तिके श्रन्तिम समयमें स्थित ध्रपक जीव कहा है। परन्तु यह नियम घातिकमोंके लिए ही लाग् हैं; श्रपातिकमोंके लिए नही, क्योंकि श्रपातिकमों में प्रशस्त श्रीर श्रप्रशास्त ऐसा मेद होनेके कारण् जधन्य श्रनुभागक्षक स्वामित्वमें प्राप्त परिचर्तमान मध्यम परिग्राम ही कारण माने गये हैं। हाँ गोत्रकर्ममें कुछ विशेषता है। बात यह है कि गोत्रकर्म अपने श्रवान्तर मेदोंकी अपेचा

परावर्तमान प्रकृति होने पर भी अग्निकायिक, वायुकायिक द्यौर सातर्वे नरकके मिथ्याहार्ट जीवके नीचगोत्रका ही बन्ध होता है। उसमें भी विशुद्ध परिणामोंकी बहुलता सम्यक्षके सन्नुख मिथ्याहार्टि नारकींके जितनी सम्भव है उतनी द्याग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके सम्भव नहीं है, इसलिए द्योधसे इसका जबन्य अनुभागवन्ध परावर्तमान मध्यम परिणामोंने न कह कर सर्वविद्युद्ध सम्यक्षकं द्यामिमुख हुए नारकींके कहा है। यह सामान्यसे विचार है द्यादेशमें जहाँ जो विशेषता सम्भव हो उसे जानकर स्वामिन्यका निर्णय करना चाहिए। द्यासे बाल द्यादि प्रकृत्याद्योगें भी यह स्वामिन्यक्ष प्रवणा मल द्याद्यार है, इसीलिए यह काल द्यादि प्रकृत्याद्योका वेति कहा जाता है। काल द्यादिका निर्देश द्योप द्योर व्यवस्थित स्वर्थ कर विवाह, हर्सालए प्रवः द्यार स्वर्थ कराना उपयुक्त न समक्त कर यहाँ चौदीस अनुयोगहारोंदे आगेवे प्रदश्णको स्वर्श हना उत्तित मानते हैं।

भुजगारवन्ध-भुजगार पद देशामपैक है। इसमें भुजगार, श्रह्मतर, श्रवस्थित और अवसद्यद्यस्य का अद्युत होता है। पिछले समयमें जितने अनुभागका वन्ध हुआ है उससे वर्तमान समयमें श्रिधिक अनुभागका वन्ध होता इसे भुजगार (भ्यस्कार) बन्ध कहते हैं। पिछले समयमें बाँधे गये अनुभागके वर्तमान समयमें कम अनुभागका वन्ध होता इसे अह्मतरक्ष्य काते हैं। पिछले समयमें जिपने अनुभागक बन्ध हुता है वर्धमान समयमें अवने ही अपन्य अनुभागका वन्ध होता वह अवस्थित बन्ध कहलाता है। तथा जो पहले नहीं बुँध हर किमान समयमें वैधता है उसकी अदिक्तर संज्ञा है। इस प्रकार इन नार विशेषताओं साथ इस अनुवंगितारमें। अनुभागक्षका विचार किया गया है। इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं—समूर्वार्थना, स्थामित्व, दाल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेदा मङ्गविचय, भागागाग, परिभाग, देव, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और इत्युवहुत्य।

पद्निक्षेप— भुजगार विशेषका नाम पर्यनिकेष है। इस अनुयोगद्वारमे अनुमानदन्य सम्बन्धी उत्पृष्ट युद्धि, उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान, जधन्य वृद्धि, जधन्य हानि और जधन्य अवस्थानका रण्यदिनित, स्मामित। और अल्पबहन्त्व इन तीन उपअधिकारी द्वारा विचार किया गथा है।

चृद्धि—चृद्धिवन्थमं छह वृद्धि, छह द्यानि, अपस्थित और अवक्तव्य इन परोका सम्हर्दातीना, स्वामित्य, काल, अन्तर, नाना जीवीकी अपेवा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, धेय, स्वर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहल इन तेरह उपअधिकारी-आग औष और आदेशमें व्याख्यान किया गया है।

श्रध्यवसानसमुदाहार—श्रागे श्रध्यवसानसमुदाहार प्रकरण प्रारम्भ होता है। इसके अस्ट नेट हैं— श्रविभाग प्रतिक्छेट प्रकारणा, स्थानप्रकारणा, श्रन्तरप्रकारणा, काराडकप्रकारणा, श्रोजवुरमाकारणा, प्रकारणा, प्रकारणा, श्रवसानप्रकारणा, समयप्रकारणा, बृद्धिप्रकारणा, यवमध्यप्रकारणा, पर्ववसानप्रकारणा श्रीर श्रम्पण्डक्य । खलामा जाननेके लिए घयल स्वरूट ४ प्रमाक १२ में विषय-परिचय के २ ने ४ तक पृष्ट देखिए ।

जीवसमुदाहार—ग्रागे जीव सम्दाहार प्रकरण श्राता है। इसके श्राठ श्रनुकोगहार हैं—-एकस्थान जीवनमारणातुराम, निरन्तरस्थानजीवन्नमाणानुराम, सामारस्थानजीवन्नमाणानुराम, नानाजीवकालक्ष्माणानुराम, इंडि प्रमापरणा, ववमस्थनस्यणा, स्परीनिन्नर्यमाणा श्रीर श्रन्पबहुत्व। इसके स्थप्टीकरणाके लिए घलला स्वस्ड ४ पुस्तक १२ में विषय-परिचयके बृष्ठ ४ से ५ तक देखिए।

इस प्रकार मृत्यकृति स्रमुभागबन्धका विचार करके । उत्तर प्रकृति । स्रमुभागबन्धका विचार प्रारम्भ होता है । स्रमुयोगद्वार सब बढी है जिनका निर्देश भूल प्रकृति स्रमुयोगद्वारमें किया है ।

विषय-सूची

| विषय | BB | विषय | 28 |
|---|-----------------|-------------------------------------|-------------------------|
| मङ्गलाचरण | १ | उत्कृष्ट भागाभाग | ८१ - =२ |
| अनुभागवन्धके दो भेदोंका नामनिर्देश | 8 | जवन्य भागाभाग | == - |
| मूलप्रकृति श्रनुभागबन्ध | १-१८० | परिमाणप्ररूपगा | エミーニッ |
| मृलप्रकृतिश्चनुभागबन्धके दो भेद | १–२ | परिमाणके दो भेट | ⊏३ |
| निगोकप्र रू पणा | २ | उत्कृष्ट परिमाण | ट ३– ट ५ |
| स्पर्धेकप्ररूपगा | ₹ | जवन्य परिमाण | <u> </u> |
| चौबीस श्रनुयोगद्वार | ३-१२३ | चेत्रप्ररूपग्। | = 0−89 |
| संज्ञाप्ररूपग्गा | ३ | त्तंत्रके दो भेद | ⊏ ७ |
| संज्ञाप्ररूपणाके दो भेद | ३ | उत्कृष्ट चेत्र | ८ ७– ८ ८ |
| घातिसं ज्ञा | ₹ | जघन्य चेत्र | 43-65 |
| स्थानसंज्ञा | ३ | स्पर्शनप्ररूपणा | \$ 9 - 908 |
| सर्व-नोसर्वबन्धप्ररूपणा | R | स्पर्शनके दो भेद | ९१ |
| उत्कृष्ट त्रमुत्कृष्ट्यन्धप्ररूपणा | R | उत्कृष्ट स्पर्धन | 66-600 |
| जघून्य-अज्घन्यबन्धप्ररूपणा | ४- ५ | जचन्य रपशॅन | १००–१०९ |
| सादि-स्रनादि-ध्रुव स्रध्रुवनन्धप्ररूपणा | પૂ | कालप्ररूपणा | १०१–११६ १०१ |
| स्वामित्वप्ररूपणा | ६–२५ | कालके दो भेद | |
| स्वामित्वके तीन श्रनुयोगद्वार | Ę | उत्हृप्ट काल | १०१–११४ ११४–११६ |
| प्रत्ययानुगम | દ્દ હ | जघन्य काल | 336-320 |
| विपाकदेश | હ | श्चन्तरप्ररूपणा श्चन्तरके दो भेद | ११६ |
| प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा | | | ११६–११⊏ |
| खामित्वके दो भेद | ७ ७१७ | उत्कृष्ट श्रन्तर जघन्य श्रन्तर | ११६-१२० |
| उत्कृष्ट स्वामित्व जन्नय स्वामित्व | १७—२ ५ | भावप्र रू पणा | १२० |
| जवन्य स्थानस्य कालप्ररूपणा | २६- ४३ | श्रल्पबहुत्वप्ररूपणा | १२०-१२ ३ |
| कालके दो भेद | २६ | ग्रल्पबहुत्वके दो भेद | १२० |
| कालक दा नद उत्कृष्ट काल | २६ –३ ४ | उत्कृष्ट ग्रलपबहुत्व | १२०-१२४ |
| जघन्य काल | ₹४–४३ | जघन्य ग्राल्पबहुत्व | १ २१–१२ ३ |
| श्चन्तरप्ररूपगा | 88-08 | भुजगारबन्ध | 358-380 |
| श्चन्तरके दो भेद | ४ ४ | श्चर्थपद | १२४ |
| उत्कृष्ट श्रन्तर | ४४–५७ | भुजगारवन्धके तैरह श्रनुयोगद्वार | १२४ |
| जघन्य श्रन्तर | પૂ ૭-૭૪ | समुत्कीर्तना | १२४–१२५ |
| सिक्षकर्षप्ररूपगा | 30-80 | स्वामित्व | १२५–१२६ |
| सन्निकर्षके दो भेद | ७४ | काल | १२६-१२७ |
| उत्कृष्ट सन्निकर्ष | ७४-७६ | श्रन्तर | १२७–१३ १ |
| जघन्य सन्निकर्ष | ७६–७६ | नाना जीवोंकी श्रपेद्मा भक्कविचय | १३१-१३२ |
| नाना जीवोंकी श्रपेत्ता भक्कविचय | 92-30 | भागाभाग | १३२ |
| उत्कृष्ट भङ्गविचय | 09-E0 | परिमाण | १३३ |
| जघन्य भङ्गविचय | こ0-こ? | चेत्र, | 8 38 |
| भागाभागप्ररूपणा | ニョーニシ | स्पर्शन | १३४-१३७ |
| भागाभागके दो भेद | 58 |) काल | १३७-१३८ |

महाबन्ध

| विपय | ЯĀ | विपय | ĀĒ |
|--|-----------------|---|------------------|
| श्रन्तर | १३८ | वृद्धिप्ररूप णा | १७४–१७५ |
| भाव | 3 इ १ | यवमध्यप्ररूपगा | १७५ |
| | 989-359 | ग्र ल्पवहुत्व ् | १७५–१७६ |
| ग्रल्पबहुत्त ——— | 389-980 | श्रल्पबहुत्वके दो श्रनुयोगद्वार | १७५ |
| पदनिचेप पदनिचेपके तीन | १४१ | त्र्यनन्तरोपनिधा | १७५ |
| यदानक्षक तान अनुसागद्वार समुत्कीतना | १४१ | परम्परोपनिधा | १७६ |
| समुत्कीर्तनाके दो भेद | १४१ | जीवसमुदाहार | 300-350 |
| • | j | जीवसमुदाहारके आठ श्रमुयोगद्वार | १७७ |
| उत्कृष्ट समुत्कीर्तना | १४१ | एकस्थानजीवप्रमागानुगम | १७७ |
| जवन्य समुत्कीर्तना | १४१ | निरन्तरस्थानजीवानुग म | १७७ |
| . स्वामित्व | १४१-१४६ | सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम | १७७ |
| स्वामित्वके दो भेद | १४१ | नानाजीवकालप्रमाणानुगम | १७७ |
| उक्रप्ट स्वामित | १४१-१४६ | वृद्धिप्ररूपणा | १७७ |
| जघन्य स्वामित्व | १ ४६-१५६ | वृद्धिप्ररूपणाके दो ऋतुयोगद्वार | १७७ |
| ग्र ल्पवहुत्व | १४७–१६० | श्रमन्तरोपनिधा | १७७ |
| ब्राल्पबहु त्वके दो भेद | १५७ | परम्परोपनिधा | १७७ |
| उत्कृष्ट अल्पबहुत्व | १५७–१५८ | यवमध्यप्ररूपणा | १७९ |
| नघन्य ग्रल्पबहुत्व | १५८–१६० | 1 | १७६ |
| वृद्धिबन्ध | 369-365 | स्पर्शनप्ररूपणा | १८० |
| वृद्धियन्धके तेरह अनुयोगद्वार | १६१ | श्रन्पबहुत्व | _ |
| समुन्द्रीर्तना | १६१ | उत्तरप्रकृतित्रमुभागवन्ध् | ्रदर से ४२७ |
| स्वामित्व | १६१–१६२ | उत्तरप्रकृति ग्रानुभागवन्धके दो ग्रानुय | गेगद्वार १⊏१ |
| काल | १६२–१६३ | निपंकप्ररूपणा | १८१ |
| ग्र न्तर | १६३ | स्पर्धकत्ररूपणा | १ ८२ |
| नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय | १६३-१६४ | चौर्यास्त्रयनुयोगद्वार | १८र |
| भागाभाग | १६४ | संज्ञा | 3=5-3=3 |
| परिमारण चेत्र | १६५ | संज्ञाके दो भेद | १८२ |
| स्पर्शन | १६५ | घाति संज्ञा | १८२ |
| काल | १६६ | स्थानसंज्ञा | १८३ |
| श्चन्तर | १६६ | सर्व-नोसर्व उत्कृष्टादिबन्ध | १⊏४ |
| भाव ू. | १६६ | सादि-ग्रनादि-ध्रुव-ग्रप्नुवबन्ध | १८४ |
| श्च रपबहुत्व | १६७-१६⊏ | स्वामित्वप्ररूपणा | 954- 2 30 |
| श्रध्यवसानसमुदाहार | १६=-१७६ | स्वामित्वके दो भेद | १८५ |
| श्रध्यवसानसमुदाहारके बारह श्रानुयोगद्वार | | उत्कृष्ट स्वामित्व | १⊏५−२१२ |
| श्चिवभाग प्रतिच्छेद्प्ररूपणा | १६६ | जवन्य स्वामित्व | २१२–२३७ |
| स्थानप्ररूपणा | १७० | कालश्ररूपणा | २३५–३१४ |
| ग्रन्तरप्ररूपणा | १७० | कालके दो भेद | २३⊏ |
| काण्डकप्ररूपगा | १७० | उत्कृष्ट काल | २३⊏–२७३ |
| श्रोज-युग्मप्ररूपग्ग | १७१ | जघन्य काल | २७३–३१४ |
| घट् रथानप्ररूपणा | १७१ | ग्रम्तरप्ररूपगा | ₹१४- ४२७ |
| ग्र घस्तनस्थानप्ररूपणा | १७२–१७३ | ग्रन्तरके दो भेद | ₹१४ |
| समयप्ररूपणा | १७४ | उत्कृष्ट ग्रन्तर | ३१४–३७० |
| समयप्ररूपणा ग्रन्पबहुत्व | १७४ | अवन्य ग्रन्तर | ३७१-४२७ |
| ~ | | | |

सिरिभगवंतभृदबलिभडारयपणीदोः महाबंधो

तदियो अणुभागवंधाहियारो

[णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहृणं ॥

१. एत्तो अणुभागबंधो दुविधो—मूलपगदिअणुभागबंधो चेव उत्तरश्गदिअणुभाग-बंधो चेव ।

१ मूलपगदिअणुभागबंधो

२. एत्तो मूलपगदिअणुभागबंघो पुव्वं गमणिजं। तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दा-राणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—णिसेगपरूवणा फद्दयपरूवणा य।

सव श्ररिहन्तोंको नमस्कार हो, सब सिद्धोंको नमस्कार हो, सब श्राचार्यौंको नमस्कार हो, सब उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुत्र्योंको नमस्कार हो।

१. आगे अनुभागवन्धका विचार करते हैं । वह दो प्रकारका है—मृलप्रकृति अनुभागवन्ध और उत्तरप्रकृति श्रनुभागवन्ध ।

मूलप्रकृति अनुभागवन्ध

२. श्रागे मूलप्रकृति श्रनुभागबन्धका सर्व प्रथम विचार करते हैं। उसके दो श्रनुयोगद्वार ज्ञातच्य हैं। यथा---निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा।

विशेषार्थ—श्रात्माके साथ सम्बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंमें राग, द्वेष और मोहके निमित्तसे जो फलदान शक्ति प्राप्त होती है उसे अनुभाग कहते हैं। कर्मवन्धक समय जिस कर्मकी जितनी फलदान शिक्त प्राप्त होती है उसका नाम अनुभागवन्ध है। वह ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और मित-ज्ञानावरण श्राद्वि उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे दो प्रकारकी है। इस श्रनुयोगद्वारमें इन्हीं दो प्रकारके श्रनुभागवन्धोंका विविध मुख्य और श्रवान्तर प्रकरणों द्वारा विस्तारके साथ विचार किया गया है। सर्व प्रथम मूलप्रकृति श्रनुभागवन्धका विचार किया गया है श्रीर तदनन्तर उत्तरप्रकृति अनुभागवन्धका। मूलप्रकृति श्रनुभागवन्धका विचार सर्व प्रथम दो श्रनुयोगोंके द्वारा करके श्रनन्तर उस परसे फिलत होनेवाले श्रनेक श्रनुयोगोंके द्वारा विचार किया गया है। मुख्य श्रनुयोगद्वार ये हैं—निद्येकप्रकृपणा श्रनुभागकी मुख्यतासे निषेक दो प्रकारके होते हैं—सर्वधाति और देशधाति।

णिसेयपरूवणा

३. णिसेगपरूवणदाए अट्टण्णं कम्माणं देसघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं काद्ण णिसेगो। उवरि अप्पिडिसिद्धं। चदुण्णं घादीणं सन्वघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदि काद्ण णिसेगो। उवरि अप्पिडिसिद्धं। एवं णिसेयपरूवणा त्ति समत्तमणियोगदारं।

फद्यपरूवणा

४. फद्दयपह्रवणदाए अणंताणंताणं अविभागपलिच्छेदाणं समुद्दयसमागमेण एगो वग्गो भवदि । अणंताणंताणं वग्गाणं समुद्दयसमागमेण एगो फद्दयो भवदि । एवं फद्दयप-रूवणा समत्ता ।

यद्यपि सर्वघाति त्रौर देशघाति यह भेद घातिकर्मांमें ही सम्भव है फिर भी अघाति कर्मोंका अनुभाग घातिप्रतिबद्ध मानकर यहाँ ये दो भेद कियं गये हैं, क्योंकि अघाति कर्म भी जीवके उर्ध्वन्मनत्व आदि प्रतिजीवी गुणोंका घात करनेवाले होनेसे व घातिप्रतिबद्ध ही हैं। अघाति कर्मोंको अघाति संज्ञा देनेका कारण केवल इतना ही हैं कि व जीवके अनुजीवी गुणोंका अंशतः भी घात करनेमें समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार कर्मोंके देशघाति और सर्वघाति निपेकोंका जिसमें विचार किया जाता है वह निषेक प्ररूपणा है। तथा जिसमें अनुभागकी मुख्यतामें कर्मोंके स्पर्धकोंका विचार किया जाता है वह स्पर्धक प्ररूपणा है। इस प्रकार मृलप्रकृति अनुभागवन्धका विचार सर्व प्रथम इन दो अनुयोगोंके द्वारा किया गया है।

निषेकप्ररूपणा

श्रव सर्वप्रथम निपेकप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेचा श्राठों कर्मोंके जो देशघाति स्पर्धक हैं उनके प्रथम वर्गणासे लेकर निपेक हैं जो त्रागे बराबर चले गये हैं। तथा चार घातिकर्मी-के जो सर्वघाति स्पर्धक हैं उनके प्रथम वर्गणासे लेकर निषेक हैं जो श्रागे बराबर चले गये हैं।

विशेषार्थ—इस प्रकरणमें आठों कर्मों के यथासम्भव सर्वघाति और देशघाति निपेक कहाँ से प्रारम्भ होकर कहाँ समाप्त होते हैं इस विपयका संकेत किया गया हैं। विशेष स्पष्टीकरण आगे करेंगे। इस प्रकार निपेकप्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

स्पर्धकप्ररूपणा

४. श्रव स्पर्धक प्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा श्रनन्तानन्त अविभाग प्रति-च्छेदोंके समुदायसमागमसे एक वर्ग होता है। श्रनन्तानन्त वर्गोंके समुदायसमागमसे एक वर्गणा होती है और श्रनन्तानन्त वर्गणाओंके समुदायसमागमसे एक स्पर्धक होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें सबसे जघन्य अनुभाग शत्त्यंशका नाम अविभाग प्रतिच्छेद हैं। प्रत्येक कर्म-परमाणुमें ये अविभागप्रतिच्छेद अनन्तानन्त उपलब्ध होते हैं। किन्तु यहाँ ऐसे कर्म-परमाणु विवित्त हैं जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। ऐसे जितने कर्म-परमाणु होते हैं उनमेंसे प्रत्येककी वर्ग और उनके समुदायकी वर्गणा संज्ञा है। अनुभागकी अपेक्षा एक एक वर्गणामें अनन्तानन्त वर्ग होते हैं और अनन्तानन्त वर्गणाओं एक स्पर्धक होता है। पहली वर्गणासे दूसरी वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है। दूसरी वर्गणासे तीसरी वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें भी एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है। इस प्रकार एक एक अविभागप्रतिच्छेदकी अधिकता स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा तक जाननी चाहिए। इसके बाद दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर अविभागप्रतिच्छेद

चउवीस-अणिओगद्दारपरूवणा

४. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चढुवीसमणियोगहाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा—सण्णा सव्वबंधो णोसव्ववंधो उक्तस्सबंधो अणुक्तस्सवंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्भवबंधो एवं याव अप्पाबहुगे ति । भुजगारबंधो पदणिक्खेवो विद्वबंधो अञ्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो ति ।

१ सण्णापरूवणा

- ६. सण्णापरूवणदाए तत्थ सण्णा दुविहा—घादिसण्णा द्वाणसण्णा य। घादिसण्णा चदुण्णं घादीणं उक्तस्सअणुभागबंधो सव्वघादी । अणुक्तस्सअणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहण्णअणुभागबंधो देसघादी । अजहण्णओ अणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा। सेसाणं चदुण्णं कम्माणं उक्त० अणु० जह० अज० अणुभागबंधो अघादी घादिपडिबद्धो ।
- ७, हाणसण्णा य चदुणं घादीणं उक्तस्सअणुभागः चदुहाणियो । अणुक्तस्सअणुः चदुहाणियो वा तिहाणियो वा विहाणियो वा एयहाणियो वा । जहः अणुभाः एयहाणियो । अजः अणुः एयहाणियो वा विहाणियो वा तिहाणियो वा चदुहाणियो वा । चदुणं अघादीणं उक्तः चदुहाणियो । अणुक्तः अणुभाः चदुहाणियो वा तिहाणियो वा विहाणियो वा । जहः अणुः विहाणियो । अजहः अणुः विहाणियो वा तिहाणियो वा चदुहाणियो वा । विहाणियो वा चदुहाणियो वा ।

उपलब्ध होते हैं। शेष क्रम प्रथम स्पर्धकके समान जानना चाहिए। तथा यही क्रम अन्तिम स्पर्धक तक विवक्षित है।

चौबीस श्रवयोगद्वार प्ररूपणा

५. इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये चौबीस अनुयोद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—संज्ञा, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टवन्ध, अनुत्कृष्टवन्ध, जघन्यवन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिवन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रवबन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक। भुजगारवन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिवन्ध, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार।

१ संज्ञाप्ररूपणा

- ६. श्रव संज्ञापरूपणाका प्रकरण है। उसमें भी संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञा—चार घातिकमाँका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सर्वघाति होता है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सर्वघाति होता है श्रीर देशघाति होता है। जघन्य अनुभागवन्ध देशघाति होता है तथा अजघन्य श्रनुभागवन्ध देशघाति होता है श्रीर सर्वघाति होता है। तथा शेष चार कर्मोंका उत्कृष्ट, श्रनुत्कृष्ट, जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध घातिसे सम्बन्ध रखनेवाला श्रघाति होता है।
- ७. स्थानसंज्ञा—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है, द्विस्थानीय होता है और एकस्थानीय होता है। जघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानीय होता है। तथा अजघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानीय होता है। तथा अजघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानीय होता है, द्विस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है और चतुःस्थानीय होता है। चार अघाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है। जघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होता है तथा अज्ञन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है और चतुःस्थानीय होता है।

२-३ सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा

द. यो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो णिइसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो ? सव्वबंधो वा णोसव्व-बंधो वा । सव्वे अणुभागे बंधिद ति सव्बबंधो । तदो ऊणियं अणुभागं बंधिद ति णोसव्वबंधो । एवं सत्तर्णं कम्माणं । एवं अणाहारग ति णेदव्वं ।

४-५ उक्कस्स-अणुक्कस्सबंधपरूवणा

ह. यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम तस्स इमी णिइसो—ओघेण आदेसेण य। तत्य ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो ? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा। सन्वुक्कस्सियं अणुभागं बंधिद त्ति उक्कस्सबंधो । तदो ऊणियं बंधिद ति अणुक्कस्सबंधो । एवं सत्तण्णं कम्माणं । एवं अणाहारग ति णेदव्वं ।

६-७ जहण्ण-अजहण्एबंधपरूवणा

१०. यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमी णिइसी—ओधेण आदेसेण य। तत्थ ओधेण णाणावरणीयस्स अणुभागवंधो किं जहण्णबंधो अजहण्णवंधो ? जहण्णबंधो

विशेषार्थ—घातिकर्मीमं चतुःस्थानीयसे लता, दारु, अस्थि और शंलरूप, त्रिस्थानीयसे लता, दारु, और अस्थिरूप, द्विस्थानीयसे लता और दारुहप और एकस्थानीयसे केवल लताहूप अनुभाग लिया गया है। अवातिकर्मीमें अनुभाग दो प्रकारका है—प्रशस्त और अप्रशस्त । प्रशस्त अनुभाग गुड, खाँड, शर्करा और अमृतोपम माना गया है। तथा अप्रशस्त अनुभाग नीम, काँजी, विष और हलाहल समान माना गया है। चतुःस्थानीयमें यह चारों प्रकारका, त्रिस्थानीयमें अमृत और हलाहलको छोड़कर शेष तीन तीन प्रकारका और दिस्थानीयमें गुड और खाँडरूप या नीम और काँजीहर अनुभाग लिया गया है।

२-३ सर्वबन्ध-नोसर्वबन्धप्ररूपणा

इ. जो सर्ववन्थ और नोसर्ववन्थ है उसका यह निर्देश है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे श्रानावरणीय कर्मका श्रनुभागवन्थ क्या सर्ववन्थ होता है या नोसर्ववन्थ होता है ? सर्ववन्थ भी होता है श्रोर नोसर्ववन्थ भी होता है। सब श्रनुभागका वन्थ होता है इसिलए सर्ववन्थ होता है। श्रोर उससे न्यून श्रनुभागका वन्थ होता है इसिलए नोसर्ववन्थ होता है। इसी प्रकार सातों कमें कि विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

४-५ उत्कृष्टबन्ध-अनुत्कृष्टबन्धप्रह्मपणा

६. जो उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्ध है उसका यह निर्देश है—आंघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीय कर्मका अनुभागबन्ध क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है। सर्वोत्कृष्ट अनुभागको बाँधता है इसिनए उत्कृष्टबन्ध होता है और उससे न्यून अनुभागको बाँधता है इसिनए उत्कृष्टबन्ध होता है । इसी प्रकार सात कर्मों के विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

६-७ जघन्यबन्ध-अजधन्यबन्धप्ररूपणा

१०. जो जघन्यबन्ध और ऋजघन्यबन्ध है उसका यह निर्देश है—स्रोघ और ऋादेश। स्रोघ से ज्ञानावरणीयकर्मका ऋनुभागबन्ध क्या जघन्यबन्ध होता है या ऋजघन्यबन्ध होता है। वा अजहण्णबंधो वा । सन्वजहण्णयं अणुभागं बंधमाणस्स जहण्णबंधो । तदो उवरि बंध-माणस्स अजहण्णबंधो । एवं सत्तरणं कम्माणं । एवं अणाहारग त्ति णेदन्वं ।

प्त-११ सादि-अणादि-धुव-अद्धुववंधपरूवण<u>ा</u>

११. यो सो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्भुववंधो णाम तस्स इमो णिहेसो— ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण चदुण्णं घादीणं उक्तस्सवंधो अणुक्तस्सबंधो जहण्णबंधो किं सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्भुवबंधो? सादिय-अद्भुवबंधो। अजहण्णबंधो किं सादि० ४ १ सादियवंधो वा अणादियवंधो वा धुववंधो वा अद्भुववंधो वा। वेदणीय-णामाणं उक्तस्स० जहण्ण० अजहण्ण० किं सादि० अणादि० धुव० अद्भुव० १ सादिय०—अद्भुवबंधो। अणुक्तस्सबंधो किं० सादि० ४ १ सादियवंधो वा। अणादियवंधो वा धुववंधो वा। अद्भुववंधो वा। गोदस्स उक्तस्सवंधो जहण्णवंधो किं सादि० ४ १ सादिय-अद्भुववंधो। अणुक्तस्सबंधो अजहण्णवंधो किं सादि० ४ १ सादिय-अद्भुववंधो। आयु० उक्त० अणु० जह० अज० किं सादि० ४ १ सादिय-अद्भुव०। एवं ओघभंगो मदि०-सुद०—असंज०—अचक्खुदं०—भवसि०—मिच्छादि०। णविर भवसिद्धिए धुवबंधो। णित्थ। सेसाणं सादिय-अद्भुव०। एवं याव अणाहारग ति णेदव्वं।

जवन्यवन्ध भी होता है श्रीर अजवन्यवन्य भी होता है। सबसे जवन्य श्रनुभागको बाँधता है, इसलिए जवन्यवन्ध होता है श्रीर उससे अधिक श्रनुभागको बाँधता है, इसलिए श्रजवन्यवन्ध होता है। इसी प्रकार सातों कमेंकि विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

द-११ सादि-अनादि-भ्रुव-अध्रुवग्न**धप्ररूपणा**

१२ सामित्तपरूवणा

१२. एत्तो सामित्तस्स कचे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पचयाणुगमो विवागदेसो पसत्थापसत्थपरूवणा चेदि । पचयाणुगमेण छण्णं कम्माणं मिच्छत्तपचयं असंजमपचयं कसायपचयं । वेदणीयस्स मिच्छत्तपचयं असंजमपचयं कसायपचयं योग-पचयं । एवं णेद्व्वं याव अणाहारए ति ।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध कादाचित्क होते हैं तथा जघन्य अनुभागबन्ध चपकश्रेणीमें होता है, इसलिए ये तीनों सादि और अधवके भेदसे दो दो प्रकारके होते हैं । त्र्यव रहा त्र्यज्ञघन्य त्र्यनुभागवन्ध सो जघन्य त्र्यनुभागवन्धके प्राप्त होनेके पूर्व तक त्रानादिकालसे जितना भी त्रानुभागवन्य होता है वह सब त्राजवन्य है। तथा उपशमश्रेणिमें इन चार घातिकर्मोंकी वन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः इनका वन्ध होने लगता है, इसलिए अजधन्य अनुभाग-बन्धके सादि, श्रनादि, ध्रव श्रीर अध्रव ये चारों विकल्प बन जाते हैं। वेदनीय श्रीर नामकर्मका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य कादाचित्क होता है और उत्कृष्ट अनुभागवन्य क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए ये तीनों सादि श्रीर अध्रवके भेदसे दो दो प्रकारके होते हैं। श्रव रहा श्रमुत्कृष्ट अनु-भागवन्य सो उत्कृष्ट अनुभागवन्यके प्राप्त होनेके पूर्वतक वह अनादि है और उपशमश्रेणिमें उस श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धकी व्युच्छित्ति होकर पुनः उसका वन्ध होने पर वह सादि है, इसलिए श्रानु-त्कृष्ट ऋनुभागवन्धके सादि, भ्रनादि, ध्रव श्रोर अध्रव ये चारों विकल्प वन जाते हैं। गात्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध त्तपकश्रेणिमें और जवन्य अनुभागवन्य मानवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर प्राप्त होता है, इसलिए ये दो सादि और ऋधव हैं । तथा इनके प्राप्त होनेके पूर्वतक अनुत्कृष्ट न्नीर अजवन्य त्रनुभागवन्य त्रनादि हे त्रौर उपशमश्रेणिमें इनकी वन्यव्युच्छित्ति होकर पुन: इनका बन्ध होने पर ये सादि हैं, इसलिए श्रनुत्कृष्ट श्रौर श्रजवन्य श्रनुभागवन्धके सादि, श्रनादि, ध्रव और ऋघव ये चारों विकल्प होते हैं। यहाँ मर्वत्र धव ऋभव्योंकी ऋपेता और ऋघव भव्योंकी अपेना कहा है। आयकर्मका वन्य कादाचित्क है इसलिए इसके उत्कृष्ट त्रादि चारोंके सादि श्रौर त्र्यप्रुव ये दो ही विकल्प होते हैं । मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रुसंयत, त्र्यचतुर्द्शनी, भव्य श्रौर मिथ्या-दृष्टि इन मार्गणात्र्योंमें यह त्र्योघप्रकृपणा अविकल बन जाती है क्योंकि एक तो ये अनादिकालसे सदा बनी रहती हैं दूसरे गुणप्रतिपन्न होनेके बाद पुनः मिश्यात्वमें त्राने पर इनकी प्राप्ति सम्भव है । उसमें भी अचलुदर्शनी त्योर भव्य मार्गणा गुणप्रतिपन्न जीवोंके भी क्रमसे चीणमोह त्र्यौर अयोगि-केवली गुणस्थान तक पाई जानी हैं, इसलिए इन सब मार्गणात्रोंमें ओघप्ररूपणाके समान निर्देश किया है। मात्र भव्यमार्गणामें ध्रुव विकल्प घटित नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिए। शेष सब मार्गणाएँ यथासम्भव वदलती रहती हैं, इसलिए उनमें उत्कृष्ट आदि चारों सादि और अध्वव ये दो प्रकारके ही प्राप्त होते हैं। यद्यपि अभव्य मार्गणा ध्रव है फिर भी उसमें उत्कृष्ट आदि अनुभागबन्धों-के अनादि और ध्रव न होनेसे सादि और अध्रव ये दो विकल्प ही घटित होते हैं।

१२ स्वामित्वप्ररूपणा

१२. आगे स्वामित्वका कथन करनेके लिए वहाँ ये तीन ऋनुयागद्वार होते हैं —प्रत्ययानुगम, विपाकदेश और प्रशस्ताप्रशस्त प्ररूपणा। प्रत्ययानुगमकी ऋपेक्षा छहकर्म मिध्यात्वप्रत्यय, ऋसंयमप्रत्यय और कषायप्रत्यय होते हैं। वेदनीयकर्म मिध्यात्वप्रत्यय, ऋसंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय और योगप्रत्यय होता है। इसी प्रकार ऋनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये!

१. मुलप्रती सामित्तरस कम्म तत्थ इति पाठः।

- १३. विवागदेसेण छण्णं कम्माणं जीवविवाग० । आयुग० भवविवाग० । णामस्स जीवविवाग० पोग्गलविवाग० खेत्तविवाग० । एवं याव अणाहारग ति षोदव्वं ।
- १४. पसत्थापसत्थपरूवणदाए चत्तारि घादीओ अप्पसत्थाओ । वेदणी०-आयुग०-णाम०-गोद० पसत्थाओ अप्पसत्थाओ य । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।
- १५. एदेण अद्वपदेण सामित्तं दुविधं—जहण्णयं उक्तस्सयं च । उक्तस्सए पगदं । दुवि०-ओघेण आदे० । ओघे० णाणावर०-दंसणावर०-मोहणी०-अंतराइगाणं उक्तस्स-अणुभागबंधो कस्स ? अण्णद० चटुगदियस्स पंचिदियस्स सिण्णिमिच्छादिद्विस्स सन्बाहि पज्जत्तगदस्म सागार-जागार० णियमा उक्तस्ससंकिलिद्वस्स उक्तस्सगे अणुभाग-बंधे बद्दमाणस्स । वदणीय-णामा-गो० उक्त० अणुभागवं० कस्स ? अण्णद० खवगस्स सुहुम० चिरमे उक्तस्सए अणुभाग० बद्दमा० । आयु० उक्त० अणुभाग० ? अप्यमत्त-

विशेषाथ—यहाँ प्रत्यय शब्दसे बन्धक हेनुओंका प्रहण किया है। बन्धके हेनु चार हैं—
मिश्यात्व, ऋसंयम, कपाय और योग। ऋन्यत्र प्रमादकों भी बन्धकों हेनु कहा है। किन्तु वह
ऋसंयम और कपायकी मिलीज़ली अवस्था है इसलिए यहाँ उसका पृथक्से निर्देश नहीं किया है।
बेदनीयका केवल योगहेनुक भी बन्ध होता है, इसलिए उसके बन्धके हेनु चार कहे हैं। शेप इह
कर्मीका केवल योगहेनुक बन्ध नहीं होता इसलिए उनके बन्धके हेनु तीन कहे हैं। यहाँ आयुकर्मका
किनिमित्तक बन्ध होता है इसका निर्देश नहीं किया। कारण कि उसका सार्वकालिकबन्ध नहीं होता।
यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जहाँ मिश्यात्ववन्धका हेनु है वहाँ शेप सब हैं। असंयमके
सद्भावमें मिश्यात्व है भी और नहीं भी है। किन्तु कपाय और योग अवश्य हैं। कपायके सद्भावमें
मिश्यात्व और असंयम हैं भी और नहीं भी हैं किन्तु योग अवश्य हैं। योगके सद्भावमें प्रारम्भके
तीन हैं भी और नहीं भी हैं।

१३. विपाक देशकी अपेचा छह कर्म जीवविपाकी हैं। आयुकर्म भवविपाकी है तथा नामकर्म जीवविपाकी पुदूरतविपाकी और चेत्रविपाकी है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

१४. प्रशस्ताप्रशस्त प्ररूपणाकी अपेदा चार घातिकर्म अप्रशस्त होते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकारके होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशाषार्थ— अन्यत्र जिनकी पुण्य और पाप संज्ञा कही है उन्हींकी यहाँ प्रशस्त और अप्रशस्त संज्ञा दी है। चार अधातिकर्मीका अनुभागवन्ध अप्रशस्त ही होता है। तथा शेष चार कर्मीका अनुभागवन्ध दोनों प्रकारका होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि शेष चार कर्मीके अवान्तर भेदोंमें कोई प्रशस्त प्रकृतियाँ होती हैं और कोई अप्रशस्त, इसलिए यहाँ पर इन चार कर्मीको दोनों प्रकारका कहा है।

१५. इस श्रर्थ पदके अनुसार स्वामित्व दो प्रकारका है जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी श्रपेद्या निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और श्रादेश । श्रोघसे झानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और श्रन्तराय कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है १ पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिश्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार, जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्रश परिणामवाला और उत्कृष्ट श्रनुभाग बन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मों के उत्कृष्ट श्रनुभाग बन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ सूत्त साम्पराय गुणस्थानके श्रन्तिम उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर क्षपक उक्त कर्मों के उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका स्वामी है । श्रायु कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत तत्रायोग्य बन्धका स्वामी है । श्रायु कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत तत्रायोग्य

संजदस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्त० अणुमागवंघे वट्टमाणस्स । एवं ओघभंगो पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारग ति ।

- १६. आदेसेण णिरयगदीए घादीणं उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सन्वाहि पज्ज० सागार-जागार० संकिलि० उक्क० अणुभा० वृह्माण० । वेदणी०—णामा-गो० उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० सागार-जागार० सन्वविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वृह० । आयुग० उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वृह० । एवं सत्तसु पुढवीसु । णविर सत्तमाए आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सन्वाहि पज्ज० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० अणुभा० वृह० ।
- १७. तिरिक्खेस घादीणं उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सिण्ण० मिच्छादि० सव्वाहि पञ्ज० सागार-जागा० सव्वसंकिलिइस्स० उक्क० अणुभा० वट्ट० । वेद०-णामा-गोद० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० संजदासंजद० सागा०-जागा० सव्विवसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभाग० कस्स० १ अण्ण० पंचि० विशुद्धि युक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अपमत्त संयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागक्ष्मका स्वामी है । इसी प्रकार आधिके समान पञ्चित्रिय, पञ्चन्द्रय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँच-मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायवाले चच्चदर्शनी, अचचु-दर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन मार्गणात्रोंमें चारों गतियों त्रौर दश गुणस्थानोंकी प्राप्ति सम्भव होनेसे स्रोघ प्ररूपणा वन जाती है।

- १६. आदेशसे नरकगितमें घातिकमें कि उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्यातियोंसे पर्याप्त साकार जागृत संक्षेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर मिध्यादृष्टि
 नारकी घाति कमों के उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कमके उत्कृष्ट
 अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग वन्धमें अवस्थित
 अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त तीन कमों के उत्कृष्ट अनुभाग वन्धका स्वामी है। आयुक्तमंके
 उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत तत्य्रायोगिविद्युद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं।
 इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विद्येपता है कि सातवीं पृथिवीमें आयुक्तमंके
 उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत तत्य्रायोग्य विद्युद्धि
 युक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर मिध्यादृष्टि आयुक्तमंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका
 स्वामी है।
- १७. तिर्यक्कोंमें वातिकमींके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी मिध्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत सर्वसंकरायुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर पक्कोन्द्रिय तिर्यक्क घातिकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, सर्व विशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर संयतासंयत तिर्यक्क उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिध्यादृष्टि सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत तत्या-योग्य संक्रोरा युक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर पक्कोन्द्रय तिर्यक्क आयुक्रमके

सण्णि-मिच्छादि० सव्वाहि पञ्जत्तीहि० सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिद्वस्स उक० अणुभा० वट्ट०। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३।

- १८. पंचिदि०तिस्म्बिअप० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा०-जागा० उक्कस्ससंकिलि० उक्क० अणुभा० वद्व० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागार-जागार० सन्वविसु० उक्क० अणुभा० वद्व० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वद्व० । एवं मणुसअपञ्ज०-सन्वविगलिंदि०-पंचिदिय-तसअपञ्ज० । णवरि विगलिंदिएसु अण्णद्रेसु पञ्जनग त्ति भाणिद्व्वं ।
- १६. मणुस०३ ओघमंगो । णवरि घादीणं उक्तम्सओ अणुभा० कस्स० १ अण्ण० मिच्छादि० सागार–जा० उक्त० संकिलेस० उक्त अणुभा० वट्ट० ।
- २०. देवाणं याव उवरिमगेवजा त्ति णेरइगमंगो । अणुदिस याव सव्बद्घा ति घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभा० बट्ट० । सेसं देवीयं ।
- २१. एइंदियाणं घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० बादरएइंदि० सन्वाहि प० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिंलि० उक्क० बट्ट० । बद्०-णामा० उक्क० ? बादरएइंदि० सन्वाहि प० सागा०-जा० सन्वविसु० उक्क० बट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० ?

उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है । इसी प्रकार पंचेत्रिय तिर्यक्रविकके जानना चाहिये ।

- १न. पंचेन्द्रिय निर्यक्त अपर्याप्त जीवोंमें चार घानिकमोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्यका स्वामी कोन है ? साकार जागृन उन्कृष्ट संकोश युक्त और उन्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर संज्ञी जीव चार घानि कर्माके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। बेदनीय, नाम और गांत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कोन है ? मंज्ञी, साकार-जागृन, सर्विवशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। आयुक्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। आयुक्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? संज्ञी, साकार-जागृन, तत्प्रायोग्यिवशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त अवस्थत, सव विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रियोंमें अन्यतर पर्याप्तक जीवोंके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये।
- १६. मनुष्यित्रकमें स्रोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि घातिकमें के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें श्रवस्थित श्रन्यतर मिश्यादृष्टि जीव घातिकमें के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका स्वामी है।
- २०. सामान्य देवोंसे लेकर उवरिम बैवेयक तकके देवोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। अनु-दिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें चार घानिकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर जीव चार घाति-कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। शेप स्वामित्व सामान्य देवोंके समान है।
- २१. एकेन्द्रियों में चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-जागृत, नियममें उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रोर उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित श्रन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। वदनीय श्रीर नाम कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियों में पर्याप्त, साकार-जागृन, सर्वविशुद्ध श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव उक्त दोनों कर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य

बादर० सागार-जा० तथ्पाओग्गवि० उक्त० वट्ट०। गोद० उक्त० अणुमा० कस्स० १ अण्ण० वादरपुढ०-आउ०-वणप्फदि० सच्चाहि पञ्जत्तीहि पञ्जत्त० सागार-जा० सच्चिवसु० उक्त० वट्ट०। एवं बादर-बादरपञ्जत्त०-बादरअपञ्ज०-सुहमपञ्जतापञ्जताणं।

- २२. पुढवि०-आउ०-वणप्फदिपत्ते०-णिगोद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स ? अण्ण० वादर० सन्वाहि प० सागा०-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० वादर० सागार-जा० सन्वविसुद्ध० उक्क० वट्ट०। आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? बादरस्स तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट०। एवं वादरपञ्जत्तापञ्जत्ताणं सन्वसुहुमाणं पि। णवरि यं यं उद्दिस्सदि तस्स णामगहणं कादन्वं।
- २३. तेउ०-वाउ० घादि०४ गोदस्स च उक्त० अणु० कस्स० ? बादर० सव्वाहि० सागार-जा० णियमा उक्त० संकिलि० । वेदणी०-णामा० उक्त० अणुभा० कस्स ? अण्ण० बादर० सागार-जा० सव्वविसु० उक्त० अणुभा० वट्ट० । आयु० उक्त० अणुभा० कस्स ?

विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर वादर एकेन्द्रिय जीव आयुक्तमंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर वादर पृथिवीकायिक वादर जलकायिक और वादर वनस्पतिकायिक जीव गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर पर्याप्त एकेन्द्रिय, वादर अपर्याप्त एकेन्द्रिय, सूक्तम एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें उच्च गोत्रका बन्ध अग्निकायिक वायुकायिक जीवोंके नहीं होत। इसलिए गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी इनको छोड़कर शेष तीन बादरकायवाले जीवोंके कहा है।

- २२. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येक शारीर और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मीकं उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीवचार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, सर्वशुविद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? तत्प्रायाग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीव आयुक्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। इसी प्रकार इनके बादर, बादरपर्याप्त, बादर अपर्याप्त और सब सूदम जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता हैं जिस जिसका उद्देश्य हो वहाँ उसका नाम प्रहण करके स्वामित्व प्राप्त करना चाहिए।
- २३. अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमं चार घातिकर्मों और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका स्वामी कौन हैं ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त उक्त वादर जीव उक्त कर्मिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके स्वामी हैं। वेदनीय और नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्यके स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर वादर उक्त जीव उक्त दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके स्वामी हैं। आयुक्रमके उत्कृष्ट

१ मूलप्रती-गहणं ण काद्व्वं इति पाठः ।

अण्ण० बादर० तप्पाओग्गविसु० उक्त० वट्ट०। एवं बादर-पञ्जत्तापञ्जत्ताणं सुहुमाणं पि णेदव्यं।

२४. ओरालियमि० घादि०४ उक्क० अणु० कम्म० ? अण्ण० पंचिदि० सण्णि-मिच्छा० तिरिक्ख० मणुसस्स वा सागार-जा० णियमा उक्कस्सअणुभा० वद्द०। वेदणी०-णामा—गो० उक्क० अणुभा० कस्म० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मादि० सन्वविसु० उक्क० वद्द०। आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पंचिदि० सण्णि० मिच्छा० तिरिक्ख-मणुस० सागार-जा० तप्पाओगावि० उक्क० वद्द०।

२५, वेउव्वियका० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ देवस्स वा णेरइयस्स वा मिच्छादि० सागार-जागा० णियमा उक्क० संकित्ति० उक्क० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ देव० णेरइ० सम्मादि० सागार-जा० णियमा सव्विवसु० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० । एवं वेउव्वियमि० । आयु० णित्थ । णवरि वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कम्स० १ अण्ण० उवसमणादो परिवदस्स पढमसमए देवस्स ।

अनुभागबन्धका स्वामी कीन है १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर उक्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी हैं। इसी प्रकार इनके बादर, बादरपर्याप्त बादर अर्थाप्त और सब सूदम जीवोंके भी जानना चाहिए।

२४. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? संज्ञी, मिश्यादृष्टि, तिर्येश्च या मनुष्य, साकार-जागृत और उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धमें श्रविस्थित अन्यतर पश्चेन्द्रिय उक्त जीव चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है। वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सम्यग्दृष्टि, सर्वविद्युद्ध श्रौर उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिश्यादृष्टि, तिर्येश्च या मनुष्य, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विद्युद्धियुक्त श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर पश्चेन्द्रिय उक्त जीव आयुक्रमैके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है।

२५. वैकियिककाययोगी जीयोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर देव या नारकी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, नियमसे सर्विवशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य विशुद्धि युक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है । इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। पर इनके आयुकर्मका वन्थ नहीं होता। तथा इतनी विशेषता है कि इनके वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? उपशमश्रेणिसे गिरकर प्रथम समयमें देव हुआ अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ?

२६. आहार०-आहारमि० घादि०४ उक्त० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० सागा०-जागा० णियमा उक्त० संकिलि० उक्त० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० उक्त० अणु० कस्स० १ अण्ण० सागार-जा० सन्वविसु० उक्त० अणु० वट्ट० । आयु० उक्त० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० उक्त० वट्ट० । णवरि आहारमिस्स० सरीरपञ्जतीहि गाहिदि ति ।

२७. कम्मइग० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० चदुगदियस्स सिण्ण-िमच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभागवंधे वट्ट०। वदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० चदुगदियस्स सम्मादि० सागार-जा० सन्वविसु० उक्क० अणुभा० वट्ट०। अथवा उवसमस्स कालगदस्स पटमसमयदेवगदस्स ।

२८. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० तिगदियस्स सण्णि-मिच्छादिद्वि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० खवगस्स अणियद्वि० उक्क० अणुभा० वट्ट०। आयु० ओघं।

२६. णवंसगे घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स०? अण्णद० तिगदियस्स

२६. आहारककाययोगी और आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकमींके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर उक्त जीव उक्त कमींके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि आहारकिमिश्रकाययोगमें जो जीव शारीर पर्याप्तिको प्रहण करेगा यह आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि आहारकिमिश्रकाययोगमें जो जीव शारीर पर्याप्तिको प्रहण करेगा यह आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

२७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकमें कि उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गितका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव चार घातिकमें कि उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकमें के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गितका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कमें के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। अथवा जो उपशामक जीव मर कर प्रथम समयवर्ती देव हुआ है वह उक्त कमें के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

२८. स्नीवेदी और पुरुपवेदी जीवोंमं चार घातिकर्मों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त आंर उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित तीन गतिका संज्ञी मिण्यादृष्टि जीव उक्त कर्मीक उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वंदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कोन है ? उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक अनिवृत्ति करण जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुशागबन्धका स्वामी है। आयु कर्मका भङ्ग ओघके समान है।

२६. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें चार घातिकर्मके उत्कृष्ट अमुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

मिच्छादि० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० बद्द०। बेदणी०-आयुग०-णामा-गोदाणं इत्थिभंगो।

- ३०. अवगद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० उवसम० परिवद-माणस्स चरिमे उक्क० अणुभा० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० ओघं ।
- ३१. कोध-माण-मायासु घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्प०१ अण्ण० चदुगदि० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। सेसाणं णवुंसगभंगो।
- ३२. मदि०-सुद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० पंचिदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० वद्द० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० मणुम० संजमाभिम्रहुस्स सन्विवसु० चिरमे उक्क० अणुभा० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कम्स० १ अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० पंचिदि० सण्णि० सागार-जा० तप्पाओगासंकिलि० उक्क० वट्ट० । एवं विभंगे ।
- ३३. आभिणि०-सुद्०-अधि० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० चदुगदि० असंजदसम्मा० सञ्ज्ञाहि पञ्ज० सागार-जा० उक्क० मिच्छत्ताभिम्रह० चरिमे उक्क० वट्ट० । वेदणी० आयुग०-णामा-गो० ओघभंगो । एवं ओधिदंस०-सम्मादि० ।

नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्यमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका मिण्या-दृष्टि जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

- ३०. अवगतवेदी जीवोंमें चार घाति कर्मोके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्यमें अवस्थित अन्यतर गिरनेवाला उपशामक जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग ओवके समान है।
- ३१. क्रांध, मान श्रीर मायाकपाययाले जीवोंमें चार घातिकर्मीक उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कीन हैं ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें श्रवस्थित अन्यतर चार गतिका पंचिन्द्रिय जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी हैं। शेषकर्मीका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।
- ३२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमं चार घानिकर्मा के उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कीन है। संज्ञी, मिण्यादृष्टि, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी है। वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन हें १ संयमके अभिमुन्य, सर्वविद्युद्ध और ऋन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्यमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी है। आयुक्रमंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन हें १ पंचेन्द्रिय, संज्ञी, साकार-जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं १ पंचेन्द्रिय, संज्ञी, साकार-जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी हैं। इसी प्रकार विभक्नज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए।
- ३३. त्राभिनिबोधकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, त्र्यौर त्र्यविधज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मी के उत्कृष्ट श्रुनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेरायुक्त, मिश्यात्वके श्रिभमुख त्र्यौर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित त्र्यन्यतर चार गतिका त्रसंयत सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, त्रायु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग

- ३४. मणपञ्ज० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० पमत्तसंज० णियमा उक्क० संकिलि० असंजमाभिग्रह० चिरमे उक्क० वट्ट०। सेसाणं ओघं। एवं संजदाणं। णविर घादि०४ मिच्छत्ताभिग्रह० चिरमे उक्क० वट्ट०। एवं सामाइय-च्छेदो०। णविर वेदणी०-णामा-गो० अणियद्वि० खवग०।
- ३५. परिहार० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० पमत्तसंजद० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० सामाइय—च्छेदोवद्वावणाभिग्रुह० चरिमे उक्क० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० अप्पमत्तसंज० सागार-जा० सन्वविसुद्ध०। आयु० ओघं।
- ३६. सुहुमसंप० घादि०४ उक्त० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० उवसम० परिव-दमाण० चरिमे० उक्त० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्त० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० खवग० चरिमे उक्त० वट्टमाण० ।
- ३७. संजदासंजदा० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छत्ताभिग्रह० सागार-जा० णियमा उक्क० संकित्ति० उक्क० वट्ट०। वे६०-

श्रोघके समान हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी श्रोर सम्यग्द्रिश्जीवोंके जानना चाहिये।

- ३४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घानिकमों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमक्तसंयत जीव उक्त कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। शेप कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित और मिध्यात्वके अभिमुख संयत जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी अनिवृत्तिक्षपक जीव होता है।
- ३५. परिहारिवशुद्धि संयत जीवोंमें चार घातिकमींके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके अभिमुख और अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त कमींके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम, और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कमींके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयु-कर्मका भङ्ग आंघके समान है।
- ३६. सूद्रमसांपरायिक जीवोंमं चार घातिकमींके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर गिरनेवाला उपशामक उक्त कमींके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी हैं। वेदनीय, नाम श्रोर गोत्रकमेंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? श्रन्तिम उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर चपक उक्त कमींके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं।
- ३७. संयतासंयतोंमं चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यात्वके अभिमुख, साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्षोशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धमें श्रवस्थित श्रम्यतर तिर्यक्क श्रीर मनुष्य उक्त कर्मीके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट

णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्विवसुद्ध० संज-माभिम्रह० चरिमे उक्क० वट्ट० । आउ० उक्क० त्र्रणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० ।

३८. असंज० घादि०४ मदि०भंगो। वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० मणुस० असंजद सम्मादि० संजमाभिग्रह० उक्क० वट्ट०। आयु० मदि०भंगो।

३६. किण्णले० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिगद्यिस्स सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेद-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० णेरइयस्स असंजदसम्मा० सन्वविसुद्ध० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० मिच्छादि० सागार-जागार० तप्पा-ओग्गसंकिलिट्ठ० उक्क० वट्ट० । एवं णोल-काऊणं । णवरि णेरइयस्स काद्व्यं ।

४०. तेऊए घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादि० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेद-णामा-गो० परिहारभंगो। आउ० ओर्घ। एवं पम्माए। णवरि घादीणं सहस्सारभंगो।

श्रमुभागवन्थका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके श्रभिमुख और श्रन्तिम उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थमें श्रविस्थित श्रन्यतर मनुष्य उक्त कर्मीक उक्रुष्ट श्रमुभागवन्थका स्वामी है। आयु-कर्मके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थका स्वामी कौन है ? तत्यायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थमें श्रवस्थित श्रन्यतर तिर्येख्व श्रीर मनुष्य आयुकर्मके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थका स्वामी है।

३८. ऋसंयतोंमें चार घाति कर्मोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। वेदनीय, नाम ऋौर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित ऋन्यतर मनुष्य ऋसंयत सम्यग्दिष्ट जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी है। ऋायुकर्मका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३६. कृष्णलेश्यावाले जीयोंमं चार घातिकमींके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रोरायुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन हे १ सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन हे १ साकार-जामत, तत्यायोग्य संक्रोशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यक्च और मनुष्य मिध्यादृष्टि जीव आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यक्च और मनुष्य मिध्यादृष्टि जीव आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ नारकीके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिए।

४०. पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमींके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रोशयुक्त श्रौर उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थमें श्रवस्थित श्रम्यतर देव मिध्यादृष्टि जीव उक्त कर्मांके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्थका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका भंग परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके समान है। श्रायु कर्मका भंग श्रोघके समान है। इसीप्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें चार घातिकर्मीका भंग सहस्त्रारकस्पके समान है।

- ४१. सुकाए घादि०४ उक० अणुभा० कस्स० ९ अण्ण० देवस्स उक० संकिलि० उक्क० वट्ट०। सेसाणं ओघं।
- ४२. अन्भवसि०-मिच्छा० मदिभंगो। णवरि अन्भवसि० वेद-णामा-गो० उक० अणुमा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सण्णि० पंचिंदि० सागार-जा० सन्वविसु० उक्क० वट्ट०। अथवा मणुसस्स दन्वसंजदस्स कादन्वं।
- ४३. वेदगे० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंज० सागार-जा० उक्क० मिच्छत्तामिम्रहस्स उक्क० अणु० वट्ट० । सेसं परिहारभंगो ।
- ४४. खड़मे घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० श्रसंज० सागार-जा० णिय० उक्क० संक्रिलि० उक्क० चट्ट० । सेसं ओघं ।
- ४५, उनसम० घादि०४ उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० असंज० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिग्रह० उक्क० वट्ट० । वद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ ऋण्ण० उनसमसंप० चरिमे उक्क० वट्ट० ।
 - ४६. सासणे घादि०४ उक्त० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-
- ४१. शुक्क लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमींके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? उत्कृष्ट संक्रोशयुक्त और उत्कृष्ट ऋनुभागवन्थमें अवस्थित ऋन्यतर देव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट ऋनुभाग-वन्धका स्वामी है। शेप कर्मीका भंग स्रोधिक समान है।
- ४२. श्रभन्यों श्रौर मिण्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग हैं। इतनी विशेषता है कि श्रभन्योंमें विदनीय, नाम श्रौर गांत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका स्वामी कीन हैं ? संज्ञी, पंचेन्द्रिय, साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थमें श्रवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका स्वामी है। श्रथवा द्रव्यसंयत मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका स्वामी है।
- ४३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमं चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिश्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। शेष कर्मीका भंग परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके समान है।
- ४४. चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मी के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियममे उत्कृष्ट संक्रेशयुक्त, श्रोर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धमें श्रवस्थित श्रन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मीक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। शेष कर्मीका भंग श्रोधके समान है।
- ४५. उपशमसम्यन्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रोशयुक्त, मिध्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अविस्थित अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यन्दृष्टि जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गात्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी अवस्थित अन्यतर उपशामक सूद्रमसांपरायिक जीव उक्त कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।
 - ४६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

जा० णिय० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिम्रह० उक्क० वट्ट०। बेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० स गार-जागा० णिय० सन्वविसु०। आउ० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट०।

४७. सम्मामिच्छा० घादि० ४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-जा० णिय० उक्क० मिच्छत्ताभिमु० उक्क० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० चदुगदि० सागार-जागार० सव्वविसुद्ध० सम्मत्ताभिम्र० उक्क० वट्ट०।

४८. असण्णीसु घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० १ पंचिदि० पज्जत० सागार० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभा० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० पज्जत० सागा० सव्विवसु० उक्क० अणु० वट्ट० । आउ० उक्क० अणुभा० कस्स० १ अण्णद० पंचिदि० पज्जत० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० वट्ट० । [अणाहार कम्मइ० ।] एवं उक्कस्सं समत्तं ।

४६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० णाणा०-दंसणा०-अंतरा० जहण्णओ अणुभागवंधी कम्स० ? अण्णदरस्स खवगस्स सुहुमसंपराइगस्स चिरमे साकार-जागृत, नियमसे उन्दृष्ट संकारायुक्त, मिण्यात्वके श्राममुख और उत्दृष्ट श्रानुभागवन्धमें श्राविधा अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्माके उत्दृष्ट श्रानुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्दृष्ट श्रानुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और नियमसे सर्वविद्युद्ध श्रान्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उन्दृष्ट श्रानुभागवन्धका स्वामी है। आयुक्तमके उत्दृष्ट श्रानुभागवन्धका स्वामी कीन है। साकार-जागृत, तत्यायोग्य विद्युद्ध और उत्कृष्ट श्रानुभागवन्धमें श्राविधा श्रान्यतर मन्य श्रायुक्तमके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका स्वामी है।

४७ सम्यामिण्यादृष्टि जीवोंमें चार चाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट मिण्यात्यके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभाग वन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग वन्धका स्वामी हैं। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभाग वन्धका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यत्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभाग वन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग वन्धका स्वामी है।

र्रेन. असंज्ञी जीवोंभें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृन, नियम से उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभाग वन्धमें अवस्थित । अन्यतर पंचेन्द्रिय
पर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है । वदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट
अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित
अन्यतर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है । आयुक्तमंके उत्कृष्ट
अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्यायोग्य संक्रोशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित
अन्यतर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव आयुक्तमंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है । अनाहारक जीवोंका
भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार उत्क्रष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

४६. जबन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। श्रोधसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है? श्रान्तिम अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर चपक सूच्मसांपरायिक जीव उक्त कर्मीके जघन्य अनु-

अणुभा० वहु० । मोह० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियहि० चिरमे जह० अणु० वहु० । वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० सम्मादिहिस्स वा मिच्छादिहिस्स वा परियत्तमाणमिन्झमपरिणामस्स । आयु० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० जहण्णियाए अपञ्चत्तांणव्यत्तीए णिव्यत्तमाणयस्स मिन्झमपरिणामस्स जह० अणु० वहु० । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए पोरइ० मिच्छा० सागा० सव्यविसु० सम्मत्ताभिम्रह० चिरमे जह० अणु० वहु० । एवं ओघभंगो पंचिंदि० तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग ति ।

५०. णेरइएस घादि०४ जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० असंजदसं०सागा० सन्त्रविसु० जह० अणु० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० ओघं। आउ० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० जहण्णए पञ्जत्तिणव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मिन्झमप-रिणामस्स । एवं सत्तमाए । उविरमासु वि तं चेव । णविर गोदस्स जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० मिच्छादि० परियत्तमाणमिन्झमपरिणामस्स जह० अणु० वट्ट०।

५१. तिरिक्खेमु घादि०४ जह० अणुभा० कस्स०१ अण्ण० संजदासंजद०

भागवन्थक। स्वामी है। मोह्नीय कमके जयन्य अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर चपक अनिवृत्तिकरण जीव मोह्नीय कमके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। वेदनीय और नामकर्मके जयन्य अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिश्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव वेदनीय और नाम कमके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। आयुक्रमके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? अन्यतर जघन्य अपर्याप्त निवृत्तामें निवृत्तामान, मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित जीव आयु कर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थन्का स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्विधगुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और अन्तिम जघन्य अनुभागवन्थन्का स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्विधगुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और अन्तिम जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर सात्वीं पृथिवीका नारकी मिश्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर सात्वीं पृथिवीका नारकी मिश्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर सात्वीं पृथिवीका नारकी मिश्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। इसी प्रकार आंचके समान पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, लोभकपायवाल, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

५०. नारिकयोंमें चार घाति कर्मोंकं जधन्य अनुभाग वस्थका स्वामी कीन हैं ? साकारजागृत, सर्वविशुद्ध और जबन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त
कर्मोंकं जबन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं । वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका मंग आघिके समान हैं ।
आयुक्रमंकं जबन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन हें ? जबन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम
परिणामवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव आयुक्त कर्मके जबन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं । इसी
प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये । अपरकी अन्य पृथिवियोंमें भी वही भङ्ग हैं । इतनी विशेपता है कि गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन हें ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला
और जघन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं ।

५१. तिर्यञ्जोमें वातिकमेकि जघन्य अनभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्व-

सागार-जा० सन्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । वेट०-आउ०-णामा० ओघं । गोद०जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० वादरतेउ०-वाउ० जीवस्स सन्वाहि पञ्जतीहि० सागार-जा० सन्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ । णवरि गोद० जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० पंचिदि० मिच्छादि० परियत्त० जह० अणु० वट्ट० ।

५२. पंचिदियतिरिक्खअप० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० सन्वविसु० जह० अणु० वट्ट०। वेद० णामा-गो० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिन्झिम० जह० अणुभा० वट्ट०। आउ० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० जहण्णिगाए अपञ्जत्तिणिन्वत्तीए णिन्वत्तमाण० मिन्झिम०। एवं मणुसअपञ्ज० सन्ववि-गिलिंदि०-पंचिदि०-तस०अपञ्ज०।

५३. मणुस०३ सत्तर्णां कम्माणं ओघो। गोद० जह० अणुभा० कम्स० १ अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम० जह० अणुभा० वट्ट०।

५४. देवाणं याव उवित्मगेवजा ति विदियपुढिविभंगो । अणुदिस याव सच्वद्वा ति सत्तण्णं कम्माणं देवोघं । गोद० जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० सच्वाहि० सागार० णिय० उक्क० संकिलि० जह० अणु० वट्ट० ।

विशुद्ध श्रोर जघन्य अनुभागबन्धमं अवस्थित अन्यतर संयतासंयत जीव एक कर्मीकं जघन्य अनुभाग बन्यका स्वामी है। वदनीय, आयु, श्रोर नाम कर्मका भङ्ग श्रोपकं समान है। गोत्र कर्मकं जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर अग्निकायिक श्रोर वादर वायुकायिक जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यिख्वित्रिकके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय मिध्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

५२. पंचेन्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तक जीवोंमें चार वाति कर्मोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृन, सर्वविद्युद्ध खोर जवन्य अनुभागवन्धमं अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । वदनीय, नाम और गांत्र कर्मके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला खोर जवन्य अनुभागवन्धमं अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? जवन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव आयु कर्मके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विक्लेन्द्रिय, पद्धो न्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

५३. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य श्रानुभाग बन्ध-का स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रोर जघन्य श्रानुभागबन्धमें अवस्थित श्रान्यतर मिध्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य श्रानभागबन्धका स्वामी है।

५४. देवोंमें उपरिम मैंवेयक तक दूसरी पृथिविके समान भक्त है। अनुदिशाने लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मीका भक्त सामान्य देवोंके समान है। गोत्र कमके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन हैं ? सब पर्ाप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रोशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। ५५. एइंदिएसु घादि०४ जह अणुभा० कस्स० ? अण्ण० बादर० सञ्चाहि प० सागार-जा० सञ्चिवसु० जह० अणु० वट्ट० । वेद०-आउ०-णामा-गो० तिरिक्खांघं । एवं बादर० सुहुमपञ्जत्तापञ्जत्त० ।

५६. पुढिवि०-आउ०-वणफिदि०-बादरवणफिदिपत्तेय०-णिगोद० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स १ अण्ण० बादर० पज्जत० सामार-जा० सव्विवसु० जह० अणु० वट्ट० । तिण्णि क० जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० परियत्त०मिज्झिमपरि० । आउ० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० अपज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाण० मिज्झिम० जह० अणु० वट्ट० । एवं बादर-सहुम-पज्जतापज्जताणं च । तेउ०-वाउ० घादि०४ गोदस्स० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० बादरपज्जत्त० सागार-जा० सव्वविस् जह० अणु० वट्ट० । सेसाणं पुढिविभंगो ।

५७. ओरालियका० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। गादे जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० सागार-जा० सन्वविसु०।

५८. ओरालियमि० घादि०४ जह० अणुभा० कस्म ? अण्ण० तिरिक्खमणुस० असंजदसम्मादिद्वि० सागार-जा० सन्वविसु० सेकाले सरीरपञ्जी गाहिदि ति । गोद०

५५. एकेन्द्रियों में चार घातिकर्मां के जयन्य अनुसाग बन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियों-से पर्याप्त साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जयन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर वादर एकेन्द्रिय जीव उक्त कर्मों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कों के समान है। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूद्रम एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के जानना चाहिये।

५६. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पितकायिक, वाद्रवनस्पितकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद जीवोंमें चार घातिकमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सव-विशुद्ध और जघन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर वाद्रप्याप उक्त जीव उक्त कमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । तीन कमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? अन्यतर परिवतमान मध्यम परिणामवाला उक्त जीव तीन कमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तिमान, मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । इसी प्रकार इनके वाद्र और सूद्रम तथा इन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जयन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर चाद्रपर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जयन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर चाद्रपर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भक्त पृथिवीकायिक जीवोंके समान है ।

उ. श्रौदारिककाययोगी जीवोंमं सात कर्मीकं जघन्य श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रोर सर्वावशुद्ध श्रन्यतर वादर अग्निकायिक श्रीर पायुकायिक जीव गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है।

५८. ऑदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य श्रमुभागवन्धका स्वामी कोन हें ? सकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रोर तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा ऐसा श्रन्यतर तिर्येख्य श्रोर मनुष्य असंयतसम्यग्दष्टि जीव उक्त कर्मीके जघन्य श्रमुभागवन्धका स्वामी एइंदियमंगो । णवरि सरीरपञ्जती गाहिदि ति भाणिद्व्यं । सेसाणं ओघं ।

- ५९. वेउन्ति० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० देवस्स० पेरइ० असंजद०सम्मादि० सागार-जा० सन्विवसु० जह० बद्द०। गोद० और्घ। वेदणी०-आउ०-णाम० णिरयोघं।
- ६०. वेउव्वियमिस्स० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० असंजदस० से काले सरीरपञ्जती गाहिदि ति सागार जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट०। गोद० जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० अत्थि य सत्तमाए पुढ० णेरइ० मिच्छादि० सागा० जा० सव्वविसु० से काले सरीर०। वद०-णामा० ओघं।
- ६१. आहारका० चादि०४ जह० अणु० कस्म० श अण्ण० सागार-जा० सच्चित्रमु० । सेनमणुदिसभंगो । एवं आहारमि० । णवरि से काले सरीरपञ्जती गाहिदि ति भाणिद्व्यं ।
- ६२. कम्मइ० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंजद-सम्मा० सागार-जा० सव्यविमु० जह० बद्द० । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० अत्थि य सत्तमाए पुढ० मिच्छादि० सागार- जा० सव्यविमु० जह० बद्द० । सेसं परि-
- है । गोत्रकर्मका भङ्ग एकेन्द्रियंकि समान है । इतनी विशेषता है कि तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिका ब्रह्ण करेगा, ऐसा कहना चाहिये । शेष कर्मोंका भङ्ग ओषके समान है ।
- ५६. वैिकियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध और जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। गांत्रकर्मका भङ्ग आंघके समान है। वदनीय, आयु और नासकर्मका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।
- ६०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा ऐसा साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चार घातिकमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। गोत्रकमींके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा ऐसा अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्याद्रष्टि जीव गोत्रकर्मक जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। वेदनीय और नाम कर्मका भक्क आघके समान है।
- ६१. आहारककाययांगी जीवोंमें चार घातिकमें के जधन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है १ साकार-जागृत और सर्विशुद्ध अन्यतर जीव उक्त कमें के जधन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। शेव कमें का भक्त अनुदिशके समान है। इसी प्रकार आहारकिमश्रकाययांगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो तदनन्तर समयमें शरीर प्रयाप्तिको बहुण करेगा उसके कहना चाहिए।
- ६२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीके जबन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रीर जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयत-सम्यद्दिष्ट जीव उक्त कर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कोन हे ? साकार-जागृत,सर्विथिशुद्ध श्रीर जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मीके जघन्य

यत्तमाण० सम्मा० मिच्छा०।

- ६३. इत्थि० पुरिस० घादि०४ जहर अणु० कस्स० १ अण्ण० खनग अणि-यद्दि० चरिमे जह० अणु० नट्ट० । नेद०-णामा० जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० तिगदि० परिय० जह० नट्ट० । आउ० ओघं। गोद०जह० अणु० १ तिगदि० मिच्छादि० परियत्त० जह० अणु० नट्ट० ।
- ६४. णवुंसग० घादि०४ इत्थि०भंगो । वेद०-णामा० जह० अणु० तिगदि० । आउ० गोद० ओघं ।
- ६५. अवगद्वे वादि०४ ओघं । वेद०-णामा-गो० जह० अणुभा० कस्स० १ अण्ण० उवसम १ परिवद्मा० चरिमे जह० अणु० वहु० ।
- ६६. कोध-माण मायासु घादि०४ णवुंसगभंगो । वेद० णामा० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० परिया जह० अणु० वट्ट० । आउ०-गोद० ओघं ।
- ६७. मदि०-सुद० घादि०४ जह० अणु० कस्स०? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सन्वविसु० संजमाभिग्रह० चरिमे वट्ट०! सेसं ओघं। एवं विभंग०-अब्भवांस०-मिच्छा०। णवरि अब्भवसि० दव्वसंज०।

श्चनुभागवन्धका स्वामी परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला सम्यग्हांष्ट या मिथ्याहांष्ट जीव है ।

- ६३. स्त्रीवदी और पुरुषवदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर क्ष्पक अनिष्ट त्तिकरण जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागवन्थमें विद्यमान अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मों के जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग आंघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागवन्थकों अवस्थित अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है।
- ६४. नपुंसकवेदी जीवोंमें चार चातिकर्मीका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जयन्य अनुभागवन्थका स्वामी कोन है ? अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मीके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। आयु और गोत्रकर्मका भङ्ग आपके समान है।
- ६५, अपगतवेदी जीवोंमं चार घातिकर्मीका भङ्ग स्रोघके समान है। वेदनीय, नाम स्रोर गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है? स्रन्तिम जघन्य स्रमुभागवन्धमें स्रवस्थित स्रम्यतर गिरनेवाला उपशामक उक्त कर्मोंके जघन्य स्रमुभागवन्धका स्वामी है।
- ६६. क्रांध, मान श्रीर माया कपायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मीका भक्क नपुंसकवेदीके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणाम-वाला और जघन्य श्रनुभागवन्धमें विद्यमान अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य श्रनुभाग-वन्धका स्वामी है। श्राधु श्रीर गोत्रकर्मका भक्क श्रोघके समान है।
- ६७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मीक जघन्य श्रानुभागबन्धका स्वामी कौन हे ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध, संयमक श्राममुख श्रोर अन्तिम जघन्य श्रानुभागबन्धमें अवस्थित श्रान्यतर मनुष्य उक्त कर्मीक जघन्य श्रानुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी, श्राभव्य श्रोर मिष्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्राभव्य जीवोंमें द्रव्यसंयत जीवोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए।

- ६८. आभि०-सुद्०-ओधि० घादि०४ त्रोघं। वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० परियत्तमा मज्झिम० पज्जत्तिणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाण० जह० अणु० वट्ट०। आयु०-गोद० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० सागार जा० णिय० उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिग्रह० जह० अणु० वट्ट०।
- ६९. मणपज्ज० वे०-गोद० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण सागार-जा०णिय० उक्क० संकिलि० असंजमाभिम्रह० जह० वट्ट०। सेसं आभिणि०भंगो । एवं संजदा०। णबरि गोद० मिच्छत्ताभिम्रह०।
- ७०. सामाइ०-छेदो० घादि०४ जह० अणु० कस्स०१ अण्ण० अणियट्टि-खवग०। सेसं मणपज्जवभंगो। णवरि गो० मिच्छत्ताभिग्रह० जह० वट्ट०।
- ७१. परिहार वादि ०४ जह ० अणु ० कस्स ० १ अण्ण ० अप्पमत्तसंज ० सागार जा ० सन्वित्त । वेद ० आउ ० ग्णामा ० जह ० अणुभा ० कस्स ० १ अण्ण ० परिय ० मिज्झम ० जह ० अणु ० वट्ट ० । गोद ० जह ० अणु ० कस्स ० १ अण्ण ० पमत्त ० सागार जा ० णिय ० उक्त ० संकिति ० सामाइ ० छेदो ० अभिग्रह ० ज ० वट्ट ० ।
- ६न. अभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग श्रोधके समान है। वेदनीय श्रोर नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला, जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निवृत्तमान श्रोर जवन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है? आयु श्रोर गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन हं? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिण्यात्वके अभिमुख श्रोर जघन्य अनुभागवन्थमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंक जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है।
- ६६. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमं वेदनीय और गांत्रकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागवन्धमें विद्यमान अन्यतर जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। शेप कर्मोंका भङ्ग आभिनिवोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गोत्र-कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी मिण्यात्वके अभिमुख जीव है।
- ७०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें चार घातिकमें के जयन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपक उक्त कमें के जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। शेष कमें का भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी मिण्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागवन्धमें विद्यमान उक्त जीव है।
- ७१. परिहारिवशुद्ध संयत जीवोंमें चार घातिकमोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, और सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कमोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला आर जघन्य अनुभागवन्धमें विद्यमान अन्यतर जीव उक्त कमोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके अभिमुख तथा जघन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है ।

- ७२. सुहुमसंप० घादि०३ ओघं। णवरि वेद० णामा-गो० जह० अणु० १ परिवद० जह० वट्ट०।
- ७३. संजदासंजदा० घादि०४ जह० अणु० कस्स० १ अण्णद० मणुस० सम्मादि० सन्त्रिवसु० संजमान्सिस्ह० । वेद०-णामा०-आउ० परिहारमंगो । गोद० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिति० मिच्छत्ता-मिस्रह० जह० वट्ट० ।
- ७४. असंजदेसु घादि०४ जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्विवसु० संजमाभिम्रह० जह० वट्ट० । सेसं ओघं ।
- ७५. किण्णले० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० सव्व-विसु० । वेद० णामा-गो० णिरयोघं । आउ० ओघं । एवं णील-काऊणं । णवरि गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बाद्रतेउ०-वाउ० जीवस्स सव्वाहि पज्ज० सागार-जा० सव्वविसु० । णवरि णील० तप्पाओग्गविसुद्ध० ।
- ७६. तेऊए घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सव्वविसुद्धस्स । सेसं सोधम्मभंगो । एवं पम्माए वि । सुकाए घादि०४ जह० अणु० कस्स ? ओघं । सेसाणं आणदभंगो ।
- ७२. सूच्मसाम्परायिक संयत जीवोंमं तीन वातिकर्मीका भङ्ग खोषके समान है। इतनी विशे पता है कि वेदनीय, नाम खोर गोत्रकर्मके जवस्य अनुभागवन्थका स्वामी कीन है ? उपशमकंणीसे गिरनेवाला और जघन्य अनुभागवन्थमं अवस्थित जीव उक्त कर्मीके जवन्य अनुभागवन्थका स्वामी है।
- ७३. संयतासंयतों में चार घातिकप्रंकि जघन्य अनुभागवन्यका स्वामी कीन है ? सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मीके जघन्य अनुभागवन्यका स्वामी है। वेदनीय, नाम और आयुकर्मका भङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्यका स्वामी कान है ? साकार-जागृत, नियमसे उक्तष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागवन्यमें विद्यमान अन्यतर तिर्थक्क और मनुष्य गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है।
- ७४. असंयतोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध, संयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागवन्थमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मीके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। शेष कर्मीका भङ्ग आघरके समान है।
- ७५. कृष्णलेश्यामें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर नारकी सम्यन्दिष्ट जीव उक्त कर्मीके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। वदनीय, नाम और गोन्नकर्मका भङ्ग सामान्य नारिकयों के समान है। आयुकर्मका भङ्ग आघके समान है। इसी प्रकार नील और कार्पात लेश्यायाले जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गोन्नकर्मक जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीव गोन्नकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि नीललेश्यामें तत्यायोग्य विशुद्ध जीव गोन्नकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।
- ७६. पीतलेश्यामें चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मों का भङ्ग सौधर्म कल्पके समान हैं। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिये। शुक्र लेश्यामें चार घाति कर्मों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी ओघक समान है। शेष कर्मों का भङ्ग आनत कल्पके समान है।

७७, खइग० घादि०४ ओघं। गोद० जह० अणु० ? चढुगदि० असंज० सागार-जा० णिय० उक्त०। सेसं ओधिभंगो। वेदग० घादि०४ तेउ०भंगो। सेसं ओधिभंगो। उवसम० घादितिगं जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० उवसम० सुहुमसंप० चित्रमे जह० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० ओधिभंगो। मोह० जह० अणु० कस्स०! अण्ण० उवसम० अणियद्वि०।

७८. सासणे घादि०४ जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० सव्वविसु०। वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० १ चदुगदि० परिय०मज्झिम०। आयु० णिरयभंगो। गोद० जह० अणु० १ सत्तमाए पुढ० सागार-जा० सव्वविसु०।

७९. सम्मामि० घादि०४ जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० सन्वितिसु० सम्मन्ताभिम्रह० । वेद०-णामा० जह० अणु० १ चदुगदि० परिय० । गोद० जह० अणु० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० सागार-जागा० णिय० उक्क० संकिति० मिच्छत्ताभिम्रह० । असण्णी० एइंदियभंगो । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं जहण्णयं समत्तं ।

एवं सामित्तं समत्तं।

७७' चायिकसम्यन्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग वन्धका स्वामी कौन है । साकार-जागृत श्रीर नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त चार गतिका श्रमंयतमम्यन्दृष्टि जीव गांत्र कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। शेष कर्मीका भङ्ग श्रविद्यानी जीवोंके समान है। वेदकसम्यन्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मीका भंग पीतलेश्यावाले जीवोंके समान है। शेष कर्मीका भङ्ग श्रविद्यानी जीवोंके समान है। उपशामसम्यन्दृष्टि जीवोंमें तीन घाति कर्मीके जघन्य श्रनुभाग बन्धका स्वामी कौन है । श्रविद्यानी जीवोंके समान है। उपशामसम्यन्दृष्टि जीवोंमें तीन घाति कर्मीके जघन्य श्रनुभाग बन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भंग श्रविद्यानी जीवोंके समान है। मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है । अन्यतर उपशामक श्रविद्यानी जीवोंके समान है। मोहनीय कर्मके जघन्य श्रनुभाग बन्धका स्वामी कौन है । अन्यतर उपशामक श्रविद्यानीय कर्मके जघन्य श्रनुभाग बन्धका स्वामी है।

७८. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागदन्थका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है । वेदनीय और नाम कर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है । आयुकर्मका भंग नारिकयोंके समान है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-आगृत और सर्वविशुद्ध सातवीं पृथिवीका नारकी जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है ।

०६. सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मों के जधन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं ? सर्विवशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मों के जधन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी हैं। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला चार गतिका जीव उक्त कर्मों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। गोन्नकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिध्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव गोत्र कर्म के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। असंद्वियों में एकेन्द्रियों के समान भंग है। अनाहारकों में कार्म णकाययांगी जीवों के समान भंग है।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ ।

कालपरूवणा

८०. कालं दुविधं—जहण्णयं उकस्सयं च । उक्तस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ उक्त०अणुभागवंधो केवचिरं कालादो होदि ? जह०एग०,उक्त० बेसमयं । अणु० जह० एग०,उक्त० अणंतकालमसंखेजजा पोग्गल० । वेद०-णामा-गोदा० जहण्णुक्त०- एग० । अणु०अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो [सादिओ सपज्जवीसिदो] वा । यो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णि०—जह० अंतो०, उक्त० अद्धपोग्गल० देस्र० । आउ० जह० एग०, उक्त० बेसमयं । अणु० जह० एग०, उक्त० अंतो० । एवं आउग० याव अणाहारग ति । एवं ओघभंगो मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा० । णवरि भवसि० अणादिओ अपज्जवसिदो णित्थ ।

कालप्ररूपण र

प्रकारका है — जयन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेश निर्देश दो प्रकारका है — श्रीय श्रीर आदेश । आंघसे चार घाति कर्माक उत्कृष्ट श्रमुमागवन्यका कितना काल है ? जयन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल हो समय है । श्रमुत्कृष्ट श्रमुमागवन्यका जयन्य काल एक समयहे श्रीर उत्कृष्ट काल श्रमन्तकाल है जो श्रमंख्यात पुद्रल परावर्तनके वरावर है । वेदनीय, नाम श्रीर गांत्र कर्मके उत्कृष्ट श्रमुमागवन्यका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रमु कृष्ट श्रमुमागवन्यका कावन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रमु कृष्ट श्रमुमागवन्यका काल तीन प्रकारका है — श्रमानि-श्रमन्त, श्रमादि-सान्त श्रीर सादि-सांत । जो मादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है — जवन्य काल श्रम्तमुं हुर्न है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रुष्ठ कम श्रम्यपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । श्रमु क्रमके उ कृष्ट श्रमुमागवन्यका जवन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रम्तमुं हुर्न है । इसी प्रकार श्रायु कर्मका श्रमका जवन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रम्तमुं हुर्न है । इसी प्रकार श्रायु कर्मका श्रमावादिक मार्गणा तक काल जानना चाहिए । इसी प्रकार श्रोघके समान मत्यज्ञानी, श्रताज्ञानी, श्रमंयत, श्रमखदर्शनी, भव्य श्रीर मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंमें श्रमादि-श्रमन्त विकल्प नहीं है ।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे होता है। इनका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है । जो जीव इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके एक समयके लिए अनुकृष्ट अनुभागवन्ध करता है और पुनः उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करने लगता है, उसके इनके अनुकृष्ट अनुभागवन्धका एक समय काल उपलब्ध होता है। तथा जो अनन्त काल तक एकेन्द्रियसे लेकर असंबी पख्रेन्द्रिय तक पर्यायोंमें परिभ्रमण करता रहता है उसके इनके अनुकृष्ट अनुभागवन्धका अनन्त काल उपलब्ध होता है, अनः इनके अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है। वेदनीय, नाम और गोत्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अपकश्रेणिमें अपने-अपने वन्धकालके अन्तिम संयममें होता है। तथा इसके पहले नियमसे अनुकृष्ट अनुभागवन्ध होता है। उसमें भी जो अभव्य होते हैं उनके इस उत्कृष्टकी अपना सदा अनुकृष्ट अनुभागवन्ध होता है। उसमें भी जो अभव्य होते हैं उनके इस उत्कृष्टकी अपना सदा अनुकृष्ट अनुभागवन्ध होता है। उसमें भी जो अभव्य होते हैं उनके इस उत्कृष्टकी अपना सदा अनुकृष्ट अनुभागवन्ध होता है। किन्तु उपशामश्रेण पर आरोहण करनेके बाद वह सादि हो जाता है। जो जयन्यसे अन्तर्भु हूर्तकालातक और उत्कृष्टक्र अनुभागवन्धका परिवर्तन काल तक होना रहना है। यही कारण है कि इन तीनों कमोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका

- ८१. णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । एवं सत्तसु पुढवीसु अप्पप्पणो द्विदिं सुणद्व्यं ।
- ८२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयोघभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० अणं-तकालं० । एवं अव्भवसि० असण्णि त्ति । पंचिदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० तिरिक्खोघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुन्वकोडिपुधत्तेणव्भिहयाणि । पंचिदियतिरिक्खअप० अट्टण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं० सव्यअपज्जत्ताणं सव्यसुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं च ।
 - =३. मणुस०३ वेद०-णामा गोदा० उक्क० ओघं। सेमं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।
 - ८४. देवेसु सत्तरणं कम्माणं उक्त० णिरयभंगो । अणु० जह० एग०, उक्त० तेत्तीसं

जयन्य और उन्नष्ट काल एक समय कहा है। तथा अनु कृष्ट अनुभागवन्धक अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प वतला कर सादि-सान्तकी अपेक्षा अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य काल अन्तर्मु हुत और उन्नष्ट काल कुछ कम अधेपुरुगल परिवर्तन प्रमाण कहा है। आयुक्रमका उत्नुष्ट अनुभागवन्ध सर्वविसुद्ध परिणामोंसे होता है और इसका जयन्यकाल एक समय और उत्नुष्टकाल दो समय है, अतः इसके उन्नुष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय और उत्नुष्टकाल दो समय कहा है। आयुक्रम का निरन्तर वन्ध अन्तर्भुहर्तकाल तक ही होता है। यहां कारण है कि इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्भुहर्त कहा है। यहाँ मत्यज्ञानी आदि कुछ अन्य मार्गगाएँ परिगणित की गई हैं जिनमें आवपहरणाक अनुसार काल घटित हो जाता है इसलिए उनमें सब कर्मोंक उत्कृष्ट और अनु कृष्ट अनुभागवन्धका काल ओचके समान कहा है। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि आवपस्पणामें यहाँ स्वामित्वका निर्देश करके जिस प्रकार काल घटित करके वतलाया है असी प्रकार इन सब मार्गगाओंमें अलग-अलग स्वामित्वका विचार कर उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र भत्र्यमार्गगामें आवपहरणा। के स्वामित्वके कोई अन्तर नहीं है। केवल इस मार्गगामें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका अनादि-अनन्त विकल्प नहीं बन्ता।

- दश्. नारिकयोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्यकाल एक समय और उक्रष्ट-काल दो समय है। अनुष्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्यकाल एक समय है और उक्षण्टकाल तेनीम सागर है। इसी प्रकार सातों अधिवियोंमें अपनी अपनी स्थितिको जानकर काल ले आना चाहिए।
- दर. तिर्यक्कोंमें सात कर्मोंका भंग सामान्य नारिकयोंक समान है। किन्तु अनु कृष्ट अनुभाग-वन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। इसी प्रकार अभाग्य और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। पंचेन्द्रियिनर्यक्कित्रकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्व-कोटि पृथकत्व अधिक तीन पत्त्य है। पंचेन्द्रिय निर्यक्क अपर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्न है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब सूद्धम पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।
- =२. मनुष्यत्रिकमं वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकम^क उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोचके समान है। शेष भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्जोंके समान है।
 - **८४. देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल नारिकयोंके समान हैं। अनुस्कृष्ट**

सा०। एवं सन्त्रदेवाणं ऋप्पप्पणो द्विदी पोदन्त्रा।

८५. एइंदिएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवं सन्वसुहुमाणं ओघं। पुढ्वी०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्कदि-णियोदाणं च ओघं। बादरएइंदि० सत्तण्णं क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखे० ओसप्पिणि० उस्सप्पिणि०। बादरएइंदियपज्जत्ता० सतण्णं क० अणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। एवं बादर०पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवणप्कदिपत्तेय-णियोद० एदे सव्वे पज्जत्ता। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वापफदि०-बादरवणप्कदिपत्ते०-बादर०णिगोद ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० कम्मद्विदी०। णवरि बादरवणप्कदि० अंगुल० असंखे०।

श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब देवोंके श्रपती-श्रपती स्थिति प्रमाण अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए।

क्षाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है और उक्तृष्ट-काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उक्तृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार सब सूद्म जीवों के काल एकिन्द्रिय ओवके समान है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अप्रिकायिक, वायुकायिक, वनस्पितिकायिक और निगाद जीवों में काल आघके समान है। वादर एकेन्द्रियों सात कर्मों के अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उक्तृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है जो असंख्यता संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके बरावर है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में सात कर्मों के अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उक्तृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर अप्रिकायिक, वादर वायुकायिक, वादर प्रथिवीकायिक, वादर जल-कायिक, वादर अप्रिकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वनस्पितकायिक प्रत्येक शरीर और वादर निगोद जीवों के उक्तृष्ट अनुभागवन्धका काल ओघके समान है। अनुकृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उक्तृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादर वनस्रतिकायिक जीवोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यावें भाग प्रमाण है।

विशेपार्थ—यद्यपि एकेन्द्रियोंका सामान्य उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण श्रानन्तकाल है पर यह काल सब अवान्तर भेदोंमें परिश्रमण करनेकी श्रपेक्षासे कहा है। सात कर्मोंका निरन्तर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्य सूदम एकेन्द्रियके होता है। वादरएकेन्द्रिय हो जाने पर पर्याप्त दशामें उसके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्य होता सम्भव है। इसीसे यहाँपर एकेन्द्रियके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्यका उत्कृष्टकाल श्रासंख्यात लोक प्रमाण कहा है, क्योंकि सूदम एकेन्द्रियकी उत्कृष्ट काय-स्थित उक्त प्रमाण है। एकेन्द्रिय सूदम श्रोर पाँचों स्थावरकायिक सूदम जीवोंकी यही कायस्थित होनेसे इनके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्यका उत्कृष्ट काल भी यही कहा है। पाँचों स्थावरकायिक श्रोर निगोद जीवोंमें भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। श्राभप्राय यह है कि पृथिवी आदि चारकी कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण तो है ही, वनस्पितकायिक श्रोर निगोद जीवोंकी कायस्थिति भिन्न है पर इनमें भी सूदम जीवोंकी श्रपेत्ता सात कर्मोंके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्यका उत्कृष्टकाल श्रोध एकेन्द्रियोंके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इनमें भी एकेन्द्रिय ओघयन काल कहा है।

- ८६. बेइंदि०-तेइंदि-चदुरिंदि० तेसिं च पज्जत्ता० उक्क० णिरयभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।
- ८७. पंचिदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसहस्सं पुन्वकोडिपुघर्नणव्महियं, बेसागरोवमसहस्सं पुन्वकोडिपुघर्नमियं। पज्जत्ते सागरोवमसदपुघ० बेसाग० सह०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं। अणु० जह० श्रंतो०। उक्क० णाणावरणभंगो।
- ८८. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगि० घादि०४ उक्क० ओघं। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अणंतका० असंखे०। ओरालिय० घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देस्व०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं।

बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उक्त प्रमाण काल कहा है। इसी प्रकार आगे भी जिनकी जो कायस्थिति कही है उसका विचार कर सात कर्मोंक श्रनुत्कृष्ट अनुभाग वन्धका उत्कृष्ट काल जान लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया। शेष कथन सुगम है।

्द. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल नारिकयोंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जबन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है।

८७. पंचेन्द्रिय द्विक श्रीर त्रमद्विक जीवोंमें चार वातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका काल श्रीपके समान है। अनुन्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जवन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल कमसे पूर्व-कोट पृथक्त्व श्रिक एक हजार सागर श्रीर पूर्वकोटि पृथक्त्व श्रीधक दो हजार सागर है। किन्तु पर्याप्तकोंमें सो सागर पृथक्त्व और दो हजार सागर है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल श्रीपके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जवन्यकाल श्रान्तर्भु हूर्त है श्रीर उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणसे समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक एक हजार सागर, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी सो सागर पृथकत्व, त्रसकायिककी पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक हो हजार सागर और त्रसकायिक पर्याप्तकोंकी दो हजार सागर है। इसीसे यहाँ इनमें चार घातिकमींके अनुत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इनमें वेदनीय नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्टकाल आधिक समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

द्र पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल स्रोघके समान है। स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय हे स्रोर उत्कृष्टकाल स्रन्तर्म हूर्त है। काययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मों के उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका काल स्रोघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका काल स्रोघके समान है। तथा इन सबके अनुतकृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट अनन्त काल है जो स्रमंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। स्रोदारिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंमें उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका काल स्रोघके समान है। स्रनुतकृष्ट अनुभागबन्धका जवन्यकाल एक समय हे स्रोर उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल स्रोघके समान है।

अणु० णाणा०भंगो । ओरालियमि० सत्तण्णं क० जहण्णु० एग०, अणु० जह० उक० अंतो० । एवं वेउन्वियमि०-आहारमि० । णवरि आहारमि० आउ० जह० एग०, उक० एग० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

८६. वेउव्वि०-आहारका० अट्टण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो। कम्मइंग० सत्तण्णं क० जहण्णुक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णिसम०।

६०. इत्थि । घादि०४ उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसद-पुधत्तं । वेद०-णामा-गोदा० जहण्णु० एग० । अणु० णाणावरणभंगो । एवं पुरिस० ।

अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल ज्ञानावरणके समान है। औदारिकिमिश्रकायये गि। जीयोंके भाग कर्मी के उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हुते हैं। इसी प्रकार वैकियिकिमिश्रकाययोगी और आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुक्रमेंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हुत्ते है।

विशेषार्थ—-श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पर्याप्त होनेके एक समय पूर्व उत्कृष्ट अनुभाग-वन्य सम्भव है, अतः इनमें सान कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य और उक्रुष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्म हूर्त कहा है। यही नियम वैक्षियिक मिश्रकाययोगी और अहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए, इसलिए इनमें भी सान कर्मोंक उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवन्यका काल औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान कहा है। मात्र आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुक्रमेंके कालमें कुछ विशेषता है। यान यह है कि इनमें आयुक्रमेंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य शरीर पर्याप्ति प्राप्त होनेके एक समय पहले सम्भव है। तथा इसी प्रकार शरीर पर्याप्तिके प्राप्त होनेके एक समय पहलेसे आयुक्त्य भी सम्भव है, इसलिए इनमें आयुक्तमेंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्म हूर्न कहा है। शेष कथन सुगम है।

६. वैकियिककाययोगी और आहारकाययोगी जीवोंमें आठ कमोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध-का जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हूर्त है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन समय है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। उसमें भी सात कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अन्तिम समयमें होता है, क्योंकि चार घातिकर्मोंके योग्य उत्कृष्ट संक्रोश परिणान और वेदनीय, नाम व गांत्रके योग्य उत्कृष्ट सर्वविशुद्ध परिणाम वहीं सम्भव हैं, अतः इनके सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनु-त्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

है । स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उत्कृष्टकाल सौ पत्य पृथक्त्व प्रमाण है। वेदनीय, नाम श्रोर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्टकाल एक समय है। अनु-

णवरि वेद०-णामा-गोदा० अणु० जह० अंतो०, सन्वेमि उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। णवुंसगे कायजोगिभंगो। अवगद० सत्तण्णं क० उक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं।

- ६१. कोश्रादि०४ घादि०४ मणजोगिभंगो । वेद०-णामा-गोदा० उक्त० एग० ।
 अण्० जह० एग०, उक्त० अंतो० ।
- ६२. विभंगे घादि०४ उक्त० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्त० तेत्तीसं साग० देस्र०। वेद०-णामा-गोदा० उक्त० एग०। अणु० णाणावग्णभंगो।

त्कृष्ट अनुभागवन्यका काल झानावरणके समान है। इसी प्रकार पुरुपवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुन्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्यकाल अन्तमुँ हुते है तथा सबके अनुन्कृष्ट अनुभागवन्थका उन्कृष्टकाल सो सागर पृथक्त्व प्रमाण है। नपुंसक वेदी जीवोंमें काययोगी जीवोंके समान भंग है। अपुगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्यकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्यकाल एक समय है और उन्कृष्टकाल अन्तमुं हुते है। इसी प्रकार सृच्मसांपरायिक संयत जीवोंके छह कर्मोंका काल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पुरुपवेदी जीव उपशमश्रणी पर चढ़कर उत्तरते समय यदि मरकर देव होते हैं तो भी पुरुपवेदी ही होते हैं। श्रोर नहीं मरते हैं तो भी पुरुपवेदी ही होते हैं। यहाँ स्निवेद श्रोर नपुंमकवेदके समान एक समय काल उपलब्ध नहीं होता। श्रार इनमें वेदनीय, नाम श्रोर गोत्रकमिके अनुन्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल श्रम्तर्भु हुते कहा है। उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर श्रोर उतारनेके वाद पुनः अन्तर्भु हुते कालके भीतर उपशमश्रेणी पर श्रारोहण करानेसे यह वाल उपलब्ध होता है। अपगतवेदी जीयोंमें उत्तरते समय श्रवगतवेदके श्रम्तिम समयमें चार धातिकर्मीका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव है। तथा वेदनीय आदि तीन कर्मीका चपकश्रेणीमें श्रपने वन्धके श्रम्तिम समयमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव है त्रीर श्रपगतवेदका जघन्यकाल एक समय व नोवें दसवें गुणस्थानके कालकी श्रपेचा उत्कृष्टकाल अन्तर्भु हुते है, इसलिए श्रपगतवेदमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय व श्रमुक्ष्य श्रमुक्षाग्यन्थका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हुते कहा है। शेप कथन सुगम है।

६१. क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोका भंग मनोयोगी जीवोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनु-त्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हुर्त है।

विशेषार्थ—क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमं वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमं होता है। अन्यत्र इनका निरन्तर अनुकृष्ट अनुभागवन्ध होता रहता है। किन्तु चारों कपायोंका जवन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हूर्त है इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध का उधन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मु हुर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

६२. विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है। वेदनीय, नाम श्रोर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्टकाल एक समय है। श्रनु- कुष्ट श्रनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है।

६२.आभि० सुद० ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० एग० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावडि० साग० सादि०। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-वेदग०। णवरि वेदगे० छावडि०।

९४. मणपज्जव० सत्तण्णं क० उक्त० एग०। अणु० जह० एग०, उक्त० पुव्वकोडी दे०। एवं संजद-सामाइ०-छेदोव०। परिहार० सत्तण्णं क० उक्त० एग०। अणु० जह० अंतो०, उक्त० पुव्वकोडी दे०। अथवा वेद०-णामा-गोदाणं च उक्त० जह० एग०, उक्त० वेसम०। अणु० जह० एग०, उक्त० तं चेव। एवं [संजदासंजदाणं। चक्त्वु० तसपज्जत्तभंगो।]

विशेषार्थ—जो मिण्यादृष्टि मनुष्य संयमके अभिमुख और सर्वविशुद्ध होता है उसके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्थ के समय वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्थ होता है। अन्यत्र इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थ होता है, इसिलए इन तीनों कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है। तथा विभङ्गज्ञानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है, इससे सानों कर्मीके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

है३. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्त-मुंहुर्त है श्रीर उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि श्रीर वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्टकाल पूरा छयासठ सागर है।

विशेषार्थ—जो असंयतमस्यन्दि मिण्यात्वके अभिमुख होता है और अनितम समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है उसके इन तीन सस्यन्ज्ञानोंमें चार घातिकमींका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है। तथा वेदनीय आदि तीन कमींका अपकश्रेणिमें वन्धके अनितम समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए यहाँ उक्त सातों कमींक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है। तथा इन तीनों ज्ञानोंका जघन्यकाल अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक छ्यासठ सागर है, इसलिए इनमें उक्त सातों कमींके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। यह प्ररूपणा सन्यन्दि और वेदक सन्यन्दि जीवोंमें अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गगाओंमें भी पूर्वोक्त प्रकारसे ही काल कहा है। किन्तु इतना विशेष सममना चाहिए कि वेदक सन्यन्दिका उत्कृष्टकाल पूरा छ्यासठ सागर ही है, इसलिए इसमें उक्त सातों कमींके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्टकाल छ्यासठ सागर ही होता है।

हिंश. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमं सात कर्मोंके उत्कष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रौर उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत श्रौर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त हे श्रौर उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रथवा वदनीय, नाम श्रौर गोत्रकर्मक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल वही है। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जाननाचाहिए। चज्रुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भक्न है।

विशेषाथ-परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग-

- ६५. पंचणां लेस्साणं सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सत्तारस०-सत्त०-बेसा०-अट्टारस० सादि०। णविर तेउ०-पम्माए० वेद०-णामा-गोदा० यदि दंसणमोहक्खवगस्स सामित्तादो उक्क० एग०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायद्विदी०।
- ९६. सुकाए घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। वेद० णामा गोदा० उक्क० एग०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

बन्धका काल दो प्रकारसे वतलाया है। प्रथम तो चार घातिकमें के समान ही इनका काल है। फिर प्रकारान्तरसे इनका काल दूसरा कहा है। इस भेदका कारण क्या है यह विचारणीय है। विदिन होता है कि सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मानने पर इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय उपलब्ध होता है और दर्शनमोहनीयकी श्र्पणावाले सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्यक होने पर जब इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य माना जाता है तब इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय उपलब्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम विकल्पकी अपन्ता इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय और दूसरे विकल्पकी अपेक्षा अन्तमुंहूर्त घटित कर लेना चाहिए। शेप कथन सुगम है।

ह्य. पाँच लेश्यायाले जीवोंमें मातकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। इतनी विशेषता है कि पीत और पद्मलेश्यावाल जीवोंमें बदनीय, नाम और गोत्रकर्मके विषयमें यदि दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव है तो स्वामित्वकी अपेचा उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्म हैते हैं और उन्कृष्टकाल कायस्थित प्रमाण है।

चिशेपार्थ—पीत श्रौर पद्म लेश्यावाले दर्शनमोहनीयके क्षपक जीवके श्रन्तिम उत्कृष्ट अनु-भागवन्धके समय वेदनीय, नाम श्रौर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्टकाल एक समय और श्रनुःकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

६६. शुक्त लेश्यवाले जीवोंमें चार घातिकर्मीके उद्धष्ट अनुभागवन्धका काल ओघके समान है। अनुष्ठप्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उद्धप्टकाल साधिक तेनीससागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उद्धप्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उद्धप्टकाल एक समय है। अनुष्ठुप्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्तर्मु हूर्त है और उद्धप्टकाल साधिक नेनीस सागर है। चायिक सम्यर्ग्दिष्ट जीवोंसे शुक्तलेश्यावाले जीवोंके समान भन्न है।

विशेषार्थ--शुक्तलेश्यामें वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रका उछ्छ श्रानुभागबन्ध चपकश्रेणिमें उप-लब्ध होता हैं, इसलिए इनके उछ्छ श्रानुभागबन्धका जघन्य और उछ्छकाल एक समय कहा है। तथा इनके श्रानुख्छ श्रानुभागबन्धका जघन्यकाल श्रान्तर्मुहर्त श्रीर उद्छछकाल साधिक तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही हैं। कारण कि शुक्तलेश्याका यही काल है। इतने काल तक इसके निरन्तर श्रानुख्छ श्रानुभागबन्ध होता रहता हैं। शेष कथन सुगम हैं। ९७. खइग० सुकले०भंगो। उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० एग०। अणु० जह० उक्क० अंतो०। एवं सम्मामि०। सासणे सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। णवरि घादि०४ उक्क० एग०।

९८. सण्णीसु पुरिसभंगो। आहारा० ओघभंगो। णवरि अणु० बादरएइंदियभंगो। अणाहारा० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्सं समत्तं

६६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ गोदं च जह० अणु० जह० उक्क० एग०। अज० तिभंगो। वेद-णामा० जह० जह० एग०, उक्क०

हुछ, चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमं शुक्तलेश्यावाले जीवोंके समान भङ्ग है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उद्धृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उद्धृष्टकाल एक समय है। अनुदृष्टृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उद्धृष्टकाल अन्तर्मुहृत है। इसी प्रकार सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उद्धृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय है और उद्धृष्टकाल दो समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय है और उद्धृष्टकाल छह आवली है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मीके उद्धृष्ट अनुभागवन्धका उद्धृष्टकाल एक समय है।

विशोपार्थ—उपराम सम्यक्त्वमें चार घातिकमीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उन्कृष्ट संक्लेशवाले, मिण्यात्वके अभिमुख जीवके अन्तिम उन्कृष्ट अनुभागवन्धके समय होता है। तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्धक अन्तिम उन्कृष्ट अनुभागवन्धके समय होता है इसलिए इसमें उक्त सातों कर्मों के उन्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह प्रस्पणा सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंके इसी प्रकार घटित हो जाती है, इसलिए इसमें उक्त सातों कर्मों के उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवन्धका काल उपशामसम्यन्दृष्टि जीवोंके समान कहा है। सासाद्नसम्यन्दृष्टि जीवके चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिण्यात्वके अभिमुख अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धके समय होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रका उन्धृष्ट अनुभागवन्ध सर्वविद्युद्ध जीवके होता है। तथा सासाद्न सम्यन्द्रविद्या जावन्यकाल एक समय और उन्कृष्टकाल छह आवित है, इसलिए इसमें चार घातिकर्मोंसे उन्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उन्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य काल एक समय और उन्कृष्टकाल कहा है। तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय और उन्कृष्टकाल हो समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय और उन्कृष्टकाल हो समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय और उन्कृष्टकाल हह आवित कहा है।

६८. संज्ञी जीवोंमें पुरुपवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। त्र्याहारक जीवोंमें त्र्योयके समान भङ्ग है। इतनी विशोपता है कि त्रानुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल वादर एकेन्द्रियोंके समान है। अनहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंक समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—त्राहारक जीवोंका उत्कृष्टकाल त्राङ्गलके त्रासंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियोंकी कायस्थित भी इतनी ही है, इसलिए त्राहारक जीवोंमें त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका काल बादर एकेन्द्रियोंके समान कहा है। शेप कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुन्या।

६६. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। आघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय

चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। आउ० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं आउ० याव अणा- हारग ति। एवं ओघभंगो मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०। णवरि भवसि० अणादियो अपज्जवसिदो णित्थ।

हैं। अजघन्य अनुभागवन्धके तीन भङ्ग हैं। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मृहर्त है। इसी प्रकार आयुकर्मका विचार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इसी प्रकार आंधके समान मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचजुद्र्शनी, भव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता हैं कि भव्योंमें अनादि-अनन्त भङ्ग नहीं है।

विशेपार्थ--चार घानिकर्मौका जबन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें बन्धव्यच्छित्तिके अनितम समयमें होता है तथा गोत्रकर्मका जवन्य अनुभागवन्य सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख जीवके बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन पाँच कर्मीक जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके श्रजधन्य श्रनुभागवन्धके तीन भङ्ग है-अनादि-श्रनन्त, श्रनादि-सान्त श्रोर सादि-सान्त। सादि-सान्त श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल त्र्यन्तर्महूर्त त्रौर उत्कृष्ट काल हुछ कम अर्थपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। खुलासा इस प्रकार है--किसी एक जीवने उपशमश्रेणि पर आरोहण किया और उतर कर पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर वह चपकश्रीण पर त्र्यारोहण करके उक्त कर्मीका जघन्य त्र्यनुभागबन्ध करता है। तब उसके उक्त चार कर्मीके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तमृहत् उपलब्ध होता है। और यदि कोई अर्ध-पदगल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उपशान्तमीह हो गिरता है तथा अन्तमें चपकश्रेणि पर त्रारोहण कर मुक्ति लाभ करता है तब उसके उक्त कर्मीक त्रजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्थपुद्गल परिवर्तन प्रमाण उपलब्ध होता है। वदनीय और नाम-कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है, इसलिये इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इनके श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका जधन्य काल एक समय है यह स्पेच्ट ही है, क्योंकि जो सम्यग्हिप्ट या मिध्याहिष्ट जीव एक समय तक श्रजघन्य अनुभागवन्ध करके जघन्य अनुभागवन्ध करने लगता है उसके इनके अजघन्य अनुभाग बन्धका एक समय काल ही उपलब्ध होता है। इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। कारण यह है कि इन दोनों कर्मीका जघन्य अनुभागबन्ध सूच्म एकेन्द्रियों में नहीं होता, उनके निरन्तर अजधन्य अनुभागबन्ध होता रहता है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति त्र्यसंख्यात लोकप्रमाण कही है। त्र्यायुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धके जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समयका तथा अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य काल एक समयका ख़ुलासा नाम और गोत्रकर्मके समान है। आयुकर्मका निरन्तर अन्तर्महूर्न काल तक बन्ध होता है, इसलिये इसके श्रजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मृहूर्त कहा है। गोत्रकर्मका जधन्य श्रनुभागबन्ध सातबी पृथिवीके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित होने पर होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। १००. णिरएसु घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। गोद० जह० अणु० जहण्णुक० एग०। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग०। एवं सत्तमाए पुढवीए। पढमाए याव छद्वि ति तंचेव। णवरि अण्पप्पणो द्विदो भाणिदच्वा। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० भवद्विदी भाणिदच्वा।

१०१. तिरिक्खेसु घादि०४ गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। वेद०-णामा० ओघं। एवं अब्भवसि०-असण्णीसु।

इसके अजधन्य अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार चार घातिकर्मोंका घटित करके बतला आयं हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ आंघके समान मत्यज्ञानी आदि छह अन्य मार्गणाओंका निर्देश किया है सो इनमें भव्यमार्गणाके सिवा शेप मार्गणाओंमें स्वामित्वकी अपेचा कुछ भेद रहने पर भी कालप्ररूपणा ओघके समान अविकल बन जाती है, इसलिए इनमें कालका निर्देश आंघके समान किया है।

१००. नारिकयोंमं चार घातिकमंकि जघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। वेदनीय और नामकमंके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। वेदनीय और नामकमंके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। गोत्रकमंके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। पहली पृथिवीमें लेकर छटवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। गोत्रकमंके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है। और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है। और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी भवस्थित प्रमाण कहना चाहिये।

विशेपार्थ—सामान्यसे नारिकयोंमें और प्रत्येक पृथिवीमें चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभाग-बन्ध सम्यग्दिष्ट सर्वविशुद्धके होता है। इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। सामान्य नारिकयोंमें और सातवीं पृथिवीमें गोत्रकर्मके अजबन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि यहाँ गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध होनेके बाद ऐसा जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक नियमसे नरकमें रहता है। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव करता है, इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०१. तिर्यख्रोंमं चार घातिकर्म श्रौर गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रनन्तकाल है। वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अभव्य श्रौर श्रसंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। पचेन्द्रियतिर्यक्क त्रिकमें चार घातिकर्मीका भङ्ग उत्कृष्टके

पंचिदियतिरिक्ख०३ घादि०४ उक्कस्सभंगो। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० कायिहदी०। पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० वेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च सुहुम-पज्जत्तगाणं च।

१०२. मणुस०३ घादि०४ जह० ओघं। अज० अणुकस्समंगो। वेद०-णामा-गोदा० पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

१०३. देवाणं घादि०४ जह० णिरयभंगो । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । वेद०-णामा-गो० तं चेव । णवरि जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं । एवं सब्बदेवाणं अप्पप्पणो द्विदी भाणिदव्वा । णवरि अणुदिस याव सब्बद्घा ति गोदस्स जह० अणु० जह० एग०, उक्क० वेसमयं । अज० जह० एग०, उक्क० अप्पप्पणो भवद्विदी० ।

समान है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके अजयन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। पंचेन्द्रियितयं अपर्याप्तकों में चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त अस और स्थावर तथा सूद्भम और उनके पर्याप्तक जीवों के जानना चाहिये।

विशेषार्थ—निर्यञ्चोंमें श्रोर इनके श्रवान्तर भेदोंमें कालका विचार स्वामित्व श्रोर काय-स्थितिको ध्यानमें रखकर कर लेना चाहिये। विशेषता इतनी हैं कि यहाँ चार धातिकर्म श्रोर गोत्र-कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मूलोचके समान सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके श्रजचन्य श्रनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल श्रपनी-श्रपनी कायस्थिति प्रमाण वन जाता है। इसी प्रकार यहाँ वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका विचार कर काल ले आना चाहिए।

१०२. मनुष्यित्रकमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्धका काल आघिके समान है। श्रजघन्य अनुभागवन्यका काल अनुत्कष्टके समान है। वंदनीय नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग पंचेन्द्रिय निर्यक्कोंके समान है।

१०३. देवोंमें चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागवन्धका काल नारिकयों के समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका वही भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। इसी प्रकार सब देवों के जानना चाहिए। किन्तु अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में गोंत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी भवस्थित प्रमाण है।

विशेषार्थ-नारिकयोंसे देवोंमें दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि देवोंमें और उनके अवान्तर

१०४. एइंदि० बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० घादि०४ जह० जह० एग०, उक० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक० अणुकस्सभंगो। वेद०-णामा-गो० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० ऋणुकस्सभंगो। णवरि एइंदि० गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०।

१०५. पंचिंदि०-तस०२ सत्तण्णं क० जह० ओघं। अजहण्ण० ओघभंगो। णविर कायद्विदी भाणिदव्वं। पुढवि०-आउ०-बाद्रवणप्फिद्पित्ते०-णियोद० सत्तण्णं क० जह० पंचिंदि०तिरि०अपञ्जत्तभंगो। अज० सव्वाणं अप्पप्पणो अणुक्कस्सभंगो। तेउ०-वाउ० एवं चेव। णविर गोद० घादीणं भंगो कादव्वो।

भेदोंमें गोत्रकर्मका स्वामित्व सामान्य नारिकयोंके समान न होकर दूसरी पृथिवीके समान है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका काल वेदनीय और नामकर्मके साथ कहा गया है।
दूसरे अनुदिशसे लेकर आगे गोत्रकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व सम्यग्हिष्ट संक्षिष्ट परिणामवाले जीवको प्राप्त होना है और इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है
इसलिए अनुदिश आदिमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल दो समय कहा है। शेप कथन सुगम है।

१०४. एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रय जीवोंमें चार घातिकर्मीके जबन्य अनु-भागवन्थका जबन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल जनुन्कृष्टके समान है। अजबन्य अनुभागवन्धका जबन्य अनुभागवन्थका जबन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल अनुन्कृष्टके समान है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके जबन्य अनुभागवन्थका जबन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल चार समय है। अजबन्य अनुभागवन्थका अनुन्कृष्टके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें गांत्रकर्मके जबन्य अनुभागवन्थका जबन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल दो समय है। अजबन्य अनुभागवन्थका जबन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल अनन्त काल है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्य वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव पर्याप्त अयस्थामें पूर्ण विशुद्ध होकर करते हैं। इससे इसके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। ऐसे ये एकेन्द्रियादिक जीव चार घाति-कर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्धि होकर करते हैं इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०५. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें सात कर्मोंके जवन्य अनुभागवन्यका काल आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्यका काल भी आंघके समान है। इतनी विशेषता है कि कायस्थिति कहनी चाहियं। पृथिवीकायिक, जलकायिक, वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और निगाद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्यका काल पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। अजघन्य अनुभागवन्यका काल सवका अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान है। अप्रिकायिक और वायुकायिक जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहियं। इतनी विशेषता है कि गांत्रकर्मका भङ्ग घातिकर्मोंके समान करना चाहिये।

विशेपार्थ—पंचेन्द्रियद्विक श्रोर त्रसिद्विककी कायि धिवितका निर्देश उत्कृष्ट कालका निर्देश करते समय कर त्राय हैं। उमे जानकर यहाँ सात कर्मीक श्रज्जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें गात्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध अग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीव सर्वविशुद्ध होकर करते हैं इसलिए श्रिप्तकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें गोत्रकर्मका काल घातिकर्मीक साथ

१०६. पंचमण०-पंचवचि० घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगि० सत्तण्णं क० जह० अज० ओघमंगो। णवरि घादि०४-गोद० अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। एवं णवंस०।

१०७. ओरालिका० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज०जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देख्न०। एवं वेद०-णामा गोदा०। णवरि जह० तिरिक्खोघभंगो। ओरालियमि० घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० अपञ्चत्तभंगो। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०। वेउव्वियका० घादि०४ जह० अज० उक्कस्सभंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०।

कहा है। किन्तु प्रथिवीकायिक श्रादिमें परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीव करते हैं, इसिलए इनके गोत्रकर्मेळ श्रनुभागवन्यका काल वेदनीय श्रोर नाम कर्मके साथ कहा है। शेप कथन सुगम है।

१०६. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो सभय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजयन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। काययोगी जीवोंमें सान कर्मिके जघन्य और अजन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्म और गांत्रकर्मक अजयन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है। इसी प्रकार नपंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ — काययोगी जीवोमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है और उनकी कार्यास्थितका काल स्नान्तकाल है, इसलिए इनमें चार घातिकमें और गात्रकमें के अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल स्नान्त काल कहा है। परन्तु इनमें वेदनीय और नामकर्मका स्नजघन्य स्नुभागवन्ध असंख्यात लोकप्रमाण काल तक काययोगके सद्भावमें निरन्तर होता रहता है, क्योंकि सूच्म एकेन्द्रियोंकी यही कायस्थिति है और काययोगमें सूच्म एकेन्द्रियोंके इन कर्माका जघन्य स्नुभागवन्ध नहीं होता इसलिए यहाँ इन दोनों कर्मोंक स्नजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल स्रोधके समान असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०७. श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीक जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ कम बाइस हजार वर्ष है। इसी प्रकार वेदनीय, नाम श्रौर गात्रकर्मके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंक समान है। श्रौदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय श्रौर नामकर्मका भङ्ग श्रपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार विकियकमिश्रकाययोगी श्रौर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये। वैकियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवन्थका काल उत्कृष्टके समानहै। गोत्रकर्मके जघन्यअनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल चार समय है।

अज अणुकस्सभंगो । वेद श्णामा जह अोघं । अज श्णाणावरणभंगो । एवं आहार-कायजोगि । णविर गोद श्जह श्जह श्एग , उक्त श्वेसमयं। कम्मइ श्यंचणां क श्जह श् एग । अज श्जह एग , उक्त तिण्णि समयं । वेद -णामा श्जह अज श्पा , उक्त तिण्णिसम । एवं अणाहार ।

१०८. इत्थिवे॰ घादि॰ ४ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वे सम॰। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ पलिदोपमसदपुधत्तं। वेद॰ णामा-गोदा॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ चत्तारि सम॰। अज॰ णाणावरणभंगो। एवं पुरिस॰। णवरि घादि॰ ४ अज॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ सागरोवमसदपुधत्तं। अवगदवे॰ सत्तण्णं क॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ वेसम॰। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰।

१०६, कोधादि०४ घादि०४ गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० अपजन्तर्भगो।

अजवन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जवन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजवन्य अनुभागबन्धका काल जानावरणके समान है। इसी प्रकार आकारक-काययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गांत्रकर्मके जवन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल दो समय है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच करोंके जवन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उन्कृष्ट काल एक समय है। आजधन्य अनुभागबन्धका जघन्य और अजधन्य काल एक समय है। बेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजधन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल तीन समय है।

विशेषार्थ—इन पूर्वोक्त योगोंका काल श्रोर इनमें सात कर्मोंके जवन्य श्रोर श्रजघन्य श्रन-भागवन्धका स्वामित्व जान कर उक्त काल ले श्राना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ हमने श्रलग-श्रलग खुलासा नहीं किया।

१०८. र्कावदी जीवोंमें चार घातिकमें कि जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अजघन्य अनुभाग वन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल सो पल्प पृथक्तव प्रमाण है। वेदनीय नाम और गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार पुरुपवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें चार घातिकर्नोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहून है और उत्कृष्टकाल सो सागर प्रभन्त्व प्रमाण है। अयगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंक जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहून है। समय है। अजघन्य अनुभागवन्ध जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहून है।

विशेपार्थ — स्रोवेदी जीवका जघन्यकाल एक समय है और पुरुपवेदी अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल क्रमसे एक समय ४१ और अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०६. क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रोर उन्कृष्टकाल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य-काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। वेदनीय श्रोर नाम कर्मका भंग अपर्याप्तकोंके समान हैं।

- ११०. विभंगे घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देस्र०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० णाणावरणसंगी।
- १११. आभिः-सुद०-ओधि० घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० अंतो०, उक्क० छाविहसागरो० सादि०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० णाणावरणभंगो। मणपज्जव० घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० जह० एग, उक्क० पुन्वकोडी दे०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० णाणावरणभंगो। एवं संजद-सामाइय-च्छेदो०।
- ११२. परिहार० घादि०४-गोद० जह० एग०। अज० जह०अंतो, उक० पुव्वकोडी देख्र०। वेद०-णामा० मणपञ्जवमंगो। एवं संजदासंजदस्स। सुहुमसंपराइ० छण्णं क० अवगद०भंगो।
- ११०. विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घानिकर्म और गोत्रकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका जवन्य-काल एक समय है और उन्द्रष्टकाल दो समय है। अजवन्य अनुभागवन्धका जवन्यकाल एक समय है और उन्द्रष्टकाल उद्घ कम तेतीस सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जवन्य अनुभागवन्धका काल ओषके समान है। अजवन्य अनुभागवन्धका काल ज्ञानावरणके समान है।
- १११. आभिनियाधिकहानी, श्रुनहानी और अवधिहानी जीवोंमें चार घानिकर्म और गोत्र-कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उन्हर्रकाल साधिक छ्यामठ सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्तर्महुत है और उन्हर्रकाल साधिक छ्यामठ सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य-काल एक समय है और उन्हर्रकाल झानादरणके समान है। मनःपर्ययद्वानी जीवोंमें चार घानिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उन्हर्रकाल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उन्हर्रकाल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उन्हर्रकाल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। अजघन्य अनुभाग वन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ — आभिनियोधिकज्ञानी आदि तीन ज्ञानवाले जीवोंमें चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है। उपशमश्रेणिपर आरोहणकर और उतरकर चपकश्रेणिपर आरोहण करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। तथा गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध उन्द्वष्ट संक्षेश-वाले मिण्यात्वके अभिमुख जीवके होता है। इन जीवोंके गोत्रकर्मका एक बार जघन्य अनुभागवन्ध होनेपर पुनः उसके जघन्य अनुभागवन्धके योग्य यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तकालके पहले नहीं हो सकती, अतः इनमें इन पाँचकर्मिके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध पर्याप्त निवृत्तिसे निवर्त्तमान मध्यम परिणामवाले किसी भी जीवके हो सकता है। ऐसे जीवके एक बार जवन्य अनुभागवन्ध होकर और बीचमें अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर देकर पुनः जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है, इसिलिए इनमें वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

११२. परिद्वारिवशुद्धिसंयत जीवोंमं चार घातिकमं त्रीर गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्टकाल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल श्रन्तर्मृहूर्त्त है और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। वेदनीय और नामकर्मका भंग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। सूट्मसांपरायित कीवोंमें छह

११३. किण्णाए घादि०४ जह० जह० एग०, उक्त० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्ता तेत्तीसं साग० सादि०। वेद०-णामा-गोदा० जह० ओघं। अज० णाणा-वरणभंगो। णवरि गोद० अज० जह० अंतो०। णील-काऊणं सत्तण्णं कम्माणं जह० पढमपुढविभंगो। अज० अणुकस्स•।

११४. तेउ-पम्मासु घादि०४ जह० एग०। अज० जह० अंतो०, उक्क० वे-अष्टारस साग० सादि०। वेद०-णामा०-गोदा० जह० सोधम्मभंगो। अज० जह० एग०, उक्क० णाणावरणभंगो। सुकाए घादि०४ जह० एग०। अज० अणुकस्सभंगो। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० तेतीसं साग० सादि०।

११५. खइगे घादि०४-गोद० जह० एग०। णवरि गोद० जह० एग०, उक्क०

कर्मीका भङ्ग अवगतवेदी जीवोंके समान है।

११३. कृष्ण लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमें कि जयन्य अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अजयन्य अनुभागवन्धका जयन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकमें के जयन्य अनुभागवन्धका काल आधिक समान है। अजयन्य अनुभागवन्धका काल ज्ञावक समान है। अजयन्य अनुभागवन्धका जावन्यकाल ज्ञात्वरणके समान है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकमें के अजयन्य अनुभागवन्धका जवन्यकाल अन्तर्मुहूर्न है। नील और काषात लेश्यावाले जीवोंमें सात कमें के जयन्य अनुभागवन्धका काल पहली पृथिवींक समान है। अजयन्य अनुभागवन्धका काल यहन्यका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्यामें चार घातिकर्सीका बन्द सम्यग्द्रष्टि सर्वविशुद्ध जीवके होता है इसलिए इनमें जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय कहा है। इस लेश्यामें गोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध सानवीं पृथिवीके नारकीके सम्यक्ष्यके अभिमुख होनेपर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय होना है। यह जीव उसके बाद नरकमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवश्य रहता है, इसलिए इसके गोत्रकर्मके अजवन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

११४ पीत और पद्म लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अजवन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्टकाल कमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुःकृष्टके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजबन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेनीस सागर है।

विशेषार्थ—इन लेश्याश्रोंमें अपने अपने स्वामित्वका विचारकर काल ले आना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका स्पष्टीकरण नहीं किया।

११५. चायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म श्रौर गोत्रकर्मके जयन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रौर उत्कृट काल एक समय है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जयन्य श्रनुभागबन्धका बेसमयं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीमं साग० सादि०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०।

११६. वेदग० घादि०४-गोद० जह० खड्म०भंगो । णवरि गोद० जह० जहण्य० एगस० । अज० जह० अंतो०, उक्क० छावद्वि सा० । वेद०-णामा० जह० ओघं । अज० जह० एग०, उक्क० छावद्वि० ।

११७. उनसम० घादि०४-गोद् जह० एग०। अज० जह० उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सम्मामि०। सासणे घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० वेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० णाणा०भंगो। आहार० सत्तण्णं कम्माणं जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखेज०।

एवं कालं समत्तं।

जघन्य काल एक समय है ओर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजवन्य अनुभागवन्यका जवन्यकाल अन्तर्मुहूर्स है और उत्कृष्ट काल माधिक तेतीस सागर है। वेदनीय और नानकर्मके जघन्य अनुभागवन्यका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ गोत्रकर्मके जवन्य अनुभागवन्यका जवन्य काल एक समय और उन्नष्ट-काल दो समय कहा है मी इसका कारण यह है कि इसका जवन्य अनुभाग चारों गतिके सम्यग्रद्धि जीवके उत्सृष्ट संक्लेश परिणामों से व्यान है। तथा इसे इन परिणामोंको पुनः प्राप्त करनेमें अन्त-सृदूर्त काल लगता है अथवा एक वार उपशामश्रेणीसे उत्तरकर पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़नेका काल अन्तर्मुहूर्त है इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके अजयन्य अनुभागवन्यका जयन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

११६. वेद्कमम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्म और गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका काल आयिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्च है उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका काल आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है।

विशेषाथ—वेदकसम्यक्त्वमें गांत्रकर्मका जयन्य श्रानुभागवन्य मिण्यत्वके श्राममुख हुए जीवके जयन्य अनुभागवन्थके समय होता है, इस्तिए इसके जयन्य अनुभागवन्थका जयन्य श्रोर उत्क्रष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

११७. उपशमसम्यन्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। अजघन्य अनुभागन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्न है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। सासासनसम्यन्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आबिल है। चंदनीय और नामकर्मक जघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। आजघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। आजघन्य अनुभागवन्धका काल आघके समान है। आजघन्य अनुभागवन्धका काल समय है और उत्कृष्ट काल अग्रेषके समान है। आजघन्य अनुभागवन्धका काल समय है और उत्कृष्ट काल अग्रेषके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अंतरपरूवणा

११८. अंतरं दुविधं-जहण्णयं उकस्सयं च। उकस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। अोघे० घादि०४ उक्क० अणुभाग० अंतरं केवचिरं० १ जह० एग०, उक्क० अणंत० असंखेजा०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा०-गोदा० जह० णित्थ अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क अंतो०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अद्ध-पोग्गल०। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। एवं ओघभंगो अचक्खुदं०-भवसि०।

अन्तरप्ररूपणा

११८. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उक्छ । उन्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश । आंघसे चार घातिकर्मीक उन्हण्ट अनुभागवन्थका कितना अन्तर है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उक्छ अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्त्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त्त है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर्मुहर्त है । आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अध्वपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । इस प्रकार आविक समान अचलुदर्शनी और भव्य जीवोंक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ--चार चातिकमीका उत्कृष्ट अनुभागवन्य जिन परिणामोंके प्राप्त होनेपर होता है वे एक समयके बाद पुनः प्राप्त हो सकते हैं और असंज्ञी तकके जीयोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त-काल प्रमाण है। इतने कालके भीतर इन कर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध नहीं होता, अतएव इन कर्मीके उक्तप्ट अनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय और उक्तप्ट अन्तर श्रनन्तकाल कहा है। एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होकर पुनः उत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो सकता है। तथा उपशम-श्रेणिसे उतर कर पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़कर उपशान्तमोह होने तकका काल अन्तमुहर्त है. और बीचमें अन्तर देकर इतने काल तक इन कमींका अनुःकृष्ट अनुभागवन्य होता है, इसलिए इन कमींके श्रवुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुहर्त कहा है। वेदनीय, नाम श्रौर गोत्रकर्मका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य क्षुपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए इनके श्रन्तर-कालका निपेध किया है। जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर एक समय या अन्तर्महर्त काल तक इनका अबन्धक होकर पुनः इन कर्मीका बन्ध करता है उस जीवकी अपेत्ता इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। श्रायुकर्मका एक समयका अन्तर देकर उत्कृष्ट श्रनुमागबन्ध सम्भव है। तथा श्रर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें और कुछ कालसे न्यून अन्तमें अप्रमत्तसंयत होकर आयुकर्मका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सम्भव हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट त्रनुभागबन्धका जवन्य त्रान्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुर्गल परिवर्तनकाल प्रमाण कहा है। जो जीव अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके बाद एक समय तक उन्कृष्ट अनुभागवन्ध करके पुनः अनुकृष्ट अनुभागवन्ध करने लगता है उसके आय-कर्मके अनुरक्कष्ट अनुमागनन्यका जयन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है और जो पूर्वकोटिके व्रथम त्रिभागके आयुवन्धके अन्तिम समयमें अनुःकृष्ट अनुभागबन्ध करके पुनः उत्कृष्ट आयुके साथ

११९. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्व०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम०। आउ० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देस्व०। एवं सव्वणिरएसु अप्पप्पणो द्विदी देस्णं काद्व्यं।

१२०. तिरिक्खेमु घादि०४ उक्क० जह० एग०. उक्क० अणंतका०। अणुक्कस्स० जह० एगसमयं, उक्कस्सयं संखेजसमयं। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० अद्भुपोग्गल०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देख्न०। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०।

देव या नारकी होकर यह छह महीता काल शेव रहने पर पुनः अनुकृष्ट अनुभागवन्य करता है उसके आयुकर्मके अनुकृष्ट अनुभागवन्यका उन्छट अन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। यहीं कारण है कि आयुकर्मके अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उन्छट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

११६. नारिकयोमें लांक क्रमीक इ.क्रष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक क्रम के ान लागर है। अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुक्रमंक उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ क्रम छह महिला है। इसी प्रकार सब नरकों में सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थित प्रमाण कहना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यसे नरकमें यह अन्तरकाल कहा है। इसे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट कालका विचार करके ले आना चाहिए। नरकमें उत्पन्न होनेक बाद पर्याप्त होने पर उत्कृष्ट अनुभाग-वन्ध सम्भव है और उसके बाद अन्तमें वह सम्भव है, इसलिए यहाँ सानों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। प्रथमादि नरकोंमें जिस नरककी जो उत्कृष्ट स्थिति है उसका विचार कर उस-उस नरकमें सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१२०. तिर्यक्कोंमें चार वातिकर्मीकं च कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्त अर्धपुद्गल प्रमाण है। आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका छुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। अनुकृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और अर्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अर्क्ष का विभागवन्य अन्तर एक समय है और अर्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अर्क्ष का विभागवन्य अर्क्ष का विभागवन्य अर्क्ष का विभागवन्य अर्क्ष का विभागवन्धका जवन्य अर्क्ष का विभागवन्य अर्व का विभागवन का व

विशेषार्थ—निर्यक्कोंमें चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संज्ञी पक्केन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसिलए इनमें चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तथा तिर्यक्कोंमें इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उत्कृष्ट रूपसे संख्यात समय अर्थात् दो समय तक होता रहता है, इसिलए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात समय कहा है। इनमें वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संयतासंयत जीवके होता है और तिर्यक्क रहते हुए इनमें संयतासंयत गुणस्थानका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल सम्भव है, इसिलए इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरमाण कहा है। जो विश्वक्ष पूर्वकारिक त्रिभागमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके पुनः अन्तिम त्रिभागमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके पुनः अन्तिम त्रिभागमें उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्यका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्धका अनुभागवन्य

१२१. पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडि-पुभत्तं। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आयु० तिरिक्खोधं। पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ञत्त० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आयु० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सन्वअपज्ञत्ततसाणं थावराणं च सन्वसुहुमपज्जताणं च।

१२२. मणुस०३ घादि०४-आउ० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि घादि०४ अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० उक्क अंतो०।

प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है। ऐसा जीव मर कर पुनः तिर्यख्न नहीं होता, इसलिए एक पर्यायमें ही बँधनेवाली आयुकी अपेक्षा यह अन्तरकाल उपलब्ध किया गया है। तिर्यद्भ आयुकर्मका पूर्व-कोटि आयुके प्रथम त्रिभागमें अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके और तीन पत्यकी आयुवाला तिर्यद्भ होकर वहाँ छह महीना काल शेप रहने पर पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर सकता है, इसलिए इनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन पत्य कहा है।

१२१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय हैं। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंक समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय हैं। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर स्वन्तर्मुहूर्त हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त जस और स्थावर तथा सब सूद्दम पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यक्चोंमें पक्चोन्द्रिय तिर्यक्चित्रिककी मुख्यतासे ही आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य किया गया है इसिलए यहाँ आयुकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान कहा है। तिर्वक्चोंमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर काल किसी भी तिर्यक्चके उपलब्ध हो सकता है यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए। यहाँ सब स्थावर अपर्याप्त जीवोंमें सब सूद्रम अपर्याप्त और सब वादर अपर्याप्त जीवोंका भी अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि इनकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त कालसे अधिक नहीं है। असअपर्याप्त जीवोंका निर्देश अलगसे किया ही है। इन सब अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त काल होनेसे इनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तकोंके समान अन्तरकाल वन जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम है।

१२२. मनुष्यित्रकमें चार घातिकर्म श्रौर आयुक्तमका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्र्योंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मीके अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हैं श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। वेदनीय, नाम श्रोर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमं उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है और इस अपेता इनमें चार घातिकमीके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। इसलिए इनमें उक्त कमीके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध त्तपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके

१२३. देवेसु घादि०४ उक्क० जह० एगः, उक्क० अद्वारस साग० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम०। वेद०-णामा गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्रणा०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम०। आउ० उक्क० अणु० एग०, उक्क० छम्मासं देस्र०। एवं सञ्बदेवाणं अप्पप्पणो द्विदीओ णेदञ्वाओ।

१२४. एइंदि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। बादरे अंगुल० असंखे०। बादरपज्जत्ते संखेजाणि वाससहस्साणि। सन्वमुहुमाणं उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। एवं वणण्कदि-णियोदाणं। सन्वेसिं० अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादि०

अन्तरकालका निर्णय किया है। तथा उपशामश्रेणिमें उपशान्तमोह हो जानेपर इनका वन्य नहीं होता भ्रान्यत्र सर्वदा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य होता रहता है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त कहा है। यदापि उपशान्तमोहका मरणकी अपेक्षा जयन्य काल एक समय है पर ऐसा जीव मरकर नियमसे देव ही होता है और यहाँ मनुष्यत्रिकका प्रकरण है। इसलिए यहाँ इस कालका बहुण नहीं किया जा सकता है। शेव कथन सुगम है।

१२३. देवोंमें चार घातिकमींके उद्धष्ट अनुसागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। बदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उक्ष्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्ष्य अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर हो समय है। आयुकर्मक उत्कृष्ट आनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महिना है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपनी-अपनी स्थितिको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमं चार घातिकर्मौका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है। किन्तु यह बात वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके विषयमं नहीं है। उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सर्वार्थ- सिद्धिके देवके भी होता है। यही कारण है कि सामान्य देवोंमं चार घातिकर्मौके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर और वेदनीय, नाम व गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। अन्य देवोंमें जिसकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर वहाँ सातों कर्मौके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आना आहिए। उन उन देवोंमें यह अन्तर काल लाते समय यह सामान्य देवोंकी अपेक्षा प्राप्त किया गया सात कर्मौके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल विविद्यत नहीं रहता इतना रूपष्ट है। शेप कथन सुगम है।

१२४. एकेन्द्रियों मं सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियों में उत्कृष्ट अन्तर अझुलके असंख्यात वें भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। सब सुद्मों में उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार सब बनस्पतिकायिक और निगोद जीवों के जानना चाहिए। इन सब जीवों के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुक्रमंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रारम्भके तीनमें साधिक सात हजार

अंतो॰ वणप्फदि॰ तिष्णि बाससहस्साणि सादि॰। अणु॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ बावीसं-वास॰ सादि॰ [अंतो॰] दस वाससहस्सा॰ सादि॰ अंतो॰।

१२५. पुढवि०-आउ०-तेउ० वाउ०-वणप्फदिपत्ते० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। बादर० कम्मद्विदी। पञ्जत्ताणं संखेज्जाणि बाससहस्साणि। सन्बाणं अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० सत्त वाससहस्साणि सादि० वे वाससह० सादि० तिण्णि वाससह० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अप्पप्पणो पगदिअंतरं। तेउ०-बाउ० जह० एग०, उक्क० कायद्विदी०। अणु० अप्पप्पणो पगदिअंतरं।

वर्ष और सूद्रम तथा निगाद जीवोंमें अन्तर्मुहूर्त है। तथा वनस्पतिकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक वाइस हजार वर्ष, अन्तर्मुहूर्त, साधिक दम हजार वर्ष और अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ—एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय स्रोर वाद एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें बादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त जीवोंकी मुख्यतासे स्रायुकर्मके उद्धृष्ट स्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उद्धृष्ट स्रन्तर काल प्राप्त किया गया है। सूच्म एकेन्द्रिय पर्याप्त स्रोर निगाद पर्याप्त जीवोंकी उद्धृष्ट भवस्थिति स्रन्तर्मुहूर्त तथा वनस्पतिकायिक जीवोंकी उद्धृष्ट भवस्थिति दस हजार वर्ष है। इसलिए इनमें इस कालको ध्यानमें एखकर श्रायुक्तमके उद्घृष्ट स्रोर स्रनुद्धृष्ट स्रनुभागवन्धका उद्घृष्ट स्रन्तरकाल प्राप्त किया गया है। शेष स्रन्तरकाल लाते समय स्वामित्व और स्रपनी-अपनी कायस्थितिको ध्यानमें एखकर वह ले स्राना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका स्रलगसे निर्देश नहीं किया। मात्र जहाँ कायस्थिति स्रधिक है स्रोर अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है वहाँ जो विशेषता है उसका निर्देश हम काल प्ररूपणाक समय कर आये हैं इसलिए उपे जानकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

१२५. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अप्रिकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शारीर जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके वादरोंमें उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण है। तथा इनके पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। इन सबके अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अनिकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर अन्तर एक समय है। अनु कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर अपने अपने प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ — यहाँ पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पितकायिक जीवोंकी अपेक्षा ध्रिप्तिकायिक और वायुकायिक जीवोंमें आयुक्रमंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता कही है। उसका कारण यह है कि पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पितकायिक आयुक्रमंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं इसलिए उनकी पृथिवीकायिक आदि पर्याय वदल जाती है, अतः इनमें एक पर्यायकी मुख्यतासे ही आयुक्रमंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध किया गया है। किन्तु अप्रिकायिक और वायुक्तायिक जीवोंकी यह बात नहीं है। वे नियमसे तिर्यक्षायुका ही बन्ध करते हैं। इसलिए इनमें

१२६. बोइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०पञ्जत्त० सत्तम्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेजजाणि वाससह०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ०े उक्क० जह० एग०, उक्क० चत्तारि वासाणि देस्र० सोलसरादिंदियाणि सादि० [दोमासाणि देस्र०]। अणु० जह० एग०, उक्क० पगदिअंतरं।

१२७. पंचिंदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० <mark>कायहिदी०।</mark> अणु० ओघं। आउ० [उक्क० अणु०] जह० एग०, उक्क० काय<mark>हिदी०। अणु० ओघं।</mark> वेद०-णामा-गोदा० उक्क अणु० ओघं।

१२८. पंचमण०-पंचवचि० घादि०४-आउ०^२ [जह० एग०] उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद० णामा०-गोदा० उक्क० अणु० णस्थि अंतरं। काय-जोगि० घादि०४ उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क०

आयुक्तमके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करनेमें ऐसी कोई वाधा नहीं आती, अतः कायस्थितिक प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्थ कराके इनमें आयुक्तमके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका उन्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। यही कारण है कि यहाँ यह कायस्थिति प्रमाण कहा है। शेप कथन मुगम है।

१२६. द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मीके उत्क्रष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम चार वर्ष, साधिक सोलह दिन-रात और कुछ कम दो महीना है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है।

विशेषाथ—द्वीन्द्रियोंकी उन्छष्ट भवस्थिति वारह वर्ष, त्रीन्द्रियोंकी उनचास दिन रात और चतुरिन्द्रियोंकी छह महीना है। इन जीवोंमें आयुकर्मका उन्छष्ट अनुभागवन्ध होने पर इनकी द्वीन्द्रियादि पर्याय छूट जाती है, इसलिए इनमें प्रथम त्रिभागके प्रारम्भमें और भवस्थितिके अन्तमें आयुक्रिका उन्छष्ट अनुभागवन्ध कराकर उन्छष्ट अनुभागवन्धका उन्छष्ट अनुभागवन्ध कराकर उन्छष्ट अनुभागवन्धका उन्छष्ट अनुभागवन्ध कराकर उन्छष्ट अनुभागवन्धका उन्छष्ट अनुभागवन्धका कराकर उन्छष्ट अनुभागवन्धका उन्छष्ट अनुभागवन्धका कराकर उन्हर्ष्ट अनुभागवन्धका उन्हर्ष्ट अनुभागवन्धका कराकर अनुष्ट अनुभागवन्धका उन्हर्ष्ट अनुभागवन्धका कराकर अनुष्ट अनुभागवन्धका उन्हर्ष्ट अनुभागवन्धका उन्हर्ष्ट अनुभागवन्धका कराकर अनुष्ट अनुभागवन्धका अनुष्ट अनुष्ट अनुभागवन्धका अनुष्ट अनुष्ट अनुभागवन्धका अनुष्ट अनुभागवन्धका अनुष्ट अनुभागवन्धका अनुष्ट अन

१२७. पञ्चेन्द्रिय द्विक और त्रसद्विक जीवोंमें चार घातिकर्मीं उन्ह्रष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्ह्रष्ट अन्तर कायिस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। आयुकर्मके उन्ह्रष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्ह्रष्ट अन्तर कायिस्थिति प्रमाण है। अनुन्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उन्ह्रप्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है।

विशेपार्थ—पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसिंद्रिककी कायस्थितिका पहले निर्देश कर आये हैं। उसके प्रारम्भमें और अन्तमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करानेसे आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागकाधका अन्तरकाल आ जाता है। शेष कथन सुगम है।

१२८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध-का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर हो समय है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। काययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मीके

१ मूलप्रतौ आउ० उक्क० जह० अंतो० इति पाटः । २ मूलप्रतौ वाससहस्साणि इति पाटः ।

णस्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आउ० [उक्क०] जह० एग०, उक्क० अंतो० । [अणु०] जह० एग०, उक्क० पगदिअंतरं । ओरालियका० मणजोगिभंगो । णवरि आउ० अणु० जह० एग०, उक्क० सत्तवाससहस्साणि सादि० ।

१२६. ओरालियमि० सत्तणणं क० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। आउ० अपजत्त-भंगो। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०। णविर आहारमि० आउ० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। वेउव्विय० अट्टणणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। एवं आहारका०। कम्मइ० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णित्थि श्रंतरं। एवं अणाहार०।

उद्धिष्ट और अनु कृष्ट अनुभागयन्थका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुंहर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागन्यका अन्तरकान नहीं है। अनुन्तृष्ट अनुभागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महेत है। आयुक्तमेक उत्कृष्ट अनुभागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महेत है। अनु कृष्ट अनुभागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्भृहर्त है। अनु कृष्ट अनुभागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्भृहर्तिक अनुक्रमें अग्निस्थ कालयोगी जीवोंक समान सङ्ग है। इतनी विशेषण है कि अनुक्रमें अनुक्ष्य अनुभागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ — पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोमें चार चािकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थक योग्य परिणाम एक समय और अन्तर्मुहुनी वाह होते हैं, इसलिए इनमें उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य अन्तर एक जन्य और उक्तर अन्तर्मुहुने कहा है। इनके अनुकृष्ट अनुभागवन्थका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। औदारिककाययोगी जीवोमें आयुक्रमके लिया यह अन्तरकाल इसी प्रकार प्राप्त होता है। मात्र औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है, इसलिए इनमें आयुक्रमके अनुकृष्ट अनुभागवन्थका उक्तर अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। काययोगी जीवोमें चार घातिकर्मीका उक्तप्ट अनुभागवन्थ एक समयक वाद इसलिए बन जाता है कि अन्य काथयोगोंमें ऐसे परिणाम एक समयक वाद हो सकते हैं, अतः इनमें चार घातिकर्मीक उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जचन्य अन्तर एक समय है। इनमें वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपशामश्रेणिकी अपेक्षा अन्तर्मुहुत कहा है। शेष कथन सुगम है।

१२६. श्रीदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अंतु अनुकृष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। आयुक्रमंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्रीर आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुक्रमंके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। वैकियिक काययोगी जीवोंमें आठ कर्माके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ — श्रौदारिक मिश्रकाययोगमें सात कर्मीके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट अनुभागवन्धके श्रान्तरकालका निर्पेध इमलिए किया है कि इसमें श्रौदारिकमिश्रकाययोगके श्रन्तिम समयमें चार

१३०. इत्थि० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० कायद्विदी०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम०। वद०-णामा-गोदा० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० पायवणां पितदो० सादि०। पुरिस० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० कायद्विदी०। अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम०। वेद०-णाया-गोदा० इत्थिवदमंगो। आउ० उक्क० णाणा०मंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। णवंसगे घादि०४ तिरिक्खोघं। वेद०-णामा-गोदा० इत्थिवदमंगो। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं दे०। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। अवगदवेदे सत्तण्णं क० उक्क० णित्थ अंतरं। अणु० जह० उक्क० अंतो०।

षातिकर्मांका संकित विश्वाहित और वेदनीय. नाय और गोत्रका सर्वविकुद्ध सम्यम्हिके उक्कष्ट अनुभागका वन्य केटा ै। इसी प्रकार कार्मणकाययोगमें भी उक्त कर्मीके उक्कष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका ध्यन्तरकाल न होनेका कारण है। शेष कथन लुगम है।

१३०. स्त्रीविद्या जीवोरी चार वािकर्रोक उक्षष्ट अनुभागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उन्हुए अनार कायम्थिति प्रमाण है। अनुन्कुए अनुसागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है। श्रीर अकुए अन्तर के लमय है। वेद्नीय, नाम और गोत्रकर्मी अकुए और अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध-का अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके उन्ह्रष्ट अनुसागन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर कायम्थित प्रमाण है। जन्त्यप्ट अनुसागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन परुष है। पुरुषवेदी जीवोंमें चार घा िकमेंकि उत्हृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्हुष्ट अन्तर कार्यास्थिति प्रमाण है। अनु कुए अनुभागवस्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। बेदनीय, नाम और गांत्रकमका भङ्ग स्त्रीयंदी जीवोंके समान है। त्रायुक्तमंक उन्कृष्ट अनुसाम्बन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। त्रानुत्कृष्ट अनुभागवन्धक। जघन्य अन्तर एक समय है। और उक्कष्ट अन्तर साधक तेतीन सागर है। नपुंसक-वेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका भु सामान्य ियञ्चोंके समान है। बेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका भङ्ग स्त्रीवदी जीवकि समान है। अायकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य अन्तर एक समय है त्रीर उक्कप्ट अनार एक पूर्वकोटिका कुछ कस विभाग प्रमाण है। अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उल्ह्रप्ट अन्तर साधिक तेतीम सागर है। अयगतबदी जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुन्द्रष्ट अनुभागबन्धका जवन्य ऋौर उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्भृहतं है।

विशेषार्थ—स्विवदमें वदनीय, नाम और पात्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य क्षपकश्रीणमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकाल यद्यपि उपशमश्रीणमें सम्भव है पर इनकी बन्धव्युच्छित्तिके पहले ही स्विवदका उदय नहीं रहता, इसलिए इसमें इन तीन कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका भी अन्तरकाल नहीं वनता। देवियोंकी उन्कृष्ट भवस्थिति पचवन पत्य है, इसलिए इसमें आयुक्रमके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है, पुनः पचवन पत्यका आयुवाली देवी होकर वहाँ छह महीना काल शेष रहने पर पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है उसके आयुक्रमके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका पत्यकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पत्य उपलब्ध होता है। न्षुंसकवेदी जीव

१३१. कोधादि०४ घादि०४-आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा-गो० उक्क०अणु० णत्थि अंतरं। णवरि लोमे मोहणी० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१३२. मदि०-सुद० घादि०४ तिरिक्खोघं। आउ० उक्क० घादिभंगो। अणु० ओघं। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। एवं असंजद०-मिच्छादि०। विमंगे घादि०४ णिरयोघं। वेद०-णामा-गोदाणं उक्क० अणु० णित्थ अंतरं। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देस्रणं।

आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य करके पुनः नपुंसकवेदी नहीं होते, इसलिए इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अनुनागवन्यका उत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अनुभागवन्य उपशमश्रेणि गिरनेवाले जीवके अपगतवेदिक अन्तिम समयमें होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य श्र्पकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें उक्त मान कर्मोंके उञ्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१३१. क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुक्सके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि लोभकपायवाले जीवोंमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो जीव उपरामश्रेणि पर आराहण करता है उसके क्रांध, मान और माया कपायका स्त्रभाव होकर लोभकपायके सद्भावमें मोहनीय कर्मकी वन्धव्युच्छित्ति होती है और ऐसा जीव सूक्त्मसाम्परायमें मरकर देव पर्यायमें यदि उत्पन्न होता है तो वहाँ भी लोभकपायका सद्भाव बना रहता है, इसलिए लोभकपायमें मोहनीयके अनुत्कष्ट अनुभागवन्धका स्त्रम्व वन जाता है। श्रव यदि यह जीव दसवें गुणस्थानमें एक समय तक रहकर मरता है तो एक समय अन्तरकाल उपलब्ध होता है और यदि स्त्रन्तर्भृहते रहकर मरता है तो स्त्रन्तरकाल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि लोभकपायमें मोहनीयके स्त्रनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य स्त्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट स्नन्तर अन्तर्भृहते कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मीक। भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग घातिकर्मीके समान है। श्रानुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रोर श्रानुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार श्रासंयत और मिश्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें चार वातिकर्माका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रोर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। श्रायुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्रुत्व है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह मास है।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान श्रीर श्रुताज्ञानमं संयमके श्रिभमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मका उत्कृष्ट श्रानुभागवन्ध होता है, इसलिए इनमें इन कर्मीके उत्कृष्ट श्रीर श्रुतुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। विभन्नज्ञानमें श्रायुकर्मका उत्कृष्ट श्रानु- १३३. आभि०-सुद्०-ओघि० सत्तण्णं क० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० जहणु० एग०, उक्क० अंतो०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० छावद्वि० देस्च० । अणु० ओघं । एवं ओघिदं०-सम्मादि० । मणपज्जव० सत्तण्णं क० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० जहण्णु० अंतो० । आउ० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० पुच्चकोडितिभागं देस्च० । एवं संजद-सामाइय-च्छेदो० । णविर सामाइय-च्छेदो० सत्तण्णं क० अणु० णित्थ अंतरं ।

१३४. परिहारः घादि०४ उक्कः अणुक्कः णित्थः अंतरं । वेद०-णामा गोदा० उक्कः जहः एगः, उक्कः पुन्यकोडि० देस्रः । अणुः जहः एगः, उक्कः वेसमः ।

भागबन्ध तिर्यञ्ज और मनुष्यके होता है, इसलिए इसमें आयुक्रमके उन्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृते कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३३. ऋभिनिवेधिकज्ञानी, श्रृतज्ञानी और अविधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्थका अन्तरकाल नहीं हैं। अनुःकृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अनुःकृष्ट अनुभागवन्थका अन्तर श्रोधक समान है। इसी प्रकार अविधिद्शीनी और सम्यन्दृष्टि जीवोंक जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्तर और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कुन समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पृवेकोदिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार नंयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके सात कर्मोंक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ-त्राभिनिवोधिक त्रादि तीन ज्ञानोंमें चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट त्रानुभागबन्ध मिथ्यात्वके श्रभिमुख हुए जीवके श्रन्तिम समयमें होता है श्रीर वेदनीय, नाम व गांत्रकर्मका उत्कृष्ट ऋनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है। इसलिए इनमें उक्त। सात कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्यके अन्तरकालका निर्पेध किया है। इनमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ऋन्तरकाल उप-शमश्रेणिकी अपेक्षा वन जाता है जो जबन्य एक समय त्यार उत्कृष्ट अन्तर्महर्त उपलब्ध होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। यदापि आभिनिवोधिक आदि तीनों ज्ञानोंका उक्षप्रकाल चार पूर्वकाटि श्रिधिक छ्यासठ सागर है, पर यहाँ श्रायुकमके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर ही वनता है, क्योंकि यहाँ पर वेदकसम्यक्तकी मुख्यतासे ही यह अन्तरकाल उपलब्ध होता है। मनःपर्ययज्ञानमें असंयमके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें चार घाति-कर्मोंका उल्ह्रष्ट अनुभागवन्ध होता है और वेदनीय नाम व गांत्रकर्मका उन्ह्रप्ट अनुभागवन्ध चपक-श्रेणिमें होता है, इसलिए इसमें इन सात कर्मींके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निर्पंध किया है। तथा इसमें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहर्त कहनेका कारण यह है कि यह जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर अन्तर्मुहुर्न काल तक इनका अवन्धक रहता है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम नौवें गुणस्थान तक ही होते हैं, इसलिए इनमें ऋायुक सिवा शेष सात कर्मीके अनुष्टुष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता, इसिलए उसका निपेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१३४. परिहारविशुद्धसंयत जीवोंमें चार यानिकर्मीके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागवन्थका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, नाम और गात्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागवन्थका जधन्य श्रन्तर एक अथवा 'उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० एग०। आउ० मणपञ्जवभंगो । सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं उक्क० अणुक्क० णित्थि अंतरं । संजदारंजद० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं । आउ० पित्हारभंगो ।

१३५. चक्खुदं० तसपज्जत्तमंगी । किण्याए घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अणु० जह० एग०, उ० वेसम० । वेद०-णामा-गोदा० [उक्क० अणु०] जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस० । अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम० । आउ० [उक्क० अणुभा०] जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देस० । एवं छण्णं लेख्साणं आउ० सरिनमंतरं । णील-काऊणं सत्तणां क० उक्क० जह० एग०, उ० नतारस सत्त साग० देस० । अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम० । तेउ०-पम्मा० घादि०४ उक्क० जह० णग०, उक्क० वे अहारस० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० वेसम० । वेदणी० णामा-गो० उक्क० णित्य अंतरं । अणु०-एग० । सुक्काए चादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अहारसमा० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेतां० । वेद०-णामा गोदा० उक्क० अणु० आघं ।

समय है और उन्नर कान सब है। सबया । अध्या इनक उन्नर अनुसाधित्यका जन्म काल नहीं है और अनुस्तर अनुसाधित्यका जन्म काल नहीं है और अनुस्तर अनुसाधि अपाय है। सूक्ष्मण स्वाप्त की जिल्ले के मार्थ है। सामुक्ति का स्वाप्त की स्वाप्त की जिल्ले के स्वाप्त है। सूक्ष्मण स्वाप्त की जिल्ले के को कि उन्हर्य और अनुस्तर अनुसाधित की जिल्ले का को कि उन्हर्य और अनुस्तर अनुसाधित की जिल्ले की की जिल्ले की है। स्वाप्त की जिल्ले की की स्वाप्त की जिल्ले की की अनुसाधित की जिल्ले की जिल्ले की की जिल्ले की जिले की जिल्ले की जिल्ले की जिल्ले की जिल्ले की जिल्ले की जिल्ले की

१३५. चतुःदरीनी जीवोंसे त्रसवयातकोट समात सङ्ग है। हुण्णलेश्यावाले जीवोंने चण् घातिकमेकि उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य स्त्रन्तर एक समय है। स्त्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर साधिक नेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवस्वका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकमेके उक्कष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कष्ट श्चन्तर कुछ कम तेर्नास सागर है। श्रनुकुट अनुसागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मक उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवय अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुतं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छुछ कम छह महिना है। इसी प्रकार छह लेश्यावाले जीवोंके आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनु-ख्छ अनुभागवन्यका समान अन्तर है। नील और कमोत्रपाले जीवोंमें सात कमेंकि उत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्ह्रष्ट श्रन्तर क्रमसे दुछ कम सत्तरह सागर व कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पीत श्रोर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमीके उत्क्रप्ट श्रनुभागवन्थका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उक्तप्र अन्तर क्रमसे साधिक दो सागर व साधिक अठारह सागर है। अनुकृष्ट त्रानुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। शुक्रलेश्यावाले जीवोंसे चार घानिकर्मीक उक्ष्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्चन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उक्कष्ट और अनुत्वृष्ट अनुभागवन्यका अन्तर काल आंघके समान है।

१ मूलप्रतौ अथवा वाउ० इति पाठः।

१३६. अब्भवसि० सत्तरणं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। अणुर जहरू एग०, उक्क० बेसम०। आउ० मदि०भंगो।

१३७. खइग० घादि०४ उक्त० जह० एग०, उक्त० तेत्तीसं सा० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्त० अंतो०। वेद०-णाभा-गोदा० ओघभंगो। आउ० [उक्त० अणु०] जह० एग०, उक्त० पुन्यदोडितिभागं देख्०। अणु० ओघं।

विशेषांथ—इ.फाटेश्यायांने जीयों । चार घातिकमीका ३ ८७ अनुसासदस्य तीत गतिमें सम्भव है, इसलिए इनके स्तृष्ट अनुभागतन्थका कर्ष्ट ध्यन्तर गाधिक ते शिव सांतर कहा है। हो नरक हानेके सन्मुख इ.फालेंद्रयावाला जीव है उसी अराजें अपालेद्या है; उसी है और नम्बेष निकलनें वाद भी बस्त्रमुंहरी काल तक वह वह । वह ी है, इस्तिया साधिक नेतील सागर काल उपलब्ध हो जाना है। परन वेदरीय, नाग और गोधकरीया उत्प्र शानकान्यन्य अगोतकस्यमाप्ति, सर्वेदिकाद नारकीने होता है। इस्टिन इनके उन्हर बार्यक्षिका उन्हर अन्तर यहा क्या नेतीन सागर कहा। है। फ्रण्णिक्सार्ग ज्ञास्यसंका उत्प्रष्ट चनुसामक्य िष्टंब्र और एक्ट्येट होता है, इसलिए इसमें आयुक्तमंत्रे उत्त्रप्र अस्त्रामवत्त्वमा उत्तु । धन र अन् संतुत्ते वमा है, क्योंकि इसके एक तेश्या अस्त-र्महर्तमे अधिक काल ेक नहीं पार्ट जाती। चील और कापीत केरवामें मान कर्तीका उन्हुए अनु-भगवन्य नार्रक्षेत्रोके ही होता है. उसलिए इन्हें सहीं कर्षोंके उन्क्षप्ट अनुसागदस्थवा उन्क्रप्ट अन्तर हासरी तह कम सप्रत सागर और यह इस सात सागर कहा है। पीट और पदावेश्यामें चार घाति-क्रमीता एक प्रकार कार्यातक वेयगिनमें होता है। और वेदामें पीतलेश्याफा मरुवताने दुस्त कर्प तक व पहालेह्याका बारहवें करूप नक निर्देश किया जाना है। इसकी उन्हर आय क्रमने साधिक हो सागर और साधिए खठाका ए।गर है, इसलिए इसले चार धानिवर्नीके उन्हरे अनुमागवस्थका उल्लंष्ट अन्तर एक काल असाण कहा है। वेदर्नाय, नाम और गोत्रक्रमका उत्हृष्ट अनुसागवन्य इन लेल्याक्रोमें मर्वावक्का अवगत्तर्गरके होता है, तथा पुनः उत्कृष्ट अनुसागवन्तकी योग्यका आने तक लेह्या बदल जानी है। अनः इनके उन्हर अकुमागबन्धक अन्तरकालका निषेध किया है। इनमें श्रमुक्ट श्रमुसागदन्यका जपन्य। द्वीर उन्छ८ अन्तर एक समय कहनेका कारण यह है। कि इनमें इन कर्मीक उत्कृष्ट अनुधागवन्यका जवन्य और उन्कृष्ट काल एक समय है। हाललेश्यामें चार घाति-कर्मोका उन्हार अनुभागवन्य सहस्रार करूप तक होता है, इसलिए इसमें इन कर्गीके उन्हार अनु-भागवन्त्रका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक अठारह सागर कहा है । शंप कथन सुगन है ।

१३६. ग्रभव्य जीवोंगें सान कर्रोंक उन्हुष्ट श्रतुभागवन्यका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्हुष्ट श्रन्तर त्यनन्त काल हैं। श्रनुःकुष्ट श्रतुभागवन्यका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उन्हुष्ट श्रन्तर दो समय है। श्रायु कर्मका भङ्ग सन्यक्षानी जीवोंक समान है।

विशेषार्थ—अभन्य जीवोति एक निश्यादृष्टि गुणस्थान होता है और संजी प्रवेतिहर पर्याप्रका उत्हृष्ट अन्तरकाल कालन काल है। इसीवे यहां आशु कमके आंशिरिक साथ कमेंकि उन्हृष्ट अनुभागवास्था उन्हृष्ट अन्तर आगन्य काल पाहा है। यह स्पष्ट है कि इन साथ कमोबा उन्हृष्ट अनुभागवास्थ संजी, पञ्चेत्रिय पर्याप्त जीवके होता है। येप कथन सुगम है।

१३७. दायिक सम्यग्दिए जीवोंने चार घाति कर्मोके उत्तृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उन्तृष्ट अन्तर साधिक तेतीस आगर है। अनुन्दुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्हृष्ट अन्तर अन्तर किन्मुहृत है। वेदनीय, नाम और भोदकमेका सङ्ग आघके के समान है। आयु कर्मके उत्तृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर औषके समान है।

१३८. वेदग० सत्तण्णं क० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० एय० । णवरि घादि०४ अणु० णित्थ अंतरं । आउग० ओघिणाणा०भंगो । उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१३६. सासणे घादि०४ उक्क० अणुक्क० णित्थ अंतरं । वेद०-आउ०-णामा-गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । सम्मामि० सत्तरणं क० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं ।

१४०. सण्णि० पंचिदियपञ्जतभंगो । असण्णि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०,

विशेषार्थ—सायिक सम्यवस्वका उत्हृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इसलिए इसमें चार घातिकर्मीके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका उन्हृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। उपशमश्रीणमें आयिकसम्यवस्य भी होता है और इसमें चार घातिकर्मीके अनुत्हृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल अन्तर्मुहृते वन जाता है, इसलिए आयिकसम्यवस्यमें इन कर्मीक अनुत्हृष्ट अनुभागवन्धका उन्हृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृते कहा है। शेप कथन सुगम है।

१३८ वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मीके उक्तृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुक्तृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उक्तृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मीके अनुक्तृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुक्तमंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मिक उक्तृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुक्तृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्तृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें चार घातिकमींका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, इमलिए इनके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीवके होनेसे इसमें इन तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका निषेध किया है। उपशमसम्यक्त्वमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख जीवके अन्तिम समयमें होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उपशमश्रीणमें सूद्रमसाम्परायके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशम सम्यक्त्वमें उपशमश्रीणकी अपेदा कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्भुहूर्त तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त कहा है।

१३६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुःकृष्ट श्रनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, श्रायु, नाम श्रोर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट और श्रनुःकृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्ष्यमें मिण्यात्यके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें चार घानिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। किन्तु वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका सर्वविशुद्ध जीवके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इसमें इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष वथन सुगम है।

१४०. संज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भन्न हैं। असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मीके

उक्क० अर्णतकालं असंखेजा० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । आउ० उक्क० जह० एग०, उ० पुन्वकोडितिभागं देस्र० । अणु० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडी सादि० ।

१४१. आहार० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुल्च० असंखेअ०। अणु० ओघं। वेद०-णामा-गोदा० ओघं। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क अंगुल० असंखे०। अणु० ओघं।

एवम्रकस्समंतरं समतं।

१४२. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ जह० णित्थ अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० अंसेखेजा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आउ० जह० वेदणीय-मंगो। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। गोद० जह० जह० अंतो०, उक्क० अद्योग्गल०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो। एवं अचक्खुदं०-भवसि०।

उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समयहै और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीवको पहिली पूर्वकोटिके त्रिभागमें आयुक्सका अनुष्कृष्ट अनुभागवन्य कराके पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाले असंज्ञियोंमें उत्पन्न कराकर अन्तमं आयुवन्य करावे और इस प्रकार आयुक्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका अकृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि ले आवे। शेष कथन मुगम है।

१४१. आहारक जीवोंमं चार घातिकमें के उत्कृष्ट अनुमागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुसार अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका भङ्ग ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका भङ्ग ओघके समान है। आयुक्तमें अञ्चूष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यानवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल आघके समान है।

विशेषार्थ—श्राहारकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंस्थातवें भाग प्रमाण है। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ चार घातिकर्म श्रीर श्रायुकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट श्रान्तर काल कहा है। शेष कथन सुगम हैं।

इस प्रकार उस्कृष्ट श्रन्तर समाप्त हुन्या।

१४२. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—आंघ ओर आदेश। आंघसे चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृत है। वेदनीय और नामकमके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजधन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृत है। आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका मंग वेदनीय कर्मके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अवन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अवन्तर अध्युद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अचन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अनुभागबन्धका जघन्य

१४३. णिरएसु घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देस्०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देस्०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देस्णं। गोद० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस०। अज० जह० एग०, उ० एग०। एवं सत्तमाए पुढवीए। उवरिमासु छसु तं चेव। णविर गोद० वेद०मंगो। अप्पप्पणो द्विदीओ देस्रणाओ काद०वाओ।

त्र्यन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त हैं। इसी प्रकार अचनुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घात कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध चपकश्रीणमें होता है अतः श्रांघसे इनके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। उपशमश्रीणमें चार घाति कर्मोंका कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक बन्ध नहीं होता, इसके बाद पुनः उनका यथा-योग्य अजघन्य अनुभागवन्ध होने लगता है, इसिलए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उद्धृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। वदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके भी हो सकता है और इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। यही कारण है कि भोघसे इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यांत लोक प्रमाण कहा है। इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका अघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय तथा अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर्म इति है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध सातवीं पृथिवीके नारकीके सम्यक्तके अभिमुख होनेपर होता है। यह अवस्था पुनः कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके वाद या अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके बाद उपलब्ध होती है, इसलिए ब्रांघसे इसके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। शेप कथन मुगम है।

१४३. नारिकयों में चार घानिक मंकि जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नामक मेंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुक मंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर कुछ अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीमें जानना चाहिए। अपरकी छह पृथिवियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्र-कर्मका भङ्ग वेदनीयक समान है। तथा अपर्ना अपर्ना कुछ कम स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—नरकमें चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध ऋसंयत सम्यग्दृष्टिके होता है श्रोर इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीम सागर है, इसिलये यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। वेदनीय श्रोर नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि दोनोंके परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा गोत्रका सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। सातवें नरकमें प्रारम्भमें श्रोर अन्तमें इस व्यवस्थाको प्राप्त कर कर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है, इसिलए इन कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका भी कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है। गोत्रकर्मका एक बार जघन्य अनुभागवन्ध होनेपर पुनः वैसी योग्यता अन्तर्मुहूर्त काल के पहले नहीं आती, इसिलए इसके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य १४४. तिरिक्खसु घादि०४ जह० जह० एग०, उ० अद्धपोग्गलदे०। अज० जह० एग०, उक्क० वेसमयं। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। आउ० जह ओघं। अज० अणुक्कस्समंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं० असंखे०। अज० जह० एग०, उक्क० वेसमयं। पंचिंदि०-तिरिक्ख०३ घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं। अज० ज० एग०, उक्क० वेसमयं। वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० पुन्वकोडिपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। आउ० ज० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। आउ० ज० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं। अज० अणु०भंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडिपुधत्तं। अज० उक्क० चत्तारि सम०।

अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। गोत्रकमंके जयन्य अनुभागबन्धका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए इसके अजयन्य अनुभागबन्धका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। सातवीं पृथिवीमें यह ओघ प्रकृषणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उसमें सामान्य नारिकयों के समान अन्तर काल कहा है। हाँ प्रारम्भकी छह पृथिवियों में गोत्रकर्मकी वेदनीय और नामकर्मसे स्वामित्वकी अपेत्ता कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इनमें और सब अन्तर तो अपनी अपनी स्थितिके अनुसार सामान्य नारिकयों के समान है पर गोत्रकर्मकी अपेत्ता यह अन्तर वेदनीयके समान कहा है। शेष अन्तर कालको विचार कर ले आना चाहिये।

१४४. तिर्यक्वोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुसागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम ऋर्घ पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। ऋजघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट ऋन्तर दो समय है। वेदनीय ऋौर नाम कर्मके जघन्य ऋनुभाग-बन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। त्रायुकर्मके जवन्य त्रानुभागबन्धका त्रान्तरकाल त्रोघके समान है। अजघन्य त्रानुभागबन्धका त्रान्तरकाल त्रानुत्कृष्टके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य त्रानुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजधन्य अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पचेन्द्रिय तिर्येख्व त्रिकमें चार घातिकमोंके जघन्य अनुभागवश्यका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उन्कृष्ट त्रान्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। वेदनीय श्रीर नाम कर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक तीन पर्य है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका ऋन्तरकाल अनुत्कृष्टकं समान है। गोत्रकर्मकं जघन्य ऋनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है त्रौर उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है।

विशेषार्थ—तिर्यक्रोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध संयतासंयतके होता है और संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। तिर्यक्रोंमें गांत्र कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवके होता है। तथा इनका उत्कृष्ट

१ मूलप्रती अज॰ जह॰ जह॰ एग॰ इति पाठः।

१४५. पंचिंदि० तिरि० अपज्ञ० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० झंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सन्वअपज्ञत्त-सुहुमपज्जताणं च।

१४६. मणुस०३ घादि०४ जह० णात्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। सेसाणं पंचिदियतिरिक्खभंगो। णवरि वेद०-णामा-गोदा० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१४७. देवेसु घादि०४ जहरू जरु एगर्, उक्कर तेत्तीसं सागर देस्र । अजरु

अन्तर अनन्तकाल है, इस्रिलए यहाँ गोत्रकर्मक जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। पंचेन्द्रिय तिर्यक्कित्रकर्में संयतासंयत गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण हे, इस्रिलए इनमें चार घातिकर्मों जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण कहा है। यद्यपि इनमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्य मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले पंचेन्द्रिय जीवक होता है पर ऐसी योग्यता भागभूमिमें सम्भव नहीं, इस्रिलए इनमें गोत्रकर्मक जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर भी पूर्वक्रोटि पृथक्त्व प्रमाण कहा है। आयुकर्मका जघन्य अनुभागवन्य भी यहीं कर्मभूमिक पर्छोन्द्रयतियञ्जिष्ठकके होता है, इस्रिलए इसके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर भी उक्त प्रमाण कहा है। मात्र वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागक वन्य भागभूमि और कर्मभूमि दोनोंक सम्भव है, इस्रिलए इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य कहा है। इन सब स्थलोंमें उत्कृष्ट अन्तर लाते समय प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागवन्य कराकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए। शेप कथन सुगम है, इस्रिलए उसका अलग से निर्देश नहीं किया।

१४५. पक्चेन्द्रिय तिर्यक्व अपर्याप्तकोंमें चार चातिकमीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दा समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुक्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुक्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, और सूद्दम पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिय।

१४६ मनुष्यत्रिक में चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्भुहूर्त है। शेप कर्मों के अनुभागवन्धके अन्तरकाल का भंग पचेन्द्रिय तिर्यक्कों के समान है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्र-कर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहुर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें चार घातिकमें कि अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल उपशम-श्रेणिमें उपलब्ध होता है। तथा इसी प्रकार वदनीय, नाम और गोत्रकमें के अजघन्य अनुभागवन्ध-का उत्कृष्ट अन्तरकाल भी उपशमश्रेणिमें उपलब्ध होता है। यतः उपशमश्रेणिमें इन सबका बन्ध मनुष्यात्रकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक नहीं होता, अतः यहाँ चार घातिकमों अजघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल तथा वदनीय, नाम गोत्रके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१४७ देवों में चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और

जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देस्च०। अज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। आउ० णिरयभंगो। गोद० ज० ज० एग०, उक्क० एकत्तीसं० देस्च०। अञ० जह एग०, उक्क० चत्तारि सम०। एवं सब्बदेवाणं। णवरि अणुदिस याव सब्बद्धा ति गोद० घादिमंगो।

१४८, एइंदिएसु घादि०४ जह० ज० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० वे सम०। वेद०-आउ०-णामा० तिरिक्खोघं। णवरि आउ० अज० उक्कस्स० पगादिश्रंतरं। गोद० ज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० वे सम०। वादरे० अंगुल० असंखे०। पजत्ते संखेजाणि वाससहस्साणि। सुदुम० असंखेजा लोगा।

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभाग वन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। आयु कर्मका भंग नारिक्यों के समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। इसी प्रकार सब देवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें गोत्र कर्मका भंग चार घातिकर्मीक समान है।

विशेपार्थ—सामान्यसे देवोंमें चार घातिकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टिके होता है। तथा वेदनीय श्रोर नामकर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टिके भी होता है, श्रातः यहां इन छह कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मात्र गोत्र कर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध मिध्यादृष्टिके ही होता है श्रोर मिध्यात्व गुणस्थान श्रन्तिम ग्रैवेयक तक ही उपलब्ध होता है, श्रातः यहां गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। भवनित्रक श्रादि देवोंमें जहाँ जो स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर श्रपना श्रपना यह श्रन्तरकाल ले श्राना चाहिए। नौ श्रनुदिश श्रोर पाँच अनुत्तर विमानोंमें गोत्रकर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टिके ही होता है, इसलिए इनमें गोत्र कर्मका भङ्ग चार घातिकर्मोंके समान कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

१४८ एकेन्द्रियों में चार घातिकर्मी के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वदनीय, आयु और नामकर्मका भंग सामान्य तियँचों के समान है। इतनी विशेषता है कि आयु कर्मके अजघन्य अनुभाग वन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। बादर एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सूक्त एकेन्द्रियोंमें असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ-एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागवन्ध बादर एकेन्द्रियोंके होता है और बादर एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए इनमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। सामान्य तिर्थव्योंमें वेदनीय, आयु

१४९. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिदि० तेसिं च पञ्जत्त० सत्तण्णं क० जह० ज० एग०, उक्क० संखेजाणि वाससहस्साणि । अज० अपञ्जत्तमंगो । आउ० जह० णाणावरणमंगो०। अज० पगादिअंतरं ।

१५०. पंचिंदि०-पंचिंदियपञ्जत्त० घादि०४ जह० अज० ओघं। वेद०-आउ०-णामा० ज० जह० एग०, उक्त० कायद्विदी०। अज० ओघं। गोद० जह० अंतो०, उक्त० कायद्विदी०। अज० ओघं। एवं तस-तसपञ्जत्त-चक्खुदं०।

श्रीर नामकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक प्रमाण उपलब्ध होता है। यय भी यहाँ इसी प्रकार वन जाता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियों पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष है। यदि कोई एकेन्द्रिय पूर्व भवके प्रथम त्रिभागमें श्रायुकर्मका श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध करके बाईस हजार वर्षकी श्रायुवाला पृथिवीकायिक होता है श्रोर वहाँ भवके श्रन्तमें श्रन्तमुँहूर्त काल शेष रहने पर श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध करता है तो आयुक्रमंके अजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष उपलब्ध होता है। एकेन्द्रियों में प्रकृतिवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर इतना ही है। यही कारण है कि यहाँ श्रायुकर्मके श्रजघन्य अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर प्रकृतिबन्धके श्रन्तरके समान कहा है। एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध बादर श्रप्तकायिक श्रोर वायुकायिक जीवोंके होता है। इनका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तत काल है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तकाल कहा है। यह सामान्य एकेन्द्रियों की अपेदा श्रन्तरकाल कहा है। बादर एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय श्रीर सूद्म एकेन्द्रियकी कायस्थिति कमसे श्रङ्गलके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण, संख्यात हजार वर्ष श्रीर श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। इसलिये इसके अनुसार श्राठों कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तरकाल ले श्राना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१४६ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा उनके पर्याप्तकोंमें सात कर्मों के जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। श्रजघन्य अनुभागबन्धका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। आयुकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका भंग ज्ञाना- वरणके समान है। अजघन्य अनुभाग बन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ--इन जीवोंकी कायस्थिति संख्यात हजारवर्ष है। इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात हजारवर्ष कहा है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार वन जाता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान कहा है। यहाँ प्रकृतिवन्धमें आयुकर्म का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक बारहवर्ष, साधिक उनचास दिन-रात और साधिक छह महीना प्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका यह अन्तर इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ इसके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल प्रकृतिवन्धके अन्तरकालके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५० पंचेन्द्रिय श्रोर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मों के जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघ के समान है। वेदनीय, श्रायु श्रोर नामकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थिति प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका अन्तरकाल श्रोघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्म्वहर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थिति प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। इसी प्रकार त्रस, त्रस पर्याप्त श्रोर चचुदर्शनी जीवोंके जानना चाहिये।

१५१. पुढ०-आउ० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० असंखेआ लोगा।
अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। बादरे कम्मद्विदी०। पज्जते संखेआणि वाससहस्साणि। एवं वेद०-णामा-गोदाणं। णविर अज० अपज्जतभंगो। एवं आउ० जह०।
अज० पगिदअंतरं कादव्वं। एवं तेउ०-बाऊणं पि। णविर गोद० णाणा०भंगो। वणप्फिदिपत्तेय-णियोदाणं च पुढिविभंगो। णविर अप्पष्पणो द्विदीओ कादव्वाओ।

१५२. पंचमण०-पंचवचि० घादि०४ ज० अज० णितथ अंतरं। वेद०-आउ०-

विशेषार्थ—श्रोघसे चार यानिकर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तरकाल पञ्चेन्द्रियद्विककी मुख्यतासे ही उपलब्ध होता है, इसिलए यहाँ यह श्रन्तरकाल श्रोघके समान कहा है। किन्तु वेदनीय, आयु, नाम और गात्रकर्मके विषयमें सर्वथा यह बात नहीं है, इसिलए इनका विचार स्वतन्त्ररूपसे किया है। उसमें भी यहाँ जिनकी जो कायस्थित है तत्यमाण इन कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल बन जाता है, इसिलए यह उक्त प्रमाण कहा है। त्रस, त्रसपर्याप्त श्रीर चचुदर्शनी जीवोंमें भी चार घातिकर्भोंका श्रांचक समान श्रीर शेषका श्रपनी श्रपनी कायस्थितिके अनुसार यह अन्तरकाल बन जाता है, इसिलये वह इन जीवोंके समान कहा है। श्रेप कथन सुगम है।

१५१. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें कर्मस्थिति प्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल है। इसके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल है। इसके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल है। इसके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल प्रकृतिवन्धके अन्तर कालके समान करना चाहिये। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गांत्रकर्मका भंग ज्ञानावरणके समान है। वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगाद जीवोंमें पृथिवी कायिक जीवोंके समान मंग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति करनी चाहिये।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। इसीसे इन जीवोंमें चार घातिकमींके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें वादर पर्याप्त कराके इन कमींका जघन्य अनुभागवन्ध कराकर यह अन्तरकाल ले आवं। यहाँ शेष चार कमींके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल भी इसी प्रकार ले आवं। पर यह केवल वादर पर्याप्तके ही प्राप्त होता है यह नियम नहीं है। अप्रिकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उक्त प्रमाण कायस्थिति होनेसे इनमें भी यह अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनों कायवाले जीवोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व झानावरणके समान होनेसे इसका भन्न झानावरणके समान कहा है। यहाँ अन्य जितने कायवाले जीव गिनाए हैं इनमें भी उनकी कायस्थितिको जानकर उक्त अन्तर काल ले आना चाहिए। काई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है। शेष कथन सुगम है।

१५२. पाँच मनोयोगी श्रीर पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रज-घन्य श्रानुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। वदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य श्रानुभागबन्धका णामा० ज० जह० उक्क० श्रंतो० । अज० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । गोद० जह० णित्थ अंतरं । अज० [जहण्णु०] एग० ।

१५३. कायजोगि० घादि०४ जह० अज० ओघं० । वेद०-णामा० ओघं० । आउ० एइंदियमंगो । गोद० जह० णत्थि अंतरं । अज० ओघं ।

१५४. ओरालि॰ घादि०४ जह॰ [अज॰] णित्थ अंतरं। वेद०-णामा॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ बाबीसं वाससहस्साणि देस्र॰। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ चचारि सम॰। आउ॰ जह॰ अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ सत्तवाससह॰ सादि०। गोद॰ जह॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ तिण्णिवाससह॰ देस्र०। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ बेसम॰। ओरालिय-

जवन्य श्रीर उन्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजवन्य अनुभाग बन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है। और उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। गोत्रकर्मके जवन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों में चार घातिकर्मों का जघन्य अनुभाग-वन्ध स्वकश्रीणमें होता है। तथा उपशमश्रीणमें योगपरिवर्तन हो जाता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टि या मिण्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है। तथा आयुकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध अन्यतर अपयाप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है। उक्त योगोंमें यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तके बाद हो सकती है, इसलिए इनमें इन कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तक बहा है। गांत्रकर्मका जघन्य अनुभाग-वन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्तके अभिमुख हुए जीवके होता है पर इन योगोंमें एक बार गोध-कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध होने पर उसी योगके रहते हुए दूसरी बार वह अवस्था प्राप्त नहीं होती, इसलिए इन योगोंमें गोत्रकर्मक जघन्य अनुभागवन्धका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१५३. काययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। वेदनीय और नाम कर्मका भंग आंघके समान है। आयुकर्मका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागधन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागधन्धका अन्तरकाल औष के समान है।

विशेषार्थ—काययोगके रहते हुए गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि पहले उसका विचार कर आये हैं।

१५४. श्रौदारिल काययोगी जीवों में चार घाति कर्मों के जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। वेदनीय श्रौर नामकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम बाइस हजार वर्ष है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। आयुकर्म के जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभाग बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। श्रोनुभाग बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। श्रजघन्य श्रनुभाग बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ अन्तर दो समय है। श्रौदारिक

मि० पंचण्णं क० जह० अज० णात्थि श्रंतरं । वेद०-आउ०-णामा० अपजन्मंगो । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० । णवरि वेउव्वियमि० आउ० णत्थि अंतरं ।

१५५. वेउन्वियका० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-आउ० णामा० जह० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। गोद० जह० णित्थ अंतरं। अज० एग०। एवं आहारका०। णवरि गोद० णाणा०भंगो। कम्मइ० सत्तणं क० जह० अज० णित्थ अंतरं। णवरि वेद० णामा० जह० अज० [एग०]। एवं अणाहारका०।

मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभाग बन्ध का श्रन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, श्रायु श्रीर नामकर्म का भंग श्रपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवों में जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें श्रायु कर्मका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेपार्थ - श्रौदारिक काययोगमें चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और उपरामश्रेणिमें उपशान्तमाहके कालसे श्रीदारिककाययागका काल श्रन्प है. इसलिए इसमें चार घातिकर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निपंध किया है। वेदनीय श्रीर नामकर्मका जघन्य श्रनुभागबन्ध श्रन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवालेके होता है। यतः श्रीदारिककाययोगमं यह त्र्यवस्था कमसे कम एक समयका अन्तर देकर श्रीर उत्कृष्टसे कुछ कम बाईस हजार वर्षके अन्तरसे प्राप्त हो सकती है, इसलिए इसमें इन दोनों कर्मीके जयन्य श्रदुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। अजधन्य श्रनुभागबन्धक। जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय कहा है। इससे इनके श्रजघन्य अनुभागवन्धका उक्त प्रमाण श्रन्तरकाल उपलब्ध होता है। श्रायुकर्मका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। तथा श्रीदारिककाययोगमें प्रथम त्रिभागसे दूसरी बार श्रायवन्धके कालमें उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक सात हजार वर्ष है, इसलिए इसमें श्रायकर्मके जघन्य श्रीर श्रज्यन्य श्रनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंके होता है। उसमें भी वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट स्थित तीन हजार वर्ष है। इसलिए इसमें गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। अजघन्य श्रुनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रुन्तर दो समय स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

१५५. वैकियिककाययोगी जीवोंमें चार घाति कमींके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मूहूर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मक जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिय। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग ज्ञानावरणके समान है। कार्मण्काययोगी जीवोंके जानना चाहिय। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१५६. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ जह० अज० णित्थ अंतरं । वेद०-णामा०-गोद० जह० ज० एग०, उक्क० पिलदो०सदपुघत्तं सागरोवमसदपुघत्तं । अज० जह० एग०, उक्क० चतारि सम० । आउ० जह० जह० एग०, उक्क० कायिहदी० । अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पिलदो० सादि०, तेत्तीसं० सादि०। णवंस० घादि०४ ज० अज० णित्थ अंतरं । वेद०-आउ०-णामा० जह० ओघं । अज० पुरिस०मंगो । गोद० जह० ओघं०। अज० एग०। अवगदवे० सत्तण्णं क० जह० णित्थ अंतरं । अज० जह० उक्क० अंतो०।

विशेषार्थ — वैक्रियिककाययोगमें चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागके बन्धयोग्य परिणाम कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मृहूर्त कालके अन्तरसे होते हैं, इसलिए इसमें चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त कहा है। इसके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है यह स्पष्ट ही है। वेदनीय, आयु और नामकर्मका वन्ध मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मृहूर्तके अन्तरसे हो सकते हैं अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त कहा है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। वैक्रियिककाययोगके कालमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धके योग्य परिणाम दो बार नहीं होते इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सगम है।

१५६. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमं चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे सौ पत्य पृथक्त्व और सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है।
अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयु
कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण
है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण
है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पत्य
और साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल
आघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल पुरुषवेदी जीवोंके समान है। गोत्रकर्मके
जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तर एक समय है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं
है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मक्त है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंके क्षपकश्रेणिमें अपने-स्रपने वेदकी उद्यव्युचिद्धत्तिके अन्तिम समयमें चार घातिकर्मांका जघन्य अनुभागवन्ध होता है तथा इसके पहले इनके
अजघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इन जीवोंके चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य
अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इन जीवोंके स्वामित्वका देखते हुए वेदनीय, नाम
और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव होनेसे यहाँ इन तीन कर्मोंके
जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर
क्रमसे सौ पत्य पृथक्त्व और सौ सागरपृथक्त्व कहनेका कारण यह है कि इन जीवोंके अपनी
कायस्थितिके प्रारम्भ और अन्तमें जघन्य अनुभागवन्ध होकर मध्यमें सतत अजघन्य अनुभागवन्ध
होते रहना सम्भव है। यहाँ इन तीन कर्मोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय
और उत्कृष्ट अन्तर चार समय इनके जघन्य अनुभागवन्धके जघन्य और उत्कृष्टकालको ध्यानमें

१५७. कोधादि०४ घादि•४ जह० अज० णितथ अंतरं। सेसाणि मण-जोगिभंगो। णवरि लोभे मोह० अज० ओघं।

१५८. मदि०-सुद० घादि०४-गोद० जह० अज० णित्थ अंतरं । सेसाणं णवुंसग-मंगो । एव मिच्छादिद्वी० । विभंगे घादि०४-गोद० जह० अज० णित्थ अंतरं । वेद०-णामा० जह० अज० णिरयोघं । आउ० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देस्व० ।

रखकर कहा है यह स्पष्ट ही है। आयुकर्सका जघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे श्रीर श्रधिकसे श्रधिक अपनी अपनी कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे हो सकता है इसलिए यह श्चन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा श्रायुकर्मका अजघन्य श्रनुसागबन्ध एक समयके श्रन्तरसे होने पर इसके श्रजघन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जिस पुरुषवेदी या स्त्रीवेदी मनुष्यने आयुकर्मकी उस्कृष्ट स्थिति क्रमसे तेनीस सागर और पचवन परुय वाँघते समय अजधन्य अनुभागबन्ध किया पुनः तेतीस सागर श्रीर पचवन पल्यकी आयुके श्रन्तमें पुनः आयुकर्मका अजघन्य त्रातुभागवन्य किया उस पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी जीवके आयुकर्मका त्राजघन्य त्रातुभाग-बन्ध कमसे साधिक तेतीस सागर श्रीर साधिक पचवन पत्य उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। नपुंसकवदीके पुरुषवदीके समान चार घातिकर्मीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है यह स्पष्ट ही है। तथा ओव प्ररूपणाके समय वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जो अन्तर कहा वह नपुंसकवेदमें सम्भव है इसलिये यहाँ यह कथन ऋाघके समान कहा है। मात्र गात्रकर्मके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समयसे श्रधिक उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि नपुंसकोंमें गोत्रकर्मके जघन्य श्रतुभागबन्धका जवन्यकाल एक समय ही उपलब्ध होता है। इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। श्रपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका जवन्य अनुभागबन्य क्षपकश्रेणिमें होता है और शेप तीन कर्मीका उपशमश्रेणिसे गिरते समय ऋपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है। यही कारण है कि यहाँ इन सातों कर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है।

१५७. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनु-भागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभ कषायमें मोहनीय कर्मके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल श्रोधके समान है।

विशेषार्थ — क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपक-श्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष कर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल लाते समय पहले जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके वह घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए, इसलिए वह मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। मात्र ओघसे मोहनीयकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित करके बतलाया है वह यहाँ लोभकषायमें अविकल घटित हो जाता है इसलिए यह कथन ओघके समान कहा है।

१५८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घाति कर्म श्रौर गोत्रकर्मके जघन्य श्रौर अजघन्य अनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मीका भड़ नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इसी प्रकार मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। विभक्तज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म श्रौर गोत्र-कर्मके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल सामन्य नारिकर्योंके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य

१५६. आमि०-सुद०-ओघि० घादि०४—गोद० जह० णित्थ अंतरं । अज० ओघं०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्त० छावद्वि० सादि० । अज० ओघं । आउ० जह० जह० एग०, उक्त० छावद्विसाग० सादि० । अज० ओघं । एवं ओघिदं०-सम्मादि० ।

१६०. मणपञ्ज० घादि०४-गोद० जह० णितथ अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० पुन्वकोडी० देख्र०। अज० ओघं। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देख्र०। एवं संजदा०।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुल कम छह महीना है।

विशेषार्थ—तीनों मिध्याज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होने पर होता है इसलिए ता इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेघ किया है। इसी प्रकार गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्ष्यके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है इसलिए यहाँ इसके भी जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेप कथन सुगम है।

१५६. श्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म श्रीर गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल नहीं हैं। श्रुजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल ओघके समान हैं। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर हैं। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान हैं। आयुकर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर हैं। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल ओघके समान हैं। इसी प्रकार श्रवधिनदर्शनी और सम्यग्रहिष्ट जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन दोनों सम्यग्ज्ञानियों मं चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपक्षेणिमं अपनी वन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इन पाँचोंके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल उपशमश्रीणमें उपशान्तमोह गुणस्थानमें एक समय रहकर मरण्की अपेक्षा एक समय और उपशन्तमोहमें पूरे काल तक रहकर उतरनेकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। ओघसे भी यह इतना ही उपलब्ध होता है, इसलिए यह अन्तर आघके समान कहा है। वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय होनेसे इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। यह सम्भव है कि ये दोनों सम्यग्ज्ञानी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अधासट सागर कहा है। इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अधासट सागर कहा है। इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिके समान यहाँ भी घटित हो जाता है इसलिए वह अधिके समान कहा है। इसी प्रकार आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका यथायोग्य विचार कर अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१६०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय श्रौर नामकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रजघन्य अनुभागबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके जघन्य श्रोर श्रजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ

१६१. सामाइ०-छेदो० घादि०४—गोद० जह० अज० णित्थ अंतरं । वेद०-आउ०-णामा० मणपञ्जवमंगो । णविर वेद०-णामा० अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । परिहार०-संजदासंजदा० घादि०४—गोद० जह० अज० णित्थ अंतरं । सेसाणं सामाइयमंगो । णविर परिहार० घादि०४ अज० एग० । असंजदे घादि०४ जह० अज० णित्थ श्रंतरं । सेसाणं कम्माणं णवंसगमंगो ।

१६२. किण्णाए घादि०४ जह० जह० एग०, उक्त० तेत्तीसं सा० देख्र०। अज०

कम त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें भी चार घातिकर्म और गांत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध अपकश्रेणिमें अपनी व्युच्छितिके अन्तिम समयमें होता है इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निपेध किया है। मनःपर्ययज्ञानी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण कर यदि मरता है तो उसके मनःपर्ययज्ञान नहीं रहता अतएव मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें उक्त पाँचों कर्मोंके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल उपशमश्रेणि पर आरोहण और अवराहणकी अपेचा ही सम्भव है। यतः उपशान्तिमोहका स्वस्थानकी अपेचा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मृहूर्त है अतः यहाँ पाँचों कर्मोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मृहूर्त कहा है। मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट अवस्थिति काल कुछ कम एक पूर्वकांटि है। किसी जीवने मनःपर्ययज्ञानके सद्भावमें एक समयके अन्तरसे वदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध किया और किसीने मनःपर्ययज्ञानके कालके प्रारम्भ और अन्तमें इनका जघन्य अनुभागवन्ध किया और मध्यमें अजघन्य अनुभागवन्ध करता रहा तो यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकांटि उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यह उक्त प्रमाण कहा है। ओघसे इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मृहूर्त घटित करके वतला आये हैं वह यहाँ भी सम्भव है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। शेप कथन सुगम है।

१६१. सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमं चार वातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य श्रौर अजघन्य श्रमुभागवन्थका श्रन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु श्रौर नामकर्मका भक्त मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय और नामकर्मके श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। परिहार्सवशुद्धि संयत श्रौर संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्म श्रार गोत्रकर्मक जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका श्रन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मीका भङ्ग सामायिक संयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें चार घाति कर्मोंक अजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। श्रसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंक अघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। श्रसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रम्य श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रमे है। श्रेष कर्मीका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंको उपशान्तमोह गुणस्थानकी प्राप्ति न होनेसे इनमें वदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। परिहारिवशुद्धि संयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभाग-का बन्ध सर्विवशुद्धि अवस्थाके होनेपर एक समय तक होता है। इसके बाद पुनः अजघन्य अनुभागकाथ होने लगता है इसलिए यहाँ चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है। स्वामित्व और कालका विचार कर अन्तर-काल ले आना चाहिए।

१६२. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। आउ० विभंगभंगो। गोद० णिरयोघं। णील-काऊणं घादि०४-वेद०-णामा० किण्णभंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०।

१६३. तेउ० घादि०४ जह० णित्थ अंतरं । अज० ज० एग०। सेसाणं सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णविर वेद०-आउ०-णामा०-गोदा० सहस्सारभंगो। सुकाए घादि०४ जह० अज० ओघं। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक• तेत्तीसं सा० सादि०। अज० ओघं। आउ०-गोदा० णवगेवज्रभंगो।

अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मका भक्क विभक्कज्ञानी जीवोंके समान है गोत्रकर्मका भक्क सामान्य नारिकयोंक समान है। नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्म, वेदनीय और नामकर्मका भक्क कृष्णलेश्याक समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—कृष्णलंश्यामें चार घातिकर्मांका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टिके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे भी ही सकते हैं। यही कारण है कि यहाँ इन चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर हो समय है। इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य कान्य वान्यवाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध जघन्य वन्धयोग्य मध्यम परिणामवाले किसी भी जीवके हो सकता है। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी। यही कारण है कि यहाँ इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ नील और कापोत लेश्यामें चार घातिकर्म वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान कहा है सो इसका अभिप्राय इतना ही है कि कृष्णलेश्याके समान नील और कापोतलेश्याके कालको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१६३. पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। शेष कर्मोंका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंमें भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। शुक्त लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। आयु और गोंत्रकर्मका भङ्ग नौमैवेयकके समान है।

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें अप्रमत्तसंयतके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागबन्ध होता है। ऐसे परिणाम पीतलेश्याके कालमें दो बार सम्भव नहीं हैं। इससे यहाँ चार १६४. अब्भव० घादि०४-गोद० जह० जह० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेजा पो०। अज० जह० एगस०, उक्क० वे सम०। सेसं ओघं।

१६५. खइए घादि०४ जह० अज० ओघं। वेद०—णामा—गोदा० ज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अज० [जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। णवरि गोद० उ० बेसम०।] आउ० जह० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देस्र०। अज० ओघं।

१६६. वेदगस० घादि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० एग०। वेद०-णामा०

घातिकर्मीके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनका जघन्य अनुभाग-बन्धका एक समय तक ही होता हैं। इससे इनके अजधन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। शेप कथन सुगम है।

१६४. अभव्य जीवोंमं चार घातिकर्म और गांत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष कर्मी का भंग खोंघके समान है।

विशेषार्थ—ग्रभव्य जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध सर्व-विशुद्ध परिणामोंसे होता है। ये परिणाम एक समयके श्रन्तरसे भी होते हैं श्रीर श्रनन्त कालके बाद भी होते हैं। इससे यहाँ इन कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्तकाल कहा है। तथा इन कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ इनके अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६५. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मों के जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। वेदनीय नाम श्रीर गांत्र कर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक ससय है और उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है कि गोश्रका उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। श्रायु कर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल श्रोघके समान है।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धकी अन्तर प्ररूपणा जिसप्रकार ओघमें कही है वह क्षायिक सम्यक्त्वमें अविकल बन जाती है इसिलए यह कथन ओघके
समान कहा है। वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे
और गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि अवस्थामें संक्लेशपरिणामोंसे होता है।
यहाँ ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और साधिक तेनीस सागरके अन्तरसे भी
हो सकते हैं। यही कारण है कि यहाँ इन तीनों कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक
समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य और
उत्कृष्ट अन्तर इनके जघन्य अनुभागवन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रखकर कहा है।
आयुक्मका अन्तरकाल सुगम है।

१६६. वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मीके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। वेदनीय और नाम कर्मके ज० जह० एग०, उक्क० छावडि० देस्व० । अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आउ० जह० वेदणीयभंगो । अज० ओघं । गोद० जह० णत्थि अंतरं ।

१६७. उवसम० घादि०४-गोद० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। वेद०-णामा० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१६८. सासणे घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० श्रंतो०। अज० जह० एग०, उक्क वेसम०। वेद०-आउ०-णामा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज०

जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। श्रायु कर्मके जघन्य श्रनुभागवन्धका भंग वेदनीय कर्मके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका भंग श्रोघके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत होता है उसीके चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इस लिए यहाँ चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इसके चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे यहाँ अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। यहाँ वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिक सि अधिक कुछ कम छ्यासठ सागरके अन्तरसे उपलब्ध हो सकते हैं इसलिए इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम छ्यासठ सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम छ्यासठ सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागका वन्ध मिण्यात्वके अभिमुख हुए जीवके हो सकता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागका वन्ध मिण्यात्वके अभिमुख हुए जीवके हो सकता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागका वन्ध मिण्यात्वके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१६७. उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय और नाम-कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टिके चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिमें चढ़ते समय और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिध्यात्वके अभिमुख होनेपर होता है इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तिके अन्तरसे सम्भव है इसलिए तो इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयतक और उपशान्तमोह गुणस्थानकी अपेक्षा अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्ति कालतक नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनुभागबन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्ति कहा है।

१६८. सासादनसम्यग्दष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म श्रौर गोत्र कर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, श्रायु श्रौर नामकर्मके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रजघन्य अनु- जह० एग०, उक्क० चत्तारिसमयं । गोद० जह०-अज० णित्थ अंतरं ।

१६१. सम्मामि० वेद०-णामा० सासण०भंगी। सेसाणं जह० अज० णत्थि अंतरं। १७०. सण्णी० पंचिंदियपज्ञत्तभगो। असण्णी० घादि०४—गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उ० वेसम०। वेद०-आउ०-णामा० जह० औघं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। णवरि आउ० अज० जह० एग०, उक्क० पुक्कोडी सादि०।

भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर चार समय है। गोत्रकर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्यका अन्तर काल नहीं है।

विशेषार्थ—सासादनसम्बन्दष्टि जीवोंमें चार चातिकमींका जघन्य अनुभागवन्ध चारों गतिन्योंमें सर्वविशुद्ध परिणासोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे उपलब्ध होते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर हो समय है यह स्पष्ट ही है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध चारों गतियोंमें मध्यम परिणामोंसे और आयुकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध चारों गतियोंमें मध्यम परिणामोंसे और आयुकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम भी कमसे कम एक सभयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तरमुं हूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६६. सम्यग्मिश्यादृष्टि जीवोंमें वेदनीय और नामकर्मका भंग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। शेष कर्मीके जघन्य और अजबन्य अनुभागबन्यका अन्तरकाल नहीं है।

विशेपार्थ—सम्यग्निध्यादृष्टि जीवके चार घातिकर्मीका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके तथा गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिध्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे हानेके कारण इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल सासादन सम्यग्दृष्टिके समान वन जानेसे वह उनके समान कहा है।

१७०. संज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भंग है। असंज्ञी जीवोंमें चार घातिकमें और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभाग वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर आनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका अपन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका अपन्तरकाल आघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है।

विशेपार्थ — असंज्ञियों में चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिये इन कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल बन जाता है। इसी प्रकार अन्यकर्मोंका अन्तर भी अपने-अपने स्वामित्वको ध्यानमें लेकर घटित कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर लाते समय वह साधिक एक पूर्वकोटि प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटिकी अपेक्षा ही यह अन्तर प्राप्त हो सकता है, अन्य प्रकारसे नहीं।

१७१. आहार० घादि०४ जह० अज० ओघं। वेद०-आउ०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० ओघं। गोद० जह० अंतो, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० ओघं। एवं अंतरं समत्तं।

१५ सण्णियासपरूवणा

१७२. सिण्यासं दुविधं-जह० उक्क०। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० णाणावरणीयस्स उक्कस्सयं अणुभागं बंधंतो दंसणा० मोहणी०- अंतरा० णियमा बंधगा। तं तु छट्ठाणपदिदं बंधि । वेद०-णामा-गोदा० णियमा अणुक्क० अणंत-गुणहीणं बंधि । आउ० अबंधगो। एवं दंसणा०-मोह०-अंतरा०। वेद० उक्क० अणु-भागं बं० तिण्णियादीणं णिय० बं०। णि० अणु० अणंतगुणहीणं बंधि । मोह०-आउगस्स अबंधगो। णामा-गोदा० णिय० वं० णि० उक्कस्सं। एवं णामा-गोदा०। आउगस्स उक्कस्सं बं० सत्तण्णं क० णिय० वं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं बंधि । एवं ओधभंगो मणुस०३-पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि-ओरा-लियका०-तिण्णिवेद०-कोधादि०४-आभि०-सुद०-ओधि०- मणपज्ज० संजद०-चक्खुदं०-

१७१. त्राहारक जीवों में चार घाति कर्मों के जघन्य और अजधन्य अनुभागबन्धका अन्तर-काल श्रोधके समान हैं। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल श्रोधके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल श्रोधके समान है।

विशेषार्थ—श्राहारककी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ वेंदनीय, श्रायु नाम श्रीर गांत्रकर्मके जवन्य श्रनुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें जवन्य स्थितिका वन्य कराकर यह श्रन्तर ले श्रावे। शेप कथन सुगम है। इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

१५ सन्निकर्षप्ररूपणा

१७२. सिन्नकर्प दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेदा निर्देश दो प्रकारका है—जोव और आदेश। आघमे ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह छह स्थान पतित वाँधता है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह अनुत्कृष्ट अनन्त-गुणेहीन अनुभागका बन्ध करता है । वह आयुक्सका बन्ध नहीं करता । इसी प्रकार दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्मकी अपेदा सिन्नकर्ष जानना चाहिये । वेदनीयकर्मके उत्कृष्ट अनन्तगुणेहीन अनुभागका बन्ध करना है, वह मोहनीय और आयुक्रमका बन्ध नहीं करता । नाम और गोत्रकर्मका बन्ध करता है, वह मोहनीय और आयुक्रमका बन्ध नहीं करता । नाम और गोत्रकर्मकी अपेदा सिन्नकर्ष जानना चाहिये । आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी अपेदा सिन्नकर्ष जानना चाहिये । आयुक्रमके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोका नियमसे वन्धक होता है । जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है । इसीप्रकार जाम बन्ध करता है । इसीप्रकार आयोगी, जीवसिन सेवन्यक, पंचेन्द्रिय, द्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, कावयोगी, औदारिककाययोगी, तीन वेदवाले, क्रोधाधि चार कषायवाले, आभि-

अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग ति । णवरि तिण्णिवद०-तिण्णिकसा० वेद० उक्क० बं० मोह० णिय० बंध० अणंतगुणहीणं बंधदि । एवं सामाइ०-छेदोव० ।

१७३. णिरएसु णाणाव उक्क अणु० बंघ० दंसणा०-मोह०-अंतरा० णिय० बं०, तंतु 'छट्ठाणपदिदं बंघदि । वेद०-णामा-गोदा० णि० वं० णि० अणु० अणंतगुण-हीणं० । आउ० अवंघ० । एवं तिण्णिघादीणं । वेद० उक्क० बं० घादि०४ णि० वं० णि० अणंतगुणहीणं० । आउ० अवंघ० । णामा-गोदा० णिय० वं० तंतु छट्ठाणपदिदं बं० । एवं णामा-गोदाणं । आउ० उक्क० सत्तण्णं क० णि० वं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं० ।

निवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी; श्रवधिज्ञानी, मनःपययज्ञानी, संयत, चलुदर्शनी, श्रवलुद्शनी, अविद्रशनी, श्रुवललेश्यावाले, भन्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, खश्यम सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि तीन वेदवाले श्रीर तीन कपायवाले जीवोंमें वेदनीयके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मोहनीयका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। इस्तिप्रकार सामायिक संयत श्रीर छेदोपस्थान्यना संयत जीवोंके जानना चाहिये।

१७३. नारिकयों में ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वंध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मका नियमसे वन्ध करता है किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तराणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। आयुकर्मका वन्ध नहीं करता। इसी प्रकार तीन घाति कर्मोंकी अपेचा सिन्नकर्प जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनन्तराणे इन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। वो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तराणे हीन अनुभागका वन्ध करता है। वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका वन्ध करता है। इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी अपेचा सिन्नकर्ष जानना चाहिये। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तराणे हीन अनुभागका बन्ध करता है।

१७४. श्रपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय श्रौर श्रन्तराय कर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियम से उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय नाम श्रौर गात्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे श्रनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन श्रनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार तीन घाति कर्मोंकी श्रपेचा सिन्नकर्ष जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मों का नियम से बन्ध करता है। जो नियम से श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। नाम श्रौर गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार नाम श्रौर गोत्रकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये।

१ मूकप्रतौ 'झसंणणं पदिदं' इति पाठः ।

१७५. सुहुमसं० णाणावर० उक्क० बं० दंसणा०-अंतरा० णि० बं० णिय० उक्कस्स०। वेद०-णामा-गोदा० णि० बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं०। एवं दोण्णं घादीणं। वेद० उक्क० बं० तिण्णं घादीणं णि० बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं०। णामा-गोदा० णि० बं० णि० उक्क०। एवं णामा-गोदाणं।

१७६. सेसाणं सन्वेसिं णिरयभंगो । णवरि तेउ-वाऊणं णाणावर० उक्क० बं० तिण्णं घादीणं गोद० णि० बं० तं तु० । वेद०-णामा० णि० बं० णि० अणु० अणंत-गुणहीणं० । आउ० अबंधगो । एवं तिण्णं घादीणं गोदस्स च । वेद० उक्क० बं० घादीणं गोदस्स च णि० बं० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० णिय० तं तु छट्टाणपदिदं बंधदि । एवं उक्कस्मसण्णियामं समत्तं

१७७. जहण्णए पगदं। दुवि० — ओघे० आदे०। ओघे० णाणावर० जह० अणुभागं बंधंतो दंसणा०-अंतरा० णि० बं० णि० जहण्णं०। वेद० णामा-गोदाणं णि० बं० णि० अजहण्णं अणंतगुणब्भिहयं बंधिद। मोहाउगस्स अबंधगो। एवं दंसणा०-अंतराइ०। वेद० जह० बं० घादि०४—गोद० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भिहयं०। आउ०

१०५. सूद्रमसाम्परायिक संयत जीवोंमें ज्ञानाधरणके उन्छ्य अनुभागका बन्य करनेवाला जीव दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियम से उन्छ्य अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार दो घातिकर्मीकी अपेन्ना सिन्नकर्प जानना चाहिये। वेदनीय कमके उन्छ्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घाति कर्मौका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुन्छ्य अनुनागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घाति कर्मौका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुन्छ्य अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। नाम और गोत्र-कर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे उन्छ्य अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार नाम और गोत्रकी अपेन्ना सन्निकर्प जानना चाहिये।

१७६. शेप सब मार्गणाश्रोंमें नारिकयोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि श्रिप्रकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्म श्रौर गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे छह स्थान पितत अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय श्रौर नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। वह श्रायुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार तीन घातिकर्म श्रौर गोत्रकर्मकी श्रपेत्ता सित्रकर्ष जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्म श्रौर गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे श्रनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन श्रनुभागका बन्ध करता है। नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है किन्तु वह छह स्थान पितत श्रनुभागका बन्ध करता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१७७. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—आंघ और आदेश। आंघसे ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दशनावरण और अन्तरायका नियमसे बन्ध करना है जो नियमसे जघन्य अनुभागका चन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। वह मोहनीय और आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी मुक्यता मे मिन्नकर्प जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव

सिया वं सिया अबं । यदि वं णि तं तु छट्ठाणपदिदं । णाम णि वं णि तं तु छट्ठाणपदिदं । एवं आउ - णाम । मोह जह वं घ छण्णं कम्माणं णि वं वे णि अज अणंतगुण क्मिह्यं । आउ अबंध । गोद जह वं वे छण्णं क णि वं वं णि अज अणंतगुण क्मिह्यं । आउ अबंध । गोद जह वं वे छण्णं क णि वं वं णि अज अणंतगुण क्मिह्यं । आउ अबंधगा । एवं ओघमं गो पचिंदि - तस वि न्यं च मण - पंच वि व - काय जो गि-ओर। सि व - लो भ व - आ भि व - सुद - ओधि - मणपज व - संजद - च क्सुदं - अच क्सुदं - ओधिदं - भ व सि व - सम्मादि व - सह ग - उ व सम व - सण्ण - आहारग ति ।

१७८. णिरएसु णाणा० जहर अणुभा० घादीणं तिण्णं णि० बं० तं तु छट्टाणप-दिदं बं०। वेद०-णामा-गोद० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भिह्यं०। आउ० अबंघ०। एवं तिण्णं घादीणं। वेद० जह० अणु० बं० घादि०४—गोद० णि० बं० अज० अणंतगु०। आउ० सिया बं० सिया अबं०। यदि बं० तं तु छट्टाणपदिदं०। णाम० णि० बं० तं तु० छट्टाणपदिदं०। एवं आउ०। णामा—गोदाणं ओघभंगो। एवं सत्तमाए पुढवीए तिरिक्खोघं अणुदिस याव सन्वद्व त्ति सन्वएइंदि०-ओरालि०-वेउन्वि०-

चार वातिकमं श्रांर गांत्रकमंका नियमसे वन्ध करता है, जो नियमसे श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुण श्रिषक अनुभागका वन्ध करता है। आयुक्मंका कहाचित् वन्ध करता है श्रोर कहाचित् वन्ध करता है। नामकर्मका यदि वन्ध करता है तो वह नियमसे छह स्थान पतित श्रनुभागका वन्ध करता है। नामकर्मका नियमसे दन्ध करता है, किन्तु वह नियमसे छह स्थानपतित अनुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार श्रायु श्रोर नामकर्मकी मुख्यातासे सिन्नकर्प जानना चाहिये। मोहनीय कमके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे वन्ध करता है। जो नियमसे श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणे श्रिषक श्रनुभागका वन्ध करता है। वह श्रायुक्मंका वन्ध नहीं करता। गोत्रकमंके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे वन्ध करता है। जो नियमसे श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणे श्रिषक श्रनुभागका वन्ध करता है। वह श्रायु कर्मका वन्ध नहीं करता। इसी प्रकार श्रोचके समान पश्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, लोभकपायवाले, श्राभिनिकाधिक ज्ञानी, श्रव्ज्ञानी, अविभ्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चज्जदर्शनी, श्रचजुदर्शनी श्रवधिदर्शनी, भव्य, सम्यग्हिष्ठ, ज्ञायिक सम्यग्हिष्ठ, उपशम सम्यग्हिष्ठ, सज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१७८. नारिकयों में ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घितकर्मीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पितत अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जा नियमसे अजबन्य अनन्तगुणे छिषक अनुभागका बन्ध करता है। वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार तीन घातिकर्मीकी मुख्यतासे सित्रकर्ष जानना चाहिए। वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागक। बन्ध करता है। आयुकर्मका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो वह नियमसे छह स्थान पितत अनुभागका बन्ध करता है। नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पितत अनुभागका बध करता है। इसी प्रकार आयुकर्मकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिये। नाम और गोत्र कर्मकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आंघक समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवी, सामान्य तिर्यंच, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय,

वेउन्वियमि० आहार० आहारमि० कम्मइ० मदि० सुद० विभंग० परिहार० संजदासंजद - असंज० तिण्णिले० अब्भवसि० वेदग० सासण० सम्माभि० असण्णि अणाहारग ति । पढमादि याव छद्दि ति तं चेव । णवरि गोद० वेदणीयमंगो । तिरिक्ख मणुसअपज्ञ० देवा याव उवरिमगेवज्ञा ति सन्वविगलिंदि० पंचिदि० स्तसअपज्ञ० सन्वपुढवि० आउ० वणफिद० बादर० पत्तेय० —िणयोद० एवं चेव । मणुस०३ घादीणं ओघं । सेसं विदियपुढविभंगो ।

१७९. सन्वतेउ०-वाउ० णाणा० जह० जह० अणु० वं० तिण्णं घादीणं गोदस्स च णि० वं० णि० तं तु छट्टाणपदिदं० । सेसं अपज्जत्तभंगो ।

१८०. इत्यि० णाणा० जह० बं० तिण्णि घादीणं णि० वं० णि० जहण्णा०। वेद०-णामा-गो० णि० बं० णि० अज० अणंतगु०। सेसं देवोघं। एवं पुरिस०। णवुंस० घादि०४ इत्थिमंगो। सेसं णिरयोघं। एवं णवुंसगभंगो कोघ-माण-माय-सामाइ०-छेदो०।

१८१. अवगद० णाणा० जह० बं० दंसणा०-अंतराइ० णि० वं० णि० जह० । वेद० णामा-गो० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भिह्यं० । मोह० अबंध० । एवं

औदारिक काययांगा, वेकियिक काययांगा, वैकियिकिमिश्रकाययांगा, आहारककाययांगा, आहारकिमिश्रकाययांगी, कार्मणकाययांगी, मस्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारिवशुद्धि संयत, संयतासंयत, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिश्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवांके जानना चाहिय। पहली पृथिवंशि लंकर उठवीं तकके नारिकयोंमें वहीं भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें गांत्रकर्मका भंग वेदनीयके समान है। तियंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देवोंसे लेकर अपरिम प्रवेवयक तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सय जलकायिक, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगाद जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। मनुष्यिकिकों चार घातिकर्मींका भंग खोघके समान है।

१७६. सब अग्निकायिक और सब वायुकायिक जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन यातिकर्म और गांत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। शेप भंग अपर्याप्तकोंके समान है।

१८०. स्त्रीवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मी का नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम, श्रोर गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुरो अधिक अनुभागका बन्ध करता है। शेष मंग सामान्य देवोंक समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिये। नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका मंग स्त्रीवेदी जीवोंक समान है। शेष मंग सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके समान हो। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके समान क्रोध कषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले, सामायिक संयत श्रोर छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिये।

१८१. श्रपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण श्रोर अन्तराय कर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय नाम श्रोर गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजयन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। वह मोहनीयका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी मुस्यतासे सित्रकर्ष जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करने

दंसणा०-अंतराइ० । वेदणी० ज० बं० घादि०४ णि० बं० णि० अज० अणंतगुण-ब्मिहियं० । णामा-गो० णि० वं० णि० जह० । एवं णामा-गोदाणं । मोह० ज० बं० छण्णं कम्माणं णि० बं० णि० अजहण्णा० अणंतगु० । एवं सुहुमसं० छण्णं कम्माणं । तेउ०- पम्मा० देवोघं । सुकाए मणुसभंगो ।

एवं सिणकासी समत्ती।

१६ णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा

१८२. णाणाजीवेहि भंगिवचयं दुविधं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। तत्थ इमं अद्वपदं-ए उक्कस्स-अणुभागवंधगा ते अणुक्कस्सअवंधगा। ए अणुक्कस्सअणु० बंध० ते उक्क० अणुभाग० अवंधगा। एवं पगिद बंधिद तेसु पगदं अवंधगेसु अव्ववहरो। एदेण अद्वपदेण अद्वण्णं क० उक्क० अणुभा० सिया सव्वे अवंधगा, सिया अवंधगा य बंधगे य, सिया अवंधगा य बंधगा य। अणुक्क० अणुभागं सिया सव्वे बंधगा य, िया बंधगा य अवंधगे य, सिया बंधगा य अवंधगे य, सिया बंधगा य अवंधगा य। एवं ओधभंगो तिरिक्खोधं पुढ० आउ० तेउ० चाउ० बादरपत्ते० कायजोगि० — ओरालि० ओरालियिम० कम्मइ० णवंस० - कोधादि०४ — मदि० सुद० असंज० अचक्खु० — तिण्णिले० भवसि० — अव्भवसि० - मिच्छादि० असण्णि० - आहार० अणाहारग ति।

वाला जीव चार घातिकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजधन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जधन्य अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मोहनीय कर्मके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मीका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजधन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार सूद्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें, छह कर्मीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिये। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। अकल लेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है।

इसप्रकार सन्निकप समाप्त हुन्त्रा।

१६ नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयप्रह्मपणा

१८२. नाना जीवोंकी अपंत्ता भक्क विचय दां प्रकारका है जवन्य और उन्कृष्ट । उन्कृष्टका प्रकरण है । उसमें यह अर्थपद है कि जो उन्कृष्ट अनुभागके वन्यक होते हैं व अनुन्कृष्ट अनुभागके अवन्यक होते हैं । और जो अनुन्कृष्ट अनुभागके वन्यक होते हैं वे उन्कृष्ट अनुभागके अवन्यक होते हैं । इसप्रकार कर्मका वन्य करते हैं । उनका यहाँ प्रकरण है । क्योंकि अवन्यकोंमें व्यवहार नहीं होता । इस अर्थ पदके अनुसार आठ कर्मोंके उन्कृष्ट अनुभागके कदाचिन सब जीव अवन्यक हैं, कदाचिन नाना जीव अवन्यक हैं और एक जीव वन्यक हैं, कदाचिन नाना जीव अवन्यक हैं और नाना जीव वन्यक हैं। अनुन्कृष्ट अनुभागके कदाचिन सब जीव वन्यक हैं, कदाचिन नाना जीव वन्यक हैं और एक जीव वन्यक हैं, कदाचिन नाना जीव वन्यक हैं और एक जीव अवन्यक हैं। इस प्रकार ओचक समान सामान्य तिर्यक्च, पृथिवी कायिक, जलकायिक, अप्रि कायिक, वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोघादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अच्छुदर्शनी,तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिश्रवाहिष्ट, असंज्ञी, आहारक आरो अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१८३. मणुसअपन्ज०-वेउन्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छा० उक्क० अणुक्क० अट्टभंगो। एइंदिय-बादर-सुहुम० पन्जत्तापन्जत्त० काएसु सन्वबादरअपन्जत्त-सन्वसुहुमपन्जत्तापन्जत्त-सन्ववणप्कदि०-णियोद०-बादर०पत्त०अपन्जत्त० आउ० ओघं। सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणुक्क० अत्थि बंघगा य अबंघगा य। सेसाणं सन्वेसिं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० तिण्णिभंगो। अणुक्कस्सा पि पडिलोमेण तिण्णि भंगा। आउ० उक्क० अणुक्क० तिण्णि भंगा।

एवं उक्कस्सभंगविचयो समत्तो ।

१८४. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० तत्थ इमं अद्वपदं उकस्स-भंगो । घादि० ४-गोदस्स जह० अज० उक्तस्सभंगो । वेदणो०-आउ०-णामा० जह० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायगोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति । णवरि कम्मइ० अणाहार० आउ० णत्थि ।

१८५. एइंदि०-बादर०-बादरपज्जत्ता० गोद० ओघं। सेसाणं अत्थि बंधगा य अवंधगा य। बादर०अपज्जत्त०-सन्वसुहुमाणं च अट्ठण्णं कम्माणं जह० अज० अत्थि

१८३. मनुष्य अपर्याप्तक, वैिकक मिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकिमिश्र काययोगी, अपरातवेदी, सूद्म सांग्परायसंयत, उपशाससम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-रिमध्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेत्ता आठ भङ्ग हैं। एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूद्म एकेन्द्रिय तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें तथा पाँचों स्थावर कायिकोंमें सब वादर अपर्यात, सब सूद्धम और उनके बादर और सूद्धम पर्याप्त अपर्याप्त, सब बन-स्पतिकायिक, निगाद जीव और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग आयके समान है। सात कर्मोंके उत्कृष्ट आर अनुन्कृष्ट अनुभागके वन्धक नाना जीव हैं और अवन्धक नाना जीव हैं। शेप सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके तीन भङ्ग हैं। अनुन्कृष्ट अनुभागवन्धके भी प्रतिलोमक्रमसे तीन भङ्ग हैं। आयु कर्मके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट पदकी अपेत्ता तीन भङ्ग हैं।

इसप्रकार उत्कृष्ट भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१८४ जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा वहाँपर पर यह अर्थ पद उत्कृष्टके समान जानना चाहिये। चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धकी अपेत्ता भंगविचय उत्कृष्टके समान है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभाग वन्धके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अवन्धक जीव हैं। इसप्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यक्ष, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकिमिश्रकाययोगी, कार्यकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, अस्यत, अचजुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भज्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१८५. एर्नेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय श्रीर बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें गोत्रकर्मका भक्क श्रोधके समान है। शेष कर्मीकं नाना वन्धक जीव हैं श्रीर नाना श्रवन्धक जीव हैं। बादर एकेन्द्रिय अपयप्ति और सब सूदम जीवोंमें श्राठों कर्मीकं जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रानुभागबन्धके नाना बन्धक

वंधगा य अबंधगा य । सन्ववाद्रअपन्त्र०-सुहुम०-सन्ववणप्पदि-णियोद०-पुढ०-आउ० घादि० ४ उक्तस्समंगो । सेमाणं जह० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । तेउ०-वाउ०-वादरतेउ०-वाउ० घादि०४-गोद० उक्तस्समंगो । सेसाणं जह० अजह० अत्थि वंधगा य अबंधगा य । सेसाणं णिरयादीणं सन्विसं सन्वभंगा उक्तस्समंगो ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं।

१७ भागाभागपरूवणा

१८६. भागाभागं दुवि०--जह० उक्त० । उक्त० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० अहुणां कम्माणं उक्त० अणुभागवंधगा जीवा सन्वजीवाणं केविडओ भागो ? अणंत-भागो । अणुक्त० अणुभाग० जीवा सन्वजीवाणं केविडओ भागो ? अणंता भागा । एवं-भोघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइ०-णवुंस०-कोहादि४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि० - अन्भवसि०-मि-च्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति ।

१८७. एइंदिय-वणप्फिद्-िणयोदेसु आउ० ओघं। सेमाणं उक्क० असंखेज्जिदिभागो । अणुक्क० असंखेज्जा भागा । अवगदवे० सत्तण्णं क० उक्क० संखेज्जिदिभागो । अणुक्क० संखेज्जा भागा । एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं । सेसाणं असंखेज्जिजीविगाणं उक्क०

जीव हैं और नाना अवन्धक जीव हैं। सब वादर अपर्याप्त, सूद्म, सब वनस्पतिकाधिक, निगोद, पृथिवीकाथिक और जलकाधिक जीवोंमें चार घातिकर्मांका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेप कर्मोंके जघन्य और अजवन्य अनुभागवन्धके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अवन्धक जीव हैं। अग्नि-काथिक, वायुकाथिक, वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेप कर्मांक ज्ञवन्य और अजवन्य अनुभागवन्धके नाना वन्धक जीव हैं और नाना अवन्धक जीव हैं। शेप नरकादि सब मार्गणाओंमें सब कर्मोंके सब भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

इसप्रकार नाना जीवोंकी ऋषेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुऋ।।

१७ भागाभागप्ररूपणा

१८६. भागाभाग दां प्रकारका हे जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेता निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश । ओघसे आठ कर्मांके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रनन्तवें भाग प्रमाण हैं । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रनन्त बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, श्रीदारिक काययोगी, श्रीदारिक काययोगी, श्रीदारिक काययोगी नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाल, मत्यज्ञानी, श्रताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचज्ञदर्शनी, तीन लेश्यावाल, भव्य, श्रभव्य, मिण्यादिष्ट, श्रसंज्ञी, श्राहारक श्रोर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१८७. एकेन्द्रिय, वनस्पितकायिक श्रौर निगोद जीवोंमें श्रायुकर्मका भंग ओघके समान है। शेष कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बंधक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। श्रपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बंधक जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सूद्दमसाम्परायिकसंयत जीवोंके छह कर्मोंकी श्रपेता भागाभाग जानना चाहिये। शेष

१ ता० प्रती ऋगंतभागो इति पाटः।

असंखेज्जिदमागो । अणुक्क० असंखेज्जा भागा । सेसाणं संखेज्जजीविगाणं उक्क० संखे-ज्जिदमागो । अणुक्क० संखेज्जा भागा ।

१८८. जहणणए पगदं । दुवि० — ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ — गोद० जह० सच्व० केव० ? अणंतभागो । अज० अणंता भागा' । वेद०-आउ० - णामा० जह० असं- खेज्जिदिभागो । अज० असंखेज्जा भागा' । एवं तिरिक्खोघं कायजोगि — ओरालि० — ओरालियमि० — कम्मइ० — णवुंस० — कोधादि०४ — मदि० — सुद० — असंजद० — अचक्खुदं० — तिण्णिले० — भवसि० — अब्भवसि० — मिच्छादि० — असण्णि — आहार० — अणाहारग ति । णविर कम्मइ० — अणाहारग० आउ० णित्थ ।

१८९. एइंदिएसु [सत्तण्णं कम्माणं जह० अण० असंखे०। अज० असंखेजा भागा।] गोद० ओघं । एवं वणफदि -िणयोदाणं। णवरि गोदं णामभंगो। सेसाणं सन्वेसिं संखेज्ज०-असंखेज्जजीविगाणं उक्कस्सभंगो। णवरि अवगदवे०-सुहुम-संप० अज० अत्थदो विसेसो जाणिदन्त्रो। एवं भागाभागं समत्तं ।

श्रसंख्यात संख्यावाली मार्गणात्रोंमें उत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीव श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वंधक जीव श्रसंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। श्रेप संख्यात संख्यावाली मार्गणा-श्रोंमें उत्कृष्ट श्रनुभागके वंधक जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वंधक जीव संख्यात वहभाग प्रमाण हैं।

१८८. जघन्यका प्रकरण है। इसकी अपेदा निर्देश दो प्रकारका है — ओव और आदेश। श्रोघसे चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातधें भाग प्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातधें भाग प्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्धे अक्षाययोगी, अोदारिक काययोगी, अोदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, नपुंसकवेदी, काधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रवाज्ञानी, असंयत, अचछुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें आयु कर्मका बन्ध नहीं होता।

१८६. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं तथा अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। गोन्नकर्मका भंग आघके समान है। इसीप्रकार बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोन्नकर्मका भंग नामकर्मके समान है। शेप सब संख्यात और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओं आठों कर्मीका भंग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूद्रमसाम्परायसंयत जीवों अजघन्य अनुभाग बन्धकी अपेत्रा वास्तवमें विशेष जानना चाहिए। इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

१ ता० प्रतौ भागो (गा) इति पाटः । २ ता० प्रतौ ग्रज्ज० श्रसंखेजा भाग। ग्रज्ज० श्रसंखेजाभा०(१) ग्रा० प्रतौ ग्रज्ज० त्रसंखेज्जदिभागा इति पाटः । ३ ता० प्रतौ ग्रोघे इति पाटः । ४ ता० प्रतौ वणफदि इति म्थाने मर्वत्र 'वर्गफदिः ग्रथवा वणफित इति पाटः । ५ ता० प्रतौ मुहुममंज (प०) ग्रज्ज० ग्रथदो विसेसा इति पाटः । ६ ता० प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाटो गास्ति ।

१= परिमाणपरूवणा

१९०. परिमाणं दुविधं-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ उक्क० अणुभा० केत्ति० १ असंखेज्जा । अणुक्क० अणंता । वेद०-आउ०-णामा-गो० उक्क० संखेज्जा । अणुक्क० अणंता । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-ग्राहारग ति ।

१६१. णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० असंखेज्जा। आउ० उ० संखेजा०। अणु० असंखेजा। अहुण्णं कम्मा० एवं सत्तम् पुढवीसु। णवरि सत्तमाए पुढवीए आउ० उक्क० अणु० असंखेज्जा। एवं णिरयभंगो सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वदेवाणं [आणद याव]सव्वहु०वज्जाणं सव्वविगित्तिंदि०-सव्वपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादर-सहुम-पज्जत्तापज्जता० वादर०वणप्कदिपत्ते०पज्जत्तापज्जता० वेउव्विय०-सासण०-सम्मामिच्छादिहि ति। आणद् याव मव्वहु० ति आउ० दो वि पदा संखेजा। सव्वहु०वज्ञाणं सेसाणं कम्माणं असंखेजा।

१६२. तिरिक्खेमु अट्टण्णं कम्माणं उकः असंखेजा। अणु० अणंता। एवं

१८ परिमाणप्ररूपणा

१६०. परिगाम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निरंश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । आघमे चार घाति कमें के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । वेदनीय, आधु, नाम और गोत्रकमें के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिकाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचनुदर्शनी, भव्य, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१६१. नारिकयों में सात कर्मों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीव संख्यात हैं तथा अनुत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीव असंख्यात हैं। आठों कर्मों के आअयसे इसी प्रकार सातों पृथिवियों में जानना चाहिये। इतनी विशेषता हैं कि सातवीं पृथिवीमें आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार नारिकयों के समान सब अपर्याप्त, आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों के सिवा सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इनके बादर और सूचम तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वैकियिककाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवों के जानना चाहिये। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों आयुकर्मके दोनों ही पदवाले जीव संख्यात हैं। तथा सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर शेपमें शेप कर्मों के दोनों ही पदवाले जीव असंख्यात हैं।

१६२. तिर्यञ्जोंमें आठों कर्मांके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट

१ ता० प्रती सत्तरणं क० उ० श्रमु० श्रमखेजा। श्राउ० उ० मंखेजा। श्रमु० श्रमंखेजा। संसा श्रप्टुम्मं कम्मा० एवं, श्रा० प्रती सत्तरम् कम्मामं उक्क० श्रमु० श्रमंखेजा। एवं इति पटः। २ ता० प्रती सत्तमापुदर्वारे० इति पटः। ३ ता० प्रती श्रणाद (श्राणद) इति पटः।

कम्मइ०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-अस्णि०-अणाहारग ति।[णवरि कम्मइ०-अणाहा० श्राउ०णत्थि।] सन्त्रपंचिंदियतिरिक्खेसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणु० असंखेजा।

१६३. मणुसेसु अहुण्णं क॰ उक्क॰ संखेजा। अणु॰ असंखेजा। मणुसपज्जत्त'-मणुसिणीसु अहुण्णं कम्माणं उक्क॰ अणु॰ संखेजा'। एवं सन्बहु-आहार०-आहारिम०-अवगद्वे०-मणपज्ज०-संजद³-सामाइ०-स्रेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०।

१६४. एइंदि०-वणप्पदि-णियोदाणं सत्तण्णं कम्माणं उक्त० अणु० अणंता। आउ० उक्त० संखेजा। अणु० अणंता। तेउ०-वाउ० उक्त० अणु० असंखेजा।

१६५. पंचिदि० '-तस०२ घादि०४ उक्क० अणु० असंखेजा। वेद०-आउ०-णामा०-गोद० उक्क० संखेजा। अणु० असंखेजा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिद०-तेउ०-पम्म०- सुक्कले०-सम्मादि० खह्ग०-वेदग०-उवसम० - सण्णि ति। णवरि सुक्क०-खह्गे आउ० दो वि पदा संखेजा। १६६. वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० असंखेजा। अधवा अघादीणं

श्रनुभागके बन्धक जीव श्रनन्त हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, तीन लेश्यावाले, श्रभव्य, श्रसंज्ञी और अनाहारक जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी श्रोर श्रनाहारक जीवोंमें श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। सब पर्ख्नोन्द्रय तिर्यक्कों में श्राठों कमेंकि उत्कृष्ट श्रोर श्रनु-त्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं।

१६३. मनुष्योंमें त्राठों कर्मांके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीत्र संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीत्र संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीत्र असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनयोंमें त्राठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीत्र संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकिमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत श्रीर सूद्रमसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

१६४. एकेन्द्रिय, वनस्पितकायिक और निगाद जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट श्रीर अनुस्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रनन्त हैं। श्रायु कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्रनु-त्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रनन्त हैं। श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं।

१६५. पद्मेन्द्रिय, पद्मेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमं चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट मौर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। वदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, चत्तुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, युक्तलेश्यावाले, सम्यग्द्य न्त्रायिक सम्यग्द्य ने वदक सम्यग्द्य उपश्म सम्यग्द्य श्रीर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता हैं। श्रुक्तलेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्द्य जीवोंमं आयुक्तमंके दोनों ही पद्याले जीव संख्यात हैं। १६६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके

१ ता०-स्राण्यत्योः मगुसपजत्ता इति पाटः। २ ता० प्रतौ क० स्रागु० स्रसंखेजा, स्राण्यती कम्मार्ग् उक्क० स्रागु० श्रमंखेज्जा इति पाटः। ३ ता०स्राण्यत्योः प्रायः सर्वत्र मंजदा इति पाटः। ४ ता० प्रतौ बाउ० स्राउ० उक्क० इति पाठ । ५ ता०प्रतौ पंचिदि० पंचिदि० इति पाटः। ६ ता०प्रतौ खहग० उन्नम० इति पाटः।

यदि उवसमपच्छागदस्स कीरदि पटमसमयदेवस्स तो उक्कः ' संखंडजा। अणुक्कः असंखंडजा। एवं कम्मइ०-अणाहारएसु। मदि०-सुदः आउ० उक्कः असंखेजा। अणु० अणंता। सेसाणं सत्तण्णं क० उक्कः अणु० ओघं। एवं असंज०-मिच्छादिद्वि ति। विभंगे घादि०४-आउ० उक्कः अणु० असंखेजा। अघादीणं उक्कः संखेजा। अणुक्कः असंखेजा। एवं संजदासंजदाः।

१९७. जहण्णं । दुवि०-ओघे० आदे । ओघे० घादि०४ जह० संखेजा । अज० अणंता । वेद०-आउ०-णामा० ज० अज० अणंता । गोद० जह० असंखेजा । अज० अणंता । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवंस०-कोघादि४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-अणाहारग त्ति ।

१६=, णेरइएस अट्टणं क० जह० अजह० केत्तिया! असंखेजा। एवं सत्तसु पुढवीसु। एवं णिरयभंगो सन्वपंचिदि०तिरि०-मणुसअपज्ञ० देवा याव सहस्सार ति सन्विविगिलिदि०-सन्वपुढवि०-आउ० तेउ०-बाउ०-बादरवणप्किदिपत्ते०-पंचिदि० तस० अपज्ज०-वेउ०-वउन्वियमि०।

बन्धक जीव असंख्यात हैं। अथवा उपशमश्रेणींसे आया हुआ जो प्रथम समयवर्ती देव अवाित कर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवंव करता हैं उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययांगी और अनाहारक जीवोंमें अवाितकर्मीक उत्कृष्ट अनुभागक्यकी अपेक्षा उक्त नियम जानना चािह्ये। मत्यहानी और श्रताज्ञानी जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग अविके समान है। इसी प्रकार असंयत और मिण्याद्य जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुक्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अवाितकर्म और आयुक्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अवाित कर्मीक उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये।

इस् प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

१६७. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। आंघसे चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। वंदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वंधक जीव अनन्त हैं। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी औदारिककाययोगी, श्रीदारिकिमिश्रकाय योगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रांधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रु ताज्ञानी, असंयत, अच्छुदर्शनी, भन्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिय।

१९८. नारिकयोंमें आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिय। इसी प्रकार नारिकयोंके समान सब पंचेन्द्रियतियँच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, सहस्रारकल्प तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक

१ ग्रा॰ प्रती -देवस्स उवकः इति पाटः । २ ता॰-ग्रा॰प्रत्योः ग्राहारम त्ति इति पाठः ।

१९९. मणुस १ घदि०४ जह० संखेजा। अज० असंखेजा। सेसाणं जह० अज० असंखेजा। एवं पंचिंदि०-तस०२-पंचमण-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं० तेउ०-पम्म०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि ति। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सब्ब-पगदीणं जह० अज० संखेजा। एवं सब्बद्धिल-आहार०-आहारिम०-अवगद्वे०-मण-पज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०-सुहुमसंप०। आणदादि याव अवराजिदा ति' आउ० जह० अज० संखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा।

२००. तिरिक्षेसु घादि०४ गोद० जह० असंखेज्जा । अज० अणंता । सेसाणं जह० अज० अणंता ।

२०१. एइंदिएसु गोद० जह० असंखेज्जा । अज० अणंता । सेसाणं जह० अज० अणंता । एवं बादरपज्जत्त-अपज्जत्ता० सुहुमपज्जत्त-अपज्जत्ता० सञ्बवणप्पदि० । णियोदाणं अट्टण्णं क० ज० अज० अणंता ।

२०२. आभि०-सुद्०-ओघि० घादि०४-आउ० जह० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा। एवं ओघिदं०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०। शरीर, पंचेन्द्रिय अपयाप्त, त्रसअपर्याप्त, वैकियिक काययांगा और वैकियिकामश्रकाययांगा जीवोंमें जानना चाहिये।

१६६. मनुष्योंमें चार चाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। रोप कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय द्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवदी पुरुपवदी, विभंगज्ञानी, चलुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिण्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिक देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविद्युद्धिसंयत और सूच्मसम्परायसंयत जीवोंक जानना चाहिये। आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें आयु कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वंधक जीव संख्यात हैं। रोप कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वंधक जीव संख्यात हैं। रोप कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वंधक जीव संख्यात हैं।

२०८. तिर्यचोमें चार घातिकर्म और गांत्रकर्मके जवन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीव अनन्त हैं। शेप कर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

२०१. एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके वधक जीव ऋसंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव ऋगन्त हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव ऋगन्त हैं। इसी प्रकार बाहर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूहम एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, साहम एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा सब वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिये। निगोद जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अगन्त हैं।

२०२. त्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी त्रोर त्रविधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म श्रोर श्रायुकर्मके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। शेष कर्मों के जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार श्रविध-दशनी, सम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट श्रोर उपशामसम्यग्दिष्ट जीवोंक जानना चाहिये। संयतासंयत

१ त० प्रती द्राणा (द्याणा) दादि उकस्यि के (गे) वेज्लार्, चार्य प्रती द्र्याणदादि याव उवस्मि-गंबरका इति पाटः ।

संजदासंजदा० घादि०४ जह० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा। तिण्णिले०-अब्भवसि०-असण्णि०-आहारगं ति तिरिक्खोघं। सुक्काए घादि०४ जह० संखेज्जा। अज० असंखेज्जां। आउ० जह० अज० संखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा। एवं खह्गसम्मा०।

एवं परिमाणं समत्तं १६ खेत्तपरूवणा

२०३. खंत्तं दृतिधं-जह० उक्त०। उक्त० पगदं। दुति०-ओघे० आदे०। ओघे० अहण्णं कम्माणं उक्त० अणुमानवंधगा केविड खंत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिमागे। अणुक्त० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०- अचक्खुदं०-तिण्णिले० - भवसि० - अवभवसि०-मिच्छादि०-असण्ण-आहार०-अणाहारग ति।

२०४. एइंदिएसु० घादि०४ उक्क० अणु० सन्त्रलो०। वेद०-णाम० उक्क० लोगस्स संखेज्ज०। अणु० सन्त्रलो०। आउ०-गोद० उक्क० लोग० असं०। अणु० सन्त्रलो०। बाद्र०-बादरपञ्जत्त-अपज्जत्त० आउ० उक्क० लो० असं०। अणु०

जीवोंमें चार घातिकर्मीके जयन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। शेप कर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। तीन-लंश्याचाले, अभव्य, असंज्ञी और आहारक जीवोंके सामान्य तियंचोंके समान भंग है। शुक्तलेश्या-वाले जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात है, अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। आयुक्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव क्रसंख्यात हैं। श्री प्रकार चायिकसम्य-ग्रिष्ट जीवोंमें जानना चाहिये। इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

१९ क्षेत्रप्ररूपणा

२०३. तंत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है — ओघ और आदेश । ओघ से आठ कर्मिक उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कितना तंत्र है ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण तेत्र है । अनुत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीवोंका सब लोक तेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तियंच, काययोगी, औदारिकवाययोगी, औदारिकिमिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रताज्ञानी, असंयत, अचनुदर्शनी, तीन लेक्यावाले, भव्य, अभव्य, मिण्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहरक जीवोंके जानना चाहिये।

२०४. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मांके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का सबलांक चेत्र है। वेदतीय और नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। आयु और गोत्रगर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका लोक असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीवोंका सब लोक चेत्र है। बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त

१ ता० प्रती द्याणाहणा इति पाट ।

लोगस्स संखेज्जदिभा०। सेसाणं एइंदियभंगो। सन्वसुहुमाणं सन्ववणप्फदि'-णियोदाणं सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सन्वलो०। आउ० उक्क० लो० असंखे०। अणु० सन्वलो०। णविर वणप्फदि-णियोदाणं वेद०-णामा-गोदाणं उक्क० लो० असंखे०। बादरवणप्फदि-णियोद० तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेसु वेद०-णामा०-गोद० उक्क० आउ० दो वि पदा लो० असंखे०। पुढ०-आउ०-तेउ० अहुण्णं क० ओघं। बादरपुढ०-आउ०-तेउ० सत्तण्णं क० उक्क० लो० असं०। अणु० सन्वलो०। आउ० उक्क० अणु० लो० असंखे०। बादरपुढ०-आउ०-तेउ० अपज्जत्ता० मणुसअपज्जत्तभंगो। बादरपुढ०-आउ०-तेउ० अपज्जता० घादि०४ उक्क० अणु० सन्वलो०। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० लो० असं०। अपंज तिउ प्रकं लो० असं०। अणु० सन्वलो०। आउ० उक्क० लो० असं०। एवं वाऊणं पि। प्रविर पिन्ह लोगस्स असंखेज्ज० तिन्ह लोगस्स संखेज्ज०। आउ० उक्क० लोग० असं०। बादरवणप्फदिपत्तेय० बादरपुढवि०भंगो। सेसाणं संखेज्ज-असंखेज्ज-जीविगाणं अहुण्णं क० उक्क० अण्० लो० असंखे०। एवं उक्करसं समत्तं।

जीवोंमें त्रायकर्मके उत्कृष्ट त्रनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके त्रासंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यानवें भाग प्रमाण चेत्र है। शेप कर्मांका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। सब सुद्दम, बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक त्रेत्र है। आयुक्तमके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके त्रासंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। वाद्र वनस्पतिकायिक. वादर निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें बदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका तथा। आयुके दोनों ही पदोंके वन्यक जीवोंका लोकके असंख्यानवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। प्रथिवीकायिक, जलकायिक श्रीर अग्निकायिक जीवोंमें आठ कर्मीका भंग श्रीघके समान है। वादर प्रथिवीकायिक, वादर जलकायिक स्रोर वादर स्रिप्तकायिक जीवोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट ऋनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण त्रेत्र है। ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक नेब है। आयुक्रमेंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र हैं । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त ऋौर बादर ऋफ्रिकायिक पर्याप्त जीवोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान भंग है। वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बाटर जलकायिक अपर्याप्त और बाट्र अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें चार घाति कर्मीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवं भाग प्रमाण नेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। आयुकर्मके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र हैं। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँपर लोकका ऋसंख्यातवाँ भाग प्रमाण चेत्र कहा है वहाँ पर लोकका संख्या-तवाँ भाग प्रमाण नेत्र कहना चाहिये। त्रायुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका लोकके ऋमंत्यातवें भाग प्रमाण क्रेत्र है। बाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बाद्र पृथिबीकायिक जीवोंके समान भंग है। शेप संख्यात और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओं में आठों कर्मीके उत्क्रप्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है ।

श्री० प्रती वणफिद इति पाटः । २ स्रा० प्रती स्राउ० स्रापु० इति पाटः ।

२०५. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि४-गोद० जह० अणुमागवंधगा केवडि खेत्ते ? लो० असं० । अज० सन्वलो० । वेद०-आउ०-णामा०

विशोपार्थ-वर्तमान निवासकी चेत्र संज्ञा है। यहाँ उत्कृष्ट ऋौर जघन्य ऋनुभागवालोंके भेदसे इसके दो भेद किये गये हैं। चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संज्ञी, पर्याप्त और साकार उपयोगवालेके उत्कृष्ट संक्लेशके होनेपर होता है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मका उत्कृष्ट त्रानुभागवन्ध त्तपक सूत्तमसाम्परायिक जीवके होता है। तथा त्रायुकर्मका उत्कृष्ट त्रानुभागवन्ध त्राप्र-मत्तसंयतके होता है। विचार कर देखनेपर ऐसे जीवोंका चेत्र लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण है त्रातः यहाँ त्राठों कर्मोंके उन्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीबोंका त्रेत्र उक्त प्रमाण कहा है। मूलमें कुछ ऐसी मार्गणाएं गिनाई हैं जिनमें यह क्वेत्र सम्बन्धी ऋषय प्ररूपणा ऋविकल घटिन हो जाती है। इसका कारण यह है कि इन सब मार्गणात्रोंमें सामान्यतः यथासम्भव संज्ञी, पश्चेन्द्रिय ऋबस्था सम्भव है और मंज्ञी पञ्चोन्द्रिय जीव जिन परिग्णामोंसे इन कर्मा का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं वैसी ऋवस्थामें चेत्र लोकके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। एकेन्द्रियोंमें ऋाठों कर्मीका श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य सभी एकेन्द्रिय करते हैं इसलिए इस अपेन्नासे सूद कमींके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग बन्धकी श्रपेत्ता सर्व लांक नेत्र कहा है। मात्र श्राठों कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकी श्रपेत्ता कुछ बिशेपता है। जो इस प्रकार है – एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मांका उत्कृष्ट अनुभागवन्य यदापि बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ही करते हैं परन्तु इस योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिग्णम भारग्णन्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव हैं त्र्यार मारणान्तिक समुद्धानके समय इन जीवोंका सर्व लोक चेत्र पाया जातः। है, अतः चार घातिकर्मीके उन्कृष्ट अनुभागवन्ध की अपेन्ना सब लोक नेत्र कहा है। अब रहे चार श्रघातिकर्म सो उनमेंसे बंदनीय श्रीर नामकर्मका उक्षण्ट श्रनुभागवन्ध यद्यपि वादर एकेन्द्रिय पर्याप ही करते हैं परन्तु इन कर्मी का उत्कृष्ट अनुभागवन्य विशुद्ध परिणामोंसे होता है और ऐसे जीवोंका त्रेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होता है, अतः इन दोनों कर्मीके उक्टप्ट अनु-भागवन्धकी ऋषेत्रा त्रेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ऋष्युकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग वन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव करते हुए भी एक तो आयकर्मका बन्धकाल थोड़ा है, दूसरे उत्क्रुष्ट अनुसागवन्ध बहुत ही स्वरूप जीव करते हैं इस लिए इन जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाए प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुसागवन्ध वादर प्रथिवी कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव ही करते हैं और सर्वविशुद्ध अवस्थामें इनका त्रेत्र लोकके त्रसंख्यानवें भागप्रमाण प्राप्त होता है त्रातः गोत्रकर्मके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धकी श्चपेत्ता यह त्रेत्र उक्त प्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्र और बादर एकेन्द्रिय ऋप-र्याप्त जीवोंमें त्रायकर्ममें एकेन्द्रियोंकी ऋषेत्वा जो विशेषता कही है उसका कारण यह है कि आयु-कर्मका बन्ध मार्णान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता श्रौर उपपाद पद व मार्णान्तिक पदको छोड़-कर इन जीवोंका चेत्र अधिकसे अधिक लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए इनमें आयुक्रमंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेद्या वह लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा आयु-कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्यकी अपेदा वह लोकके असंख्यातवें भागत्रमाए है यह स्पष्ट ही है। इस प्रकार यहाँ जिस प्रकार उत्कृष्ट ऋौर अनुत्कृष्ट चेत्रका विचार कर वह घटित करके बतलाया गया है उसी प्रकार आगे जिन मार्गणात्रोंमें उस चेत्रका निर्देश किया है उसका विचार कर लेना चाहिए। सब विशेषताएँ बद्धिगम्य होनेसे यहाँ हमने उनका विचार नहीं किया है।

२०४. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है-स्रोघ स्रोर आदेश। स्रोघसे चार घातिकर्म स्रोर गोत्रकर्मके जघन्य स्रनुभागके बन्धक जीवोंका कितना तंत्र है ? लोकका स्रसंख्यातवां भाग प्रमाण तंत्र है। स्रजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक जेत्र है। बेदनीय, जह० अज० सन्वलो०। एवं ओघभंगो कायजोगि कम्मइ०-णवंस०-कोधादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-किण्णले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-आहार०-अणाहारग त्ति।

२०६. तिरिक्षेसु घादि०४-वेद० आउ० णाम० मूलोघं। गोद० जह० लो० संखे०। अज० सव्वलो०। एवं ओरालि०-ओरालियमि० णील०-काउ०-असण्णि ति।

२०७. [एइंदिएसु घादि०४-गोद० जह० लो० संखे०। अज० सम्बलो०। सेसाणं मूलोघं। एवं बादर-पज्जत-अपज्जत०। णविश् आउ० ज० अज० लो० संखेज०। सम्बसुहुमाणं अहुण्णं कम्माणं जह० अज० सम्बलो०। पुटवि०-आउ० घादि०४ ओघमंगो। सेसाणं सम्ब० दो पदा सम्बलो०। एवं वणप्कदि-णियोद०। बादरपुट०-आउ० तेसिं अपज्ज० घादि०४ ज० लो० असंखे०। अज० सम्बलो०। आउ० जह० अज० लो० असं०। सेसाणं दो' पदा सम्बलो०। तेउ० घादि०४-गोद० जह० लो० असं०। अज० सम्बलो०। सेसाणं दो पदा सम्बलो०। वादरतेउ० तस्सेव अपज्ज०

श्रायु श्रीर नाम कर्मके जयन्य और श्रजयन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक तेत्र है। इसी प्रकार श्रीघके समान काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, काधादि चार कपायवाले, मत्य-ज्ञानी, श्रुताज्ञानी श्रासंयत, श्रचजुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, भव्य, श्राभव्य, मिध्यादृष्टि, श्राहारक श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२०६. तियंक्क्रोंमें चार घातिकर्म, वेदनीय, अध्यु और नामकमेका भङ्ग मूलोयके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण देव है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक देव है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले और असंझी जीवोंके जानना चाहिये।

२००. एकेन्द्रियों में चार चानिकर्म और गोत्रकर्मके जवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है। अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। होष कर्मीका भक्त मूलोघके समान है। इसी प्रकार बादरएकेन्द्रिय, वादरएकेन्द्रियपर्याप्त और बादरएकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके जवन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है। सब सूद्म जीवोंमें आठों कर्मोंके जवन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका भक्त खोषक समान है। शेष कर्मोंके दो पदोंका सब लोक त्रेत्र है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगाद जीवोंके जानना चाहिये। वादर प्रथिवीकायिक, बादर जलकायिक और इनके अपर्याप्त जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जानना चाहिये। वादर प्रथिवीकायिक, बादर जलकायिक और इनके अपर्याप्त जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है। आयु कर्मके जवन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है। शेष कर्मोंक दो पदवाले जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। अपनकायिक जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्र कर्मके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके दो पदवाले जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके ज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके ज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य और अज्ञवन्य आनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र है। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य और अज्ञवन्य और अज्ञवन्य आनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य और अज्ञवन्य आनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य और अज्ञवन्य आनुभागके बन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। शेष कर्मोंके ज्ञान्य और अज्ञवन्य आनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। श्रवक्रक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। श्रवक्रक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो। श्रवक्रक लोकोंका लोक त्रेत्र हो। श्रवक्रवन्य और अज्ञवन्य क्राव्यवन्य क्राव्यवन्य आनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोक त्रेत्र हो।

१ ता० प्रती सेसार्ग पि दो इति पाटः ।

आउ० जह० अज० लो० असं०। सेसाणं तं चेव। एवं वाऊणं पि। णवारं जिम्ह लोग० असंखेजिदि० तिम्ह लोग० संखेजिदि०। सम्बन्धहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो। सन्ववणण्फिदि-णियोदाणं सन्वपुढविभंगो। सेसाणं संखेज-असंखेजिजीविगाणं अहुण्णं क० जह० अज० लो० असं०। णवरि बादरवाउ०पजत्ते अहुण्णं क० जह० अज० लो० संखेल। एवं खेतं समत्तं।

२० फोसणपरूवणा

२०८. फोसणं दुविधं--जह० उक्त० । उक्त० पगदं । दुवि०-ओघे०-आदे० । ओघे०

अनुभागंक बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण नेत्र है। शेष कमींका वहीं भङ्ग है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका असंख्यातवीं भाग प्रमाण नेत्र कहा है वहाँ पर लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण नेत्र जानना चाहिये। सब सूच्म जीवोंमें सृच्म एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सब प्रथिवी-कायिक जीवोंके समान भङ्ग है। शेष संख्यात और असंख्यात जीववाली मार्गणाओंमें आठों कमेंकि जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंमें आठों कमेंकि जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंमें आठों कमेंकि जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण नेत्र है।

विशेषार्थ —तीन चाति कर्मीका जबन्य अनुभागवन्य चपक सदमसाम्परायिक जीवके होता है। मोहनीयका जबन्य अनुमागबन्य अनिवृत्तिकरण चषक जीवके होता है। तथा गांत्र कर्मका जघन्य अनुभागवन्य सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है । इसलिए इन पाँच कर्मोंके जघन्य श्रनुभागवन्धकी अपन्ना नेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । अब रहे शेष तीन कर्म सं उनके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र कहने का कारण यह है कि इन तीन कर्मांका जघन्य अनुभागवन्य अपनी अपनी विशेषता के रहने पर अन्यतर जीवोंके हो सकता है। श्राठों कर्मीक अजयन्य अनुभागवन्यकी अपेद्धा सर्व लोक देत्र है यह स्पष्ट ही है। यहाँ श्रोघके समान जिन मार्गणात्रोंमें चेत्र सम्भव है उनके नाम मूलमें गिनाए हैं सो अपनी अपनी विशेषताको ध्यानमें रावकर उन मार्गणा श्रोंमें श्रोचके समान क्षेत्र चटिन कर लेना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तिर्यंचोंमं सात कर्माके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धकी अपेचा चेत्र तो ओघके समान ही बन जाता है। मात्र गांत्रकर्ममं जवन्य ऋनुभागबन्यकी ऋपेचा कुछ विशेषता है। बात यह है कि तिर्यचोंमें गोत्रकर्मका जवन्य अनुभागवन्ध सर्विविद्युद्ध बाद्र अप्रिकायिक पर्याप्त और बाद्र वायकायिक पर्याप्त जीव करते हैं और एसी अवस्थामें इनका त्रेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। अतः तिर्यचोमें गांत्रकर्मके जवन्य श्रनुभागबन्धकी अपेचा चेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। यहाँ मूलमें श्रीदारिककाययोग श्रादि श्रन्य पाँच मार्गणाश्रोमें चेत्रप्ररूपणाको सामान्य तियंचोंक समान जाननेकी सुचना की हैं सो इसका कारण यह है इनमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र बन जाता है। यहाँ तक हमने कुछ मार्ग णात्रों में चेत्रको घटित करके बतलाया है। त्रागे मूलमें जिन मार्गणात्रों में क्षेत्र सम्बन्धी विशेषता कही है उसे उन उन मार्गणात्रोंमें स्वामित्यको जानकर घटित कर लेनी चाहिए। विस्तारभयसे यहाँ हमने सबका अलग अलग विचार नहीं किया है। इस प्रकार चंत्र समाप्त हुआ।

२० स्पर्शनप्ररूपणा

२०८. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेत्रा निर्देश दो प्रकारका है—स्रोघ और आदेश। स्रोचसे चार वाति कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक यादि०४ उक्क० अणुभागवंधगेहि के बित्तं फोसिदं ? लोगस्स असं० अडु-तेरह०। अणु० सन्वलो०। चदुण्णं उक्कस्सं खेत्तभंगो। अणुक्कस्सं सन्वलोगे। एवं ओघभंगो कायजोगि-कोघादि०४-मदि०-सुद्०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-मिच्छा० आहारगति।

२०६. षोरइएसु घादि०४ उक्क० अणुक्क० झचोद०। वेद० णामा० गोद० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० छचो०। आउ० खेत्तभंगो। एवं सत्तसु पुढवीसु अप्पप्पणो फोसणं पोदव्वं।

जीकोंन कितने तंत्रका स्पर्शन किया है ? लांकके असंख्यातवें भागप्रमाण, आठ बट चौदह राजू और तेरह बटे चौदह राजू तंत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोंक तेत्रका स्पर्शन किया है। चार अधाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्परान तेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोंक तंत्रका स्पर्शन किया है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रांधादि चार कथायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अच्चुदर्शनी, भव्य, मिण्या-दृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्यसे चार घाति कमों के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन तीन प्रकारका बतलाया है। लोक के असंख्यात मागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान काल की अपेचा कहा है। कुछ कम आठवटे चौदह राजु स्पर्शन विहारवास्वस्थान आदि की अपेचा कहा है और कुछ कम तेरहबटे चौदह राजु स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेचा कहा है। इन चार कमों के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेचा स्पर्शन सर्वलांक है यह स्पष्ट ही है। चार अघाति कमोंके उत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान कहने का कारण यह है कि इनमें से तीन कमों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामों में चपक सूच्मसाम्परायिक और अध्यक्तमका अप्रमत्त संयत यनुष्यों के ही होता है और इनका चेत्र लोक के असंख्यात मागसे अधिक नहीं बनता। यदि इनके स्परानका विचार किया जाता है तो सब मिलाकर वह भी लोक के असंख्यात में भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। इन चार कमों के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेचा स्पर्शन सर्व लोक है। यहाँ मूलमें काययोगी आदि अन्य कुछ मार्गणाओं का कथन खोघके समान कहा है सो अपनी अपनी विशेषता को समस्कर इसे घटित कर लेना चाहिए। अभिप्राय इतना है कि ओघसे आठों कमों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेचा को स्पर्शन वत्ता था है वह इन मार्गणाओं में भी वन जाता है।

२०६. नारिकयों में चार घाति कर्मीके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय नाम श्रीर गोत्र कर्मके उत्कृष्ट श्रमुभाग बन्धका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भंग चेत्रके समान है। इसी प्रकार सातों प्रथिवियोंमें श्रपना श्रपना स्परान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तरकमें वेदनीय नाम और गांत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीवके तथा अग्युकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तत्त्रायोग्य विशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीवके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन तेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें इससे अधिक स्पर्शन सम्भव नहीं है। तथा आयुकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्यग्दृष्टि और मिण्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके हो सकता है परन्तु ऐसी अवस्थामें न तो मारणान्तिक समुद्घात होता है और नही उपपाद्यद् होता है, अतः आयुक्रमके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यकी अपेता भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। शोष स्पर्शन स्पष्ट ही है। यहाँ एक बातकी आर संकेत कर देना आवश्यक है कि यहाँ चार याति आदि कर्मों के उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट अनुभागवन्यकी अपेता स्पर्शनका निर्देश करते समय वतमानकालीन स्पर्शनका उल्लेख नहीं किया है सो उसका यही कारण प्रतीत होता है कि इस दृष्टिसे केत्रकी अपेता स्पर्शनमें काई विश्वपता नहीं है यह जानकर उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है।

२१०. तिरिक्खेमु सत्तण्णं क० उक्क० छचो०, अणु० सन्तर्ला०। आउ० खेत्त०। पंचिदि०तिरिक्ख३ सत्तण्णं क० उक्क० छचो०, अणु० लो० असंखे० वा सन्वलोगो वा। आउ० खेत्त०। पंचिदि०तिरिक्खअपञ्ज० घादि०४ उक्क० अणु० लोग० असं० सन्तर्लोगो वा। वेद०णामा गोदा० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० लो० असंखे०भागो वा सन्वलोगो वा। आउ० खेत्त०। एवं मणुसअपञ्ज० सन्तर्विगलिंदि० पंचिदि० तस० अपञ्ज० बादरपुढ० आउ० तेउ० चादरवणप्कदिपत्ते०पञ्जत्ताणं च। बादरवाउ०पञ्जत्ता० तं चेव। णवरि जिम्ह लो० असं० तिम्ह लो० संखे०।

२१०. तियंचोमं सात कमें के उत्कृष्ट अनुभागवन्यका म्परांत कुछ कम छह बट चाँदह राजु है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्परांत सब लोक है। आयुक्तमंका भंग सेत्रके समान है। पंचेन्द्रिय तियंच त्रिकमें सात कमें के उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्परांत कुछ कम छह बटे चाँदह राजु है अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्परांत लोकके असंस्व्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक है। धायु कमेंका भंग सेत्रके समान है। पंचेन्द्रिय तियंच अपयाप्तकों में चार घाति कमें के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंस्व्यातवें भागप्रमाण और सब लोक सेत्रका स्परांत किया है। बंदनीय, नाम और गोत्र कमेंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंस्व्यातवें भागप्रमाण और सब लोक सेत्रका स्परांत किया है। आयुक्तमंका भक्त सेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपयाप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपयाप्त, त्रस अपयाप्त, बादर प्रथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर बनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकका असंस्थातवाँ भाग स्परांत कहा है, वहाँ लोकका संस्थातवाँ भाग प्रमाण स्परांत कहान चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्जोमें चार चाति कर्मोकी अपेना नीचे सातवीं पृथिबी तक और वेटनीय. नाम व गोत्र कर्मकी अपेना अपर अच्युत करूप तक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्पर्शन सम्भव हैं, इसलिए इनमें सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राज कहा है। इन कमोंकी अपना यहां बात पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें जाननी चाहिए, क्योंकि सामान्य तिर्यञ्जोमे इन कर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध पञ्चेन्द्रिय विर्यञ्चित्रिककी अपेता ही कहा है। पस्त्रेन्द्रिय तियुक्त्रोंका वर्तमान स्पर्शन लाकके असंख्यातवें भागप्रमाण हे और अतीन कालीन स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धात व उपपाद पदकी अपन्तः सब लोक है इसलिए इनमें सात कर्मीके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों-का वर्तमान कालीन स्परीन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्परीन अपेचा बिशेपसे सर्वलोक है। यतः इनमं मारणान्तिक समुद्यातके समय भी चार वातिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है अतः इनमें चार धातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रीर सात कर्मीके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धकी अपेचा उक्त प्रमाण स्परान कहा है। परन्तु वेदनीय, नाम और गोत्रकमका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध मारणान्तिक समुद्धात श्रीर उपपाद पदके समय सम्भव नहीं है अतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धकी अपेचा स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। त्र्यायुकर्मका विचार इन सब मार्गणात्रोंमें चेत्रके समान ही है। कारण कि मारणान्तिक समुद्धात व उपपाद पदके समय आयुक्मका बन्ध नहीं होता। मुलमें मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें पर्ख्नेन्द्रिय तिर्यक्त लब्ध्यपर्याप्तकोंक समान हो स्पर्शन उपलब्ध होता है इसलिए उनके कथनको पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च सन्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा है। मात्र वायुकायिक पर्याप्तकोंमें जो विशेषता है वह मृलमें कही ही है।

- २११. मणुस०३ सत्तण्णं क० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० लोगस्स असंखेजिदि-भागो सन्वलोगो वा । आउ० खेत्तभंगो । देत्रेसु चादि०४ उक्क० अणु० अट्ट-णवचो० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अट्टचो० । अणु० अट्ट-णवचो० । आउ० उक्क० अणु० अट्टचो० । एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदन्वं ।
- २१२. एइंदिएसु घादि०४ उक्क० अणुक्क० सन्वलो०। वेद०-णामा० उक्क० लो० संखे०। अणु० सन्त्रलो०। आउ०-गोद० उक्क० लो० असंखे०। अणु० सन्त्रलो०। एवं बादरपजत्तापञ्ज०। णवरि आउ० उक्क० लोग० असं०। अणु० लो० संखेज०। सन्त्र-

२११. मनुष्यत्रिक्तमें सात कमीं के उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीयोंका स्परान चेश्रक समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंका स्परान लोकके असंख्यातयें भागप्रमाण और सब लोक है। आयु कर्मका भक्न चेश्रके समान है। देवोंमें चार याति कर्मोंक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजु और कुछ कम नो बटे चौद्ह राजु चेश्रका स्परान किया है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजु चेश्रका स्परान किया है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजु चेश्रका स्परान किया है। आयु कर्मक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजु चेश्रका स्परान किया है। इसी प्रकार सब देवोंक अपना अपना स्परान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनुष्यित्रकमं चार घातिकमंकि। उत्कृष्ट अनुभागवन्य उत्कृष्ट मंक्लेश युक्त मिश्यादृष्टिकं स्त्रोर वेदनीय, नाम व गांत्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्य च्यकश्रेणिमं होता है। यतः यह स्पर्शन च्यके समान ही प्राप्त होता है इसलिए इसे चेत्रके समान कहा है। इनमें इन कमें के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्पर्शन तथा आयुक्तमंका दोनों प्रकारका स्पर्शन स्पष्ट ही है। देवोंमें वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इनके उन्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और चार घाति कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु अगर कहा है। इन सातों कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य किसी भी अवस्थामं सम्भव है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। आयुक्रमंका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इसके उक्त दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन हुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। यह तो सामान्य देवोंकी अपेन्ना स्पर्शन हुआ। इसी प्रकार सवत्र देवोंमें अपने अपने स्पर्शनका विचार कर वह जिस्न कर्मकी अपेन्ना जहाँ जो सम्भव हो, ले आना चाहिए।

२१२. एकेन्द्रियों मं चार घातिकर्मा के उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक संत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय श्रीर नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण सेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक सेत्रका स्पर्शन किया है। आयु और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातयें भाग प्रमाण सेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक सेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषना है कि आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके अस्ख्यातवें

१ त्रा॰ प्रती मन्नरस् क॰ उक्क॰ खेत्तमंगी । देवेमु इति पाठः ।

सुहुमाणं सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्यलो० । आउ० उक्क० लो० असंखे० सन्बलोगो वा । अणु० सन्बलो० ।

२१३. पंचिदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० अट्ट-तेरह०। अणु० अट्ट० सव्वली०। वेद० णामा-गोदा० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ट० सव्वलो०। आउ० उक्क० खेत्त०। अणु० अट्टचो०। एवं पंचमण०-पंचवचि० इत्थि० पुरिस० विभंग०-चक्खुदं० सण्णि ति। २१४. पुढवि०-आउ०-तेउ० वाउ० वादि०४ उक्क० लो० असंखे० सव्वलो०।

भाग प्रमाण नेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण नेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूच्म जीवोंमें सात कर्मोंक बन्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु भागके बन्धक जीवोंने सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है तथा आयुक्रमके बत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ - एवे न्द्रियोमें वेदनीय और नाम कर्मका सर्वविशुद्ध बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव भी उत्कृष्ट अनुभागवन्य करते हैं। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यात वें भाग प्रमाण कहा है। आयु दर्भका उत्कृष्ट अनुभागवन्य नत्प्रायोग्य अवस्थामें और गांत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य पृथिबी, जल और प्रत्येक वनस्पति ये नीनों वादर पर्याप्त सर्व विशुद्ध अवस्थामें करते हैं। यतः इन जीवोंके ऐसी अवस्थामें स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपयोप्त जीवोंमें जिस अवस्थामें सर्वलोक स्पर्शन होता है उस अवस्थामें आयु कर्मका बन्ध सम्भव नहीं, अतः इनमें आयुक्तमंके अनुकृष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकक संख्यात्र्वें भागप्रमाण कहा है। होव कथन सुगम है।

२१३. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवांमें चार वातिकमींक उन्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवांने कुछ कम आठ बट चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु केत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवांने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक केत्रका स्पर्शन किया है। बदनीय, नाम और गोत्र कमके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंक। स्पर्शन केत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक केत्रका स्पर्शन किया है। आयु कमके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंक। स्पर्शन केत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक केत्रका स्पर्शन किया है। आयु कमके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंक। स्पर्शन किया है। इसी अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु केत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचगयोगी, स्वीवेदी, पुरुपवेदी, विभगवानी, चजुदर्शनी और संजी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन पञ्चेन्द्रिय आदि चारों प्रकारके जीवोंमें यद्यपि मरणान्तिक समुद्धानके समय भी चार घाति कर्मांका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है पर ये जीव जब अपने उत्कृष्ट बन्धके याग्य जीवोंमें ही मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हों तभी यह सम्भव है, इसलिए इनमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्वलाक न कहकर कुछ कम आठ वटे चोदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चोदह राजु कहा है। इनमें आयु कमका बन्ध मरणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता, इसलिए इनमें इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चोदह राजु कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाणें गिनाई हैं उनमें यह स्पर्शन सम्भव होनेसे उनके कथनको इन पंचेन्द्रिय।दि चारो मार्गणाओं के स्पर्शनक समान कहा है। शेष कथन सुनम है। २१४. प्रिथिकार्यक, जलकायिक, अगिनकायिक और वायकायिक जीवोंमें घार धाति-

अणु० सन्वलो०। सेसाणं उक्क० अणु० खेत्तभंगो। बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० सत्तण्णं क० पुढविभंगो। आउ० उक्क० अणु० लो० असं०। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०अपज्ञ० ्घादि०४ उक्क० अणु० सन्वलो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० लो० असंखे०। अणु० सन्वलो०। आउ० उक्क० अणु० लो० असं०। णविर वाउ० जिन्ह लोग० असंखे०। अणु० सन्वलो०। बादरवणप्कि लाग० असंखे०। वणप्कि णियोद० घादि०४ उक्क० अणु० सन्वलो०। सेमाणं उक्क० लोग० असंखे०। अणु० सन्वलो०। बादरवणप्कि द०-बादरवणण्कि वादरपुढविअपज्ञत्तमंगो। बादरवणप्कि दिपत्ते० बादरपुढविभंगो। सन्वसुद्दमाणं सहमे इंदियमंगो।

२१५. ओरालि० घादि०४ उक्क० छचीह्०। अणु० सव्वलो०। सेसाणं खेत्तभंगो। ओरालियमि० अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०।

कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चुंबका स्पर्शन किया है। शेष कर्मीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्परान क्षेत्रके समान है। वाद्र पृथिवी-कायिक, वादर जलकायिक, वादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंमें सात कर्मीक उन्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पृथिवीकार्यिक जीवोंके समान है। श्रायकमंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ज्ञेत्रका स्पर्शन किया है। बादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त श्रीर वादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मीक उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक त्रंत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम ख्रौर गोत्रक्रमके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लांकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक नंत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्तमके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका ऋसंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्रेत्र कहा है वहाँ पर वायुकायिक जीवोंमें लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण त्रेत्र कहना चाहियं । वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोमें चार घातिकर्मांके उत्क्रष्ट और श्रमुत्कृष्ट त्रमुभागक बन्धक जीवोंने सब लोक त्रेत्रका स्पर्शन किया है। शेप कर्मीके उत्कृष्ट त्रमुभागके वन्धक जीवोंने लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। बादर बनस्पतिकायिक, बादर बनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान भग है। बादुर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग हैं। सब सूचम जीवोंमें सूचम एकेन्द्रियोंके समान भंग है।

विशेषार्थ — पहले हम एकेन्द्रियों और उनके अवान्तर भेदोंमें स्पर्शनको घटित करके बतला आये हैं। उसे ध्यानमें लेकर और इन पृथिवीकायिक आदि जीवोंकी अवान्तर विशेषता जानकर यह स्पर्शन ले आना चाहिए।

२१५. श्रोदारिक काययोगी जीवोंमें चार यति कर्मांके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेप कर्मोंका भंग चेत्रक समान है। श्रोदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें श्राट कर्मोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

२१६. वेउन्ति व्यादि०४ उक्त अणु० अट्ट-तेरह०। वेद० णामा-गो० उक्त० अट्ट०। अणु० अट्ट-तेरह०। आउ० उक्त० अणु० अट्ट०। वेउन्तियमि०-आहार०-आहारमि०-अवमद्वे०-मणपज्ञ०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०- असण्णि चित्तभंगो।

२१७. कम्मइ० चादि०४ उक्क० एकारस० । अणु० सन्बलो० । वेद०-णामा-गोद० उक्क० छचो० । अणु० सन्बलो० । एवं अणाहार० ।

विशेषार्थ — श्रौदारिककाययोगमें चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चोन्द्रय पर्याप्त दो गतिक जीवोंके ही हो सकता है श्रौर ऐसे जीवोंका उत्कृष्ट स्पर्शन नीचे कुछ कम छह राजुसे श्रधिक सम्भव नहीं, इसलिए श्रौदारिक काययोगी जीवोंमें चार घाति वर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागक बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकमीं के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटं चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गात्रकमंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, आहारकाययोगी, आहारकाययोगी, अहारकिमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, सूद्ममास्परायसंयत, और असंज्ञी जीवोंमें स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेपार्थ—वैकियिककाययोगमं चार घातिकमंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है पर एसी अवस्थामें वेदनीय, नाम और गंत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें चार घातिकमंकि उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बट चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कहा है तथा बेदनीय आदि तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन एक मात्र कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है। यहाँ इन सात कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सव अवस्था मोंमें सम्भव है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कहा है। किन्तु आयुकर्मके बन्धकी स्थित इससे भिन्न है। मारणान्तिक समुद्घात के समय तो उसका बन्ध सम्भव ही नहीं, इसलिए उसके उत्कृष्ट और अकुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है।

२१७. कामणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्क्रष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्क्रुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्क्रुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

िंशिपार्थ —कार्मणकाययोगी जीव नीचे कुझ कम छह राजु श्रौर ऊपर कुछ कम पाँच राजु स्पर्श करते हुए चार घाति कर्मीका उत्कृष्ट श्रमुभागबन्ध करते हैं श्रतः चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु स्पर्श कहा है। वेदनीय, नाम श्रीर

१ ता । प्रती अणाहार ० इत्यस्य पाठस्याग्रे पूर्णविरामो नास्ति । अन्यत्रापि एवंविधो व्यत्ययो दृश्यते ।

- २१८. णवंस० घादि०४ उक्क० छचोह०। अणु० सन्त्रलो०। सेसं खेत्त०।
- २१९. आमि०-सुद०-ओधि० घादि०४ उक्क० अणु० अट्ट०। सेसाणं उक्क० खेत्त०। अणु० श्रट्ट०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०।
- २२०. संजदासंजद० सत्तण्णं क० उक्क० खेत्त०। अणु० छच्चो०। आउ० खेत्रभंगो।

गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य विशुद्ध कार्मणकाययोगी जीवोंके होगा, और ऐसे जीव ऊपर कुछ कम छह राजुका स्पर्श करेंगे, अतः इन तीन कमोंकी अपेद्धा यहाँ उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजु कहा है। कार्मणकाययोगमें सातों कमोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब लोक चेत्रका स्पर्श करते हैं यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोगके समय जीव अना-हारक होता है, अतः अनाहारकोंमें यह स्पर्शन कार्मणकाययोगके समान प्राप्त होता है यह स्पष्ट ही है।

२१८. नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकमोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप कर्माका भंग क्षेत्रके समान हैं।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मीके उत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक नपुंसकवेदी जीव नीचे कुछ कम छह बटे चौदह राजुका स्पर्श करते हैं, इसलिए इनका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष स्पर्शन सुगम है।

२१६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकमें के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कमीं के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्य-ग्रहृष्टि, चायिकसम्यग्रहृष्टि, वेदकसम्यग्रहृष्टि और उपश्रमसम्यग्रहृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ — असंयतसम्यग्दृष्टियोंका जो कुछ कम आठ बटे चौंदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है वह आभिनिवाधिकज्ञानी आदि तीन ज्ञानवालों में चार घातिकमाँके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धकी अपेक्षा और वदनीय, नाम व गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेक्षा बन जाता है, अत: यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। यहाँ सम्यग्दृष्टि आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार स्परान प्राप्त होता है, अत: उनके कथनको आभिनिवाधिक ज्ञानी आदिके समान कहा है।

२२०. संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मका भंग चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयतों में चार घातिकर्मीका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिण्यात्वके अभिमुख होने पर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है और वेदनीय, नाम व गांत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। यतः यह स्पर्शन चेत्रके समान ही उपलब्ध होता है अतः उसे चेत्रके समान कहा। परन्तु इन सातों कर्मीके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक संयतासंयतों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजु उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं है अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२२१. किण्ण०-णील०-काउ०-घादि०४ उक्क० छ-चत्तारि-बेचोह०। सेसं खेत्त०। तेउ० घादि०४ उक्क अणु० अट्ट-णव०। वेद०-णामा०-मोद० उक्क० खेत्त०। अणु० अट्ट-णव०। आउ० उक्क० खेत्त०।अणु०-अट्ट०: एवं पम्म-सुक्काणं। णवरि अट्टछ-चोह०।

२२२. अब्भव०-घादि०४ उक्क० अट्ट-तेरह०। अणु० सन्वलो०। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० अट्ट०। अथवा लोगस्स असंखे०। अणुक्क० सन्वलो०। आउ० उक्क० खेत्त०। अणु० सन्बलो०।

२२१. कृष्ण, नील ओर कापान लेह्यावाले जीवोंमें चार घानिकर्मीक उन्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कमसे बुद्ध कम छह बटे चाँदह राजु, कुछ कम चार वटे चाँदह राजु ओर कुछ कम दो वटे चाँदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप भंग चंत्रके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घानिकर्मीके उत्कृष्ट आंर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चाँदह राजु और कुछ कम ना वटे चाँदह राजु चंत्रका स्पर्शन किया है। वदनीय नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चाँदह राजु चंत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चाँदह राजु और कुछ कम ना वटे चाँदह राजु और उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने उद्घष्ट कम आठ वटे चाँदह राजु चंत्रका है कि इनमें कमसे उद्घष्ट कम आठ वटे चाँदह राजु और उद्घष्ट कम छह वटे चाँदह राजु स्पर्शन कहना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मीक उत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीवोंमें कृष्ण लेश्यावालोंके नीचे सातवी पृथिवी तक कुछ कम छह वटे चौदह राजु, नील लेश्यावालोंके नीचे पाँचवीं पृथिवी तक कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कापोत लेश्यावालोंके नीचे तीसरी पृथिवी तक कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्परान सम्भव है, इसिलए यह उक्त प्रमाण कहा है। पीतलेश्यावालोंके अतीत कालकी अपेचा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो वटे चौदह राजु कहा है। बह यहाँ चार घातिकर्मांके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीवोंके तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंके तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंके और आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके और आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके और आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके कुछ कम नो बटे चौदह राजु स्पर्शन सम्भव नहीं है, क्योंकि यह स्पर्शन इस लेश्यामें मारणान्तिक समुद्धात और उपपाद पदक समय ही सम्भव है, इसिलिए यह स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है। पद्मलेश्यावाले और शुक्त लेश्यावाले जीवोंमें अतीत कालकी अपेचा कमसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजु अगेर कुछ कम छह बटे चौदह राजु स्पर्शन होता है। आयुक्त के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंको छोड़कर और सब जीवोंके यह स्पर्शन सम्भव होनेसे इनमें यह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुणम है।

२२२. अभव्य जीवोंमें चार कर्मीक उत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु अथवा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्म के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

२२३. सासणे घादि०४ उक्क० अणु० अट्ट-बारह०। वेद० णामा०-गोद० उक्क० अट्ट०। अणु० अट्ट-बारह०। आउ० उक्क० खेत्त०। अणु० अट्ट०। सम्मामि० सत्तरणं कम्माणं उक्क० अणुक्क० अट्ट०।

२२४. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४-गोद० जह० लो० असं०। अज० सन्वलो०। वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० सन्वलो०। एवं ओघमंगो कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-किण्णले०-भवसि०-मिच्छा०-आहारग ति।

विशेषार्श—पहले हम पंचेन्द्रियों में स्पर्शनका विचार कर आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहाँ भी सब स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। यहाँ वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन विकल्प रूपसे लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण भी कहा है सो इसका कारण यह है कि स्वामित्वका विचार करते समय इन कर्मोंकी अपेदा। उत्कृष्ट स्वामित्व दो प्रकारसे कहा है, अबः तद्नुसार स्पर्शन भी दो प्रकारसे जानना चाहिए। जब चारों गतिके सर्वविशुद्ध संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंको उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाता है तब कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्शन प्राप्त होता है और जब द्रव्यसंयत मनुष्यको उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाता है तब लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्वामित्व प्राप्त है। शेष कथन सुगम है।

२२३. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजु अत्रका स्पर्शन किया है। अनुकुछ अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुकुछ अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टियोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजु स्पर्शन कहा है। इनमें कुछ कम बारह वटे चौदह राजु स्पर्शन वेदनीय, नाम और गोत्र कमों के उत्कृष्ट अनुभाग के वन्धक जीवों के तथा आयुक्षम के वन्धक जीवों के सम्भव नहीं है, क्यों कि मारणान्तिक समुद्धात के समय यह वन्ध नहीं होता, अतः यहाँ इस अपेक्षासे कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्पर्शन और शेष अपेज्ञासे कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्पर्शन कहा है। मात्र आयु कर्म के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्रेंत्र के समान ही जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में न तो मारणान्तिक समुद्धात होता है और न ही आयुवन्ध होता है, अतः यहाँ सातों कमों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों के कुछ कम आठ वटे चौदह राजु एकमात्र यही स्पर्शन कहा है।

२२४. जबस्यका प्रकरण है। उसकी अपेना निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ और धादेश। श्रोघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्यक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, श्रायु श्रौर नामकर्मके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इस प्रकार श्रोघके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कवाय-वाले, मत्यज्ञानी, श्रताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचजुदर्शनी कृष्णलेश्यावाले, भव्य, मिध्यादृष्टि श्रौर श्राहारक जीवोंक जानना चाहिये।

२२५. णिरएसु घादि०४-गोद० जह० खेत्त०। अज० ख्रचोद्द०। वेद०-णाम० जह० अज० छ०। आउ० खेत्त०। पढमपुढ० खेत्त०। विदियादि याव छिट्ठि ति वेद०-णाम ०-गोद० जह० अज० एक-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-चोद्दस०। घादि०४ जह० खेत्त०। अज० वेदणीयभंगो। आउ० खेत्त०। सत्तमाए णिरयोघं।

विशेषार्थ —चार वातिकमींक। जघन्य अनुभागवन्य ज्ञपक श्रिणमें हांता है और गांत्रकमंका जघन्य अनुभागवन्य सम्यक्त्वके अभिमुख सातवीं पृथियोंके नारकी जीव करते हैं। यतः इस अपेदा से स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है। वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागवन्य परिवतमान मध्यम परिणामवाले सम्यग्दृष्टि और मिध्यादृष्टि सभी जीवोंके सम्भव है तथा आयुक्रमंका जघन्य अनुभागवन्य जवन्य अपर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृतमान मध्यम परिणामवाले सभी जीवोंके अपने त्रिभागमें सम्भव है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन सब लोक है, अतः इन तीन कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्पर्शन कहा है। इन कर्मोंक अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्पर्शन है यह सग्द्र ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ कहीं है उनमें आघके समान स्पर्शन घटित होनेसे वह आघके समान कहा है। मात्र इन मार्गणाओंमें इस स्पर्शनको अपने अपने स्वामित्वका विचार करके लाना चाहिए। कारण कि ओघके समान स्वामित्वके गुणस्थान इन सब मार्गणाओंमें सम्भव नहीं हैं। इन मार्गणाओंमें स्वामित्वकी अपेद्या गुणस्थान भेद रहते हुए भी स्पर्शन ओघके समान प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२२५. नारिकयों में चार घातिकर्म झार गांत्रकर्मके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लेके समान है। अजचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वदनीय, और नाम कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन चेत्रके समान है। दूसरीचे लेकर छठवी पृथिवी तकके जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कमसे कुछ कम एक बटे चौदह राजु, कुछ कम दो बटे चौदह राजु, कुछ कम पाँच बटे चौदह राजु कुछ कम पाँच बटे चौदह राजु कुछ कम पाँच बटे चौदह राजु कुछ कम जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंक। स्पर्शन वदनीय वर्मके समान है। आजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंक। स्पर्शन वदनीय वर्मके समान है। आयुकर्मका भंग चेत्रके समान है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारिकयोंके समान मंग है।

विशेषार्थ—यहाँ इन बातों पर ध्यान देकर उक्त स्पर्शन प्राप्त करना चाहिए—१. सामान्य नारिकयों में और सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके गांत्रकर्मका जघन्य अनुभाग-बन्ध होता है, इसिलए इनमें गांत्र कर्मके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। २. शेष नरकोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धके स्वामीके समान है इसिलए इन नरकोंमें गोत्रकर्मकी परिगणना वेदनीय और नामकर्मके साथ की है। ३. सर्वत्र चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध असंयत्तधन्यण्ट ह सर्वन्तिशुद्ध जीवके होता है, इसिलए सर्वत्र चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और ४. प्रथमादि छह नरकोंमें गोत्र कर्मका तथा सर्वत्र वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागवन्ध मिश्यादृष्टि जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृत्तिमान

१ ना॰ प्रती वेउ (द॰) इति पाठः ।

२२६. तिरिक्खेसु घादि०४ जह० छ०। अज० सन्वलो०। गोद० जह० लोग० संखेज०। अज० सन्वलो०। वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० सन्वलो०। पंचिदि०-तिरिक्ख० ३ घादि०४ जह० छ०। अज० लो० असं० सन्वलोगो वा। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० लो० असं० सन्वलोगो वा। आउ० खेत्त०। पंचिदि०तिरि०अपज० घादि०४ जह० खेत्त०। अज० लो० असं० सन्वलो०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० लो० असं० सन्वलो०। याउ० खेत०। एवं मणुसअपज०-सन्वविगलिदि०-पंचिदि०-तस०अपज०-बादरपुढ०-आउ०-बादरपुत०-जाद०पत्ते०पज्ञत्त ति।

मध्यम परिणामवालेके होता है, अतः यहाँ इन कर्मांके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन अपने अपने अतीत स्पर्शनके समान कहा है। यहाँ इन कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका यही स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है।

२२६. तिर्यचोमें चार घानिकर्मांके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्वर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीबोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण जेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय श्राय श्रीर नामकर्मके जवन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचित्रिकमें चार याति कर्मीके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राज चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लांक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लांकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है। ऋ।यू कर्मका भङ्ग चुत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियतियँचऋपयाप्तकोंमें चार घातिकर्मांके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रेत्रके समान है। श्रजवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लांक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मके जवन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण श्रीर सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है। त्रायु कर्मका भङ्ग नेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब-विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ऋपर्याप्त, त्रसञ्चपर्याप्त, वाद्रपृथिवीकायिक पर्याप्त, वाद्रजलकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ — यहाँ तिर्येख्व सामान्य त्रादि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उन सबमें त्रायुकर्मके सिवा शेष सात कर्मोंके त्रजवन्य त्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इन सब मार्गणात्रोंमें सब लोक प्रमाण स्पर्शन उपलब्ध होता है अतः उसके यहाँ उक्त प्रमाण उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं त्रातो। मात्र इन कर्मोंके जवन्य त्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रालग अलग है। यथा — तिर्यद्धोंमें चार घाति कर्मोंका जवन्य त्रानुभागबन्ध सर्वविशुद्ध संयतासंयत जीव करते हैं त्रोर ये जीव ऊपर १६ वें कल्प तक समुद्धात करते हुए पाये जाते। हैं, त्रतः इनका स्पर्शन कुछ कम छहबट चौदह राजु कहा है। इनमें गोत्र कर्मका जवन्य त्रानुभागबन्ध बादर त्राग्निकायिक पर्याप्त त्रोते संख्यातवें सागप्रमाण पाया जाता है, त्रातः इनमें गोत्रकर्मके जवन्य त्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लक्त प्रमाण कहा है। तथा इनमें वदनीय त्रायु श्रीर नामकर्मका जवन्य त्रानुभागबन्ध श्रोधके समान सब लोक बन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कन जाता है स्रतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक करा है। प्रसाँ त्रायु कर्मके त्रावाय श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक करा है। प्रसाँ स्रता प्रकार

२२७, मणुस०३ घादि०४ जह० खंत्त०। अज० लो० असं० सव्बलो०। वेद०-आउ०-णाम०-गोद० सव्वप० अपज्जत्तमंगो।

२२८. देवाणं घादि० ४ जह० अड्ड०। अज० अट्ट-णव०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० अट्ट-णव०। आउ० जह० अज० अट्ड०। एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदन्वं।

सर्व लोक घटित कर लेना चाहिए। पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्चित्रिकमें चार धातिकमेकि जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यक्रोंके समान ही है, क्योंकि वहाँ यह स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिककी अपेत्तामें ही कहा है। इनमें चार घातिकमेंकि अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परीन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण भी कहा है। सो इसका कारण इनका वर्तमान स्पर्शन मात्र दिखाना ही मुख्य प्रयोजन प्रतीत होता है। इनमें वेदनीय, नाम श्रीर गोत्र वर्मका जघन्य श्रनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके यथायोग्य होता है। यतः ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्शन सर्व लोक है। अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इन तीनों प्रकारके तिर्यक्कोंमें आयुक्सका स्पर्शन चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। अव रहे पञ्चेन्द्रिय तिर्येञ्च अपयाप्त जीव सो इनमें चार घाति कर्मीका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध जीवके होता है। यतः यह स्पर्शन देवके समान ही प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक है, श्रतः इनमें चार घातिकमिक श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ऐसे जीवोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्र्यौर ऋतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक सम्भव है, श्रतः इनका यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयुक्तमका भंग क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाओं में इसी प्रकार स्पर्शनक जाननेकी सूचना की हैं सा इन मार्गणा ओंमें सब स्पर्शन पर्छ्यन्द्रिय तिर्यक्र अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२२७. मनुष्यत्रिकमें चार याति कर्मोंके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भक्क अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेपार्थ—मनुष्यत्रिकमें चार घातिकमेंकि जपन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्वामित्व आध्यके समान है अतः स्वामित्व और इनके स्पर्शनका विचार कर वह यहाँ घटित कर लेना चाहिए जो मूलमें कहा ही है। मात्र वेदनीय आदि चार कर्मीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परान अपर्याप्तकोंके समान कहा है सा यहाँ अपर्याप्तकोंसे मनुष्य अपर्याप्तकोंका महण करना चाहिए।

२२८. देवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजु चेत्र का स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजु और कुछ कम नौबटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजु और कुछ कम नौबटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम

१ आ० प्रती सञ्चलां० इति पाटः ।

२२६. एइंदिएसु घादि० ४-गोद० जह० लो० संखे०। अज० सन्वलो०। सेसाणं ओघं। एवं बादरपञ्जतापञ्ज०। णवरि आउ० जह० अज० लो० संखे०। सन्वसुहुमाणं अष्टुण्णं क० जह० अज० सन्वलो०।

२३०. पंचिदि०-तस० २ पंचण्णं जह० खेत्त०। अज० अट्ठ० सन्वलो०। वेद०-णाम० जह० अज० अट्ठ० सन्वलो०। आउ० जह० खेत्त०। अज० अट्ठ०। एवं पंचमण०-पंचवचि०-चक्खुद्०-सण्णि ति।

आठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंमें चार घाति कर्मांका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है और इनका परप्रत्ययसे स्पर्शन कुछ कम आठ वट चौद्ह राजु प्रमाण है, अतः इनमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयु-कर्मका वन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। अतः इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन भी उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२६. एकेन्द्रियोंमें चार घाति कर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण लेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेप कर्मौंका भङ्ग आघके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण लेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूद्दम जीवोंमें आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक लेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियों में चार घातिकर्मांका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध बाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है। तथा गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध बाद्र अग्निकायिक आरे वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके होता है। वायुकायिक जीवोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्याबवें भागप्रमाण प्राप्त होता है अतः इनका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागवन्धके लिए मध्यम परिणाम लगते हैं अतः बाद्र एकेन्द्रियों में आयुक्तमेके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३०. पश्चेन्द्रियहिक और त्रसिंहक जीवोंमें पाँच कर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजु और सब लोक वेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच बचनयोगी, चजुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—श्रोघसे चार घातिकर्म श्रीर गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जो स्पर्शन कहा है वह पश्चेन्द्रिय श्रादि चारों मार्गणाश्चोंमें सम्भव है इसलिए यहाँ इसे श्रोघके समान कहा है। इन चारों मार्गणाश्चोंका श्रातीतकालीन स्पर्शन कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु श्रीर सब लोक है। श्रातः यहाँ उक्त पाँचों कर्मोंके श्राजघन्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन एक प्रमाण

२३१. पुढिवि०-आउ०-नणफिदि-णियोद० घादि०४ जह० लोग० असं०। अज०
सन्नलो०। वेद०-आउ०-णाम०-गोद० जह० अज० सन्नलो०। बादरपुढ०-आउ०
तेसिं चेन अपज० बादरनणफिदि०-बादरणियोद-पज्जतापज्जत-बादरनणफिदि०पत्ते०
तस्सेन अपज० घादि०४ जह० खेत्तभंगो। अज० सन्नलो०। वेद०-णामा-गोद० जह०
अज० सन्नलो०। आउ० जह० अज० लो० असं०। तेऊणं घादि०४-गोद० जह०
लो० असं०। अज० सन्नलो०। सेसाणं जह० अज० सन्नलो०। बादरतेउ-बादरतेउ०
अपज० तं चेन। णनिर आउ० जह० अज० लो० असं०। बादरतेउ०पज्जता० घादि०
४-गोद० जह० लो० असं०। अज० लो० असं०। वेद०-णामा० जह०

कहा है, क्योंकि इन जीवोंके अजघन्य अनुभागवन्ध प्रत्येक अवस्थामें सम्भव होनसे यह स्पर्शन वन जाता है। इन मार्गण। ओमें वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व ओघके समान है, तथा इनका अजघन्य अनुभागवन्ध सर्वत्र सम्भव है ही, अतः वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन भी कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक कहा है। मात्र आयुकर्मका बन्ध भारणान्तिक समुद्धात और उपपाद पदके समय नहीं होता इस लिए तो इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ काम आठ वटे चौदह राजु कहा है। तथा इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, चजुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें उसी प्रकार स्पर्शन प्राप्त होता है इसलिए वह पञ्चीन्द्रय आदिके समान कहा है।

२३१. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्परीन किया है। बाद्र पृथिवी-कायिक, बादर जलकायिक ऋौर इनके ऋपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक व इनके पर्याप्त ऋौर ऋपर्याप्त, बादर निगोद व इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके अपर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मीके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग च्रेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक त्रेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनंध, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-के बन्धक जीवोंने सब लोक त्रेत्रका स्पशन किया है। आयुकर्मके जघन्य और धजघन्य अनुसागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण देशका स्पर्शन किया है। अग्निकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म श्रीर गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण न्नेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक नेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक त्रेत्रका स्पर्शन किया है। बादर श्रमिकायिक श्रीर बादर श्रमिकायिक श्रपर्याप्त जीवोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि श्रायुकर्मके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य श्रन-भागके बन्धक जीवोंने लोकके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण श्रीर सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके ज्ञान्य श्रीर श्रज्ञान्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग

१ आ॰ प्रती सन्वलो॰ । बादरतेडअपजा॰ इति पाटः !

अज॰ लो॰ असं॰ सन्वलो॰। आउ॰ खेत्त॰। एवं वाउ॰। णवरि जम्हि लो॰ असं॰ तम्हि लो॰ संखेज॰।

२३२. ओरालि०-ओरालियमि० ओघं। णवरि गोद० तिरिक्खोघं। वैउन्वि० घादि०४ जह० अहुचो० । अज० अहु-तेरह०। गोद० जह० खेत्त०। अज० अहु-तेरह०। गोद० जह० खेत्त०। अज० अहु-तेरह०। आउ० जह० अज० अहु-चो०। वेउन्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद्वे०-मणपञ्ज० संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०- सुहुमसंपराइग त्ति खेत्तभंगो।

प्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्रमंका भङ्ग चेत्रके समान है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण चेत्र कहा है वहाँ पर लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण चेत्र कहना चाहिये।

२३२. श्रौदारिककाययोगी श्रौर श्रोदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रोघके समान स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि गोत्र कर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम धाठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। गोत्रकर्मके • जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। बदनीय श्रौर नामकर्मके जघन्य श्रौर अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वदनीय श्रौर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकिमिश्रकाय-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकिमिश्रकाय-योगी, आहारककाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाय श्रौर सूदमसाम्परायिकसंयत जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ — औदारिक काययोगमें सात कर्मीका स्वामित्व ओघके समान होनेसे स्पर्शन भी श्रोघके समान बन जाता है। मात्र गोत्रकर्मके स्वामित्वमें श्रोघसे कुछ विशेषता है जिसका उल्लेख मूलमें किया ही है। श्रोदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वमें कुछ विशेषता है पर उससे आघस्पर्शनमें अन्तर नहीं आता इसलिए यहाँ भी आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उसी प्रकार कहा है। वैकि यककाययोगमें सम्यग्दि सर्वविशुद्ध देव और नारकी चार घाति-कर्मोंका जघन्य अनुभागवन्य करता है और वैकियिककाययोगी असंयतसम्यग्दि जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु है, अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा। इनके तथा अन्य तीन कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु है, यह स्पष्ट ही है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख सातवीं पृथिवीका सर्वावशुद्ध नारकी करता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है और इनका चेत्र भी इतना ही है अतः यह स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चवनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे

१. त्रा० प्रती श्रोयं वेउन्ति० इति पाटः । २. त्रा० प्रतौ जह० श्रज्ज० त्रप्रद्रचो० इति पाटः ।

- २३२. कम्मइ० घादि०४-गोद० जह० छत्रो०। अज० सन्वली०। सेसाणं ओघं। एवं अणाहारम त्ति।
- २३४. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ जह० खेत्तभंगो । अज० अट्ट० सन्बलो० । वेद०-णाम० गोद० जह० अज० अट्टचो० सन्बलो० । आउ० जह० खेत्त० । अज० अट्ट० । विभंग० पंचिदियभंगो ।
- २३५. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ जह० खेत्तमंगो । अज० अट्टचो० । सेसाणं जह० अज० अट्ट० । एवं श्रोधिदं०-सम्मादि० खड्ग०-त्रेद्ग० उवसम० ।

चौदह राजु प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। आयुक्तमकः बन्ध मारणान्तिक समुद्धातक समय नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है। यहाँ वैक्रियिकमिश्रकाययांगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनका चेत्र भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और स्पर्शन भी उतना ही है, अतः इनमें यथा-सम्भव कमीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है।

२३३. कार्मणकाययोगी जीवोंमं चार घातिकमं श्रीर गोत्रकर्मके जवन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह यटे चौदह राजु देशका स्पर्शन किया है। अजधन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रेप कर्मीका मंग ब्रांचके समान है। इसी प्रकार श्रमाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषांथ—कार्मणकाययांगमं चार घातिकर्मांका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध चार गतिके असंयत सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं और गांत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध मिध्यादृष्टि नारकी करते हैं। यतः इन दोनोंका उपपाद पद्की अपेचा स्परान कुछ कम छह वटे चौद्ह राजु है अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागक बन्धक जीवोंका सबलांक और शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन औघके समान है यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोगके कालमें जीव अनाहारक ही होते हैं, अतः इनका कथन कार्मणकाययोगियोंके समान कहा है।

२३४. स्त्रीवदी और पुरुषवदी जीवोंमं चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्वर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक चेत्रका स्वर्शन किया है। वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक चेत्रका स्वर्शन किया है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्वर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंको स्वर्शन किया है। विभंगज्ञानी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान स्वर्शन है।

विशेषार्थ—स्वावेदी चौर पुरुषवेदी मिण्यादृष्टि जीवोंका अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौद्द राजु और सब लोक कहा है। यनः यहाँ यह स्पर्शन आयुके सिवा सभी कर्मोंक अजघन्य अनुभागबन्धके समय तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके समय सम्भव है अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव न होनेसे वह कुछ कम आठ बटे चौद्द राजु कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३५. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकमींके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कमींके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक २३६. संजदासंजदे घादि०४-गोद० जह० खेत्तर्भ०। अज० छचो०। सेसाणं जह० अज० छ०। आउ० खेत्त०।

२३७, णील०-काउ० घादि०४ जह० खेत्त०। अज० सन्वलो०। सेसं खेत्त-भंगो। तेऊए घादि०४ जह० खेत्त०। अज० अट्ट-णवचो०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० अट्ट-णवचो०। आउ० जह० अज० अट्टचो०। एवं पम्माए वि। णविर अट्ट०। सुकाए घादि०४ जह० खेत्तमंगो। अज० छचो०। सेस्राणं जह० अज० छचो०।

२३८. अब्भवसि० घादि०४ जह० अट्ट० अथवा लोग० असं०। अज०

जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु नेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्य-ग्टष्टि, चायिकसम्यग्टिष्ट, वेदकसम्यग्टिष्ट और प्पशमसम्यग्टिष्ट जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन तीन ज्ञानोंमें अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु है अतः चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका और शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम ही है।

२३६. संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्म श्रीर गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य श्रीर श्रक्षघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रायुकर्मका भंग चेत्रके समान है।

विशेषार्थ — संयतासंयत जीवोंका श्रतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम छह वट चौदह राजु हैं, श्रतः इनमें चार घातिकर्म श्रीर गोत्रके श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका तथा वेदनीय श्रीर नामकर्मके जघन्य श्रीर श्रज्जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा हैं। चार घातिकर्म श्रीर गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका श्रीर श्रायुकर्मके जयन्य श्रीर श्रज्ञघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन तेशके समान है यह स्पष्ट ही है।

२३७. नील और कापीत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमीं के जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेत्रके समान है। श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मांका भंग सेत्रके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकमोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु त्रोर कुछ कम नौ बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंमें भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्शन कहना चाहिये। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। श्रेष कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु सेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—िकस लेश्यावाले जीवका क्या स्पर्शन है श्रीर स्वामित्व क्या है इसका विचार कर यहाँ स्पर्शन ले श्राना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ हमने श्रलग अलग विचार नहीं किया। २३८. श्रभव्य जीवोंमें चार घातिकर्मों के जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ सन्त्रलो । गोद ० जह ० छचो ० । अज ० सन्त्रलो ० । वेद ० णामा ० जह ० अज ० केवडि स्रेतं फोसिदं १ सन्त्रलो ० । आउ० जह ० अज ० खेत्रमंगो ।

२३९, साम्रणे घादि०४ जह० अट्ट०। अज० अट्ट-बारह०। वेद०-णाम० जह० अज० अट्ट-बारह०। गोद० जह० खेत्त०। अज० अट्ट-बारह०। आउ० जह० अज० अट्ट०। सम्मामि० सत्तण्णं क० जह० अज० अट्टचाइस०। एवं फोसणं समत्तं।

कालपरूवणा

२४०. कालं दुविधं--जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे०

बटे चौद्ह राजु अथवा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। गोत्रकर्मके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौद्ह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सिव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्मके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—अभन्योंमें द्रन्यसंयत मनुष्योंका स्पर्शन लोकके असंख्यातर्वे भागप्रमाण होनेसे चार घातिकर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन वह भी कहा है। शेप कथन सुगम है।

२३६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार वातिकमंकि जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। आजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकमंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। गात्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सुछ कम बारह बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। गात्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्तमके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें सात कमोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें सात कमोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु लेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोमें चार घातिकर्नोका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध चार गतिक जीव करते हैं और ऐसी अवस्थामें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौद्द राजु उपलब्ध होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। इनमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभाग- बन्ध सातवीं पृथिवीके सर्वविशुद्ध नारकी करते हैं और इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और इनका तेत्र भी इतना ही है अतः यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है। सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें सातों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन इनके स्वामित्वको देखते हुए कुछ कम आठ बटे चौद्द राजु बन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

कालप्ररूपणा

२४०. काल दो प्रकारका है - जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेन्हा

१ ता॰ प्रती गोद॰ छचां • इति पाटः । २ आ० प्रती भट्टबारह० । सम्मामि ० इति पाठः ।

FD 1926

घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० आवित्याए असंखे०। अणुक्क० सन्त्रद्धा। वेद०-आउ०-णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेजसम०। अणु० सन्त्रद्धा। एवं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि ४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

२४१. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवित् असंखे०।
अणुक्क० सम्बद्धा। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेजसम०। अणु० जह० एग०,
उक्क० पिलदो० असं०। एवं छसु पुढवीसु पंचिदि०तिरि०-मणुस-पंचिदि०-तस०
अपज्ञ०-सन्त्रविगिलिदि०-बादरपुढवि०-आउ०पज्ञ०-बादरवण०पत्ते०पज्ञ०-वेउन्वि०वेउन्वियमि०। णवरि मणुसअप०-वेउन्वियमि० सत्तण्णं क० [अणुक्क०] जह० एग०,

निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। श्रोघसे चार घातिकमीं क उत्कृष्ट श्रनुभागक वन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्राविकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुस्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। वदनीय, श्रायु, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रानुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिक जीवोंक कालना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घातिकमींका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संज्ञी पचेन्द्रियपर्याप्त मिण्यादृष्टि जीवोंके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे हाता है। ऐसे संक्लेश परिणाम एक समय होकर दूखरे समय नहीं भी होते, और होते रहते हैं ता आविलके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर होते रहते हैं। यही कारण है कि चार घातिकमींके उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। वदनीय नाम और गांत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणीमें होता है। और आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणीके जीव निरन्तर नही होते, दूसरे यदि होते हैं, तो व कमसे कम एक समय तक चपकश्रेणी पर आरोहण करते हैं या संख्यात समय तक निरन्तर आराहण करते हैं। अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आयुकर्मके बन्ध योग्य-परिणामोंकी यही विशेषता है। यही कारण है कि आघसे इन कमींक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा है। इन कमींका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध नाना जीवोंके सर्वदा होता रहता है इसिलए इसका काल सर्वदा कहा है। यहाँ जा अन्य मार्गणाएँ गिनाई है उनमें यह ओघ प्रस्पणा अविकल घटित हो जाती है, इसिलए उनका कथन ओघके समान किया है।

२४१. नारिकयों में सात कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यात भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा है। आयुक्रमें के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यात में भाग प्रमाण है। इसी प्रकार छह पृथिवयों में तथा पंचेन्द्रिय तिर्थे अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, अस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर बनस्पति-कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, वीकियिक काययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के जानना चाहिये। इतनी विशेषना है कि मनुष्य अपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों सात कर्मों के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल पत्यके असंख्यात में भाग प्रमाण

उक्क० पिलदो० असंखे० । सत्तमाए सत्तण्णं क० [उक्क०] जह० एग०, उक्क० आविल० असंखे० । अणु० सन्बद्धा । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० आविल० असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० पिलदो० अमं० । एवं बादरते ४० वा ४० पजता० । पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्तेगाणं सत्तण्णं कम्माणं तिरिक्खोघं । आउ० ओघं । णविर तेउ०-वाउ० आउ० तिरिक्खोघं ।

२४२. तिरिक्षेसु अट्टण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अणु० सन्बद्धा। एवं कम्मइ०-किण्ण०-णील०-काउ०-अन्भवसि०-असण्णि-अणाहारग ति। सन्वपंचिदि०तिरि० सन्वपदा सत्तमपुढविभंगो।

हैं। सातवीं पृथिवीमें सात कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुकृष्ट अनुभागवन्यका काल सर्वदा है। आयुक्रमें उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुकृष्ट अनुभागवन्यका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार वादर अग्निकायिक पर्याप्त और वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों के जानना चाहिये। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों के सात कर्मोंका भंग सामान्य तियचों के समान है। आयुक्रमंका भंग आयुक्र समान है। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों से अग्रुक्रमंका भंग सामान्य तियचों के समान है।

विशेषार्थ-नार्कियोंमें चार वातिकर्मीक उत्कृष्ट श्रीर अनुन्कृष्ट अनुभागबन्धका काल श्रीवकं समान घटित कर लेना चाहिए। तथा यहाँ वेदनीय, नाम और गांत्रकर्म बन्धकालमें चार घातिकर्मीं-के बन्धकालसे कोई विशेषता न होनेसे यह भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अब रहा आयुकर्म संा इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल परुयके असंख्यातवें भाग प्रमाण इसलिए कहा है, क्योंकि एक नारकीके वाद दूसरे नारकीके यदि निरन्तर आयुक्तमंका वन्ध होता रहे तो उस सब कालका योग पत्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण ही होता है। प्रथमादि छह पृथिवियोंमें यह व्यवस्था अविकल बन जाती है इसलिए उनके कथनको सामान्य नारिकयोंके समान कहा है। यहाँ त्र्यन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र उनमेंसे मनुष्य अपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। कारण यह है कि ये सान्तर मार्गणाएँ हैं, इनके निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल पत्यके श्चसंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इसलिए इनमें सदः कर्मीके त्रानुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल भी पत्यके ऋसंख्यातर्वे भागप्रमाण कहा है। सातर्वी पृथिवीमें श्रीर सब काल तो सामान्य नारिकयोंके समान ही है। मात्र आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि यहाँ आयुकर्मका बन्ध मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है और ऐसे जीव आयुकर्मका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाले एकके बाद दूसरे असंख्यात हो सकते हैं अतः यहाँ आयुकमके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उस्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

२४२. तिर्यवोमें आठ कर्मीके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल सर्वदा है। इसी प्रकार कार्मणकाययांगी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कार्यातलेश्यावाले, अभन्य,

१ ता० आ० प्रत्योः सत्ताणां कम्माणं इति स्थाने ओवपदाणं इति पाठः ।

२४३. मणुस० सत्तणां क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेक०। अणु० सञ्बद्धा। आउ० णिरयोघं। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सत्तणां क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेक्षस०। अणु० सञ्बद्धा। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेक्षसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सञ्बद्ध० मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। देव० णिरयमंगो याव सहस्सार ति। आणद् याव अवराजिदा ति णिरयोघं। णविर आउ० सञ्बद्धमंगो।

२४४. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्कः अणु० सन्बद्धा । आउ० ओघं । एवं असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । सब पंचेन्द्रिय तिर्थेचोंमें सब पदोंका भंग सातवी पृथिवीके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंका प्रमाण अनन्त है इसलिए इनमें अन्य सात कर्मोंके समान आयु-कर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव निरन्तर सम्भव हैं। यहां कार्रण है कि इनमें आयुक्रमंके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका सर्वकाल कहा है। यहाँ कार्मणकाययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई है उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनके कथनको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। परन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकका प्रमाण असंख्यात है और इनमें आयुक्रमंका उत्कृष्ट अनुभागवन्थ मिध्याहिष्ट जीव करते हैं, अतः इनके कथनको सात्वीं पृथिवींके समान कहा है। शेप सुगम है।

२४३. सामान्य मनुष्योंमें सात कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। आयुक्षमंका मंग सामान्य नारिकयों के समान है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनयों में सात कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय हें और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। आयुक्षमंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। आयुक्षमंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि के देव, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदापस्थापना संयत और परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये। सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारिकयोंके समान मंग है। आनुत्कृष्ट अपराजित तकके देवोंमें नारिकयोंके समान मंग है। इतनी विशेषता है कि आयुक्षमंका मंग सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यों में चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मिण्यादृष्टि पर्याप्त मनुष्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे करते हैं और आयुके सिवा शेष तीन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य स्वक्षेणिमें होता है। यतः ये जीव संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, अतः इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य काल एक समय हे यह स्पष्ट ही है। यतः मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल सर्वदा कहा है। आयुक्तमंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल सर्वदा कहा है। आयुक्तमंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल सर्वदा कहा है। आयुक्तमंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल जिस प्रकार नारिकयोंमें घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। आगे भी अन्य मार्गणाओंमें जो काल कहा है वह उन मार्गणाओंकी स्वामित्व सम्बन्धि विशेषताको जान कर ले आना चाहिए। पुनः पुनः उन्हीं युक्तियोंके आधारसे स्पष्टीकरण करनेसे पुनक्कि दोष आता है, इसलिए हमने प्रत्येक मार्गणामें कालका अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं किया।

२४४. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मीके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका काल

[🤋] ता॰ प्रतौ अणाद (आणद) इति पाटः । ता॰ प्रतौ अन्यत्रापि एवमेव पाठः ।

सञ्बबादर-सुहुम०-सञ्बवणप्फ०-सञ्बवणप्फदि-णियोद० ।

२४५. पंचिदि०-तस०२ सत्तणं क० ओघं। आउ० णिरयोघं। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-[संजदासंजद]चक्खुदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-सण्णि ति।

२४६. आहार०-आहारिमस्स० आउ० मणुसि०भंगो । सेसाणं सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क संखेजसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं अत्रगदवे० सत्तण्णं क० सहमसंप० छण्णं क० ।

२४७. मदि०-सुद० सत्तण्णं क० ओघं। आउ० तिरिक्खोघं। एवं विभंग०-असंज०-मिच्छादि०। णवरि विभंगे० आउ० पंचि०तिरि०भंगो।

२४८. तेउ०-पम्मा० ओधिमंगो । सुकाए सत्तर्णां क० ओधिमंगो । आउ० मणु-सि०मंगो । एवं खइग० ।

२४६. उनसम० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० आवित० असंखेजिदि० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पितदो० असंखेजि० । वद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेजसम० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पितदो० असं० । सासणे सर्वदा है । अ। युक्संका भंग स्रोचक समात्त है । इसी प्रकार सब बादर, सब सूद्रम, सब बनस्पतिकायिक स्रोर निगाद जीवोंक जानना चाहिये ।

२४५. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंसे सात कर्मीका भंग आयके समान है। आयुक्तिमंत्रा भंग सामान्य नार्राक्योंके समान है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविद्रीनी, संयतासंयत, चनुदर्शनी, अविदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

२५६. त्राहारक काययोगी, त्रीर त्राहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें त्रायुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेप सात कर्मोंके उत्कृष्ट त्र्यनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। त्र्यनुत्कृष्ट त्र्यनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल त्रान्तर्भृहूर्त है। इसी प्रकार त्र्यपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मीका त्रीर सूच्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें छह कर्मोंका काल जानना चाहिये।

२४७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मीका भंग त्रोघके समान है। आयुकर्मका भंग सामान्य तियंचोंके समान है। इसी प्रकार विभंगज्ञानी, त्र्यसंयत और मिश्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानमें त्रायुकर्मका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है।

२४८. पीत श्रौर पद्मलेश्यावाले जीवोंमें श्रविधिज्ञानी जीवोंके समान भंग है। शुक्ललेश्या-वाले जीवोंमें सात कर्मोंका भंग श्रविधिज्ञानी जीवोंके समान है। श्रायुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

२४६. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका ज्ञाचन्य काल एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट काल श्राविलके श्रासंख्यातवें भाग प्रमाण है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका जवन्य काल श्रान्तमुँ हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रासंख्यातवें भाग प्रमाण है। वेदनीय, नाम श्रौर गोत्रकर्मके उत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका जवन्य काल

सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवित् असंखे०। अणु० जह० एग०, उक्क० पिलदो० असंखेज०। आउ० णिरयोघं। सम्मामि० सत्तण्णं क० उवसमघादीणं मंगो। एवं उक्कस्सकालं समत्तं।

२५०. जहण्णए पगदं । दुवि०-अघि० आदे० । ओघे० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्त० संखेज० । अज० सन्बद्धा । वेद०-आउ० णाम० जह० अज० सन्बद्धा । गोद० जह० जह० एग०३, उक्त० आवलि० असं० । अज० सन्बद्धा । एवं ओघमंगो कायजोगि-णवंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारग ति ।

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविल के ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण है। ऋनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके ऋसंख्यातवें भाग प्रमाण है। ऋ।युकर्मका भंग सामान्य नारिकयोंके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भंग उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके चार घातिकर्मोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुन्छा।

२५०. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—अोघ और आदेश। अोघसे चार घातिकमोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। वेदनीय, आयु और नाम कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल आवलींके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, नपुंसकवदी, क्रांधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचनुदर्शनी, भव्य मिध्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागवन्ध त्तपकश्रेणिमें अपनी अपनी वन्धच्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है। यह हो सकता है कि,यह बन्ध एक समय तक ही हो और
क्रमसे यदि एकके बाद दूसरा जीव यह जघन्य बन्ध करे तो संख्यात समय तक भी यह बन्ध हो
सकता है, इसलिए यहाँ इन कर्मोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल संख्यात समय कहा है। अजघन्य अनुभागवन्ध सर्वदा होता है यह स्पष्ट ही है। वेदनीय,
आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागवन्धके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि इनका
जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध नाना जीवोंकी अपेचा सर्वदा सम्भव है इसलिए इन तीन
कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका काल सर्वदा कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभाग
बन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख सातवें नरकके नारकीके होता है। यदि एक या नाना जीव एक साथ
सम्यक्त्वके अभिमुख हुए तो एक समयके लिए जघन्य अनुभागवन्ध होगा। और क्रमसे अनेक
जीव निरन्तर सम्यक्त्वके अभिमुख हुए तो एक समयके लिए जघन्य अनुभागवन्ध होगा। और क्रमसे अनेक
जीव निरन्तर सम्यक्त्वके अभिमुख हुए तो का समयके लिए जघन्य अनुभागवन्ध होगा। यही कारण है कि यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक जघन्य
अनुभागवन्ध होगा। यही कारण है कि यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका

१ ता० प्रती पृत्रं उक्कस्सकालं समत्तं इति पाठो मास्ति । २. ता० प्रती गोद० जह० प्ग∙ इति पाठः ।

२५१. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्कस्तभंगो। आउ० ज० जह० एग०, उक्क० आविल० असंते। श्रज० ज० एग०, उक्क० पिलदो० असं०। एवं सन्विणिरय०— सन्वपंचिदि०तिरि०—मणुस०अपज्ञ० देवा याव सहस्सार त्ति सन्विविगलिदिय—बादर-पुढिवि०—आउ०पज्जता—बादरवणप्किदिपत्ते०पज्ज०—वेउन्विय०—वेउन्वियमि०—उवसम०-सासण०—सम्मामि०। णवरि मणुसअपज्ज०—वेउन्वियमि०—सासण०—सम्मामि० अज० पगदिबंधकालो कादन्वो। णवरि सम्मामि० पंचण्णं कम्माणं श्रज० ज० श्रंतो०, उक्क० पिलदो० असंत्वेज्जदिभागो।

काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जिनना मार्गणाएँ गिनाइ हैं उनमें काल सम्बन्धा यह स्रोघ प्रकृपणा स्रविकल घटित हो जाती है इसलिए उनके कथनको स्रोचके समान कहा है। मात्र इन मार्गणास्त्रोंमें यह काल स्रपने स्रपने स्वामित्यको ध्यानमें रखकर ले स्राना चाहिए।

२५१. नारिकयों में सात कर्मीका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मके जयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पर्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चित्र्य तियेक्क, मनुष्य अपयाप्त, सामान्य देव, सहस्रार करूप तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, बादर प्रथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रवाययोगी, उपशामसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिश्रवाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिश्रवाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिश्र्यादृष्टि जीवोंमें अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल प्रकृति वन्धके कालके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिश्र्यादृष्टि जीवोंमें पाँच कर्मोंक अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जयन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल परुषके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

मिथ्यादृष्टि जीवके होता है । श्रब यदि कुछ नारिकयोंने श्रायुकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध एक समय किया श्रीर दूसरे समयमें दूसरे नारकी जघन्य अनुभागबन्ध करने लगे तो इस प्रकार निरन्तर श्रायुकर्मका जयन्य श्रनुभागबन्ध श्रावलिके श्रासंख्यातवें भाग काल तक ही होगा। यही कारण है कि यहाँ आयुक्रमके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके श्चसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । त्रायुकर्मका त्रजघन्य त्रनुभागवन्ध एक समयके लिए होकर दूसरे समयमें जघन्य अनुभागबन्ध यदि हो तो आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है और यदि कुछ जीवोंने आयुकर्मका अजधन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक किया। इसके बाद अन्य जीव अन्तर्भुहूर्त काल तक आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध करते रहे। इस प्रकार यदि निरन्तर श्रायुकर्मका बन्ध हो तो पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण काल तक वह सम्भव है। यही कारण है कि यहाँ आयु कर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ श्रन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें काल सम्बन्धी यह प्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनका काल सामान्य नारिकयों के समान कहा है। मात्र सान्तर मार्गणात्रोंमें जो विशेषता है वह त्रजगसे कही है। त्रागे भी त्रन्य मार्गणात्रोंमं अपने श्रपने स्त्रामिस्वको ध्यानमं लेकर काल घटित करनेमें सुगमता होगी, इसलिए हम उसका अलगसे उहापोह नहीं करेंगे।

१. ता० प्रती बंधकाले इति पाठः ।

२५२. तिरिक्षेसु घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० आविति० असंखे०। अज० सन्बद्धा। सेसाणं ज० अज० सन्बद्धा। एवं किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भव०-असण्णि०-अणाहारग० ति। मणुसेसु घादि०४ जह० अज० [ओघं]। सेसाणं णिरयोघं। एवं पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचविव०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्मले०-सण्णि ति।

२५३. श्रोरालि०-ओरालियमि० ओघं। णवरि गोद्० तिरिक्खोघं। आमि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० इत्थि०मंगो। आउ० उक्कस्समंगो। एवं ओधिदंस०-सम्मा-दि०'-खइग०-वेदग०। णवरि खइग० आउ० मणुसि०मंगो। सेसाणं संखेज्जरासीणं उक्कस्समंगो। अण्णेसु पदाणं उक्कस्स-जहण्णएसु अभिणदाणं परिमाणेण कालो साधेदन्वो।

एवं कालो समत्तो ।

२२ अंतरपरूवणा

२५४. अंतरं दुविधं-जहण्णयं उकस्सयं च । उकस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४-आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

२५२. तियक्क्षीमं चार घातिकमं श्रीर गांत्रकर्मकं जवन्य श्रनुभागकं वन्यक जायोंका जवन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्राव लके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। श्रजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीयोंका काल सर्वदा है। शेप कर्मीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जायोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापांतलेश्यावाले, श्रभव्य, असंज्ञी श्रीर श्रनाहारक जीयोंके जानना चाहिये। मनुष्योंमं चार घातिकर्मीके जघन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीयोंका काल श्रोधके समान है। शेप कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार पञ्चिन्द्रयद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवदी, पुरुपवदी, विभङ्ग- ज्ञानी, चल्लदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले श्रीर संज्ञी जीयोंक जानना चाहिये।

२४३. श्रीदारिककाययोगी और श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में श्रीयकं समान काल है। इतनी विशेषता है कि गांत्रकर्मका भङ्ग सामान्य तियञ्जों के समान है। श्राभिनिविधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविध्वानी जीवों से सात कर्मीका भङ्ग खांवदी जीवों के समान है। आयुक्रमंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार श्रविध्वर्शनी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि श्रीर वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों जे जानना चाहियं। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों श्री श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्यनियों के समान है। श्रेष संख्यात संख्यात्राली राशियों का भङ्ग उत्कृष्टके समान है। श्रम्य मार्गणाश्रों उत्कृष्ट श्रीर जवन्य काल क्ष्यसे स्वीकृत सब पद्योंका काल जो नहीं कहा है बह परिमाणके श्रनुसार साध लेना चाहिये।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

२२ अन्तरप्ररूपणा

२५४. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—अोघ और आदेश । आघसे चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनु-

ता० आ० प्रत्योः सम्मामि० इति पाठः। २ ता० प्रतौ इवं कालो समत्तो इति पाठो नास्ति!

अणु० णितथ अंतरं । वेद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० छम्मासं० । अणु० णितथ अंतरं । एवं मणुस०३-पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि० कायजोगि- ओरालि०-लोभ०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०- चक्खु०-अचक्खु०-ओषिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-सण्णि०-आहारग ति । एदेसि आउ० अणुक्कस्से० अत्थि अंतरं तेसि अपपष्पणो पगदिअंतरं कादव्वं । णविर मणुस०-ओधिणा०-मणपज्ज०-ओधिदं० वेद०-णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुधर्त्तं०।

२५५. णिरएसु अट्टण्णं कम्माणं उक्त० जह० एग०, उक्त० असंखेज्जा स्त्रोगा । अणु० णिरिथ अंतरं । णवरि आउ० अणु० अप्पप्पणो पगदिअंतरं ।

भागके बन्धक जीवोंका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंस्थान लोक प्रमाण है। अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। वदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्यित्रक, पंचेन्द्रियद्विक, बसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, ओदारिककाययोगी, लोभकपायवाले, आभिनिवोधिक-ज्ञानी, अतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, चलुदर्शनी, अचलुदर्शनी, अवधिदर्शना, शुक्रलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, लायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंक जानना चाहिये। किर भी इनके आयुक्षके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्यका जो अन्तरकाल है उनका वह अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यञ्ज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रक्षके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथन्नव है।

विशेषार्थ—चार घाति व चार अघाति कर्माका एक समयकं अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जरन्य अन्तर एक समय कहा है। चपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे वेदनीय, नाम और गांत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है और शेष कर्माका यदि उत्कृष्ट अनुभागवन्ध न हो तो वह असंख्यातलोक प्रमाण काल तक नहीं होता इसलिए शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। आंघसे आठों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओघ प्रस्तपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अन्तरकाल ओघकं समान कहा है। मात्र इनमें बहुत-सी ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें आयुकर्मका निरन्तर बन्ध सम्भव नहीं है, अतः उनमें आयुकर्मके प्रकृतिवन्धका जो अन्तर कह आये हैं वही यहाँ आयुकर्मकं अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर जानना चाहिए। तथा मनुष्यिनी आदि चार मार्गणाओंमें च्यकश्रेणिका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर जानना चाहिए। तथा मनुष्यिनी आदि चार मार्गणाओंमें च्यकश्रेणिका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्व प्रमाण है, अतस्व इन मार्गणाओंमें वदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्व प्रमाण कहा है।

२५५. नारिकयों में आठ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जावोंका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। इतनी विशेषता है कि आयुके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल अपने अपने प्रकृतिबंधके अन्तर कालके समान कहना चाहिये। २५६. एवं संखेज्ज-असंखेज्ज-अणंतरासीणं पि ! [णविर] इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०तिष्णिकसा० वेद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुघत्तं० वासं सादिरेयं० । अणु० णित्थ अंतरं । अवगदवे० सुहुमसंप० घादि०४ उक्क० जह० एग०,
उक्क० वासपुघ० । अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं० । वेद०-णामा०-गोद० उक्क०
अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं० । उवसमसम्मा० घादि०४ उक्क० ओघं । वेद०णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुघ० सन्वेसिं। अणु० जह० एग०, उक्क०
सत्त रादिंदियाणि । एवं णेद्ववं याव अणाहारग ति ।

एवं उकस्संतरं समत्तं ।

२५६. इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्त राशिवाल जीवांका भी अन्तर काल जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और तीन कपायवाल जीवोंमें वेदनीय नाम और गांत्र इनतीनोंक उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथकत्व तथा कुछ अधिक एक वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। तथा अपगतवेदी और सूद्दमसांपरायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिया कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्ष पृथक्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह मास है। तथा वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका अन्तर ओघक समान है; वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका अन्तर ओघक समान है; वेदनीय, नाम और गांत्र कर्मोंक उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीवोंका जघन्य अनुभागक वंधक जीवोंका जघन वंध

विशेषार्थ—नारिकयों में आठों कर्मांक उत्कृष्ट अनुभागक वन्धक जीव सदा नहीं होते अतः उनमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक काल प्रमाण कहा है। सात कर्मोंक अनुत्कृष्ट अनुभागक वंधक जीव सदा रहते हैं अतः उनका अन्तर नहीं होता है। आयु कर्मका बंध केवल आयुके अन्तर छह मासमें आठ अपकर्षोंमें होना संभव होनेसे उसके बन्धक जीव नारिक्योंमें सदा नहीं रहते, अतः आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तर काल प्रकृति वंधक अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तर काल प्रकृति वंधक अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तर काल के समान ही अन्य सब मार्गणाओंमें भी अन्तर काल जानना चाहिये। किन्तु इसमें तीन विशेषताएँ हैं। प्रथम तीनों वदी व तीन कपायवाल जीवोंमें वदनीय नाम और गांत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण काल न होकर क्या वेदी, नपुंसक वेदी, तीन कपायवाल और पुरुषवेदी जीवोंमें वर्षप्रथक्त्व और साधिक एक वर्ष है, क्योंकि इनमें चपक्षेणी चढ़नेका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त काल प्रमाण है। दूसरी विशेषता अपगतवेदी व सूदमसांपरायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक अन्तरकालकी है। इन दोनों मार्गणाओंमें चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अरु उत्कृष्ट अनुत्वर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्य प्रमाण होनेसे इनमें चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्य प्रमाण होनेसे इनमें चार घाति कर्मोंक व्यव्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्य प्रमाण होनेसे इनमें चार घाति कर्मों के व्यव्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्य प्रमाण होनेसे इनमें चार घाति कर्मों के

ला० प्रसी एवं उक्कस्संतरं समर्श इति पाठा नास्ति ।

२५७. जह० पगदं। दुवि० '-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० छम्मासं०। अज० णित्थ अंतरं। वेद०-आउ० णाम० जह० अज० णित्थ अंतरं। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। अज० णित्थ अंतरं। एवं ओघमंगो कायजोगि-ओरालि०-अचम्खु०-भवसि०-भाहारग ति।

२५८. तिरिक्खेसु घादि०४-गोद० ज० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०--णामा० जह० अज० णत्थि अंतरं०। एवं शोरालियमि०

उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण कहा है।
तथा अपगतवंद और सृद्भसाम्परायका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना
होनेसे इनमें चार घाति कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट
अन्तर छह महीना कहा है। उपशामसम्यक्त्वके साथ उपशामश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और
उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होनेसे इसमें वेदनीय, नाम और गोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा उपशामसम्यक्त्वका जघन्य
अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल सात दिन रात होनेसे इसमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट
अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल सात दिन रात कहा है।
होप कथन सुगम है।

२५७. जघन्यका प्रकरण है। उसकी उपना निर्देश दो प्रकारका है—श्रांघ और आदेश। श्रांघसे चार प्रातिकर्मीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। बेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अनुन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार श्रांघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचनुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ — चपकश्रेणिका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे यहाँ ओघसे चार याति कर्मांके जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना कहा है। वेदनीय, आयु और नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल ही संभव नहीं है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्ध सातवें नरकमें सम्यक्तवके अभिमुख हुए नारकीके होता है। फिर भी ऐसी अवस्थामें जघन्य अनुभागवन्ध होना ही चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। यह यदि अन्तरसे हो तो कम से कम एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और अधिक से अधिक असंख्यात लोक प्रमाण कालके अन्तरसे भी हो सकता है। यही कारण है कि भोघसे गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागवन्धका अपन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। मूलमें काययोगी आदि जितनी मागणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओघप्रक्रपणा अविक ज घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

२५८. तिर्यञ्जोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक

१ ता• प्रतौ जह॰ दुवि• इति पाठः ।

कम्मइः मदिः - सुदः - मसंजः - - तिण्णिले - - अब्भवसिः - निच्छादिः - असण्णि - म्रणाहारगः ति । सेसाणं संखेज-असंखेजरासीणं उक्तस्सभंगो । णवरि किंचि विसेसो अत्थेण साधेदन्त्रो । सन्वपदा अणंतरासीणं बंधगाणं ओघेण तिरिक्खोघेण च साधेदन्त्रो ।

एवं अंतरं समत्तं।

२३ भावपरूवणा

२५६. भावं दुविधं-जह० उकस्सयं च। उक्त० पगदं। दुवि०-ओघे०आदे०। ओघे० अहुण्णं कम्माणं दोण्णं पदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं। एवं जहण्णगं पि णादव्वं।

एवं भावं समत्तं ।

२४ अपाबहुअपरूवणा

२६०, अप्पाबहुगं दुविधं-जहण्णयं उक्तस्सयं च । उक्तस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सन्त्रतिन्वाणुभागं वेद० । णाम०-गोद० दो वि तुन्नाणि

जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। वंदनीय, आयु और नामकर्मके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार ऑदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिश्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली राशियोंका भंग उत्कृष्टके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओं में जो कुछ विशेषता है वह अर्थक अनुसार साध लेना चाहिये। तथा अनन्त संख्यावाली मार्गणाओं में वन्धक जीवोंक सव पदोंका भंग ओव और सामान्य तिये खोंके अनुसार साध लेना चाहिये।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणात्रोंके स्वामित्वका विचार कर त्रानर काल घटित कर लेना चाहिए। जिस्र मार्गणामें जा विशेषता है वह घटित की जा सकती है, इसलिए सबके विषयमें यहाँ खलग जलग नहीं लिखा है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ।

२३ भावप्ररूपणा

२४६. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । आंघसे आठों कर्मों के दोनों पदों के वन्धक जीवोंका कीनसा भाव है ? औदियक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार जयन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा भी जानना चाहिये ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुन्त्रा।

२४ अन्पबहुत्वप्ररूपणा

२६०. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी धपेचा निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश । श्रोघसे वेदनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सबसे ती

१. ता॰ प्रतौ एवं भावं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

श्चणंतगुणहीणं । मोह० अणंतगुणहीणं० । णाणा०-दंसणा०-श्चंतरा० तिण्णि वि तुन्नाणि श्चणंतगुणहीणं । श्चाउ० अणंतगुणहीणं । एवं याव अणाहारग ति । णवरि सन्वअपज्ञ०-सन्वएइंदि०-सन्वविगलिंदि०-सन्वपंचकायाणं च सन्वतिन्वाणुभागं मोह० । वेद० अणंतगुणहीणं । छेसं मूलोघं ।

२६१. जहण्णए पगदं। दृवि०'-अधि०आदं०। ओवे० सन्वमंदाणुमागं० मोह०। अंतरा० अणंतगुणन्मिहयं। णाणा०-दंसणा० दो वि तु० अणंतगुणन्म०। आउ० अणंतगुणन्म०।गोद० अणंतगुणन्म०। णाम० अणंतगुणन्म०। वेदणी० अणंत-गुणन्मिह०।एवं ओघभंगो पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि० कायजोगि कोवादि०४-चक्खु०-अचक्खुदं०-भवसि०-सण्णि—श्राहारग ति।

२६२. णिरएसु सन्वमंदाणुभागं मोह०। णाणा०-दंस०-श्रंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगुणब्भ०। गोद० अणंतगुणब्भ०। णाम० अणंतगुणव्भ०। वेद० अणंतगुणब्भ०। आउ० अणंतगुणब्भ०। एवं सत्तमाए। पढमाए याव छद्दि ति एवं चेव। णवरि णाम०-गोद० दो वि तु० अणंतगु०।

है। इससे नाम आर गांत्रकर्मका उछ्छ अनुभागवन्ध दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगुणा हीन है। इससे झानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय-कर्मके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध तीनों ही समान होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विक्लेन्ट्रिय और सब पाँचों स्थावरकायिक जीवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सबसे तीब है। इससे वेदनीयका अनुभागवन्ध अनन्तनगणा हीन है। शेष भंग मुलावके समान है।

२६१. जथन्यका प्रकरण है। उसकी अपन्ना निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे माहनीयका जघन्य श्रमुभागवन्य सबसे मन्द है। इससे अन्तराय कर्मका जघन्य श्रमुभागवन्य स्रामावन्य स्रामावन्य समके जघन्य श्रमुभागवन्य दोनों ही समान होकर श्रमन्तगुणे श्रीचक हैं। इनसे श्रायुकर्मका जघन्य श्रमुभागवन्य श्रमन्तगुणा श्रीक है। इससे गोत्रकर्मका जघन्य श्रमुभागवन्य श्रमुभागवन्य श्रमन्तगुणा श्रीवक है। इससे नामकर्मका जघन्य श्रमुभागवन्य श्रमन्तगुणा श्रीवक है। इससे नामकर्मका जघन्य श्रमुभागवन्य श्रमन्तगुणा श्रीवक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य अनुभागवन्य श्रमन्तगुणा श्रीवक है। इसी प्रकार श्रोचक समान पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चारकपायवाले, चजुदर्शनी, श्रचजुदर्शनी, भव्य, संज्ञी श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२६२. नारिकयों में मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभागवन्य सबसे मन्द है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके जघन्य अनुभागवन्य तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इससे गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागवन्य अनन्तगुणा अधिक है। इससे नामकर्मका जघन्य अनुभागवन्य अनन्तगुणा अधिक है। इससे वेदनीय कर्मका जघन्य अनुभागवन्य अनन्तगुणा अधिक है। इससे आयुक्रमंका जघन्य अनुभागवन्य अनन्तगुणा अधिक है। इससे आयुक्रमंका जघन्य अनुभागवन्य अनन्तगुणा अधिक है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। पहली पृथिवीसे लेकर छठी तकके नारिकयों में इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागवन्य दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं।

ता॰ प्रतौ जह० दुवि• इति पाठः ।

२६३. तिरिक्खेसु ओघं। णवरि णाणा०-दंसणा०-अंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु०। सन्वयंचिदि० तिरि० मणुसअपन्ज०-सन्वविगलिदि० तिण्णिकाय-पंचिदि०-तसअपज्ज० सन्वमंदाणुभागं मोह०। णाणा-दंसणा०-अंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगुणन्म०। [आउ० अणंतगुणन्म०। विद० दो वि तु० अणंतगुणन्म०। वेद० अणंतगु०।

२६४. मणुस०३ ओघं। णविर णामा-गोदा० दो वि तुल्ला० अणंतगु०। देवाणं याव उवरिमगेवज्जा ति पढमपुढविभंगो। अणुदिस याव सन्बद्ध० ति णिरयोघं। एवं [एइंदि०-] तेउ-वाऊणं वि।

२६५. ओरालिय० ओघं। ओरालियमि०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि० तिरिक्खोघं। वेउव्वियका० सत्तमपु० भंगो। एवं वेउव्वियमि०। णवरि आउ० णत्थि। आहार०-आहारमि०-परिहार³०-संजदासंजद०-वेदग०-सासण०-सम्मामि० सव्बद्धभंगो। कम्मइ०-ऋणाहार० तिरिक्खोघं। णवरि आउ० णत्थि।

२६३. तिर्यञ्चोंमें श्रोघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण श्रोर अन्तराय कर्मके जयन्य अनुभागवन्ध तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। सब पचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पृथ्वी, जल व वनस्पति तीनों स्थावरकाय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकर्मका जयन्य अनुभागवन्ध सबसे मन्द हैं। इससे ज्ञानवरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके जयन्य अनुभागवन्ध तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इससे आयु कर्मका जयन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणे अधिक हैं। इससे नाम और गोत्रकर्मके जयन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुण। अधिक हैं। इससे वेदनीय-कर्मका जयन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुण। अधिक हैं।

२६४. मनुष्यत्रिकमें श्रोधके समान श्रन्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि नाम श्रीर गोत्र-कर्मके जवन्य श्रनुभागवन्ध दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुर्ण श्रिधिक हैं। सामान्य देवोंमें श्रीर उपिमग्रेवयक तकके देवोंमें पहली पृथिवीक समान श्रन्पबहुत्व है। श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सामान्य नारिकयोंके समान श्रन्पबहुत्व है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, श्रिग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिये।

२६५. औदारिककाययोगी जीवोंमें श्रोघके समान श्रल्पबहुत्व है। औदारिकमिश्रकाय-योगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कपोतलेश्या-वाले, श्रमच्य, मिथ्यादृष्टि श्रोर असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्जोंके समान श्रल्पबहुत्व है। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें सातवीं पृथिवीके समान श्रल्पबहुत्व है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मका वन्ध नहीं होता। श्राहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वदकसम्यग्दृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यग्मथ्यादृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान श्रन्पबहुत्व है। कार्मणकाययोगी श्रोर श्रमाहारक जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्जोंके समान श्रन्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रायुकर्मका बन्ध नहीं है।

१. ता॰ प्रतौ गोद॰ उ॰ दो वि इति पाटः। २. ता॰ प्रतौ णवके (गेव) जा इति पाट०। ३. ता॰ प्रतौ परिहार० १ इति पाटः।

२६६. इत्थि०-पुरिस० मणुसि०भंगो । णवुंस०-अवगद०-सुहुमसं० ओघं । आभि०-सुद०-ओघि०-मणपञ्ज०-संजद-सामाइ० छेदो०-ओघिदं०-सम्मादि०-खइग०-उवसम० ओघं । णवरि सब्बुवरि आउ० अणंतगु० । तेउ-पम्मा० देवोघं । सुक्षाए मणुसि०भंगो । णवरि आउ० सब्बुवरि भाणिद्व्वं ।

एवं अप्यावहुगं समत्तं । एवं चदुवीसमणियोगद्दाराणि समत्ताणि ।

२६६. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान अरुपबहुत्व है। नपुंसकवेदी, अपगतवेदी और सूद्रमसाम्परायिकसंयत जीवोंमें खोघके समान अरुपबहुत्व है। आभिनिबोधिक- ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यथञ्चानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिद्रशीनी, सम्यग्दृष्टि, श्रायिकसम्यग्दृष्टि और उपशामसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान अरुपबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें सबके अन्तमें आयुकर्मका ज्ञयन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा अधिक है। पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान अरुपबहुत्व है। श्रुत्त-लेश्यावाले जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान अरुपबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनम आयुक्मका अरुपबहुत्व सबके अन्तमें कहन। चाहिये।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारबंधो

२६७, भ्रुजगारबंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—याणि अस्सि समए अणुभागफद्दगाणं बंधिद अणंतरओसकाविद्विदिकंते' समए अप्पदरादो बहुदरं बंधिद ति एस भ्रुजगार-बंधो णाम । अप्पदरबंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—याणि अस्सि समए अणुभागफद्दयाणि बंधिद अणंतर-उस्सकाविद विदिकंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधिद ति एस अप्पदरबंधो णाम । अविद्वदबंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—याणि अस्सि समए अणुभागफद्दगाणं बंधिद अणंतरओसकाविद्विदिकंते समए तित्याणि तित्याणि चेव बंधिद ति एस अविद्विद्वंधो णाम । अवत्तव्ववंधो ति तत्थ इमं अद्वपदं—अवंधादो बंधिद ति एसो अवक्तव्ववंधो णाम । एदेण अद्वपदेण तेरस अणियोगद्द।राणि—सम्रकित्तणा सामित्तं एवं याव अप्पाबहुगे ति १३ ।

समुक्तिनाणुगमो

२६८. समुक्तित्तणदाए दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० अट्टण्णं कम्माणं अत्थि भ्रज्ञ० अप्पद० अवद्विद अवत्तव्वबंधगा थ। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिदि०-तस० २- पंचमण०-पंचवि०-कायजोगि-ओरालि०-आमि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ञ०-संजद०- चक्खुदं०-अवक्खुदं०-ओधिदं०-सुकले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-श्राहारग ति।

भुजगारबन्धप्ररूपणा

२६७. भुजगारबन्धका प्रकरण है। उसके विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समयमें अनु-भागकं स्पर्धक बाँधता है वह अनन्तर अपकर्षको प्राप्त हुए पिछले समयसे अल्पतरसे बहुतर स्पर्धक वाँधता है, यह भुजगार बन्ध है। अल्पतर बन्धकं विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समय अनुभागके स्पर्धक बाँधता है, वह अनन्तर उत्कर्षको प्राप्त हुए पिछले सभयसे बहुतरसे अल्पतर बाँधता है—यह अल्पतरबन्ध है। अवस्थितबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समय अनु-भागके स्पर्धक बाँधता है वह अनन्तर अपकर्षको प्राप्त हुए या उत्कर्षको प्राप्त हुए पिछले समयसे उतने ही उतने ही स्पर्धक बाँधता है यह अवस्थितबन्ध है। अवक्तव्यबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो पहले नहीं बाँधता था और अब बाँधता है यह अवक्तव्यबन्ध है। इस अर्थपदके अनु-सार तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना और स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व तक १३।

सम्रत्कीर्तनानुगम

२६८. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका हे—ओव और आदेश। ओवसे आटों कर्मोंक भुजगार, अरूपतर, अवस्थित और अवक्रव्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार ओवके समान मनुष्यित्रक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनायागी, पाँच वचनयोगी, काययागी, श्रोदारिककाययोगी, आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविध्वानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चज्जदर्शनी, अचजुदर्शनी, अविध्दर्शनी, युक्तलश्यावाले, भव्य, सम्यग्दष्टि, चायिकसम्यग्दष्टि, उपशमसम्यग्दष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

१. ता० प्रतौ विओक्कंते र्हात पाठः । २, ता● प्रतौ अणंतरं उस्मक्काविदं इति पाठः ।

२६९. गेरइएस सत्तणं कम्माणं अत्थि भुज०-अप्पद्०-अवहि०। आउ० ओघं। एवं सन्वणिरयाणि । वेउन्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि० अणाहारग ति सत्तण्णं कम्माणं अत्थि भुज०-अप्पद्०-अवहिद्० । अवग० ओघभंगो । अवहि० णित्थ । सुहुमसंप० अत्थि भुज० अप्पद्० । सेसाणं सन्वेसिं णिरयभंगो । णवरि लोभे मोह० ओघं।

एवं समुक्तित्तणा समत्ता ।

सामित्ताणुगमो

२७०. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तणणं क० धुज०-अप्प०-अविद्वि० वंधो कम्स होदि ? अण्णदरम्स । अवत्त० कस्त० ? अण्ण उवसामणादो परिवद-माणस्स मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा । एवं श्रोधभंगो पंचिदि०-तस०२-कायजोगि-आमि०-सुद०-ओधि०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्तले०—भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्ण-आहारग ति । एवं मणुस०३—पंचमण०-पंचविच०-ओरालि०-मणपञ्ज०-संजदा०। णविर अवत्तन्व० देवो ति ण भाणिदव्वं। एदेसिं सव्वेसिं आउग० भुज०-अप०-अविद्व० कस्स ? अण्ण०। अवत्त० कस्स० ? अण्णद० पढम-समयआउगवंधमाणगस्स । एवं आउग याव अणाहारग ति भाणिदव्वं।

२६६. नार्राक्यों मं सात कर्मांक भुजगार, अन्यतर आर अवस्थितवन्धवाले जीव हैं। आयु-क्रमका भंग आंघके समान है। इसी प्रकार सब नार्रकी जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रिथिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यागिध्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धवाले जीव हैं। अवगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपद्वाले जीव नहीं हैं। सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें भुजगार और अल्पतर पद्वाले जीव हैं। शेष सब मार्गणाओंका भंग नार्राक्योंके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभ-क्षायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मका भंग आंघके समान है।

इस प्रकार समुस्कीतंना समाप्त हुई।

स्वामित्वानुगम

२७२. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्दश दा प्रकारका है—आंघ और आदेश। श्रांघसे सात-कर्मोंक भुजगार, श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थितपदक बन्धका स्वामी कोन है ? श्रन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। श्रवक्तव्यपदका स्वामी कोन हे ? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी या प्रथम समयवर्ती देव उक्त पदका स्वामी है। इसी प्रकार श्रांघके समान पंचेन्द्रियद्विक श्रसद्विक, काययांगी, श्राभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, चज्जदर्शनी, श्रवधिद्दर्शनी, श्रवधिद्दर्शनी, श्रवधिदर्शनी, श्रुक्तलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, लायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, श्रीदारिककाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाद्योंमें अवक्तव्यपदका स्वामी देव होता है यह नहीं कहना चाहिये। इन सब मार्गणाद्योंमें श्रायुक्तमके भुजगार, श्रन्यतर श्रीर श्रवस्थितपदका स्वामी कोन है ? श्रम्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसके श्रवक्तव्यपदका स्वामी कोन है ? श्रथम समयमें श्रायुक्तमका वन्ध करनेवाला श्रन्यतर जीव श्रवक्तव्यपदका स्वामी है। श्रायुक्तमंका भंग इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक कहना चाहिये।

१. ता० प्रती एवं समुक्तिराणा समसा इति पाठी नास्ति ।

२७१. णिरएसु मत्तणणं क० भुज०-अप्पद०-अविद्वि कस्स० ? अण्ण० । वेउ विश्वयमि० सत्तणणं क० भुज०-अप्पद०-अविद्वि कस्स० ? अण्ण० । एवं कम्मइ०-सम्मामिच्छा०-अणाहारग ति । सेमाणं सन्वेसिं णिरयभंगो । णवरि अवगद० घादि०४ भुज० कस्स० ? अण्ण० उवसमणादो परिवदमाणस्स । एवं अवत्त० । अप्पद० क० ? अण्ण० उवसा० खइग० । अघादीणं भुज० उवरि चढमाण० । अप्प० कस्स० ? अोदरमाण० । एवं अवत्त० । एवं सुद्दमसंप० छण्णं कम्माणं० ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

कालाणुगमा

२७२. कालाणुगमेण दुवि०—अघे० आदे०। अघे० सत्तण्णं क० धुज० श्रप्प० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । अविष्ठ० जह० एग०, उक्क० सत्तद्व सम० । अवत्त० एग० । आउ० धुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० श्रंतो० । अविष्ठ० जह० एग०, उक्क० सत्तसम० । अवत्त० एग० । एवं आघभंगो एसिं अट्टण्णं वि अवत्तव्वगा अत्थि ।

२७१. नारिकयोम सात कर्मीक भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका स्वामी कीन है १ अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीके भुजगार, श्रवतर श्रीर श्रवस्थितपदका स्वामी कीन है १ अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिश्यादृष्टि श्रीर श्रनाहारक जीवोंक जानना चाहिये। दोप सब मार्गणाश्रोंका मंग नारिकयोंक समान है। इतनी विशेषता है कि अपगतवंदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंक भुजगारपदका स्वामी कीन है १ उपशमश्रीणेसे गिरनेवाला अन्यतर जीव उक्त पदका स्वामी है। इसी प्रकार श्रवक्तव्य पदका स्वामी कहना चाहिये। अल्पतरपदका स्वामी कीन है १ अन्यतर उपशामक श्रीर चपक जीव अल्पतरपदका स्वामी है। श्रवाति कर्मोंक भुजगारपदका स्वामी अपर चढ़नेवाला जीव कहना चाहिये। अल्पतरपदका स्वामी कीन है १ नीचे गिरनेवाला जीव श्रव्यतर पदका स्वामी है। इसी प्रकार श्रवक्तव्य पदका स्वामी कहना चाहिए। तथा इसी प्रकार सूद्रमसास्वरायिक संयत जीवोंमें छह कर्मोंके पदोंक। स्वामित्व कहना चाहिए।

इस प्रकार स्वामित्व समन्त्र हुआ।

कालानुगम

२७२. कालानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रांर श्रादेश। श्रोघसे सात कर्मों के भुजगार श्रोर श्रव्पतरपदका जघन्य काल एक समय हे श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय हे श्रोर उत्कृष्ट काल सात श्राठ समय है। श्रवक्तव्य पदका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रायुक्तमंके भुजगार श्रोर श्रव्पतरपदका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल सात समय है। श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। इस प्रकार जिन मार्गणाओं से श्राठों कर्मों के श्रवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जाव हैं उनसे श्रोघके समान जानना चाहिये। श्रेप मार्गणाओं से सात कर्मों के श्रवक्तव्यपदका हो श्रवक्तव्यपदका हो इस प्रकार जानना

आ० प्रतौ करसय बाद्रमा० इति पाठः । २. ता० प्रतौ एवं सामित्तं समत्तं इति पाठो नास्ति ।
 अप्रेऽप्येवंविधो व्यत्ययो दश्यते बहुळतया ।

सेसाणं पि सत्तण्णं क० अवत्तन्वगा वज्ज ओघं। णविर कम्मइ० अणाहार० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० बे सम०। अविद्वि० जह० ए०, उक्क० तिण्णि सम०। अवगद० भुज०-अप्पद० जह एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० एग०। एवं सुहुमसंप० अवत्तन्वं वज्ज ।

अंतराणुगमो

२७३. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तर्णां० क० भुज० अप्प० वंधंतरं केव० ? जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवद्वि० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल्त०। आउ० भुज०-श्रप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे०। अवद्वि० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। [एवं अचक्खु० भवसि०।]

२७४. णिरएसु मत्तण्णं क० भुज०-श्रप्प० ओघं। अवट्टि० जह० एग०, उक० तेत्तीसं साग० देस्०। आउ० तिण्णि प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक० स्रम्मासं देस्०। एवं सन्वणिरण्सु अप्पप्पणो द्विदी कादन्त्रा।

चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययांगी और अनाहारक जीवोंमें भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अपगतवेदी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भृहतं है। अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार सृद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपदकों छोड़कर काल जानना चाहिये।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुन्ना।

अन्तरानुगम

२७१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रोर आदेश। आंघसे सात कर्मांके मुजगारश्रोर अस्पतर बन्धका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण है। आयुकर्मके मुजगार और अस्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर आसंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार अचलुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

२०४. नारिकयों में सात कर्मीके भुजगार और ऋल्पतर पदका भङ्ग श्रोधके समान है। अव स्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सत्र नार्यक्यों में अपनी अपनी स्थितिका विचारकर अन्तरकाल कहना चाहिये।

१. ता० प्रतौ अंतो० तेशीसं इति पाठः।

२७५. तिरिक्खेस सत्तणां क० ओघं०। आउ० अवडि० श्रोघं। सेसाणं पदाणं जह० ओघं, उक्क० तिण्णि पिलदो० सादि०। पंचिंदियतिरि०३ सत्तणां क० अवडि० जह० ऐग०, उक्क० कायडिदी। आउ० अवडि० णाणा०मंगो। सेसं तिरिक्खोघं। पंचिं०तिरि०अप० सत्तणणं क० भ्रज० अप्प०-अवडि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आउ० तिण्णि पदा० णाणा०मंगो। अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। एवं सन्व- अपजत्ताणं सुदूमपज्जताणं च।

२७६. मणुस०३ सत्तण्णं क० अवत्त० जद्द० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडिपुघ०। सेसं पंचिदियतिरिक्खभंगो। देवाणं णिरयभंगो। णवरि अप्पप्पणो द्विदी कादन्वा।

२७७. एइंदिएस सत्तणं क० ओघं। आउ० अवडि० ओघं०। सेसाणं जह० एग० अंतो०, उक्क० बाबीसं वाससह० सादि०। बादरे अट्टणं क० अवडि० उक्क० अंगुल० असं । पज्जत्ते संखेजाणि वाससह०। सुदूमे असंखेजा लोगा। विग- लिंदिय०२ अट्टणं क० अवडिद० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वाससह०। सेसपदा आघं। गावरि आउ० उक्क० अप्पप्पणो पगदिअंतरं कादव्वं। पंचकायाणं एइंदियभंगादो साधेदव्वोर।

२७५. तिर्यक्वोंमें सात कर्मीका अन्तर काल आघके समान है। आयु कमके अवस्थित पदका अन्तरकाल ओघके समान है। शेष पदोंका जयन्य अन्तरकाल ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। पक्चिन्द्रिय तिर्यक्चित्रिकमें सात कर्मीके अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है भौर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। आयुक्रमेंके अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरण के समान है। शेष भङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। पक्चिन्द्रयितर्यक्चअपर्याप्तकोंमें सात कर्मीक भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुक्रमेंके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, और सूदम पर्याप्त जीवोंके ज्ञानना चाहिये।

२७६. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। शेप भङ्ग पख्रेन्द्रियतिर्यक्कोंके समान है। देवोंमें नारिकयों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिये।

२७७. एकेन्द्रियों में सात कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रायुकर्मके श्रवस्थित पदका भङ्ग श्रोघके समान है। शेप पदोंका श्रर्थान् भुजगार और श्रवणतरका जघन्य श्रन्तर एक समय और अवक्तत्र्यका अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्क्रष्ट श्रन्तर साधिक वाईस हज र वर्ष है। बादर एकेन्द्रियों श्राठ कर्मोंके श्रवस्थित पदका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गलके असंख्यात से भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्या- प्रकों संख्यात हजार वर्ष है। सूदम एकेन्द्रियों से श्रसंख्यात लोक है। विकलेन्द्रिय श्रीर विकलेन्द्रियपर्याप्तकों से श्राठ कर्मों के श्रवस्थित पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर संख्यात हजार वर्ष है। श्रेप पदोंका श्रन्तर श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रायुक्तमें उत्कृष्ट श्रन्तर श्राप्तके समान कहना चाहिये। पाँच स्थावरकायिक जीवों में एकेन्द्रियों के भङ्गके श्रनुसार साध लेना चाहिये।

१ ता० आ० प्रत्यो: अंगुल सं० इति पाटः। २. ता० प्रती-भंगो (गा) दो सावे (घे) दब्बो इति पाटः।

२७८. पंचिं० तस०२ सत्तणां क० भुज०-अप्प० श्रोघं। अविह०-अवत्त० जह० ओघं, उक्क० कायहिदी०। आउ० श्रोघं। णवरि अविह० णाणा०भंगो।

२७६. पंचमण०-पंचविच० अट्टणं क० अवत्त० णित्थ अंतरं। सेसं जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगि० सत्तणं क० ओघं। अवत्त० णित्थ अंतरं। आउ० एइंदिय-मंगो। ओरालि० सत्तणं क० मणजोगिमंगो। णविर अविद्याल जह० एग०, उक्क० बावीसं० सह० देस्व०। आउ० तिण्णि प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवाससह० सादि०। ओरालियिम० अपज्जत्तमंगो। वेउव्व० मणजोगिमंगो। वेउव्वियमि०-आहार० मणजोगिमंगो। आहारिम० ओरालियिमस्स०मंगो। णविर आउ० अवत्त० णित्थ अंतरं। कम्मइ०-अणाहार० सत्तणं क० सुज०-अप्प० णित्थ अंतरं। अविद० एय०।

२८०. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० अधि । अवहि० जह० एग०, उक्क० कायद्विदी० । आउ० अवद्वि० णाणा०भंगो । भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि० तेत्तीसं० सादि० । णयुंस० श्रहुण्णं क०

२७८. पंचेन्द्रियद्विक और असद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके मुजगार और अल्पतरपदका भंग आघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर आंपके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थित प्रमाण है। आयुकर्मका भंग आघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित पदका मंग ज्ञानावरणके समान है।

२७६. पाँच मनायोगी श्रीर पाँच वचनयोगी जीवोंमें श्राठ कर्मीक श्रवक्तव्य पदका श्रन्तरकाल नहीं है। शेप पदोका जघाय श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमुहूर्त है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका मंग आंघके समान है। श्रवक्तित्रयोगी जीवोंमें सात कर्मोंका मंग मनायोगी जीवोंक समान है। श्रविद्यात पदका जघाय अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। श्रायुक्तमक तीन पदोंका जघाय अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जघाय श्रन्तर अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जघाय श्रन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रप्याप्तकोंक समान मंग है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान मंग है। बाहारकिमिश्रकाययोगी श्रीर श्राहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान मंग है। श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान मंग है। श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान मंग है। श्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान मंग है। श्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान मंग है। क्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान संग है। क्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान संग है। क्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान संग है। इतनी विश्रेपता है कि श्रायुक्तमके श्रवक्तव्य पदका श्रन्तरकाल नहीं है। कार्मणकाययोगी और श्रनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार श्रीर श्रन्तर पदका श्रन्तरकाल नहीं है। अवस्थित पदका जघान श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है।

२=०. स्त्रीवेदी और पुरुपवेदी जीवोंमें सात कर्मों के मुजगार और अरुपतरपदका भंग स्रोपके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। स्रायुकर्मके अवस्थित पदका भंग झानावरणके समान है। मुजगार श्रीर अरुपतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मकुँ हैं। सुंप्रमें के श्रीर इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पह्य श्रीर साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदी जीवोंमें आठ कर्मोंका भंग श्रीयके समान है।

ओघं । अवगद० सत्तण्णं क० भुज०-अष्प०-श्रवत्त० णत्थि अंतरं । एवं सुहुमसंप० ।

२८१. कोधादि०४ मणजोगिभंगो । मदि०-सुद० असंज० अब्भवसि०-मिच्छा० णवंसगभंगो । विभंगे सत्तण्णं क० आउ० णिरयभंगो । आमि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० सुज० अप्व० ओघं । अबद्धि० जह० एग०, उक्क० छावद्धिसाग० सादि० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छावद्धिसा० सादि० । आउ० अबद्धि० णाणा०भंगो । सेसपदा ओघं । एवं ओघिदं० सम्मादि० खइग० वेदग० । णविर खइग० उक्क० तेत्तीसं० सादि० । वेदगे छावद्धि० देस्व० । मणपज्ज० सत्तण्णं क० सुज० अप्व० ओघं । अबद्धि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी० देस्व० । आउ० तिण्णिप० जह० एग०, अवत्त० जह० श्रंतो०, उक्क० पुन्वकोडितिमागं देस्व० । एवं संजदा० । एवं चेव सामाइ० छेदो० । णविर सत्तण्णं क० अवत्त० णिरिथ । परिहार० आउ० मणपज्जव० भंगो । सेसं सामाइ० भंगो । एवं संजदासंजद० । चक्खुदं० सण्णि० तसपज्जतभंगो ।

२८२. किण्ण०-णील०-काउ० सत्तण्णं क० अविद्वि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरो० सादिरे० । सेसं ओघं । आउ० णिरयभंगो९ । तेउ० सोधम्मभंगो । अपगतवदी जीवोंमं सात कर्मोक भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सूद्दमसाम्पराधिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

२८१. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें मनायोगी जीवोंक समान भंग है। मत्यज्ञानी, श्रता-ज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्य।दृष्टि जीवोंमें नपुंसकवेदी जीवोंक समान भंग है। विभंगज्ञीनी जीवोंमें सात कर्म त्रोर आयुकर्मका भंग नारिकयोंके समान है। त्राभिनिबोधिकज्ञानी, श्रनज्ञानी और श्रवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मीके भुजगार और अल्पतरपदका भंग आवर्क समान है। अव-स्थितिपदका जबन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर हैं। अबक्तब्य पदका जघन्य चान्तर ऋन्तर्मृहर्त है और उत्कृष्ट ऋन्तर साधिक छयासठ सागर है। आयकर्मके अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। शेप पदौंका भंग आंघक समान है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि और वदकसम्यग्दृष्टि जीवोंक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्बग्दृष्टि जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर माधिक तेतीस सागर है। वदकसम्बग्दृष्टि जीवोंमें कुछ कम छयासठ सागर है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मों के भूजगार श्रीर अल्पतर पदका भेग त्रोघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका ज्ञघन्य अन्तर अन सुंहर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आयुकर्मके तीनों पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकाटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहियं । इसी प्रकार सामायिक और छेदांपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है । परिहारित्रशुद्धिसंयत जीवोंमें त्रायुकर्मका भंग मन:-पर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। शेष कर्मीका भंग सामायिकसंयत जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। चल्रदर्शनी धौर संज्ञी जीवोंके त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भंग है।

२८२. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमं अवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर, सत्तरह सागर श्रोर साधिक सात सागर है। शेप

^{1.} ता । प्रती अस्थि इति पाठः । २ ता । प्रती णिरओभंगो इति पाढः ।

पम्म० सहस्तारभंगो । मुकाए सत्तणं क० अवद्वि० जह० एग०, उक्क० तेत्तोसं० सादि०। अवत्त० णित्थ अंतरं । सेसं देवोघं ।

२८३. उबसम० सत्तण्णं क० तिण्णिप० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णित्थ अंतरं। सासणे आउ० अवत्त० णित्थ अंतरं। सेसपदा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सम्मापि० सत्तण्णं क० सासण०भंगो।

२८४. असण्णी० सत्तण्णं क० आउ० अबिह० तिरिक्खोघं। आउ० भ्रुज०-अप्प• जह० एग०, अबत्त० ज० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी सादि० । आहारएसु सत्तण्णं क० भ्रुज०-अप्पद० ओघं। अबिह० जह० एग०, अबत्त० जह० अंतो०, उक्क० अंगुल• असंखे०। आउ० अबिह० णाणा०भंगो। सेसपदा ओघं।

एवं अंतरं समत्तं।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

२८५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि०—-ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० अवद्वि० णियमा अन्थि । सिया एदे य अवत्तगे य । सिया एदे य अवत्तगा य । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरास्ति० सोम० मोह० अवत्त० अचक्खु०-

पदोंका भंग श्रांघके समान है। आयुकर्मका भंग नारिकयोंक समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें सौधर्म करूपके समान भंग है। पदालेश्यावाले जीवोंमें सहस्रारकरूपके समान भंग है। गुक्रलेश्यावाले जीवोंमें सान कर्मोंके श्रवस्थितपदका ज्ञाचन्य श्रान्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रान्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रवक्तव्यपदका श्रान्तरकाल नहीं है। श्रेप भंग सामान्य देवोंके समान है।

२८३. उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मीक तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्न है। श्रवक्तव्यपद्का श्रन्तरकाल नहीं है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें श्रायुकर्मक अवक्तव्य पद्का श्रन्तरकाल नहीं है। शेष पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिष्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भंग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है।

२८४. असंज्ञी जीवोंमें सान कर्म आर आयुकर्मक अवस्थित पदका मंग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। आयुक्रमके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहृत है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोदि है। आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका मंग आघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहृत है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आयुक्रमके अवस्थितपदका मंग ज्ञानावरणके समान है। तथा शेष पदोंका भंग आघके समान है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ। नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम

२८1. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। ब्रोघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर ब्रोर अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित इन पदोंके बन्धक जीव हैं। कदाचित् इन पदोंके बन्धक जीव हैं। अवस्थित पदके बन्धक जीव हैं। कदाचित् इन पदोंके बन्धक जीव हैं और अवक्रवय पदके बन्धक नान। जीव हैं। इसी प्रकार खोघके समान

भवसि०-आहारग ति । आयु० सन्वपदा णियमा अतिथ । एवं अणंतरासीणं याव अणाहारग ति । णिरएसु सत्तर्णं क० भुज०-अप्प० णियमा अतिथ । सिया एदे य अवड्डिदे य । सिया एदे य अवड्डिदा य । आउग० सन्वपदा भयणिजा । एवं असंखेज-संखेजरासीणं एदेण बीजेण णेदन्वं याव अणाहारग ति ।

भागाभागाणुगमो

२८६, भागाभागं दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज० दुभागो सादि०। अपद० दुभागो देस्व०। अबद्घि० असंखे०भागो। अवत्त० अणंतभागो। आउ० णाणा०भंगो। णविर अबद्घि० अवत्त० असंखेजिदिभागो। एवं ओघभंगो काय-जोगि-ओरालि०-कोधादि० ४-अचक्खु०-भविस०-आहारग ति। णिरएसु सत्तण्णं क० अवत्त० णित्थ। सेसं ओघं। एवं णिरयभंगो असंखेज-अणंतरासीणं। संखेजरासीणं पि तं चेव। णविर यिन्ह असंखेजिदिभागो तिम्ह संखेजिदिभागो काद्व्यो। णविर सव्व-सम्मादिद्वीसु गोदं विवरीदं। सेदीए कम्माणं विसेसो जाणिद्व्यो।

काययोगी, श्रीदारिककायोगी, लोभ वपायवाले जीवोंमें माहके श्रवक्तव्य पदके बन्धक जीवकी श्रपेका, श्रच ह्यादर्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। आयुकर्मके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनन्त संख्यावाली मार्गणाश्रोमें श्रनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। नारिकयोंमें सात कर्मीके भुजगार और श्रल्पतर पदवाले जीव नियमसे हैं। कदाचिन् इन पदवाले जीव हैं और श्रवस्थित पदवाला एक जीव है। कदाचिन् इन पदवाले जीव हैं और नाना जाव श्रवस्थित पदवाले हैं। श्रायुकर्मक सब पदवाले जीव भजनीय हैं। इसी प्रकार श्रसंख्यात श्रीर संख्यात संख्यावाली राशियोंका इसी बीजपदके श्रनुसार श्रनाहारक मार्गणा तक भंगिवचय जानना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी ऋषेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

२६६. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दे। प्रकारका है—आंघ और आदेश। आंघसे सात कर्मोंके भुजगारपदके बन्धक जीव साधिक द्वितीयभाग प्रमाण है। अल्पतर पदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीयभाग प्रमाण है। अवस्थित पदके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित पदके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवक्तव्य पदके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आयुक्रमंका भंग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी कोधादि चार कपायवाले, अचलुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। नारिक्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव नहीं हैं। शेष पदोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार नारिक्योंके समान असंख्यात और अनन्त राशिवाली मार्गणाओंमें जानना चाहिए। संख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें भी वही भंग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है, वहाँ पर संख्यातवें भाग प्रमाण करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सब सम्यग्दिष्ट जीवोंमें गोत्रकर्मको विपरीत क्रमसे कहना चाहिए। तथा श्रेणियोंमें कर्मोंकी जो विशेषता हो वह जान लेनी चाहिए।

परिमाणाणुगमो

२८७. परिमाणाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० केत्तिया ? सखेजा। भ्रज्ञज्ञप्प०-अवद्वि० आउ० सन्त्रपदा केत्तिया ? अणंता। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि० वणप्कदि णियोद०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज्ञ० अचक्खु०-तिण्णिले० भवसि० अब्भवस्ति०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग ति।

२८८. णिरएसु सन्वेसिं अट्टणं क० सन्वपदा केतिया' ? असंखेजा। एवं सन्वणिरय मणुसअपज्ञ०-देवा याव सहस्सार ति । मणुस० सत्तणं क० अवत्त० संखेजा। सेसपदा आउ० सन्वपदा असंखेजा। एस भंगो पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०-सण्णि ति । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्टण्णं क० सन्वपदा संखेजा। एवं सन्वट्ठ०-आहार०-आहारिम०-अवगद०-मणपज्ञ०-संज्ञ०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम-संप०। आणदादि याव उवरिमगेवजा ति आउ० सन्वपदा संखेजा । सेसाण सन्वपदा असंखेजा। एवं सुक्क०-खइग०। सेसाणं णिरयभंगो।

परिमाणानुगम

२०७. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— आंघ और आदेश। श्रोचमें सात कर्मीके अवक्तव्यपदंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। मुजगार, अख्पतर और अवस्थितपदवाले जीव तथा आयुकर्मके सब पदवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार आंघके समान सामान्य तियंच, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययांगी, औदारिककाययांगी, औदारिकमिश्रकाययांगी, कार्मणकाययांगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपःयवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचन्नुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिण्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२८८. नारिकयों में सब आठों कर्मीके सब पदवाले जीव कितने हैं १ असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्नारकल्प तकके देवों के जानना चाहिए । मनुष्यों में सात कर्मीके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं। तथा सब पदों के और आयुक्तमंके सब पदों के बन्धक जीव असंख्यात हैं। यह भंग पंचेन्द्रयद्विक, त्रसिद्वक, पाँच मनायोगी, पाँच वचनयोगी। खीवदी, पुरुपवेदी, आभिनिकोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चलुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमे आठों कर्मों के सब पदों के बन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिक देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत. सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिक्युद्धिसंयत और सूद्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए। आनतसे लेकर उपितम् शैवेयकतकके देवोंमें आयुकर्मके सब पदों वेवन्धक जीव संख्यात हैं। शेष कर्मीके सब पदों वेवन्धक जीव सांख्यात हैं। शेष कर्मीके सब पदों वेवन्धक जीव सांख्यात हैं। शोष कर्मीके समान भंग है। इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।।

१ ता॰ प्रती केवडि॰ इति पाठः । १ ता॰ प्रती भणा (भाण) दादि याव उवरिम के (गे) ये॰ इति पाठः । ३ ता॰ प्रती असंखेळा इति पाठः ।

वेत्ताणुगमो

२८९. खेतं दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तणं क० अवत्त०बंधगा केविड खेते ? लोगस्स असंखेज०भागे । अज०-अप्प०-अविड० आउ० सव्वपदा केविड खेते ? सव्वलोगे । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय—सव्वपंचकायाणं बादरवज्ञाणं कायजोगि-ओरालि—ओरालियिम० —कम्मइ० णवंस० कोधादि० ४—मदि० सुद०-असंज० अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि० अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि० -आहार०-अणाहारग ति । सेसाणं संखेज-असंखेज-अणंतरासीणं सव्वपदा केविड० ? लो० असं० । णविर बादर-एइंदि० तस्सेव पज्जता अपज्जता आउ० सव्वप० लोग० संखेजिदिभा० । एवं बादर-वाउ० तस्सेव अपज्जता० । सेसबादरकायाणं पज्जतअपज्जता लो० असंखेजिदभा० । सेसं एइंदियभंगो । बादरवाउपज्जता आउ० लो० संखेजि० । ि सेसं सव्वलो०]

फोसणाणुगमो

२६०. फोसणाणुगमेण दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० सत्तर्ण्ण क० अवत्त० लो० असंखेज०। संसपदा आउ० सञ्चपदा० वंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सञ्वलोगी। एवं

क्षेत्रानुगम

२६९. क्षेत्र दा प्रकारका है—श्रोघ श्रार श्रादेश। श्राघसे सात कर्मांक श्रवक्तव्यपद्क वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकका श्रसंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र है । सुजगार, श्रहपतर श्रोर अवस्थितपद्के बन्धक जीवोंका तथा श्रायुकर्मके सब पदोंक बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? सब लोक चेत्र है । इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तियच, बादरोंका छोड़कर सब एकेन्द्रिय व सब पाँचों स्थावर कायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, श्रोदारिक मिश्रकाययोगी, कामण्काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राहारक श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। श्रेष संख्यात, श्रसंख्यात श्रीर श्रनन्त राशिवाली मार्गणाश्रोमें सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकके असंख्यात श्रीर श्रनन्त राशिवाली मार्गणाश्रोमें सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यात श्रीर श्रायुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है । इसी प्रकार बादर वायुकायिक श्रीर उनके श्रप्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। श्रेष बादरकाय व उनके पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त जीवोंमें लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है । श्रेष भग एकेन्द्रियोंके समान है । बादर वायुकायिक प्रयाप्त जीवोंमें श्रायुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है । श्रेष सब लोक क्षेत्र है ।

इस प्रकार चेत्रानुगम समाप्त हुआ।

स्पर्शनानुगम

२६० स्पर्शानानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। ओघसे सात कर्मीके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

१ ता० आ० प्रत्योः बादरपज्जत्तं इति पाठः । २ ता० प्रतौ काजोगिओरालियमि० इति पाठः । ३ ता० प्रतौ अब्भवअसण्णि० इति पाठः । ४ ता० प्रतौ पज्जत्ताअपज्जत्ता । अपज्जता इति पाठः । ५ ता० आ० प्रत्योः पज्जत्तवज्ञाणं लो० इति पाठः ।

ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि०सुहुम०-पुढवि०-आउ० तेउ० वाउ० सहुमपुढवि-आउ० तेउ० वाउ० वणफदि-णियोद० तेसिं सुहुमा० कायजोगि-ओरालि० ओरालियमि० कम्मइ० णवंस० कोधादि० ४ – मदि० सुद० असंज० – अचक्खु० – तिण्णिले० भवसि० – अब्मवसि० मिच्छा० असण्णि-आहार० - अणाहारग ति ।

२६१. णिरएसु सत्तण्णं क० सन्वपदा छचोद्दस०। आउ० सन्वपदा खेत्तभंगो। एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदन्वं। पंचिदियतिरि०३-पंचि०तिरि०अप० सत्तणणं क० सन्वपदा लोग० असं० सन्वलोगो। आउ० सन्वपदा खेत्तभंगो। एवं सन्वअपज्ञत्ताणं-सन्विवगिलिदि०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बादरवणप्फ०पत्तेय०पञ्जत्ताणं च। मणुस०३- एवं चेव भंगो ।

२६२. देवाणं सत्तरणं क० सन्वप० अट्ट-णव०। आउ० सन्वपदा अट्टचोइ०। एवं सन्वाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदन्वं।

२६३. बादरएइंदि०-पञ्जत्तापञ्ज० सत्तव्यां कः० सव्वयदा सव्वलोगो। आउ० सव्वयदा लोगस्स संखेजदि०। एवं बादरवाउ०-बादरवाउ०अप०। बादरपुढ०-आउ०-

शेष पदोंके तथा श्रायुक्सके सब पदोंक बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार खांघक समान सामान्य तियंच, एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय सूद्रम, पृथिबीकायिक, जलकायिक, श्राप्तकायिक, वायुकायिक, सूद्रम पृथिबीकायिक, सूद्रम जलकायिक, सूद्रम अग्निकायिक, सूद्रम वायुकायिक, बनस्पतिकायिक, निगाद और इन दोनोंके सूद्रम काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रांधादि चार कपाय- वाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अच्छुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिश्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक स्थार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२६१. नारिकयों में सान कमों के सब पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजु तेत्रका स्पर्शन किया है। त्रायुक्रमें के सब पदों के बन्धक जीवों का स्पर्शन के त्रके समान है। इस प्रकार अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय निर्यञ्च त्रिक और पंचेन्द्रिय निर्यञ्च अपर्याप्त जीवों में सान कमों के सब पदों के बन्धक जीवों ने लोकके असंख्यान में माग प्रमाण और सब लोक के त्रका स्पर्शन किया है। आयुक्रमें के सब पदों के बन्धक जीवों का स्पर्शन के समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर प्रथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्मनिकायिक प्रत्येक शारीर पर्याप्त जीवों के जानना चाहिये। सनुस्यित्रकमें इसी प्रकार भंग है।

२६२. देवोंमें सात कर्मांके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके आपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

२६३. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें सात कमेंकि सब पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके सख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर वायुकायिक तथा उनके अपर्याप्त

[🤋] ता॰ प्रतौ णेद्रव्वं । पंचिद्रियतिहि॰अप॰ इति पाठः । २ ता॰ प्रतौ एचे (सेव) भंगो इति पाठः ।

तेउ०-बादरवण०पत्ते० तेसि अप० बादरवणक्फदि-णियोद० पञ्जत्तापञ्ज० आउ० सन्वपदा लोग० असंखे० । सेसाणं सन्त्रप० सन्वलो० । बादरवाउ०पञ्जत्ता सत्तण्णं क० सन्वप० लो० संखे० सन्वलो० । आउ० बादरएइंदियभंगो ।

२६४. पंचिदिय तस०२ सत्तणां कि तिण्णिप० अट्टचो० सन्वलो०। अवत्त० सेत्र । आउ० सन्वप० अट्टचो०। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०- चक्खुदं० सण्णि ति।

२६५. वेउव्विय० सत्तण्णं क० सन्त्रप० अट्ट-तेरह०। आउ० देवोघं। वेउव्वियमि०-आहार०२-अवगद०-मणपञ्ज० संजदःसामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुद्रुमसंप० वेत्तमंगो।

२६६. आभि०-सुद्०-ओधि० सत्तर्णं क० अवत्त० खेत्तभंगो । सेसपदा आउ० सन्वप० अहुचो० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइ्ग०-वेद्ग० उवसम० सम्मामि० । [संजदासंजद० आउ० सन्वपदा खेत्तभंगो । सेसं लोग० असंखे० छच्चो० ।]

२६७. तेउले॰ देवोघं। पम्माए सहस्सारभंगो। सुकाए सत्तरणं क॰ अवत्त ॰

जीवोंके जानना चाहिए। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उनके अपयाप्तक, वादर वनस्पतिकायिक और निगाद तथा इनके पर्याप्त और अपयाप्त जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंक बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण केन्नका स्पर्शन किया है। शेप पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक केन्नका स्पर्शन किया है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक केन्नका स्पर्शन किया है। आयुक्तमका भंग बादर पकेन्द्रियोंके समान है।

२६४. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मीक तीन परोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। आयुक्तमंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनायोगी, पाँच वचनयोगी, स्वीवेदी, पुरुपवेदी, विभंग- झानी, चज्जदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

२६५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मीके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चेंदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चेंदह राजु चेत्रका स्पशंन किया है। आयुक्रमंका संग सामान्य देवोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, त्राहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, श्रपगतवदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूद्दमसाम्परायसंयत जीवोंमें चेत्रके समान भंग है।

२६६. आभिनिबोधिक झानी, श्रुतज्ञानी श्रार श्रुविद्यानी जीवोंमें सात कर्मीके श्रुवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। शेप पदोंके तथा श्रायुक्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, उपशाससम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यग्मिथ्य। दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। संयत। संयत जीवोंमें आयुक्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है।

२६७. पीतलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंक समान भंग है। पद्मलेश्यावाले जीवोंमें

१ ता । प्रतौ तस । ३ सराण्णं इति पाटः ।

खेत्तभंगो। सेसपदा आउ० सन्वपदा छचो०। सासणे सत्तण्णं क० सन्वप० अट्ट-बारह०। आउ० सन्वप० अट्टचो०'।

कालाणुगमो

२६८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेजम०। सेसपदा आउ० सव्वपदा सव्बद्धा। एवं ओवभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादरअपज० बादरपत्तेय० तस्सेव अप० वणप्कदि-णियोदा तेसिं बादर पज्जतापज्जत्त-मुहुम कायजोगि—ओरालि०-ओरालिमि०-कम्मइ०-णवुंस० कोधादि०४—मदि०-मुद०-असंज०-अचक्खु०—तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-आणाहारग ति।

२६६. णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० सन्वद्धा । अर्वाहु० जह० एग०, उक्क० आविल् असंखे० । आउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पिलदो० असंखे० । अविहु०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आविल् असंखे० । एवं असंखेजरासीणं ।

सहस्रारकल्पके समान भंग हैं। शुक्रलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मीक अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्परान चेत्रके समान है। शेष पदोंक तथा आयुक्रमके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्रमके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इस प्रकार स्पर्शानगम समाप्त हुआ।

कालानुगम

२६८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दं प्रकारका है—आंघ और आदेश। आघसे सात कर्मीके अवक्तव्यपदंक बन्धक जीवोंका जबन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। शेप पदोंके और आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार आंघके समान सामान्य तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकाथिक, अप्रिकायिक, वायुकायिक और इनके बादर तथा अपर्याप्त, बादर प्रत्येक वनस्पित तथा उनके अपर्याप्त, वनस्पितकायिक, निगोद तथा इनके बादर तथा पर्याप्त आर अपर्याप्त, सूद्दम, काययोगी, औदारिककायोगी, औदारिकिमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसवदी, क्रांशादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अच्चुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिण्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंक जानना चाहिये।

२६६. नारिकयों में सात कर्मों के भुजगार और अल्पतरपदके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थितपदके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार असंख्यात राशिवाली मार्गणाओं में भी काल जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार संख्यात राशिवाली

१ ता० आ० प्रत्योः अव० इति पाटः ।

[संखेजरासीणं] पि एवं [चेव] । णवरि पिन्द आविल० असंखे० तम्हि संखेजसम०। यिन्दि पिलदो० असंखे० तम्हि अंतोग्रहु०। णवरि सांतररासीणं सत्तण्णं क० भ्रज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पिलदो० असंखेज० अंतोग्र०।

अंतराणुगमो

३००. अंतराणुगमेण दुवि०—-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० जह० एग०, उक्त० वासपुघ०। सेसाणं णित्थ अंतरं। आउ० सन्वपदा णित्थ अंतरं। एवं कायजोगि-ओरालि०-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग ति।

३०१. णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज्ञ०-अप्प० णित्थ अंतरं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेजा लोगा। एवं आउ० अवट्ठि०। आउ० भुज्ञ०-अप्प०-अवत्त० सत्तसु वि [पुढ्वीसु] जस्स यं पगिद्वअंतरं तस्स तं काद्व्यं। एवं याव अणाहारग त्ति णेद्व्यं। णविर मणुसअप०-वेउव्वियमि०-आहार०२-सहुमसंप०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० पगिद्अंतरं काद्व्यं। अवगद०-सहुमसंप० सेटीए साधेद्व्यं।

मार्गणाश्चोंमे भी काल जानना चाहिए। इतनी विशोषता है कि जहाँ पर आविलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण काल कहा है वहाँ पर संख्यात समय काल कहना चाहिये श्रीर नहाँ पर पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल कहा है, वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल कहना चाहिए। उसमें भी दोनों राशियोंमें इतनी विशेषता है कि सान्तरमार्गणाश्चोंमें सात कर्मों के भुजगार श्रीर अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य-काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल क्रमसे पत्यके श्रमंख्यावें भाग प्रमाण श्रीर अन्तर्मुहूर्त है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुत्रा।

अन्तरानुगम

३००. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दं प्रकारका है—आंघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथवत्व है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अचन्नुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३०१. नारिकयों में सात कर्मी के भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवों का अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवों का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार अध्युकर्मके अवस्थितपदके बन्धक जीवों का अन्तरकाल जानना चाहिए। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का तथा सातों ही पृथिवीयों में जिसका जो प्रकृतिबन्धका अन्तरकाल हो उसका वह कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहियं। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकिहक, सूद्मसान्परायिकसंयत, उपशमसन्यग्दृष्टि, सासादनसन्यग्दृष्टि और सन्यग्मिध्यादृष्टि जीवों में प्रकृतिबन्धका अन्तरकाल करना चाहिए। अपगतवेदी और सूद्मसान्परायिकसंयत जीवों में श्रेणीके अनुसार अन्तरकाल साध लेना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

९ ता॰ प्रतौ एवं असंखेजरासीणं पि एव (?) णवरि, आ॰ प्रतौ एवं असंखेजरासीणं पि णवरि इति पाटः । २ ता॰ प्रतौ सांतरा (र) रासीणं, आ॰ प्रतौ सांतरासीणं इति पाटः ।

भावाणुगमो

३०२. भावाणुगमेण दुवि०--ओघे० आदे० । अट्ठण्णं कम्माणं बंधगा ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं अणाहारग ति णेदव्वं ।

अपाबहुगाणुगमो

३०३. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तणां क० सन्वत्थोता अवत्त-न्वबंधगा। अवद्वि० अणंतगु०। अप्प० असंखेजगु०। भुज० विसे०। आउ० सन्वत्थोवा अवद्वि०। अवत्त० असंखेजगु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। एवं कायजोगि-ओरालि० लोभ० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग ति।

३०४. णिरएसु सत्तण्णं क० सव्त्रत्थोवा अवद्वि०। अप्प० असं०गु०। सुज० विसे०। आउ० ओघं। एवं सव्वणिरयाणं।

३०५. मणुसेसु सत्तण्णं क० सब्वत्थोवा अवत्त०। अवद्वि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। आउ० ओघं। मणुसपज्जत्त मणुसिणोसु तं चेव। णवरि संखेजं कादव्वं।

भावानुगम

३०२. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका हूँ—आंघ और आदेश व आंघसे आठों कर्मांक बन्धक जीवोंका कोनसा भाव हैं ? आदियक भाव हैं । इसी प्रकार अनाहारकमार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ । अस्पबहुत्वानुगम

३०३. अल्पबहुत्व दा प्रकारका है— आंच और आदेश। आंचसे सान कर्मांके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्प-तरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आयु कर्मके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तांक हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार काययागी, औदारिककाययांगी, लाभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयका बन्ध करने-बाले जीव, अच्चुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। लोभकपायवाले जीवोंमें केवल एक मोहनीयका ही अवक्तव्यपद होता है शेष छह कर्मोंका नहीं होता है। इसी कारण इनमें मोहनीयका बंध करनेवाले जीव यह पद दिया है।

३०४. नारिकयोंमें सात कर्मों के अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतर-पदके बन्धक जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष श्रधिक हैं। श्रायु-कर्मका भंग श्रोधके समान है। इसी प्रकार सब नारिकयोंमें जानना चाहिये।

३०५. मनुष्योंमें सात कर्मों के श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रवस्थित-पदके बन्धक जीव श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे श्रत्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष श्रधिक हैं। श्रायुकर्मका भंग श्रोधके समान है। मनुष्य पर्याप्त श्रोर मनुष्यिनियोंमें यही भंग है। इननी विशेषता है कि श्रसंख्यातके स्थानमें संख्यात करना चाहिये। ३०६, मणुसोघमंगो पंचि०-तस० २-पंचमण० '-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आमि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदंस०-सुकले०-सम्म।दि०-खइग०-उवसम०-सण्णि ति । णवरि इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० अवत्त० णित्थ । सुकाए खइग० आउ० मणुसि०भंगो ।

३०७. अवगद० घादि०४ सन्वत्थोवा अवत्त० । भ्रुज० संखेजगु० । अप्प० संखेजगु० । वेद०-णामा०-गोद० सन्वत्थोवा अवत्त० । अप्पद० संखेजगु० । भ्रुज० संखेजगु० । एवं सुहुमसंप० । णवरि अवत्त० णत्थि ।

३०८, मणपञ्ज०-संजद० मणुसि०भंगो। सेसाणं संखेजजीविगाणं असंखेजजीविगाणं अणंतजीविगाणं च णेरहगभंगो। णवरि संखेजजीविगाणं संखेजं कादव्वं। सव्वसम्मादिद्वीसु गोदस्स भुजगारादो अप्पद० विसे०।

एवं भुजगारबंधो समत्तो

३०६. पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चलुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्रललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, स्नायिकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि श्रोर संज्ञी जीवोमें सामान्य मनुष्योंक समान मंग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी श्रोर पुरुषवेदी जीवोमें सात कर्मोंके श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव नहीं हैं तथा शुक्ललेश्यावाले श्रोर सायिकसम्यग्दृष्टि जीवोमें श्रायुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है।

३०७. श्रपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीके श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रवपतरपदके बन्धक संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मके श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रवपतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूदम-सांपरायसंयत जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके श्रवक्तव्यपद नहीं हैं।

३०८. मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें मनुष्यिनयोंके समान भङ्ग है। शेष संख्यात राशिवाली, असंख्यात राशिवाली और अनन्तराशिवाली मार्गणाओंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें संख्यात करना चाहिये। तथा सब सम्यग्दि जीवोंमें गोत्रकर्मके भुजगारपदके बन्धक जीवोंसे अल्पतरपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

इस प्रकार भुजगारवन्ध समाप्त हुआ।।

१ ता॰ प्रती तस॰ पंचमण॰ इति पाठः।

पदणिक्खेवो

३०९, एतो पद्णिक्खेओ ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि--समुक्तित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे ति ।

समुक्तिणा

- ३१०. समुक्तित्तणा दृवि०--जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-अघे० आदे०। ओघे० अट्टण्णं क० अत्थि उक्क० वड्डी उक्क० हाणी उक्क० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग ति णेदव्वं : णवरि अवगद० सुहुमसंप० सत्तण्णं क० छण्णं क० अत्थि उक्क० वड्डी उक्क० हाणी । अवट्ठाणं णित्थ ।
- ३११. जह० पगदं। दुवि०—शोघे० आदे०। ओघे० अट्टण्णं क० अत्थि जह० बह्ढी जह० हाणी जह० अबट्टाणं। एवं यात्र अणाहारम त्ति णेदन्वं। अबगद०-सुहुम-संप० सत्तण्णं क० छण्णं क० अत्थि जह० बह्ढी जह० हाणी। अबट्टाणं णत्थि।

सामित्तं

३१२, सामित्तं दुवि०--जह० उक्त० । उक्त० पगदं । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे० णाणा० उक्त० बड्डी कस्स होदि ? यो चदुट्ठाणिययवमज्झस्स उवरि अंतो-

पदिन्दिंप

३०६. इसके आगं पदनिचपका प्रकरण है। उसके ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समु-त्कीर्तना, स्वामित्व और अरूपबहुत्व।

समुत्कीतना

- ३१०. समुत्कीर्तना दो प्रकारका ह जधन्य आर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है आंघ स्मीर आदेश । आंघसे आठों कर्मौकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूद्तमसाम्परायिकसंयत जीवोंमें कमसे सात कर्मौकी और अह कर्मौकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानि है । अवस्थान नहीं है ।
- ३११. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और आदेश। आंघमें आठों कर्मोकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। अपगतवेदी और सूच्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्मोकी और अह कर्मोंकी जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि है। अवस्थान नहीं है।

स्वामित्व

३१२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकारका है—श्रीय श्रीर श्रादेश । श्रीघसे ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कीन है १ कोड।कोडिद्वि(द्वंधमाणो अंतोष्ठहुतं अणंगुणाए वड्ढीए वड्ढिर्ण उक्कस्सयं दाहं गदो तदो उक्कस्सयं अणुभागं प्वंधो तस्स उक्किस्स्या बड्ढी। उक्किस्स्या हाणी कस्स० १ यो उक्कस्सयं अणुभागं वंधमाणो मदो एइंदियो जादो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्किस्स्या हाणी। उक्कस्स्यमवट्ढाणं कस्स० १ यो उक्कस्सअणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिडिं नस्स अवट्ढाणं। एवं घादीणं।

३१३. वेद० उक्क० वड्डी करस० १ खवग० सुदुससंप० चिरमे अणुभागवंधे वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी करस० १ यो उवसामगो से काले अकसाई होहिदि ति मदो देवो जादो तस्स तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवहाणं करस० १ अप्पमत्तसंज० अखवग० अणुवसामयस्स सन्वविसुद्धस्स अणंतगुणेण विह्नदूण अविद्वदस्स उक्करसगमवद्वाणं । एवं णामा०-गोद० । आउ० [उक्क०] वड्डी करस होदि १ तप्पाओग्गजहण्णगादो विसोधीदो तप्पाओग्गं उक्करसगं विसोधि गदो तदो उक्करसयं अणुभागं पवंधो तस्स उक्क० बड्डी । उक्क० हाणी करस० १ यो उक्करसयं अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिडमग्गो तप्पाओग्गजहण्णए

जो चतुःस्थानिक यवमध्यके उपर श्रतःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थितिको बांधता हुश्रा श्रन्तमुहूर्तकाल तक श्रनन्तगुणी वृद्धिके साथ वृद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुश्रा श्रीर उसके बाद उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध किया वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है ? जो उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता हुश्रा मरा श्रीर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जधन्य श्रनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी कीन है ? जो उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता हुश्रा साकार उपयोगका चय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जधन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार तीन घातिकर्मीके विषयमें जानना चाहिये।

३१३. वेदनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्त्रामी कीन है १ जो चपक सूद्दमसाम्परायसंयत जीव ऋन्तिम अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है १ जो उपशामक तदनन्तर समयमें अकषायी होगा और मरकर देव हुआ और तत्रायोग्य जयन्य अनुभागवन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कीन है १ जो अप्रमत्तसंयत अचपक और अनुपशामक सर्वविद्युद्ध जीव अनन्तगुणी वृद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार नाम और गोत्रकर्मके विषयमें जानना चाहिये। आयुक्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कीन है १ जो तत्प्रायोग्य जघन्य विद्युद्धिसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त हुआ। और तद्दनन्तर उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है १ जो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने लगा जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभगन होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करने लगा जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभगन होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करने लगा

९ आ० प्रती एइंदिए इति पाठः। २ ता० आ० प्रत्योः तिण्णिवेद० इति पाठः। ३ ता० प्रती अणुबसामा (म) यस्स इति पाठः। ७ ता० प्रती विसोवि (र्धा) दो इति पाठः।

पिडदो तस्म उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । एवं ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग ति ।

३१४. णेरइएस घादि०४ उक्क० वड्ढी ओघो । उक्क० हाणी कस्स० ? उक्कस्सयं अणुमागं बंधमाणो सागारक्खएण पिडमग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ढाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो जहण्णियादो विसोधीदो उक्कस्सयं विसोधि गदो तप्पाओग्गउक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पिडमग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ढाणं । आउ० ओघं । एवं सव्वणेरइगाणं सव्वदेवाणं च ।

३१५. तिरिक्खेस सत्तणं क० णिरयभंगो। आउ० उक्क० बड्डी कस्त० ? यो जहण्णियादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभागं पबंधो तस्स उक्क० बड्डी। उक्क० हाणी कस्त० ? यो तप्पाओग्गउक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो सागार-क्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पिटदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अबद्वाणं। एवं पंचिंदि०३। पंचिंदि०तिरि०अप० घादि०४ उक्क० बड्डी कस्त० ? यो जहण्णिगादो संकिलेसादो उक्कस्तयं संकिलेसं गदो तस्स उक्कस्तयं अणु-

वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसीके तद्वन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इस प्रकार श्रोघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कपायवाले, अचचुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

३१४. नारिकयों में चार वाति कर्मौकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्त्रामी खोघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है १ जो उत्कृष्ट अनुभागका बंध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्ष्य होने से प्रतिभग्न होकर तत्त्रायोग्य जघन्यका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वंदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कौन है १ जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त हुआ और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है १ जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्ष्य होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भङ्ग अभिष्के समान है। इसी प्रकार सब नारिकयों खोर सब देवोंके जानना चाहिये।

३१५. तिर्यक्चोंमें सात कमोंका भंग नारिकयोंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागक। वन्ध करता है यह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागक। वन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका चय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागक। बन्ध करनेवाला है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतियंचित्रकके जानना चाहिए। पंचेन्द्रियतिर्यक्च अपर्याप्तकोंमें चार घातिकमोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागक।

१ ता • प्रतौ बंघो इति पाटः। २ ता • प्रतौ अणुभाग पर्वघो आ • प्रतौ अणुभागवंघो इति पाढः।

भागं पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० १ यो उक्क० सागारक्खएण पिट-भग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवड्ढाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० १ यो जहण्णगादो विसोधीदो० तदो उक्क० अणुभा० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० १ यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पिडभग्गो० तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवड्ढाणं । आउ० ओधं । एवं सन्वअपजन्माणं आणदादि याव सन्बद्ध ति सन्वएइंदि० सन्वविगलिदि०-सन्वपंचकायाणं ।

३१६. मणुस०३ घादि०४ णिरयभंगो। वेद०णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी अवड्ढाणं च ओघं। उक्क० हाणी कस्स० ? उवसामगस्स परिवदमाणयस्स दुसमयबंध-गस्स तस्स उक्क० हाणो। आउ० ओघं। पंचिदि०-तस०२-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि० घादि०४ णिरयभंगो। सेसाणं ओघं। पंचमण०-पंवविच०-ओरालिय० घादि०४ णिरयभंगो। सेसाणं मणुसि०भंगो।

३१७. श्रीरालियमि० घादि०४ उक्क० बहुी कस्स०१ यो उक्क० अणु० बंधमाणो उक्कस्सयं संकिलेसेण से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि ति तस्स उक्क० बहुी । उक्क० हाणी कस्स०१ यो [उक्क०] अणुभा० बंधमाणो दुसमयसरीरपज्जत्ती जाहिदि ति [सागार-

बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्यायाग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मके उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुक्षमंका भंग आवके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, आनतकस्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और सब पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

३१६. मनुष्यत्रिकमं चार घातिकमांका भंग नारिकयों के समान है। वेदनीय, नाम ऋौर गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामित्व श्रोघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उपशान्तमांहसे गिरनेवाला जो उपशामक दिसमयवन्धक है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। श्रायुकर्मका भंग ऋष्यके समान है। पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पुरुपवेदी, चचुर्रानी और संज्ञी जीवामें चार घातिकर्मोंका भंग नारिकयों के समान है। शेष कर्मोंका भंग स्वोधके समान है। पांच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंका भंग नारिकयों के समान है।

३१७ श्रीदारिकिमश्रकाययांगी जीवोंमें चार घातिकर्मौकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कीन है ? जो उत्कृष्ट श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्लेशके साथ तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा श्रीर साकार उपयोगके ज्ञय होनेसे प्रति- क्खएण पडिभग्गो] तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० १ यो उक्क० अणु० बंधमाणो से काले सरीरपज्जित्तं जाहिदि ति तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी उक्क० अवद्वाणं 'णाणा०मंगो । आउ० अपज्जित्तमंगो । एवं वेउव्वियमि० । णवरि अ।उ० णित्थ । वेउव्वियका० आहार० णिरयभंगो । आहार- [मि०] सव्बद्घ०भंगो ।

३१८. कम्मइ० घादि०४ उक्क० बहुी कस्स० ? यो जहण्णियादो संकिलेसादो उक्कस्सयं संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० बंघो तस्स उक्क० बहुी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणुभागं बंघमाणो सागारकखएण पिड्मिग्गो तप्पात्रोग्गजहण्णए पिडदो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अबद्वाणं० कस्स० ? बादरेइंदियस्स उक्किस्सिया हाणी काद्ण अबिद्वदस्स तस्स उक्क० अबद्वाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० बहुी हाणी-सम्मादि० । उक्क० अबद्वाणं बादरेइंदिए हाणी० । [एवं अणाहार० ।]

३१६. इत्थिवे० घादि०४ णिरयभंगो। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० बहुी कस्स० १ अण्ण० खनगस्स चिरमे उक्क० अणु० बहुी तस्स उक्क० बहुी। उक्क० हाणी अबहु।णं आऊ वि मणुसि०भंगो। एवं णवुंसग०। अवगद० घादि०४ उक्क० बहुी कस्स० १ अण्ण० उनसामयस्स चिरमे अणुभा० बंधे बहु० से काले सवेदो होहिदि ति

भग्न हाता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तद्दनन्तर समयमें उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन हें ? जो उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करने-वाला जीव तद्दनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट-हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थानका भंग ज्ञानावरणके समान है। श्रायु कर्मका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके श्रायुकर्मका बन्ध नहीं होता। वैक्रियिककाययोगी श्रीर आहारककाययोगी जीवोंमें सामान्य नार-कियोंके समान भंग है। श्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भंग है।

३१८. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकमोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन हैं १ जो जघन्य संक्रोसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन हैं १ जो उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका त्तय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी कौन हैं १ जो बादर एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट हानिकरके अवस्थित है वह उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि श्रीर उत्कृष्ट हानिका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव हैं। उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी हानिवाला बादर एकेन्द्रिय जीब हैं। इसी प्रकार श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३१६. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका भंग नारिकयोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक सवेदी अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागकी वृद्धि कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान और आयु कर्मका भक्त मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी

१ ता० प्रती अवद्वि० इति पाठः । २ ता० प्रती अणु० क०, आ० प्रती अणुकः । इति पाठः ।

तस्स उक्क॰ वड्ढी । उक्क॰ हाणी कस्स॰ ? अण्ण॰ खवग॰ [अणिय॰ पढमादो अणुभाग-बंधादो] विदिए अणु॰बंधे बट्ट॰ तस्स उक्क॰ हाणी । वेद॰ णामा०-गोद॰ उक्क॰ वड्ढी हाणी मणुसि॰भंगो । अवट्टाणं णित्थ । एवं सुहुमसंप॰ ।

३२०. मदि० सुद् घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० १ अण्ण० मणुसस्स संज्ञमाभिमुहस्स सन्विवसुद्धस्स चिरमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० १ अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयिनच्छा० तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवद्वाणं कस्स० १ यो तप्पाओग्गउक्कस्सिगादो विसोधीदो पिंडभगो तप्पाओग्गजहण्णए पिंडदो तस्स उक्क० अवद्वाणं। आउ० तिरिक्खोघं। एवं मिच्छा०। विभंगे घादि०४ णिरयभंगो। सेसं मदि०भंगो।

३२१. आमि०-सुद्०-ओघि० घादि०४ उक्क० वक्को कस्स० १ अण्ण० सागा० जो णियमा उक्कस्ससंकिले० मिन्छत्तामिम्रहस्स चिरमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वट्ठी । उक्क० हाणी कस्स० १ अण्ण० यो तप्पा० उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पिंडमगो तप्पाओग्गजह० पिंडदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । सेसं श्रोधमंगो । एवं ओघिदंस०-सम्मादि० खद्दग०-उवसम० । जीवोंमें चार घातिकमोंकी उत्कृष्ट वृद्धका स्वामी कौन है १ जो श्रन्यतर उपशामक जीव श्रान्तिम अनुतृष्ट श्रजुभागवन्धमें विद्यमान हे श्रोर तदनन्तर समयमें सर्वदी होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है १ जो श्रन्यतर क्षपक पिंडले श्रनुभागवंधसे दूसरे अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । वेदनीय, नाम श्रोर गोत्र कर्मकी उत्कृष्टवृद्धि श्रोर उत्कृष्ट हानिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है । इनके श्रवस्थानपद नहीं होता । इसी प्रकार सूद्दमसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३२०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकमींका भंग श्रोघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी एत्हुए बृद्धिका स्वामी कीन हे ? संयमके श्रामिष्ठ श्रीर सर्विविद्युद्ध जो अन्यतर मनुष्य श्रान्तिम उत्कृष्ट श्रानुभागवन्यमें श्रवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है ? संयमसे गिरनेवाला जो श्रान्यतर मनुष्य द्विसमयवर्ती मिध्यादृष्टि है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी कीन है ? जो तक्षायांग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिसे मुद्दुकर तक्ष्यायांग्य जघन्य विद्युद्धिको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट श्रवस्थानका स्वामी है। श्रायुकर्मका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। विभंगज्ञानी जीवोंके समान है। श्रेप कर्मोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३२१. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकमोंकी उस्कृष्ट युद्धिका स्वामी कीन है ? जो साकार उपयोगयाला और उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त अन्यतर जीव मिध्यात्वके उन्मुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्यायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर जीव साकार उपयोगका क्ष्य होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्यायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। शेष भंग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार

णवरि खइगे चादि०४ वहु सत्थाणे कादव्यं। मणपञ्जवे चादि०४ ओधि०भंगो। णवरि असंजमाभिष्ठहस्स । सेसं मणुसि०भंगो । एवं संजद-सामाइ० छेदोवट्ठावणा०। णवरि मिच्छाभिष्ठहस्स कादव्यं।

३२२. परिहार० घादि०४ उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० सागा० उक्क० संकिले० सामाइ०-छेदो०भिग्रहस्स चिरमे उक्क० अणु०वंधे वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० पमत्त० सागा० जो तप्पाओग्गजह० पिटदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सन्वित्सद्ध० चिरमे उक्क०अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० यो उक्किस्सिगादो विसोधोदो पिडिभग्गो सागारक्खएण तप्पा-ओग्गजह० पिददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं । आउ० ओघं ।

३२३. संजदासंजदे घादि०४ वड्ढी आभिणि०भंगो। उक्क० हाणी कस्स० १ यो तप्पाओग्गउक्क० अणु० बंधमाणो सागार्क्खएण पिडमग्गो तप्पाओग्गजह० पिडदो [तस्स] उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० १ अण्ण० सागार-जागा० सन्वविद्यु० संजमाभिग्रह० चरिमे उक्क० अणु० बट्ट०

घातिकमोंकी वृद्धि स्वस्थानमें करना चाहिए। मनःपयंप्रज्ञानी जीवोंमें चार घातिकमोंका भंग श्रविध्ञानी जीवोंक समान है। इतनी विशेषना है कि यह श्रसंयमके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। शेष भङ्ग मनुष्यिनयोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत श्रीर खेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मिध्यात्वके श्रभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए।

३२२. परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मीकी उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी कौन है ? जो साकार उपयोगवाला उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर जीव सामायिक और छेदापस्थापनासंयमके अभिमुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? साकार उपयोगवाला जो अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव तत्वायोग्य अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत जीव अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर साकार उपयोगका क्षय होनेसे तत्वायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भग ओघके समान है।

३२३. संयतासंयत जीवों में चार घातिक मंकि। उत्कृष्ट वृद्धिका भंग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवों के समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्यायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका चय होने से प्रतिभग्न होकर तत्यायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गांत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर साकार जागृत सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख हुआ जीव अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो तत्यायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जोव

तस्त उक्क० बहुी । उक्क० हाणी कस्त० ? अण्ण० यो तप्पाओग्ग उक्क० अणु० बंध० सागारक्खएण पिंडमग्गो तस्त उक्क० हाणी । तस्तेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । आउ० ओघं । असंजद० घादि०४ ओघं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० बहुी कस्त० ? अण्ण० मणुसस्त सम्मादि० सागार० सन्वितसुद्ध० संजमामिम्रह० उक्क० अणु० वट्ट० तस्त उक्क० बहुी । उक्क० हाणी अवट्ठाणं च मदि०भंगो । आउ० णवुंसगमंगो ।

३२४. किण्ण-णील-काऊ० णिरयभंगो । आउ० अधिमंगो । तेउ० घादि०४ देवमंगो । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागार० सन्वविसु० उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो मदो देवो जादो तस्स उक्क० हाणी अवट्ठाणं च । आउगं च ओघं । एवं पम्माए । सुक्काए घादि०४ आणदभंगो । सेसं ओघमंगो ।

३२४. अन्मव० घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० बहुी कस्स० १ यो जहण्णादो विसोधीदो उक्कस्सयं विसोधि गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० बहुी। उक्क० हाणी कस्स० १ यो उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडि० तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अबद्वाणं। आउ० मदि०भंगो।

साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभ प्रहो तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्य करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका मंग स्रोघके समान है। ससंयत जीवोंमें चार घातिकर्मीका नक्ष श्राघके समान है। वदनीय, नाम श्रोर गांत्र कर्मकी उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी कौन है ? जो सम्यग्दृष्टि साकार जागृत सर्वविद्युद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है वह उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि श्रोर अवस्थानका मंग मत्यज्ञानी जीवोंक समान है। अ।युकर्मका मंग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

३२४. कृष्ण, नील और कापोतलंश्यावालं जीवोंमं नारिकयोंके समान मंग है। आयुकर्मका मंग श्रोधके समान है। पीत लेश्यावालं जीवोंमं चार घातिकर्मोंका मंग देवोंके समान है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अप्रमत्त साकार जागृत और सर्विवशुद्ध जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी हैं। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मरा और देव हो गया वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा इसीके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका मंग आंघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। शुक्तलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मीका मंग आंघके समान है।

३२५. श्रभव्य जीवोंमें चार घातिकमींका भंग श्रोघके समान है। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्र-कर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिका प्राप्त होकर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उक्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका श्रय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्पायोग्य जघन्य श्रनुभागबन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट श्रव स्थान होता है। श्रायुकर्मका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

१ ता० आ० प्रत्योः आउ० पजात्तभंगो । उक्क० घादि० इति पाठः ।

३२६. वेदगे घादि०४ ओधिभंगो। सेमं तेउ०भंगो। सासणे घादीणं उक्क० आणदभंगो। वेद०-णामा०-गोद० आऊ वि तप्पाओग्गविसुद्धं कादव्वं। सम्मामि० घादि०४ उक्क० वङ्की मिच्छत्ताभिसु०। हाणी अवट्ठाणं ओधिभंगो। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वङ्की सम्मत्ताभिसुह०। हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे। असण्णि० पंचि०-तिरि०अपञ्जत्तभंगो। आउ० मदि०भंगो।

३२७. जहण्णपदणिक्खेवे सामित्तस्स साधणद्वं अद्वपदभूदसमासस्स लक्खणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मिच्छादिद्विस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी संजदस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी संजदस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी सा अणंतगुणा । एदेण अद्वपदभूदसमासलक्खणेण —

३२८. जहण्णपदणिक्सेवे सामित्ते पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० णाणा०-दंस०-अंतरा० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० उवसामयस्स परिवदमाणयस्स दुसमय-सुदुमसंपराइयस्स तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० सुदुमसंपराइयस्स खवगस्स चरिमे अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। जह० अवट्टाणं कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० अखवग-अणुवसामयस्स सञ्जविसुदुस्स अणंतभागे वड्ढिर्ण अवद्विदस्स तस्स

३२६. वदकसम्यग्दृष्टि जीवोम चार घातिकमीका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष कमीका भंग पीतलेश्यावाले जीवोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकमीका भंग आनतकल्पके समान है। वेदनीय, नाम और गात्रकर्मका तथा आयुक्रमेका भी स्वामित्व तत्या-योग्य विशुद्ध जीवके कहना चाहिए। सम्यग्मिश्यादृष्टि जीवोंमें चार घातिकमीकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व मिश्यात्वके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। हानि और अवस्थानका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। वंदनीय, नाम और गात्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व सम्यक्तवके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। तथा हानि और अवस्थानका स्वामित्व स्वस्थानमें कहना चाहिए। असंज्ञा जीवोंमें पंचेन्द्रिय तियंच अपर्याप्तकोंके समान मंग है। आयुक्रमेका मंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुन्ना।

३२७. जघन्य पदनिक्षेपमें स्वामित्वका साधन करनेके लिए अर्थपदभूत समासका लक्षण वतलाते हैं। यथा — मिध्यादृष्टिके जो अनन्त्रभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है, संयतके जो अनन्त्रभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है और मिध्यादृष्टिके जो अनन्त्रभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है, वह अनन्त्रगुणी होती हैं। इस अर्थपदभूत समास लक्षणके अनुसार —

३२८. जवन्य पदिनित्तेपमें स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और आदेश। श्रोघसे झानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी जवन्य बुद्धिका स्वामी कीन हैं? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक द्विसमयवर्ती सूदमसाम्परायिक जीव है वह जवन्य बुद्धिका स्वामी हैं। जवन्य हानिका स्वामी कीन हैं? जो अन्यतर सूद्मसाम्परायिक क्षपक जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित हैं, वह जवन्यहानिका स्वामी हैं। जवन्य अवस्थानका स्वामी कीन हैं?

१ ता॰ प्रती जहण्णं पद इति पाठः । २ ता॰ प्रती अट्ठपदभूदसमास तस्स समसलक्खणं इति पाठः । ३ ता॰ प्रती अट्ठपदेणभूद (पदभूदेण) समासलक्खणेण इति पाठः । ४ ता॰ आ॰ प्रत्योः णाणा॰ दंस॰ भवश॰ इति पाठः ।

जह० अवड्ठाणं । मोह० एसेव भंगो । णविर अणियद्विस्स कादव्वं विष्टु-हाणी । अवड्ठाणं अप्पमत्तस्स । वेद० '-णाम० जह० वड्ठी कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० मिच्छादि० परियत्तमाणमिन्झमपरिणामस्स अणंतभागेण विष्टुद्ण वड्ठी हाइद्ण हाणी एकद्रत्थ-मवड्ठाणं । गोद० जह० वड्ठी कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए अवभवसिद्धिपपाओ-गादो उकस्सियादो विसोधोदो पिडभगो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो अणंतभागे विष्टुद्ण अविद्वदस्स तस्स जह० वड्ठी । तस्सेव से काले जह० अवड्ठाणं । जह०हाणी कस्स०? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइएस निच्छादिद्विस्स सव्वाहि पज्जतीहि पज्जतगदस्स सव्वविद्युद्धस्स सम्मत्तामिम्रहस्स तस्स जह० हाणी । आउ० जह० वड्डी कस्स०? अण्ण० जहण्णियाए अपजत्तिणव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मिन्झिमपरिणामस्स अणंतभागेण विद्वुद्ण वड्डी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमवट्टाणं । एवं ओघभंगो पंचिदि०-तस०२-पंचमण० पंचविव० कायजीगि० कोधादि०४ चक्त्वुदं० अचक्खुदं० भविस० सण्णि-आहारग ति ।

३२६. णिरएसु घादि० ४-जह० बड्डी कस्स० ? अण्ण० सम्मा० साग० सन्त्र-विसुद्ध० अणंतभागेण बड्डिर्ण बड्डी हाणिर्ण हाणी एकदरत्थमबद्घाणं। आउ० जह•

जो श्रन्यतर श्रवमत्तसंयत श्रज्ञपक श्रौर अनुपशामक सर्वविद्युद्ध जीव श्रनन्तभागवृद्धि करके अव-स्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। मोहनीयकर्मका यही भंग है। इतनी विशेषता है कि इसकी वृद्धि और हानि अनिवृत्तिकरण जीवकं कहना चाहिए तथा अवस्थान अप्रमत्तसंयत जीवके कहना चाहिए। वेदनीय श्रीर नामकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है १ जो श्रन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिध्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव स्त्रनन्तभाग वृद्धिका प्राप्त होता है वह वृद्धिका स्वामी है और अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह हानिका स्वामी है तथा इन दोनोंमेंसे कोई एक स्थानपर जयन्य अवस्थान होता है। गोत्रकर्मकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका जीव अभव्यप्रायाग्य उत्कृष्ट्रविशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर तत्त्रायाग्य जघन्य विश्वद्धिको प्राप्त हुआ है श्रीर श्रनन्तभाग बढ़ाकर वृद्धि करता है वह जवन्य वृद्धिकास्वामी है श्रीर उसीके तद्नन्तर समयमें जघन्य श्रवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन हैं ? सातवीं पृथिवीके नारिकयोंमें जो अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर सर्वविशृद्धिको प्राप्त हो सम्य-क्त्वके अभिमुख हुआ है वह जघन्य हानिका स्वामी हैं। आयुक्तर्मकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कीन है १ जो अन्यतर जवन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्त्रामी है ऋौर इनमेंसे किसी एकके जयन्य अवस्थान होता है। इसीप्रकार ओघके समान पक्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, चजुद्शीनी, अचजुद्शीनी, भन्य, संझी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३२६. नारिकयोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्य-ग्दृष्टि साकार-जागृत सर्वविशुद्ध जीव श्रनन्त भागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी

१ ता॰ आ॰ प्रत्योः अप्पमशः सर्वेदः इति पाठः । २ ता॰ प्रतौ अणंतभागे पिराप्तः [भंगो तस्स जहः वृद्धि] तस्सेव आ॰ अणंतभागे प्रतौ पिराप्तः ।

बहुी कस्स० १ अण्ण० जहण्णियाए पञ्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मिन्झम-परिणामयस्स अणंतभागेण बिहुद्ण बहुी हाणिद्ण हाणी एकद्रत्थमबट्टाणं। वेद० णामा०-गोद० ओघं। एवं सत्तमाए पुढवीए। सेसाणं पुढवीणं तं चेव। णविर गोद० भंगी। मिच्छादिद्विस्स कादव्वं।

३३०. तिरिक्खेसु घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्णद० संजदासंजदस्स सागार०सन्वित्तस्स अणंतभागेण विद्धित्ण बढ्ढी हाणिदृण हाणी एकदरत्थमवद्दाणं। गोद० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० जीव० सन्वाहि पञ्जत्तीहि पञ्जत्वस्स सागा० सन्वित्तसु० अणंतभागेण विद्धित्ण बढ्ढी हाणिद्ण हाणी एकदरत्थमवद्दाणं। सेसं ओघं। [एवं] पंचिंदि०तिरि०३। णवरि गोद० पटमपुटविभंगो। पंचिंदि०तिरि०अपञ० घादि०४ जह० बड्ढी कस्स०? साणास्स सागार-जा० सन्वित्तसु० अणंतभागेण बिद्धित्ण बढ्ढी हाणिद्ण हाणी एकदरत्थमवद्वाणं। सेसाणं जोणिणभंगो। एवं सन्वअपञ्ज०-सन्वविग्रिंदिय-पुटवि० आउ०-वणप्फदि-णियोद०-सन्वसुद्दुमाणं ति।

३३१. मणुसेसु ओघं। णविर गोद० अपज्ञत्तभंगो। देवाणं पढमपुढिविभंगो। है। जो ध्यनन्तभाग हानिका प्राप्त होता हैं वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। आयुकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन हैं १ जो अन्यतर जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभाग वृद्धिका प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भन्न ओघके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। शेष पृथिवियोंमें यही भन्न है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भन्न मिथ्यादृष्टिके कहना चाहिए।

देश. तिर्यक्रीमें चार घातिकमोंकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संयतासंयत साकार-जागृत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभाग वृद्धिका प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी
है। जो अनन्तभागहानिका प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके
अवस्थान होता है। गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर अप्रिकायिक
और बादर वायुकायिक सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तिको प्राप्त हुआ साकार-जागृत और सर्वित्रशुद्ध जीव
अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त
होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका
भंग अधिके समान है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियत्वर्यक्षत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि
गोत्रकर्मका भंग पहली पृथिवीके समान है। पंचेन्द्रियत्वर्यक्षत्रिक जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता
है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका
स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भंग योनिनियोंके
समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्यिक
कायिक, निगोद् और सब सूदम जीवोंके जानना चाहिए।

३३१. मनुष्योमें स्रोघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग स्रपया-प्रकोंके समान है। देवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इसी प्रकार उपरिम प्रैवेयकतक जानना

ता० आ० प्रत्योः गोद वेदभंगो इति पाठः ।

एवं याव उवरिमगेवजा ति । अणुदिस याव सन्वद्वा ति देवोघं । णवरि गोद० अण्ण० तप्पाओग्गसंकिलिद्वस्स अणंतभागेण विद्वदृण वही दाइदृण हाणी एकदरत्थमवद्वाणं।

३३२. एइंदिएसु घादि०४ जह० वड्डी कस्स० १ अण्ण० बादर० सन्वविसुद्ध० अणंतभागेण विद्वरण वड्डी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमबट्डाणं। सेसं तिरिक्खोघं। तेउ०-वाउ० घादि०४-गोद० जह० वड्डी कस्स० १ अण्ण० बादर० सन्वविसु० अणंतभागेण विद्वरण वड्डी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमबट्डाणं। सेसं अपञ्जत्तभंगो। पत्तेय० पुढविभंगो।

३३३. ओरालि॰ गोद॰ तिरिक्खोघं। सेसं मणुसि॰भंगो। ओरालियमि॰घादि०४ जह॰ बङ्की कस्स॰ १ अण्ण॰ असंजदस॰ सागार॰ सन्वविसु॰ दुचरिमसमए सरीरपज्जती गाहिदि ति पडिमगो तस्स जह॰ बङ्की। तस्सेव से काले जह॰ अबद्वाणं। ज॰ हाणी कस्स॰ १ तस्सेव सन्वविसु॰ से काले पज्जती गाहिदि ति तस्स ज॰ हाणी। गोद॰ जह॰ बङ्की कस्स॰ १ अण्ण॰ बादरतेउका॰-वाउ० जीव॰ दुचरिमसमए सरीरपज्जती गाहिदि ति तस्स जह॰ बङ्की। तस्सेव से काले जह० अबद्वाणं। जह॰ हाणी कस्स॰ १ तस्सेव से काले पज्जती होहिदि ति। सेसमपज्जतभंगो।

चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमं सामान्य देवोंके समान मंग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकमंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कोन है ? जो अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्षिष्टपरिणाम-वाला जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है।

३२२. पकेन्द्रियों में चार घातिकमोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर पकेन्द्रिय सर्विवशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भंग सामान्य तियंचोंके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक सर्वेविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है और वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भग अपर्याप्तकोंके समान है। प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है।

३३३. घोदारिककाययोगी जीवोंमें गोन्नकर्मका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। ब्रोदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य- वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि साकार जागृत घोर सर्वविशुद्ध जीव द्विस्तम समयमें शरीर पर्याप्तिको न्रहण करेगा, अतएव प्रतिभन्न होकर जघन्य वृद्धि कर रहा है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य- हानिका स्वामी कौन है ? वही सर्वविशुद्ध जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर वादर अनिकायिक श्रीर वादर वायुकायिक जीव दिचरम समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य श्रवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी है। शेष कम भंग श्रप्याप्तकोंके समान है।

३३४. वेउव्वियका० णिरयोघं। वेउव्वियमि० घादि०४-वेद०-णाम० औरालियमिस्सभंगो। गोद० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० तप्पाओग्गजहण्णिगादो' विसोघीदो पिडभगो तप्पाओग्गजहण्णए पिडदो तस्स जहण्णिया बहुी। तस्सेव से काले
जह० अवट्ठाणं। जह० हाणी कस्स० १ अण्ण० से काले सरीरपञ्जत्ती गाहिदि ति।
आहार० सव्बट्ठ०भंगो। णवरि पमत्तो ति भाणिदव्वं। आहारिम० ओरालियमिस्समंगो।
कम्मइग० घादि०४ जह० बहुी कम्स० १ अण्ण० सम्मादि० अणंतमागेण बहुी हाणी
अवट्ठा०। एइंदिय० अणंतभागेण बहुीए वा हाणीए वा अवट्ठिदस्स। गोद० सत्तमाए०
मिच्छा० जह० बहुी हाणी अवट्ठाणं। एइंदि० वेद०-णाम० बहुी हाणी ओघं।
अवट्ठाणं एइंदियस्स।

३३५. इत्थिवेदे घादि०४ जह० बड्डी कस्स० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० दुसमयबंधगस्स जह० बड्डी । जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० खवग० चरिमे अणु०

३३४. वैकियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य नारिकयोंक समान मंग है। वैक्रियिकमिश्रकाय-थोगी जीवोंमें चार घातिकर्म, वेटनीय और नामकमका भंग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान हैं। गोत्रकर्मकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है? जो सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टिनारकी तस्त्रायोग्य जघन्य विद्युद्धिसे प्रतिभन्न होकर तत्त्रायोग्य जघन्य श्रतुभागगन्ध कर रहा है वह जघन्य बुद्धिक। स्वामी है । उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य- श्रावस्थान होता है । जघन्य हानिका-स्वामी कीन है ? जो अन्यतर जीव तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह जवन्य हानिका स्वामी है। ब्राहारककाययोगी जीवोंमं सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रमत्तसंयत जीवको स्वामी कहना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रीदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव अनन्त भागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जबन्य वृद्धिका स्वामी है ऋौर जो सम्यग्दृष्टि जीव स्थनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्यहानिका स्वामी है, तथा इनमेंसे किसी एकके अवस्थान हाता है। अथवा जो एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्यवृद्धिका स्वामी है. जो एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागहानिका प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। गौत्रकमैंकी जघन्यबृद्धिका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि सातवीं पृथिवीका नारकी अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है. जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है श्रीर इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। अथवा जो एकेन्द्रिय अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्यवृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिक। स्वामी है स्त्रीर इनमेंसे किसी एकके जघन्य स्त्रवस्थान होता है। वेदनीय स्त्रीर नामकर्मके जवन्य वृद्धि और हानिका स्वामित्व आंघके समान है। जघन्य अवस्थानका स्वामी एकेन्द्रिय जीव है।

३२४. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार;घातिकर्मौकी जघन्य वृद्धिका स्त्रामी कौन हैं ? जो श्रन्यतर गिरने-बाला उपशामक द्विसमयका बन्ध करनेवाला है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी हैं। जघन्य हानिका स्वामी कौन हैं ? जो श्रन्यतर चपक जीव श्रन्तिम श्रनुभागवन्धमें श्रवस्थित है वह जघन्य

१ ता॰ प्रतौ-जहाण्णगां (ण्णगा) दो इति पाटः।

वद्द० तस्स जह० हाणी। अवद्वाणं अप्पमत्तस्स । सेसं मणुसि०भंगो। एवं पुरिस० । एवं चेव णवुंसग० । णवरि गोद० ओघभंगो। अत्रगदे घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोदा० जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० उत्रसामय० विदियसमयअवगदवेदस्स तस्स जह० वड्डी । जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० उत्रसाम० परिवदमा० दुसमय-सुदुमसं० जह० हाणी । एवं सुदूमसंप० ।

३३६. मदि०-सुद् व।दि०४ जह० बहुी कस्स० १ अण्ण० मणुष० मणुसिणीए वा संजमादो परिवद०गस्स दुसमयमिच्छा० तस्स जह० बहुी । जह० हाणी कस्स० १ अण्ण० मणुष्प० सागार० सन्त्रविसु० संजमाभिमुह० चिरमे जह० अणु० वह० तस्स जह० हाणी । जह० अबहुाणं कस्स० १ अण्ण० यो तप्पाओग्गउकस्सियादो विसोधीदो पिडमग्गो तप्पाओग्गजह० पिद्दो अणंतभाग्ण बिहुद्ण अबिहुद्स तस्स जह० अबहुाणं । सेसं णिरयोघं । आउ० ओघं । एवं विभंगे [अभवसि०] मिच्छा० ।

३३७. आमि० सुद०-ओघि० [ओघं। णविर गोद० जह०] वड्डी कस्स० ? अण्ण० यो तप्पा०उकस्सगादो संि लेसादो पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पिट्दो तस्स जह० वड्डी। तस्सेव से काले जह० अवड्डाणं। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० चदुग० असंजद०

हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानक। स्वामी अप्रमत्तसंयत जीव है। शेप कर्मीका भंग मनुष्यिन्त्योंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें गांत्रकर्मका भंग ऋषिक समान है। अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका भंग खोषके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मीका भंग खोषके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन हैं? जो अन्यतर उपशामक द्वितीय समयवर्नी अपगतवेदी जीव हैं वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हातिका स्वामी कीन हैं? जो अन्यतर गिरनेवाला उपशामक द्विसमयवर्ती सूद्मसाम्पराय संयत जीव हैं वह जघन्य हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूद्दमसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३३६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार वाति कर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी संयमसे गिरवर द्विसमयवर्ती मिश्याहां जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी जीव अन्तिम जघन्य अनुभागवन्धि अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तत्यायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्यायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है और अनन्तभाग वृद्धि करके अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। श्रेप कर्मोंका भंग सामान्य नारिकयोंके समान है। आयुकर्मका भंग अभव्य और मिश्याहिष्ट जीवोंक जानना चाहिए।

३३७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अर्वधिज्ञानी जीवोमें श्रोधिक समान मंग है। इतनी विशेषता है कि गांत्रकर्मकी जवन्य वृद्धिका स्वामी कीन है? जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जवन्यको प्राप्त हुआ है वह जधन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा उसीके तद्मनन्तर सम्यमें जयन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन हैं? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिण्यात्वक अभिमुख और अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित

सागा उक्क संकिले पिन्छना विम्रह चिरमें अणु बहु तस्स जह हाणी। आउ देवमंगी। एवं ओधिदंस - सम्मादि - खड्ग - उवसम । णवि खड्गे गोद व हाणी सत्थाणे उक्कस्ससंकिलिंद्रस्स काद्व्यं। मणपज्ज ओघं। णवि गोद व बही अबहाणं ओधिमंगी। जह वहाणी कस्म ? अण्ण उक्क संकिले असंजमा निम्रह विसे अणु बहु तस्स जह हाणी। आउ ओधिमंगी। एवं संजद-सामाह - छेदो । णवि गोद ओधिमंगी।

३३८. परिहार० घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० अप्पष्टत्त० सन्व-विसुद्धस्स अणंतभागेण बिहुद्ण बड्डी हाइद्ण हाणी एकद्रत्थमबद्धाणं । अथवा हाणी० ? दंसणमोहणीयस्स खबगास्स से काले कदकरणिओ होहिदि ति तस्स जह० हाणी । सेसं मणपज्जवभंगो । णवरि गोद० जह० हाणी० ? सामाइय-च्छेदोबद्वावणाभिम्रह० तस्स जह० हाणी । संजदासंजदे घादि०४ जह० बड्डी कस्स० ? अण्ण० यो तप्पाओग्गउक०दो विसोधीदो पिडिभग्गो तप्पा० जह० पिददो तस्स जह० बड्डी । तस्सेव से काले जह० अबद्वाणं । जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० मंजमाभिम्रह० सन्विवसु० । सेसं ओधिभंगो ।

जो अन्यतर चार गिनिका असंयतसम्बन्हाष्ट जाय है। यह जयन्य हानिका स्वामी है। आयुक्रमेका भङ्ग देवोंके समार है। इसीप्रकार अवधिवशीनी, लम्यग्हाष्ट, श्लायिकसम्यग्हाष्ट और उपशाससम्यग्हाष्ट जीवोंक जानना चाहिए। इतना विशेषता है कि चायिकसम्यग्हाष्ट जीवोमे गोत्रकर्मकी जयन्य हानिका स्वामित्व स्वस्थानमे उत्छट संक्षिष्ट जीवके करना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आयके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी वृष्ट और अवस्थानका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। गोत्रकर्मकी जयन्य हानिका स्वामी कीन है १ जो अन्यतर जीव उन्छट संक्लेशके साथ असंयमके अभिमुख और अन्तिम अनुमाग्यन्थमें अवस्थित है। वह जयन्य हानिका स्वामी है। आयुक्रमेका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके स्थान है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोप-स्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इतमें गोत्रकर्मका भङ्ग अवधि ज्ञानी जीवोंके समान है।

३३८. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंगे चार घातिकमींकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कोन हे १ जी अन्यतर अप्रमत्तसंयत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिका प्राप्त होता है वह जयस्य वृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभागहानिका प्राप्त होता है वह जयस्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जयस्य अवस्थान होता है । अथवा जयन्य हानिका स्वामी कोन है १ जो दरानमोदनीयका अपक जीव तदनन्तर समयमें कृतकृत्य होता वह जयन्य हानिका स्वामी है। शेष कर्मीका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी जयस्य हानिका स्वामी कीन है १ जो जीव सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमक अभिमुख है वह जयस्य हानिका स्वामी है । संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जयस्य वृद्धिका स्वामी कौन है १ जो अन्यतर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जयस्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है वह जयस्य वृद्धिका स्वामी है । उसके तदनन्तर समयमें जयस्य अवस्थान होता है । जयस्य हानिका स्वामी कौन है १ जो अन्यतर संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध जीव है वह जयस्य हानिका स्वामी है । शेष कर्मोंका

१ ता० स्ना० प्रत्योः ओधिभंगो । सेसं मणुसिभंगो । एवं इति पाटः ।

असंजदे घादि०४ जह० वड्डी अवट्ठाणं देवभंगो । जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० असंजदसं० संजमामिम्रह० सन्वविसु० जह० हाणी । सेसाणं मदि०भंगो ।

३३६. किण्ण० णिरयभंगो । णील-काऊणं गोद० तिस्क्लोघं । सेमं णिरयभंगो । तेउ०-पम्म० घादि०४ जह० बड्ढी कस्म० १ अण्ण० अप्पमत्त० सन्वविसु० अणंत-भागेण बड्डिद्ण बड्ढी हाइदृण हाणी एक० अबट्ढाणं । सेसाणं देवभंगो । सुकाए घादि०४ ओघं । सेसाणं आणदभंगो ।

३४०. वेदगे घादि० परिहार०भंगो । सेसाणं ओधियंगो । सासणे।घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० १ अण्ण० सन्वित्तसु० जह० वड्ढिर्ण बड्ढी हाइ० हा० एक० अवट्ठाणं । सेसं देवभंगो । सम्मामि० घादि०४ जह० बड्ढी सत्थाणे । तस्सेव अवट्ठाणं । जह० हाणी० १ सम्मत्ताभिग्रह० जह० हाणी । सेसाणं वेदगसम्मादिद्विभंगो ।

३४१. असण्णी० घादि०४ जह० वड्डी कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सन्वाहि पज्ज० सन्वित्ति । सेसाणं तिरिक्खोघं । अणाहार० कम्मइगर्भगो ।

एवं सामित्तं समत्तं

भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। असंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धि ख्रीर जघन्य अवस्थानका भङ्ग देवोंके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर असंयत-सम्यग्दष्टि सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख जीव है वह जघन्य हानिका स्वामी है ? शेप कर्मीका भङ्ग मस्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३३६. कृष्णतेश्यावाले जीवोंमें नारिकयोंके समान भन्न है। नील और कार्यातलेश्यावाले जीवोंमें गोत्रकर्मका भन्न सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। शेष कर्मोंका भन्न नारिकयोंके समान है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है। जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिका प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभाग जघन्य हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भन्न देवोंके समान है। शुक्तलेश्यावाने जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भन्न देवोंके समान है। शेष कर्मोंका भन्न स्वानतकरूपके समान है।

३४०. वंदकसम्यग्हिष्ट जीवोंमं चार घातिकर्मीका भङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। शेष कर्मीका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। सासादनसम्यग्हिष्ट जीवोंमें चार घाति कर्मीकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सर्वेविशुद्ध जीव जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो जघन्य हानिसे हानिको प्राप्त हैं वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। शेष कर्मीका भङ्ग देवोंके समान है। सम्यग्निश्यादृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंकी जघन्यवृद्धि स्वस्थानमें होती है। तथा उसीके जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ अन्यतर जीव जघन्य हानिका स्वामी है। शेष कर्मीका भङ्ग वंदकसम्यग्हिष्ठके समान है।

३४१. श्रसंज्ञी जीवोंमें चार घातिकमोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है १ अन्यतर पर्क्च-न्द्रिय सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ सर्वविशुद्ध जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। शेप भङ्ग सामान्य निर्यक्कोंके समान है। अनादारक जीवोंमें कामणकायोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

अपाबहुअं

३४२. अप्पाबहुगं दुनिधं-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओवे० आदे० । अभेवे० घादि०४ सन्वत्थोवा उक्क० बह्वी । अबद्वाणं विसे० । हाणी विसे० ! तिण्णं क० सन्वत्थोवा उक्क० अबद्वाणं । उक्क० हाणी अणंतगु० । उक्क० बह्वी अणंतगु० । आउ० सन्वत्थोवा उक्क० बह्वो । उक्क० हाणी अबद्वाणं दो वि तुल्लाणि विसे० । एवं ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारगे ति ।

३४३. णिरएसु अट्टण्णं कम्माणं सन्वत्थोवा उक्त० वड्ढी । उक्त० हाणी अवट्ठाणं दो वि तुल्लाणि विसे० । मणुस०३ घादि०४ णिरयमंगो । वेद०-णाम० गोद०-आउ० ओघं । एवं पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-ओगालि० इत्थि० पुरिस० णवुंस० चक्खु०-सुक्त० खह्गा० सण्णि ति ।

३४४. ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं सन्तरयोवा उक्त० हाणी अवद्वाणं । बहुी अणंतगु० । आउ० णिरयभंगो । एवं वेउन्वियमि०-आहार्राम० । कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं सन्तरथोवा उक्त० अवद्वाणं । वहुी अणंतगु० । हाणी विसे० । एवं अणाहार० ।

३४५. अवगद० घादि०४ सन्वत्थोवा उक्क० हाणी । बङ्की अणंतगु० । वेद०-

अल्पबहुत्व

३४२. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश । आंघ में चार चाति कर्मीका उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्ताक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक हैं । इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक हैं । तीन कर्मीका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । अधुक्रमंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्ताक है । इससे उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दानों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार आंघक समान काययोगी, कोघादि चर कपायत्राले, अचलुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंक जानना चाहिये।

३४३. नारिकयों मं आठों कर्मों की उच्छ ष्टब्रि सबसे स्तों कहें। इससे उच्छ हानि और उच्छ खबस्थान दोनों ही तुस्य होकर विशेष अधिक हैं। मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मिका भङ्ग नारिकयों के समान है। वेदनीय, नाम. गांत्र और आयुक्रमंका भङ्ग आंघके समान है। इसीप्रधार पक्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयागी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चज्चदर्शनी, शुक्ललंश्यायाले, क्षायिकसम्यग्टिष्ट और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

३४४. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीक उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट बृद्धि श्रनन्तगुणी हैं। श्रायुक्रमका मङ्ग नारिकयोंक समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्रीर आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये; कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इससे उत्कृष्ट बृद्धि श्रनन्तगुणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष श्रिधक हैं। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

३१४. श्रपगतवंदा जीवोंमें चार घातिकर्मीकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट

णामा० गोदा० सन्वतथोवा उक्क० [बह्डी । उक्क० हाणी] अणंतगु । एवं सुदूषसंप० । ३४६. मदि० सुद्द०-असंज०-मिच्छा० ओघं । विभंगे ओघं । णवरि घादि०४ णिरयभंगो । आभि०-सुद० ओघि० घादि०४ सन्वत्थोवा उक्क० हाणी अवद्याणं । बह्डी अणंतगु० सेसाणं ओघं । एवं मणपञ्जव० संजद सामाइ०-छेदो० ओधिद०-सम्मादि०- उवसम०-परिहार०-संजदासंज० । वेदग० घादि०४ ओधिभंगो । सेसाणं णिरयभंगा । सम्मामि० सत्तण्णं क० सन्वत्थो० हाणी अबद्वाणं । बह्डी अणंतगु० । सेसाणं णिरयभंगो ।

एवं उकस्सं समत्तं।

३४७, जहण्णए पगदं। दुवि० अघि० आहे०। आघे० घादि०४ सन्त्रत्था० जह० हाणी। बङ्की अणंतगु०। अवद्वाणं ऋणंतगु०। गोद० सन्वत्था० जह० हाणी। बङ्की अवद्वाणं दो वि तु० अणंतगु०। सेसाणि तिण्णि वि तुछाणि।

३४८. णिरएसु गोद० ओघं। सेसाणं तिर्णि वि तुल्लाणि। एवं सत्तमाए। पढमादि यात्र छद्धि ति सन्त्राणि तुल्लाणि। मणुस०३ ओघं। णवरि गोद० वेद०भंगो।

वृद्धि अनन्तमुणी है । वेदनीय, नाम और गात्र कर्मकी उन्कृष्ट शृद्धि सबसे स्तीक है । इससे उत्कृष्ट हु!नि अनन्तगुणी है । इसी प्रकार सुदमसाम्परायसंयत जीवींकै जानना चाहिये ।

३४६. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत और मिश्यादृष्टि जीवोमें अल्पबहुत्व ओप्यते समान है। विभक्षज्ञानी जीवोमें अल्पबहुत्व ओप्यते समान है। इतनी विशेषता है कि चार पातिकमींका भक्ष नारिक्योंके समान है। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोमें चार पातिकमींका उत्कृष्ट इति और अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनमें उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। शे कमींका भंग आपके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत. सामाधिकसंयत, छेदापस्थापनासंयत, अवधिद्रश्रीनी, सम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि, परिहारित्रश्रुद्धिसंयत और संयत्तासंयत जीवोंके जानना चाहिये। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार पातिकमोंका भक्ष अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष धर्मोंका भक्ष नारिक्योंके समान है। शेष धर्मोंका भक्ष नारिक्योंके समान है। सम्यग्निश्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। शेष सब मार्गणाओंमें नारिक्योंके समान मंग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अरूपचहुत्व समाप्त हुआ।

३४७. जबन्यका प्रकरण है। उसकी अपेन्ना तिर्देश दो प्रकारका है—श्रोब आर आदेश। श्रोबसे चार वात्तिकर्मीकी जबन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जबन्य पृद्धि अनन्तगुणी है। इससे जबन्य अवस्थान अनन्तगुणा है। गोत्रकर्मको जबन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जबन्य पृद्धि और जबन्य अवस्थान दोनों ही तस्य होकर अनन्तगुणे हैं। शेप कर्मीके तीनों ही तस्य हैं।

३४८. नारिकयोंमें गोत्रकर्मका भंग क्रांघक समान है। रोष कर्मोंक तीनों ही तुल्य हैं। इस प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। पहली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमें सब पद तुल्य हैं। मनुष्यत्रिकमें ऋल्पबहुत्व क्रोंघक समान हैं। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मक। भंग वेदनीयक समान है। पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी

१ ता । प्रतौ सञ्बत्थो । उक्क । उक्क । अणंतगुणा इति पाटः ।

२ ता० प्रतौ मिच्छा० ओघं। णवरि इति पाटः। ३ आ० प्रतौ सेसाणि इति पाटः।

पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारग ति ओघं।

३४९. ओरालिय० मणुसि०भंगो। ओगालियमि० चादि०४ सन्वत्थोवा जह० बह्ढी अबद्वाणं। जह० हाणी अणंतगु०। सेसाणि तिण्णि वि तु०। एवं वेउन्तियमि०। आहार०-आहारमि० देवभंगो। कम्मइ० चादि०४-गोद० सन्वत्थोवा जह० बह्ढी। जह० हाणी अबद्वाणं अणंतगु०। सेसाणं ओघं। एवं अणाहार०।

३५०. इत्थि०-पुरिस०-णवुंसगः मणुसि०भंगो । णवरि णवुंस० गोद० णिरयभंगो । अवगद० सत्तरणं क० सन्बरधोवा जह० हाणी । वड्डी अणंतगु० । एवं सुदूरसंप० ।

३५१. आभि०-सुद्०-ओधि० गोद्० सच्वत्थोः जह० हाणी। बड्ढी अबहुाणं अणंतगु०। हेसाणं ओघं। एवं मणपञ्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-उवसमसम्मादिष्टि ति। परिहार० गोद्० ओधिभंगो। घादि०४ सच्वत्थोवा जह० हाणी। सेसाणं अणंतगु०। सेसं ओघं। संजदासंजद० घादि०४ सच्वत्थोवा जह० हाणी। बड्ढी अबद्वाणं अणंतगु०। सेमं ओधिभंगो।

क्रोधादि चार कपाथवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चचुदर्शनी, अचचुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहुएक जीवोके आधिके समान श्रुत्यवहुत्व है।

३४९. श्रोदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनयोंके समान भंग है। श्रोदारिकिमश्रकाययोगी कीवोंमें चार वातिकर्मोंकी जवन्य वृद्धि श्रोर श्रवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य हानि श्रनन्तगुणी है। शेष कर्मोंके तीनों ही पद तुन्य हैं। इसी प्रकार वैकियिकिमश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। श्राहारककाययोगी श्रीयों स्थार श्राहारकिमश्रकाययोगी, जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घाति कर्म श्रीर गांत्र कर्मकी जघन्य वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य हानि श्रीर जघन्य श्रवस्थान श्रनन्तगुणे हैं। श्रेप कर्मोंका भङ्ग श्रोघ के समान है। इसी प्रकार श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

३४०. स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमं मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें गांत्र कर्मका भङ्ग नारिकयोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी जवन्य हानि सबसे स्त्रोंक है। इससे जवन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सूद्म-साम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३४१. आमिनिबोधिकज्ञानी, शुरुज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें गोत्रकर्मकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इसमें जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका अल्पबहुत्व बोघक समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्र्याष्ट्र और उपशाससम्यग्र्याष्ट्र जीवोंके जानना चाहिए। परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें गोत्रकर्मका अल्पबहुत्व अवध्यानी जीवोंके समान है। चार घातिकर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। शेष वर्मोंका भंग ओघके समान है। संयतासंयत जावोंसे चार घातिकर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका भंग अवध्यानी सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका भंग अवध्यानी जीवोंके समान है।

३५२. सुकाए खड्ग० मणुसि०भंगो । वेदगे गोद० ओधिभंगो । सेसं णिरयभंगो । सम्मामि० गोद० वेद०भंगो । सेसाणं णिरयभंगो । सेसाणं सन्वेसिं पढमपुढविभंगो । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं पदणिक्खेवो 'समत्तो ।

३५२. शुक्ललेश्या और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यितियोंके समान भंग है। वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष कर्मीका भंग नारिकयोंके समान है। सम्यग्निध्यादृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। शेषकर्मीका भंग नाकियोंके समान है। शेष कर्मीका भंग नाकियोंके समान है। शेष स्व मार्गणाओंमें पहली पृथिवींके समान भंग है।

इस प्रकार अरुपबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुऋ।।

आ• प्रतौ पर्डिणक्खेत्रो इति पाठः ।

विश्वंधो

३५२. विद्वृषंघे ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—सम्रुक्तित्तणा याव अप्पाबहुगे ति १३।

ममुक्कित्तणा

३५४. सम्रक्तित्तणाए अद्रुण्णं बं० अत्थि छवड्ढी छहाणी। अवद्वि० अवत्तव्व०। एवं मणुस०-३-पंचिदि० तस० २-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोम० मोह० आमि०-सुद०-ओधि०-मणप०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं-सुक० मवसि०-सम्मादि० सहग०-उवसम०-सण्णि-आहारग ति।

३५५. अवगद् सहुमसंप सत्ताणं क छणं अत्थ अणंतगु विद्विहि हाणि अवता । सुहुमसंप अवत्त णित्थ सिसाणं अत्थि छवद्वी छहाणी अवद्वाणं। आउ० ओघं। एवं ममुक्तिताणा समना।

सामित्तं

३५६. सामित्ताणुगमेण द्वि०-अघि० आदे०। अघि० अट्टण्णं पि अवत्त० सुज०

बुद्ध**ब**न्ध

३५३. वृद्धिबन्धका प्रकरण है। उसमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुर्त्कार्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक १३।

सम्रत्कीर्तना

३४४. समुर्कार्तनाकी अपंता आठों कमें के बन्धक जीवोंकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचे/न्द्रयद्विक, असद्धिक, पाँच-मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके, आभिनिवाधिकज्ञानी, अत्रज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चजुदर्शनी, अचजुदर्शनी, अवधिदर्शनी, ग्रुक्तलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, चपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३५४. अपगतवदी और सूद्रमसांपरायसंयत जीवों में क्रमसे सात कमों और छह कमों के बन्धक जीवों की अनन्तगुणशृद्धि, अनन्त गुणहानि और अवक्तव्यपद होते हैं। इतनी विशेषता है कि सूद्रमसाम्परायसंयत जीवों में अवक्तव्यपद नहीं है। शेप सब मार्गणाओं में छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थान पद होते हैं। आयुक्रमंका भंग ओघके समान है। इस प्रकार समुत्कार्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

३४६. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। छोघछे आठों ही कर्मीके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारपदके अवक्तव्यपदके समान करना चाहिए। छह

१ ता॰ व्रतौ अवट्ट॰ इति पाठः। २ ता॰ व्रतौ मणुस॰ १३ (३) पण्डि॰ इति पाठः। ३ ता॰ आ॰ प्रत्योः सम्ममि॰ इति पाठः।

अवत्तभंगो काद्व्वो। छवड्ढी छहाणी अबट्टि० कस्स० ? अण्ण०। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभ० मोह० आमि०-सुद०-ओधि०-मणपञ्ज०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्क०-भवसि०-सम्मादि० खह्ग०-उवसम० सण्णि-आहारग ति । णेरहगेसु सत्तण्णं क० एवं चेव। णविर अवत्त० णित्थ । कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० छवड्ढी छहाणी अवट्टि० कस्स० ? अण्ण०। एवं वेउव्वियमि०-सम्मामि०। अवगद०सत्तण्णं क०अणंतगुणबिड्ड-हाणी कस्स०? अण्ण०। एवं सहमसंप० छण्णं कम्माणं। सेसाणं णिरयभंगो। एवं सामित्तं समत्तं।

कालो

३५७. कालाणुगमेण अट्टण्णं कम्माणं पंचवड्ढी पंचहाणी केवचिरं० ? जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखेळा० । अणंतगुणविद्धि हाणी जह० एग०, उक्क० अंतो०। अविद्धि जह० एग०, उक्क सत्तद्वसम०। आउ० अविद्धि जह० एग०, उक्क० सत्तसमया। अवत्त० एग०। एवं अट्टण्णं कम्माणं चोदमण्णं पदा जिम्ह अस्थि तिम्ह एस कालो०। ३५८. णिरएसु सत्तण्णं एवं चेव। णविर सत्तण्णं क० अवत्तव्वं णित्थ। अविद्धि

वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदका स्वामी कीन है ? अन्यतर जीव इनका स्वामी है। इसी प्रकार आघके समान मनुष्यित्रक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काय-योगी, लोभकपायवाले जीवोंमें माहनीयकर्म, आभिनिवाधिकज्ञानी, अत्ञ्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः पर्ययञ्चानी, संयत, चक्षुदशनी, अचक्षुदशनी, अवधिदर्शनी, शुक्तलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, चायिक-सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। नारिक्योंमें सात कर्मोंका भंग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि अवक्षव्यपद नहीं है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदका स्वामी कीन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। अपगतवदी जीवोंमें सात कर्मोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका स्वामी कीन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी अपेन्। जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें नारिकयोंके समान मंग है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

काल

३४७. कालानुगमकी अपेद्धा आठ कर्मों की पाँच यृद्धि और पाँच हानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार आठों कर्मों के चौदह पद जिन मार्गणाओं में हैं उनमें यही काल जानना चाहिए।

३५८. नारिकयोंमें सातों कमोंका इसी प्रकार काल है। इतनी विशेषता है कि सात कमोंका

ता० प्रती आवड्टि० असंखेजिद (?) आ० प्रती अविटि० असंखेजि० इति पाठः ।

जह० एगस०, उद्या सत्ता अद्वसमा०। कम्मइ०-अणाहार० सत्ताणं क० छवहुी छहाणी जह० एगस०, उद्या वेसमा०। अवद्वि० जह० एग०, उद्या तिण्णिसम०। अवगद० सत्ताणं क० अणंतगुणविद्वि-हाणी जह० एग०, उद्या अंतो०। एवं सुहुमसंप० छण्णं क०। सेसाणं णिरयभंगो। एवं कालं समत्ता।

अंतरं

३५९, अंतराणुगमेण अहुण्णं क० अवत्त० भुज० अवत्त०भंगो । अहुण्णं कम्माणं अविहु० पंचवड्ढी पंचहाणी भुज० अविहु०भंगो । अणंतगुणविहु-हाणी सन्त्रत्थ भुजगार-बंधगे भुज०-अप्पदराणं अंतरं काद्व्यं । एवं याव अणाहारग त्ति । एवं अंतरं समत्तं ।

णाणाजीवेहि भंगविचयो

३६०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण छत्राङ्गि-छहाणि-अवद्विदंधगा णियमा अत्थि। सिया एदे य अवत्तगे य। सिया एदे य अवत्तव्याण प्रशिव्या प्रवे अवत्रगे य। सिया एदे य अवत्तव्यगा य। आउ० सव्वपदा णियमा अत्थि। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वसुहुमाणं एइंदिय-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणफदि-णियोद०-कायजीगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०

श्चवक्तव्यपद नहीं है। श्रवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। कार्मणकाययोगी श्रीर श्वनाहारक जीवोंमें सात कर्मीकी छह वृद्धि श्रीर छह हानियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्टकाल तीन समय है। श्रवगतवेदी जीवोंमें सात क्रमींकी श्रवन्तगुणवृद्धि श्रीर श्रवन्तगुण-हानिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। इसी प्रकार सूद्मसाम्परायिक-संयत जीवोंमें छह कर्मीकी श्रपेदा। काल जानना चाहिए। श्रेप मार्गणश्रींका मंग नारिकयोंके समान है। इस प्रकार काल समाप्त हुश्रा।

अन्तर

३५६. स्रन्तरानुगमकी अपेचा त्राठ कर्मीके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारबन्धके अवक्तव्य-पदके समान है। त्राठ कर्मोंके अवस्थितपद, पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका त्रान्तर भुजगारबन्धके स्रवस्थितपदके समान है। त्रानन्तगुणवृद्धि और त्रानन्तगुणहानिका त्रान्तरकाल सर्वत्र भुजगारपदका बन्ध करनेवाले जीवोंमें भुजगारबन्धके व त्राह्मतरपदके त्रान्तरकालके समान करना चाहिए। इसी प्रकार त्रानाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इस प्रकार त्रान्तरकाल समाप्त हुत्रा।

नाना जीवोंकी अपेक्षा मङ्गविचय

३६०. नाना जीवोंको अपेच। भंगविचयानुगमसे छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपद-के बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और एक अवक्तव्य पदका बन्धक जीव है। कदाचित् ये जीव हैं और नाना अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। आयुक्रमके सब पदोंके बन्धक जीव नियम से हैं। इसी प्रकार ओघ के समान सामान्य नियंच, सब सूदम, एकेन्द्रिय, वृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगाद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मरयज्ञानी, अता- ४-मदि०-सुद०-असंज्ञ०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अव्भवसि०-मिच्छा०-त्रसण्णि-आहार०-अणाहारम् ति ।

३६१. णिरएसु सत्तण्णं क० अणंतगुणविष्टु-हाणी णियमा अत्थि । सेसाणि पदाणि भयणिजाणि । अग्रउ० सञ्वपदाणि भयणिजाणि । मणुसअपज्ञ०-वेउन्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसंप०-उवसमः -सासण० सम्मामि० मञ्चपदाणि भयणिजाणि । बादरएइंदि० बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० वणप्फिदि-णियोद०-पत्तेय० तेसिं च अपज्ञ० सत्तण्णं क० ज्विङ्गि-छहाणि-अवद्वि० आउ० सञ्चपदा णियमा अत्थि । सेसाणं णिरयमंगो ।

एवं भंगविचयं समत्तं।

भागाभागो

३६२. भागाभागाणुगमेण सत्तणं कम्माणं पंचविद्धु-हाणि-अविद्धिः सन्व० केव० भागो ? असंखे०भागो । अणंतगुणविद्धी दुभागो सादिरे० । अणंतगुणहाणी दुभागं देख्र० । अवत्त० अणंतभा० । आउ० एवं चेव । णविर अवत्त० असंखेजा भा० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि० लोभ० मोह० अचक्खु०-भविस्व० आहार्ग ति । सेसाणं पि भुजगारेण साधेदव्वं । एवं भागामागं समत्तं ।

ह्मानी, श्रसंयत, श्रवचुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक श्रौर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३६१. नारिकयों में सात कर्मीकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणह। निके बन्यक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। श्रायुकर्मके सब पद भजनीय हैं। मनुष्य अपयोप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकिमिश्रकाययोगी, अपगतवदी, सूद्दमसाम्परायिक संयत, उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में सब पद भजनीय हैं। बादर एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पितिकायिक, बादर निगाद, बादर वनस्पितिकायिक, बादर निगाद, बादर वनस्पितिकायिक प्रत्येकशारीर और इनके अपर्याप्त जीवों सात कर्मीकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित पदवाले जीव तथा आयुकर्मके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। शेप मार्गणाओं में नार्राक्यों के समात भङ्ग हैं। इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

मागाभाग

३६२. भागामागानुगमकी श्रपंता सात कर्मोंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि श्रीर अवस्थित पद्के वंधक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीयभाग प्रमाण हैं । श्रनन्तगुणहानिके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीयभाग प्रमाण हैं । श्रवक्तव्य पद्के वन्धक जीव अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । श्रायुकर्मका भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि श्रवक्तव्यपद्के बन्धक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार श्रोधके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, लोभकपायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्म, श्रचतुद्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए । शेष सब मार्गणाओंका भङ्ग भुजगार पदके अनुसार साथ लेना चाहिए । इस प्रकार भागाभाग समाप्त द्वश्या ।

परिमाणं खेतं य

३६३. परिमाणाणुगमेण सत्तणं कम्माणं अवत्त० केति० १ संखेजा । सेसपदा केतिया १ अणंता । आउ० सव्वपदा केतिया १ अणंता । एवं ओघमंगो तिरिक्खोघं एइंदि०-वणप्पदि-णियोद ०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि ०-कम्मइ ०-णवंस०-कोघादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्ण-आहार०-अणाहारग ति' । णवरि केसिं च सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० णित्थ केसिं च अत्थि । णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं तेरसपदा कतिया १ असंखेजा । आउ० चोदसपदा केतिया १ असंखेजा । सेसं सुजगारेण साधेदव्वं । खेतं पि परिमाणेण साधेदव्वं भवदि ।

फोसणं

३६४. फोसणाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं तेरसपदा सन्वलोगो। अवत्तन्वबं० लोगस्स असंखे०। आउ० सन्वपदा सन्वलोगो। एवं अहुण्णं कम्माणं अविहुद्वं०-अवत्त० अजगारभंगो। छवड्ढी छहाणी० अप्पप्पणो अज० अप्पद०भंगो। एदेण बीजेण णेदन्वं याव अणाहारग ति। णवरि अवगदे गुहुमसंग्० अणंतगुणविह्न हाणी खेत्तभंगो कादन्वो।

परिमाण और क्षेत्र

३६३. परमाणानुगमकी अपेक्षा सात कर्मीक अवक्तव्यपदक बन्यक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष पदोंक बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । आधुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान मामान्य तियंच, एकेन्द्रिय, बनस्यतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाल, मत्यज्ञानी, श्रुताञ्चानी, असंयत, अचजुदरानी, तीन लेश्याबाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंबी, आहारक और अनाहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमेंसे किन्हीं जीवोंके सात कर्मीका अवक्तव्यपद नहीं हैं और किन्हीं जीवोंका अवक्तव्यपद है । नारिकयोमें सात कर्मीके तेरह पदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आयुक्रमके चौदह पदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । श्रायुक्षमके चौदह पदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात साध लेना चाहिए। चेत्र भी परिमाणके अनुसार साध लेना चाहिए। चेत्र भी परिमाणके अनुसार साध लेना चाहिए।

इस प्रकार परमाणानुगम तथा चंत्रानुगम समाप्त हुआ।

स्पर्शन

4६४. स्पर्शनानुगमकी अपेत्ता सात कर्मीक तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक त्रंत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने लोक के असंख्यात वें भाग प्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्रमके सब पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक त्रेत्रका स्परान किया है। इसी प्रकार आठों कर्मीके आवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका भंग भुजगारबन्धके समान है तथा छह वृद्धि और छह हानियोंके बन्धक जीवोंका भंग अपने अपने भुजगारपदके और अल्पतर पदके समान है। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इननी

ता० प्रतौ अस्विण अणाहारग ति इति पाठ: ।

कालो

३६५. कालाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं अवत्त ० जह० एग० , उक्क० संखेजसम०। सेमा तेरसपदा आउ० सन्वपदा सन्वद्धा। अहुण्णं कम्माणं अवहि० अवत्त ० स्रज०मंगो। एवं पंचवङ्की-पंचहाणी अप्पप्पणो अवहि०भंगो। अणंतगुणवङ्कि-हाणी स्रज०-अप्प०भंगो। एदेण बीजेण याव अणाहारग त्ति णेदन्वं।

अंतरं

३६६. अंतराणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं अवत्त ० जह ० एग०, उक्क० वासपुथत्तं । सेसपदा० णित्थ अंतरं । आउ० सन्वपदा० णित्थ अंतरं । एवं अट्टण्णं कम्माणं अविद्वि० अवत्त० सुज० अविद्वि० अवत्त०भंगो । पंचवङ्को पंचहाणी अप्पप्पणो अविद्वि०भंगो । अणंतगुणविद्वि-हाणी सुज०-अप्पद०भंगो । एवं यात्र अणाहारण त्ति णेदन्वं ।

भावो

३६७. भावाणुगमेण अड्डण्णं कम्माणं चोइसपदाणं को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

विशेषता है कि अपगतवद आर सूद्मसाम्परायिकसंयत जीवाम अनन्तगुणवृद्धि आर अनन्तगुण-हानिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके अनुसार करना चाहिए। इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्तहुआ।

काल

३६५. कालानुगमकी अपचा सात कर्मीके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। शेप तरह पद और आयुक्रमंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। आठ कर्मीक अवस्थित और अवक्तव्यपदका मंग भुजगारके समान है। इसी प्रकार पाँच वृद्धि और पाँच हानिक बन्धक जीवोंका मंग अपने अपने अवस्थित पदके समान है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका मंग भुजगारबन्धके और अस्पतरपदके समान है। इस बीजपदके अनुसार अनिहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

अन्तर

३६६. धन्तरानुगमका अपेक्षा सात कमें के अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तव प्रमाण है। शेप पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुक्तमके सब पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आठों कमोंके अवस्थित और अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल भुजगारबन्धके अवस्थित और अवक्तव्य पदके धन्तरकालके समान जानना चाहिए। पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल अपने अपने अवस्थितपदके समान है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणशानिके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल अन्तरकाल भुजगारबन्धके और अल्पतरपदके अन्तरकालके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

भाव

३६०. भावानुगमकी श्रपेत्ता श्राठ कर्मोंके चौदह परोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? श्रोद्यिकभाव है। इसी प्रकार श्रनाहारक मागणा तक जानना चाहिए। इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

१ ता० प्रती काळम्णु० ज० ए० इति पाठः।

अपाबहुअं

३६८. अप्पावहुगं दुवि०-अधे० ओदे०। ओघे० सत्तणां सव्वत्थोवा अवत्त०। अवद्वि० अणंतणु०। अणंतभागविद्वः हाणी दो वि तुना० असंखेअगु०। असंखेअगानविद्वः हाणी दो वि तुन् असंखेअगु०। संखेअभागविद्वः हाणी दो वि तुन् असंखेअगु०। संखेअगुणविद्वः हाणी दो वि तुन् असंखेअगु०। असंखेअगुणविद्वः हाणी दो वि तु० असंलगु०। अणंतगुणविद्वः हाणी दो वि तु० असंन्गु०। असंखेअगागविद्वः हाणी दो वि तु० असंन्गु०। संखेअगुणविद्वः हाणी दो वि तु० असंन्गु०। संखेअगुणविद्वः हाणी दो वि तु० असंन्गु०। संखेअगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। असंखेअगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अणंतगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अणंतगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अणंतगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। अवत्त० असंन्गु०। अणंतगुणविद्वः हाणी। दो वि तु० असंन्गु०। असंखेअगु०। अणंतगुणविद्वः सिर्गे०। एवं ओघमंगो कायजोगि-ओरालि०—लोभ० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति। एवं० चेव मणुसोधं पंचिं०-तस०२—पंचमण०-पंचविन्-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०—ओधिदं०-सम्मादि०—उव-सम०-सण्णि ति। णविर अवद्वि० असंखेअगु०।

अल्पवहुत्व

३६८. अल्पबहृत्व दो प्रकार का है-आंघ और ऋदिश। ऋांचसे सात कर्मोंके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थितप के बन्धक जीव अनन्तगुरो हैं। इनसे अनन्त-भागवृद्धि स्रोर स्रनन्तभागहानिके बन्धक जीव दानों ही तुरुय हांकर स्रसंख्यातगुरो हैं। इनसे श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रीर श्रसंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर श्रसंख्यातगुरो हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि त्र्योर संख्यातभागद्यानिके वन्यक जीव दोनों ही तुल्य द्वोकर असंख्यात-गरो हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यानगरें। इनमे असंख्यानगणवृद्धि और असख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुरो हैं। इनसे अनन्तगुर्णहानिके बन्यक जीव असंख्यातगुरो हैं। इनसे अनन्तगुर्ण-बुद्धिके बन्धक जीव विशेष ऋधिक हैं। आयुक्रमें अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे स्ताक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिक वन्यक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुरो हैं। इनसे असल्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनो ही तुल्य होकर असंख्यात-गुरो हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि श्रीर संख्यातभागहानिक बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुरो हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि श्रीर संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगरो हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि स्त्रीर असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तत्य होकर असंख्यातगुरो हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुरो हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्यक जीव असंख्यातगुरो हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्यक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार आंघके समान काययांगी, औदारिककाययोगी, लोमकषाय-वाले जीवोंमें माहनीयकर्म, श्रवजुदर्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पंचेन्द्रियद्विक त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, आभिनि-बोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चजुदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि श्रीर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुरो हैं।

३६९. मणुसपज्ञत्त-मणुसिणीसु मणपज्ञव' संजद० ओघं। णवरि संखेजगुणं कादन्वं। णिरएसु सत्तण्णं क० सवत्थोवा अविह्नि०। अणंतमागविद्धि-हाणी दो वि तु० असं०गु०। असंखेज्जभागविद्धि-हाणी दो वि तु० असं०गु०। एवं उविर ओघं०। आउ० मूलोघं। एवं णिरयमंगो सन्वाणं असंखेज-अणंतरासीणं। संखेजरासीणं पि तं चेव। णविर संखेजं कादन्वं।

३७०. अवगद० घादि०४ सन्वत्थोवा अवत्तन्त्रचं० । अणंतगुणवड्ढी संखेज्जगुणा। अणंतगुणहाणी संखेजगु०। वेद० णामा०-गोदा० सन्वत्थोवा अवत्त० । अणंतगुणहाणी संखेजगु० । अणंतगुणवड्ढी संखेजगु० । एवं सुहुमसंप० । णवरि अवत्त० मोहणीयं च णात्थ ।

एवं वड्डियंधो समत्तो ।

अज्भवसाणसमुदाहारो

३७१. अज्झवसाणसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि दुवालस अणियोगद्दाराणि—अवि-मागपिलच्छेदपरूवणा द्वाणपरूवणा अंतरपरूवणा कंडयपरूवणा ओजजुम्मपरूवणा छट्ठाण-परूवणा हेट्टहाणपरूवणा समयपरूवणा विद्विपरूवणा यवमञ्झपरूवणा पञ्जवसाणपरूवणा अप्याबहरो ति ।

३६६. मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिना, मनः पर्ययज्ञानी और संयत जीवोमें आयके समान भंग है इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणे करने चाहिए। नारांकयोमें सात कर्मोंके श्रवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रनन्तभागदृद्धि और श्रनन्तभागदानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागदृद्धि और असंख्यातभागदानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागदृद्धि और असंख्यातभागदानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर श्रसंख्यातगुणे हैं। श्रायुक्षका भंग मुलोधके समान है। इसी प्रकार नारिक्योंके समान सब असंख्यात और श्रनन्त रामियोंका भंग करना चाहिए। संख्यात रासियोंका भंग भी इसी प्रकार है। इननी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणा करना चाहिए।

३७०. श्रपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकमोंके श्रवक्तत्र्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे श्रनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम श्रीर गोत्रकर्मके श्रवक्तत्र्य पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे श्रनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूद्दमसाम्परायिक संयत जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य पद श्रीर मोहनीय कर्मका बन्ध नहीं हैं। इस प्रकार वृद्धिवन्ध समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहार

३७१. अध्यवसानसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये बारह अनुयोगद्वार होते हैं—अवि-भागप्रतिच्छेदशस्त्राणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, क ण्डकप्रस्त्राणा, श्रोजयुग्मप्ररूपणा, पट्स्थान-प्ररूपणा, श्रथस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा, यजमध्यप्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अरुपबहुत्व।

१ आ॰ प्रती मणुसपज्ञ॰ इति पाठः । २. ता० प्रती यथमञ्चपक्रवणा अप्पाबहुगे इति पाठः ।

३७२. अविमागपिलच्छेदपरूवणदाए एकेकिम्हि कम्मपदेसे केविडया अविभाग-पिलच्छेदा ? अर्णता अविभागपिलच्छेदा । सन्त्रजीवेहि अर्णतगुणा । एवडिया अविभाग-पिलच्छेदा ।

विशेषार्थं—यहाँ श्रानुभागका प्रकरण होनेसे अध्यवसानपदमे अनुभाग अध्यवसानोंका प्रहण किया है। अनुभागवन्धिक कारणभूत ये अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातलोंक साण होते हैं। उन्हींका यहाँ मूलमें कहे गये बारह अनुयागद्वारोंका आश्रय लेकर विचार किया है। पट्खण्डा-गमके वेदनाखण्डक अन्तर्गत वेदनाभावविधान अनुयोगद्वारकी दृसरी चूलिकामें भी इसका विचार किया गया है। अनुयोगद्वारोंके नाम भी वे ही हैं। विशेष जिज्ञासुओंको यह विपय वहाँसे जान लेना चाहिए।

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा

३७२. अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणाकी अपेदा। एक-एक कर्मप्रदेशमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ? अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं जो सब जीवोंसे अनन्तगुरो होते हैं । इतने अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं।

विशेषार्थ-वृद्धिके द्वारा एक परमाणुमें स्थित शक्तिका छेद करने पर सबसे जघन्य शक्त्यंश का नाम प्रतिच्छेद हैं। यह शक्त्यंश अविभाज्य होता है, इसलिए इसे अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं । प्रकृतमें अनुभाग शांक विवक्षित है । कमके प्रत्येक परमाणुमें इस अनुभागशक्तिको देखने पर वह सब जीबोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लिए हुए होती है। यद्यपि यह अनुभागशक्ति किसी कमेपरमाणुमें जघन्य होती है और किसी में उत्कृष्ट पर उसमेंने प्रत्येकका सामान्य प्रमाण उक्त प्रमाण ही हैं। उदाहरणार्थ-एक शुक्त बस्न लीजिए। उसके किसी एक अंशमें कम शुक्तता होती हैं श्रौर किसीमें अधिक। अतएव जिसप्रकार उस वहमें शक्त गुणका तारतम्य दिखाई देता है उसी प्रकार उन कर्मपरमाणुत्रोंमें भी अनुभागशक्तिका तारतस्य दिग्वाई देता है। इससे विदित होता है कि इस तारतम्यका कोई कारण श्रवश्य होना चाहिए। यहाँ तारतम्यका जो भी निदर्शक है उसीका नाम अविभागप्रतिच्छेद हैं। ऐसे अविभागप्रतिच्छेद एक एक कर्मपरमाणुमें अनन्त होते हुए भी सब जीवों से व्यनन्तगुण होते हैं यह एक कथनका नात्वर्थ है। यहाँ मूलमें वर्गणाप्रहरणा और स्पर्धक-प्ररूपणाको अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाके अन्तर्गत लिया है, इसलिए आगे स्थानप्ररूपणाको उत्पन्न करनेके लिए उसका विचार करते हैं - यहाँ इमने एक एक कर्म परमाणुमें अनन्त अविभाव्यतिच्छेद बतलाए हैं। ये सबसे जघन्य ऋविभाग प्रतिच्छेद हैं। इमीप्रकार दूसरे, तीसरे आदि अनन्त कर्मपरभाणुत्रोंमे प्रथम कर्मपरमाणुके समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, इसलिए इनमेंसे प्रत्येक कर्मपरमाणुकी वर्ग और इन सब कर्मपरमाणुओंकी वर्गणा संज्ञा है। यहाँ एक वर्गणामें अभव्योंसे श्रानन्तगुरों श्रीर सिद्धांके श्रानन्तवें भागप्रमाण वर्ग होते हैं। पुनः इनसे एक श्राधिक श्राविभागप्रति-च्छेदको लिए हुए अनन्त वर्गीका समुदायह्य दूसरी वर्गणा होती है। इसी प्रकार आगे तीसरी आदि वर्गणाएँ एक एक अविभागप्रतिच्छेदंक अधिकक्रमसे उत्पन्न वरनी चाहिए। ये वर्गणाएँ अभन्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धों हे अनन्तवें भागप्रमाण होती हैं जो मिलकर एक स्पर्धक कहलाती है। इन वर्गणाओमें क्रमसे एक-एक आविभागप्रतिच्छेदकी वृद्धि देखी जाती है। श्रतः क्रमसे स्पर्धा करता है श्रर्थात् वृद्धि होती है इमिलए इसकी स्वर्धक संज्ञा है। फिर सब जीवोंसे अनन्तगुरो अविभाग-प्रतिच्छेदोंका श्रन्तर देकर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रथम वर्ग लाना चाहिए। श्रर्थात प्रथम स्पर्धककी अन्तिम बगणाके एक वर्गमें जितने अविभागप्रतिच्छेर होते हैं उनसे सब जीव राशिका

२. ता आ० प्रस्यौ:-पल्डिच्छेदो इति पाटः ।

३७३. द्वाणपह्नवणदाए केविडयाणि द्वाणाणि ? श्रमंखेञालोगद्वाणाणि । एविड-याणि द्वाणाणि ।

३७४. अंतरपरूवणदाए एक्केक्स द्वाणस्य केत्रडियं अंतरं १ सन्वजीवेहि अणंत-गुणं। एवडियं अंतरं।

३७५. कंडयपह्रवणदाए अत्थि अणंतभागपरिविहुकंडयं । असंखेजभागपरिविहुकंडयं । असंखेजभागपरिविहुकंडयं संखेजगुणपरिविहुकंडयं असंखेजगुणपरिविहुकंडयं असंखेजगुणपरिविहुकंडयं अणंतगुणपरिविहुकंडयं ।

भपेचा अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लाँवकर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके एक वर्गमें प्राप्त होनेवाले अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यह एक वर्ग है। तथा इसी प्रकार समान अविभागप्रतिच्छेदोंको लिए हुए अभन्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवभागभमाण वर्ग उत्पन्न करने चाहिए जो सब मिलकर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा वनते हैं। फिर आगे एक एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक के क्रमसे पूर्वोक्त प्रमाण वर्गोंको लिए हुए दूसरे स्पर्धककी द्वितीयादि वर्गणाएँ उत्पन्न होतीं हैं। ये वर्गणाएँ भी अभन्योंसे अनन्तगुणीं और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होतीं हैं। तथा इसी प्रकार तृतीयादि स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। ये सब स्पर्धक अभन्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभागप्रमाण होते हैं।

३७३. स्थानप्ररूपणाकी अपेत्तः कितने स्थान होते हैं। असंख्यात लोकप्रमाण स्थान होते हैं। इतने स्थान होते हैं।

विशेषार्थं -- पहले हम अविभागपितच्छेदोंके निरूपणके प्रसंगसे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धकोंकी उत्पत्तिका निरूपण कर आये हैं। वे सब स्पर्धक मिलकर एक जयन्य स्थान होता है। एक जीवमें एक समयमें जो कर्मका अनुभाग दिखाई देता है उसकी स्थान संज्ञा है। यह स्थान वो प्रकारका है -- अनुभागबन्धस्थान और अनुभागसत्त्रस्थान। यहाँ बन्धका प्रकरण होनेसे अनुभागबन्धस्थानका प्रहण होता है। इस हिसाबसे जयन्यस्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान तक सब जीवोंके अनुभागबन्धस्थानोंका योग करने पर वे असंख्यात लोक-प्रमाण होते हैं।

३७४. अन्तरप्रहृपणाकी अपेद्धा एक-एक स्थानका कितना अन्तर होता है ? सब जीवोंसे अनन्तगुणा अन्तर होता है। इतना अन्तर होता है।

विशेषार्थ—यहाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानके बीच कितना अन्तर होता है इसका विचार किया गया है। बात यह है कि एक स्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं उनसे सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लाँघकर अगले स्थानके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके एक वर्गमें अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इसी प्रकार स्थान स्थान के बीच और प्रत्येक स्थानमें स्पर्धक स्थिक के बीच अन्तर जानना चाहिए।

३७४. काण्डकप्रह्मपणाकी अपेद्या अनन्तभागवृद्धिकाण्डक होता है, असंख्यातभागवृद्धिकाण्डक होता है, संख्यातभागवृद्धिकाण्डक होता है, संख्यातभागवृद्धिकाण्डक होता है, असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक होता है, असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक होता है और अनन्तगुणवृद्धिकाण्डक होता है।

विशेषार्थ—यहाँ काण्डकसे अंगुलक असंख्यातवें भागप्रमाण राशि ली गई है। पहने जो असंख्यात लोक प्रमाण स्थान बतला आये हैं उनमें अगली एक वृद्धिरूप स्थानके प्राप्त होनेके

१. ता प्रती प्वडिया इति पाठः ।

३७६. श्रोज-जुम्मपरूवणदाए अविभागपितन्छेदाणि कदजुम्माणि, द्वाणाणि कद-जुम्माणि, कंडयाणि कदजुम्माणि।

३७७. छद्वाणपरूवणदाए अणंतभागपिवड्ढी काए परिवड्ढी सन्वजीवेहि अणंतभागपिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। असंखेजमागपिवड्ढी काए परिवड्ढी असंखेजालोगा-मागपिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। संखेजमागपिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। संखेजमागपिवड्ढी। संखेजमागपिवड्ढी। संखेजगुणपिवड्ढी काए० जहण्ण-परित्तासंखेजरूण० संखेजगुणपिवड्ढी एवडिया परिवड्ढी। संखेजगुणपिवड्ढी काए० जहण्ण-परित्तासंखेजरूण० संखेजगुणपिवड्ढी एवडिया परि०। असंखेजगुणपिवड्ढी काए० परि० असंखेजगुणपिवड्ढी काए० परि० असंखेजगुणपि०। एवडि० परि०। अणंतगुणपि० काए० सन्व-जीवेहि अणंतगुणपि०। एवडिया परिवड्ढी।

पहले काण्डक प्रमास पूर्ववृद्धिको लिए हुए स्थान हो लेते हैं। अनन्तगुणवृद्धिरूप स्थानके प्राप्त होने तक यही कम जानना चाहिए। इस प्रकार सन असंख्यात लोक प्रमाण स्थानोंमें अनन्तगुस्पवृद्धिरूप स्थान काण्डक प्रमाण होते हैं तथ। असंख्यातगुणवृद्धि रूप स्थान काण्डक प्रमाण होते हैं तथ। असंख्यातगुणवृद्धि रूप स्थान काण्डकगुणित काण्डक प्रमाण होते हैं। इसी प्रकार पूर्व वृद्धिरूप स्थानोंका प्रमाण लेखाना चाहिए।

३७६. त्रोजयुग्मप्ररूपणाकी अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म होते हैं, स्थान कृतयुग्म होते हैं और काण्डक कृतयुग्म होते हैं।

विशेषाथ— स्रोजयुग्मप्ररूपणामें स्रोजशब्दका स्रथं विषम संख्या लिया गया है स्रोर युग्म-शब्दका स्रथं सम संख्या लिया गया है। उसमें भी स्रोजके दा भेद हैं—कलिस्रोज स्रोर नेता स्रोज। इसी प्रकार युग्मके भी दो भेद हैं—हापरयुग्म स्रोर कृतयुग्म। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—किसी विविद्यत राशिमें ४ का भाग देनेपर यदि १ शेष रहे तो उस राशिकों किल स्रोज कहते हैं, यथा १३। २ शेष रहें तो उस राशिकों हापरयुग्म कहते हैं, यथा १४। ३ शेप रहें तो उस राशिकों नेता स्रोज कहते हैं, यथा १६। इसे हिसाबसे विचार करनेपर इन स्रनुभागस्थानोंमें स्रविभागप्रतिक्लेद, स्रनुभागस्थान स्रोर काण्डक ये सब राशियाँ कृतयुग्मरूप है यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

३७७, पट्स्थानप्ररूपणाकी अपेका अनन्तभागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है श सर्व जीव प्रमाण अनन्तका भाग देकर लब्धका उसमें मिलानेसे अनन्तभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। असंख्यात भागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है १ असंख्यात लोकका भाग देकर लब्धको उसमें मिलाने पर असंख्यातभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। संख्यातभागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है १ एक कम जयन्य परीतासंख्यातका भाग देकर लब्धको विविक्षित राशिमें मिलाने पर संख्यातभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। संख्यातगुणवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है १ एक कम जयन्य परीतासंख्यातसे विविच्चित राशिको गुणित करनेपर संख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। असंख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। असंख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। अनन्तगुणवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है १ असंख्यात लोकोंसे विविच्चित राशिको गुणित करने पर असंख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। अनन्तगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है।

विशेषार्थ—यहाँ पट्स्थान प्ररूपणामें उक्त छह वृद्धियों को प्राप्त करनेके लिए भागहार और गुणकार क्या है इसके निर्देशके लाथ वृद्धि कितनी होती है यह बतलाया है। मुख्य राशियाँ तीन

४. ता॰ प्रसी अणंतय (भा) गपरिबड्डि इति पाठः ।

हैं — अनन्त जीवराशि, श्रसंख्यात लोक और एक कम जघन्य पर्गतासंख्यात । इनमंसे श्रनन्तभागशृद्धि लानेके लिए श्रनन्त जीवराशि भागहार है और श्रनन्तगुणशृद्धि लानेके लिए श्रनन्तजीव राशि
गुणकार है। असंख्यात भागशृद्धि लानेके लिए श्रसंख्यात लोक भागहार है और श्रसंख्यातगुणशृद्धि
लानेके लिए असंख्यात लोक गुणकार है। तथा संख्यातभाग शृद्धि लानेके लिए एक कम जघन्यपरीतासंख्यात भागहार है और संख्यातगुणशृद्धि लानेके लिए वही एक कम जघन्य परीतासंख्यात
गुणकार है। तात्पर्य यह है कि किसी विविध्ति श्रनुभागस्थानमें श्रनन्तका भाग दीजिए, जो लब्ध
श्रावे उसे उसीमें मिला दीजिए। यह श्रनन्तभागशृद्धि है। इसी प्रकार शेष शृद्धियोंका विचार
कर लेना चाहिए।

३७८. अधस्तनस्थानप्रस्पणाकी अपेक्षा काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातगुणवृद्धि स्थान होता है। काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थान जाकर एक अनन्तगुणवृद्धिस्थान होता है। काण्डकव्या और काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकव्या और काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। काण्डकव्या और काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक अनन्तगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थान काण्डकप्रमा होता है। संख्यातगुणवृद्धिस्थान काण्डकप्रमा होता है। असंख्यातगुणवृद्धिस्थान काण्डकप्रमा होते हैं। असंख्यातगुणवृद्धिस्थान काण्डकप्रमा काण्डकप्रमा होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले संख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमा होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले संख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले संख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले असंख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले असंख्यातभागवृद्धिक पहले असंख्यातभागवृद्धिक स्थान काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले असंख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिक पहले असंख्यातभागवृद्धिक स्थान काण्डकप्रमाण होते हैं।

भागब्भहियाणं कंडयो पंचहदो चत्तारि कंडयवग्गावग्गा छक्कंडयघणा चत्तारि कंडयवग्गा कंडयं च ।

काण्डकप्रमाण होते हैं। श्रमन्तराुणवृद्धिक पहले अनन्तभागवृद्धि स्थाम पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डक वर्गावर्ग, छह काण्डकघन, चार काण्डकवर्ग श्रोर काण्डकप्रमाण होते हैं।

विशेषाथ-अधस्तनस्थान प्रहृतणामें अगले विविद्यान स्थानमे पूर्व पिछले विविक्षित स्थान कितने बार होते हैं यह बनलाया गया है। यहाँ यह प्रकृषणा पाँच प्रकारसे की गई है- १ अनन्तर-वर्वस्थान प्रमाण प्ररूपणा, एकान्तर प्रवस्थान प्रमाण प्ररूपणा, द्वयन्तरपूर्वस्थान प्रमाण प्ररूपणा. च्यन्तरपूर्वस्थानप्रमाण प्रस्तपणा श्रोर[े] चतुरन्तरपूर्वस्थानप्रमाण प्रस्तपणा। श्रनन्तरपूर्वस्थानप्रमाणः प्ररूपणामें अगले स्थानके एक बार होनेके पहले अनन्तरपूर्वस्थान कितने बार होते हैं यह बतलाया गया है। इस हिसाबसे यह प्ररूपणा पाँच प्रकारकी होती है, क्योंकि कुल स्थान छह हैं, इसलिए प्रथम स्थानका तो कोई अनन्तर पूर्व स्थान होगा ही नहीं, द्वितीयादिकके अनन्तरपूर्व स्थान अवश्य होंगे इसलिए ये पाँच कहे हैं। एकान्तरपूर्वस्थानप्ररूणामें एक स्थानके अन्तरसे स्थित पूर्वस्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा - तृतीय स्थानक एक बार होनेक पहले द्वितीय स्थानका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं इत्यादि । यहाँ यं एकान्तरपूर्वस्थान चार हैं । द्वयन्तरपूर्वस्थान प्ररूपणामें अगले स्थानके पहले दो स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा-चतुर्थ स्थानके एक बार होनेके पहले तृतीय और द्विताय इन दो स्थानोंका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं इत्यादि । यहाँ ये द्वयन्तरपूर्वस्थान तीन हैं । ज्यन्तरपूर्वस्थानप्ररूपणामें अगले स्थानके पहले तीन स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा-पद्धम स्थानके एक बार होनेके पहले चतुथ, तृतीय श्रीर द्वितीय स्थानका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं ऋादि । यहाँ ज्यन्तरपूबस्थान दो हैं । चतुरन्तरपूर्वस्थानप्ररूपणामें अगले स्थानके पहले चार स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानक। प्रमाण लिया गया है। यथा छटे स्थानके एक बार होनेके पहले मध्यक सब स्थानोंका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं। यह चतुरन्तरपूर्वस्थान एक ही है। यहाँ इस विषयको स्पष्ट रूपने समभनेक लिए संदृष्टि दी जाती है—

| ३३४ | 3 3 8 | ३३४ | ३३४ | ३ ३ ४ | ३३ ४ | ३३४ | 338 | ३३६ |
|-------------|--------------|-------------|-------------|--------------|---------------------|-------------|--------------|------|
| 338 | ३३ ४ | ३३ ४ | ३३४ | 338 | 3 3× | ३३४ | 338 | 336 |
| ३ ३४ | ३३४ | ३३५ | 338 | 338 | ३३ ४ | ३३४ | 338 | ३३७ |
| 338 | 338 | 334 | 338 | 338 | 3 3 & | 338 | = 338 | ३३६ |
| ३३४ | 338 | ३३४ | ३३४ | 338 | 3 3 × | २३४ | ३३४ | ३३६ |
| ३३४ | ३३४ | ३३ ४ | ३ ३४ | 338 | ३३ ४ | ३३४ | 338 | ३३७ |
| ३३४ | 338 | ३३४ | ३३४ | ३३४ | ३ ३ ४ | ३३ ४ | ३३४ | ३३६ |
| ३३४ | ३३४ | 33× | ३३४ | ३३४ | ३ ३४ . | . ३३४ | 348 | 1444 |
| ३३४ | ३३ ४ | ३३ ४ | ३३४ | 338 | 334 | 338 | 338 | 335 |

इस संदृष्टिमें '३' से अनन्तभागवृद्धि, '४' से असंख्यातभागवृद्धि, '४' से संख्यातभागवृद्धि ६ से संख्यातगुणवृद्धि ७ से असंख्यातगुणवृद्धि और ८ से अनन्तगुणवृद्धि लो है। तथा काण्डकका प्रमाण दो बार लिया है। इस संदृष्टिक देखनेसे विदित होता है कि प्रत्येक अनन्तरपूर्ववृद्धि अगली वृद्धिके प्राप्त होने तक काण्डकप्रमाण अर्थात दो बार हुई है। एकान्तर पूर्व वृद्धि काण्डकवर्ग और काण्डक प्रमाण (६ बार) हुई है। द्वयन्तरपूर्ववृद्धि काण्डकचन, दो काण्डक वर्ग और काण्डक प्रमाण (१८ बार) है। ज्यन्तरपूर्ववृद्धि काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकचन, तीन काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण (५४ वार) हुए है। तथा चतुरन्तरपूर्ववृद्धि पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डकवर्ग और काण्डक प्रमाण (१६२ बार) हुई है।

- ३७९. समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि अणुभागवंधज्झासाणद्वाणाणि असंखेजजा लोगा। एवं पंचसमइ० छस्समइ० सत्तसमइ० अद्वसमइ० उविर सत्तसमइ० छस्समइ० पंचसमइ० चदुसमइ० तिण्णिसमइ० विसमइ०।
- ३८०. एत्थ अप्पाबहुगं । सन्वत्थोवाणि अद्वसमइयाणि अणुभागबंधन्स्र तसाणहोणाणि । दो वि पासेसु सत्तसमइगाणि अणुभागबंधन्स्र वसाणहाणाणि [दो वि तुल्लाणि]
 असंखेन्जगुणाणि । दो वि पासेसु छस्समइ० अणुभा०बंधन्स्र० असं०गु० । दो वि पासेसु
 पंचसमइ० अणु०बंधन्स्र० असं०गु० । एवं चदुसमइ० उविर तिसमइ० जिसमइ०
 अणु०बंधन्स्र० असंखेन्जगुणाणि ।
- ३८१. सुहुमअगणिकाइया पवेसेण असंखेज्जा लोगा । अगणिकाइया असंखेज्जगु०। कायद्वि० असंखेज्जगु० । अणुभागबंधज्झत्रसाणद्वःणाणि असंखेज्जगुणाणि ।
 - ३८२. बह्विपरूवणदाए [अत्थि अणंतभागविद्वि-हाणी असंखेज्जभागविद्वि-हाणी

३७९. समयप्रह्मपाकि अपेश्वा चार समयवाले अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात लांकप्रमाण हैं, इसी प्रकार पाँच समयवाले, छह समयवाले, सात समयवाले और आठ समयवाले तथा इनके आगे सात समयवाले, छह समयवाले, पाँच समयवाले, चार समयवाले, तीन समयवाले और दो समयवाले अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान जानने चाहिए।

विशेषार्थं -- जघन्य अनुभागवन्धस्य। नोंसे लंकर उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान तक ये जो असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धस्थान हैं इन्हें एक पंक्तिमें स्थापित कर देखने पर उनमेसे जो अधस्तन असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं वे चार समयवाले हैं। उनसे आगेके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं वे चार समयवाले हैं। उनसे आगेके असंख्यात लोकप्रमाण उत्कृष्ट स्थानोंके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यह इनका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा है। जघन्य बन्धकाल सबका एक समय है।

- ३८०. यहाँ अल्पबहुत्व है आठ समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे दोनों ही पार्वोमें सात समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पार्थोमें छह समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पार्थोमें पाँच समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार चार समयवाले, तथा आगे तीन समयवाले और दो समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान उत्तरीतर असंख्यातगुणे हैं।
- ३८१. सूद्रम अग्निकायिक जीव प्रवेशकी अपेत्रा असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इनसे अग्निकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे इन्हींकी कायस्थिति असंख्यातगुणी है। इनसे अनुभाग-वन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ आठ आदि समयवालं अनुभागबन्धाध्यवसःनस्थानीका अल्पबहुत्व देनेके बाद यह अल्पबहुत्व देनेका प्रथम कारण तो यह है कि इन आठ आदि समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानीके अल्पबहुत्वमें गुणकार राशि अग्निकायिक जीवींकी कायस्थित ली गई है। दूसरे ये अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान अग्निकायिक जीवींकी कायस्थितसे भी असंख्यातगुणे हैं यह बतलाना भी इस अल्पबहुत्वका प्रयोजन है।

३८२. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेत्रा अनन्तभागवृद्धि-हानि, असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यात-

संखेज्जभागविद्ध-हाणी संखेजजगुण-बिहुहाणी असंखेजजगुणविद्ध-हाणी अणंतगुणविद्ध-हाणी। पंचवङ्की पंचहाणी जह० एग०, उक्क० आविर्ल्ज० असंखे०। अणंतगुणविद्धी अणंतगुणहाणी जह० एगसमयं, उक्क० अंतोम्रहुत्तं।

३८३. जवमन्सपह्रवणदाए अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी च यवमन्सं।

३८४. पज्जवसाणपरूवणदाय अणंतगुणस्य उवरि अणंतगुणं भविस्सदि ति पज्जवसाणं ।

३८५. अप्पाबहुगे ति । तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि-अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च । अणंतरोवणिधाए मन्वत्थोवाणि अणंतगुणब्मिदयाणि द्वाणाणि । असंखेजगुणब्मिदयाणि द्वाणाणि असंखेजजगुणाणि । संखेजजगुणब्म० असं०गुणाणि । संखेजजगुणब्म० असं०गुणाणि । संखेजजभागब्म० असं०गु०। अणंतभागब्म० असंखेजजगुणाणि ।

भागवृद्धिहानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि, असंख्यातगुणवृद्धि-हानि, श्रीर अनन्तगुणवृद्धि-हानि होती है। इनमें से पाँच वृद्धियों श्रीर पाँच हानियोंका अवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवित्तिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि श्रीर अनन्तगुणहानिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तसुंहर्त है।

विशेषार्थ—पटले एक एक स्थानमें पट्गुणीवृद्धिका निर्देश कर आये हैं। हानियाँ भी उतनी ही होती हैं। यहाँ इन हानियों आर वृद्धियोंका जयन्य और उत्कृष्ट काल कितना है यह बतलाया गया है।

३-३. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेत्ता अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि यवमध्य है।

विशेषार्थ—यत्रमध्य दो प्रकारका है—कालयवमध्य और जीवयवमध्य। उनमेंसे यह कल्यवमध्य है। यद्यपि आठ समयवाले अनुभागदन्याध्यवसान स्थान सबसे थोड़े हैं इत्यादि कथनसे ही कालयवमध्य झात हो जाता है पर उसमें भी इस वृद्धि और हानिसे यवमध्यका प्रारम्भ और समाप्ति होती है यह बतलानेके लिये यवमध्यप्रक्षणा अलगमें की गई है। अनन्तगुणवृद्धिसे यवमध्यका प्रारम्भ होता है और अनन्तगुणहानिसे उसकी समाप्ति होती है यह उक्त सूत्रका लात्यर्थ है। इससे यह भी झात होता है कि यव ध्यके नीचे और उपर चार, पाँच, छह और सातसमय प्रायोग्य स्थान तथा उपर जो तीन और दोसमय प्रायोग्यस्थान हैं इन सबका प्रारम्भ अनन्तगुणवृद्धिसे होता है और उनकी समाप्ति अनन्तगुणवृद्धिसे होता है और उनकी समाप्ति अनन्तगुणवृद्धिसे होता

३८४. पर्यवसान प्ररूपणाका अपेक्षा अनन्तगुरावृद्धिके उत्तर अतन्तगुरावृद्धि (नहीं) होगी यह पर्यवसान है।

विशेषार्थ—सूदम एकेन्द्रियके जघन्य स्थानसे लेकर पहले जितने स्थान कह आये हैं उनमें प्रत्येक स्थानका आदि अन्तत्गुणवृद्धिरूप होता है। पुनः उसपर पूर्वोक्त विधिसे पाँच वृद्धियाँ होकर उस स्थानका अन्त अनन्तभागवृद्धिरूप होता है। यही उस स्थानका पर्यवसान है, इसलिए एक स्थानमें अनन्तगुणवृद्धिके अपर पुनः अनन्तगुणवृद्धि नहीं प्राप्त होती यह इस प्ररूपणाका तात्पय है।

३८५. श्रह्मबहुत्वका अधिकार है। उसमें ये दो श्रनुयागद्वार होते हैं —श्रनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। श्रनन्तरोपनिधाकी श्रपेक्षा श्रनन्तगुणवृद्धि स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे श्रसंख्यात-गुणवृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगावृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे श्रसंख्यातभागवृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे श्रमन्त-भागवृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं। इनसे श्रमन्त-भागवृद्धिस्थान श्रसंख्यातगुणे हैं।

३८६. परंपरोवणिघाए सन्वत्थोवाणि अणंतभागन्मिहयाणि हाणाणि । असंखेज्ज-भागन्मिह० असं०गु० । संखेज्जभागन्मिह० संखेज्जगु० । [संखेज्जगुणन्मिहयाणि हाणाणि संखेज्जगुणाणि । असंखेज्जगुणन्मिहयाणि हाणाणि असंखेज्जगुणाणि । अणंतगुणन्म-हियाणि हाणाणि असंखेजजगुणाणि ।

विशेषार्थ—यद्यपि यह अल्पबहुत्व सब स्थानोंका आश्रय लेकर स्थित है तथापि यहाँपर एक स्थानके आश्रयसे लेकर अल्पबहुत्वका विचार करते हैं, क्योंकि इससे पूरे स्थानोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वके विचार करनेमें सुगमता होगी। एक स्थानमें अनन्तगुणवृद्धिस्थान एक होता है इसलिए वह सबसे स्तोक कहा है। इससे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं। क्योंकि यहाँ पर गुणकारका प्रमाण एक काण्डक है। इनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे इसलिए होते हैं, क्योंकि असंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। इनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे इसलिए होते हैं, क्योंकि संख्यातगुणवृद्धिस्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति हाती है। इनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। तथा इनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। तथा इनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंक्यातगुणे हैं, क्योंकि एक स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। तथा इनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंक्यातगुणे हैं, क्योंकि एक स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। यह एक स्थानकी अपेक्षा अस्ववहुत्व है। विचार कर इसी प्रकार सब स्थानोंकी अपेक्षा अस्ववहुत्व घटित कर लेना चाहिए।

३८६. परम्परोपिनधाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धिस्थान सबसे थांडे हैं। इनसे असंख्यात-भागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात-गुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं और इनसे अनन्त-गुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ उक्त छह वृद्धियोंमें परम्पराने कौन वृद्धि कितनी गुणी है इस बातका विचार किया गया है। तात्वर्य यह है कि वृद्धियों की अनन्तभागवृद्धि आदि संज्ञा अनन्तर पूर्वस्थानकी अपेक्षासे हैं। किन्तु परम्यपासे इन वृद्धियों को देखने पर कान वृद्धिस्थान किस वृद्धिस्थानोंसे कितने ाएं। हैं इस बातका विचार इस प्ररूपणामें किया गया है। यह तो स्पष्ट ही है कि पट्स्थानप्ररूपणामें श्चनन्तभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण हानेपर श्वसंख्यातभागवृद्धिस्थान उपलब्ध होता है। यत: ये अनन्तभागवृद्धिम्थान काण्डकमात्र हैं अतः व सबसे थोड़े कहे हैं। इसके बाद प्रथम असंख्यात-भागवृद्धिस्थानसे लेकर प्रथम संख्यातभागवृद्धिस्थानके प्राप्त होने तक मध्यमें जितने भी अनन्त-भागवृद्धिस्थान श्रीर श्रसंख्यातभागवृद्धिस्थान श्राये हैं वे सव परम्परासे श्रसंख्यातभागवृद्धिरूप ही हैं। यत: ये स्थान काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंसे एक अधिक काण्डक गुणित हैं ऋतः ये भ्रसंख्यातगुरो कहं हैं। इसके वाद प्रथम संख्यातभागवृद्धिस्थानमं लेकर प्रथम संख्यात-गुणवद्धिस्थानके प्राप्त होनेके पूर्व ही बीचके अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातमागवृद्धि श्रीर संख्यातभाग-वृद्धिरूप सब स्थानोंके उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण जानेपर साधिक दुगुनी वृद्धि हो जाती है। यतः ये बीचके संख्यातभागवृद्धिरूपस्थान उत्कृष्ट संख्यानसे कुछ न्यून ही हैं खतः यहा श्रसंख्यातभागवृद्धस्था**नींसे** संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुरो कहे हैं। इसके आगे ये संख्यातगुराषृद्धस्थान चास्न होकर जवन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण हो उतने बार जाकर प्रथम असंख्यातगुण-र्वाद्धस्थान उत्पन्न होता है। अब यदि यहाँ उत्पन्न हुए प्रथम असंख्यातगुणुबृद्धस्थानको छोड्कर इसके पूर्व संख्यातभागवृद्धिरूप अन्तिम स्थानसे लेकर यहाँ तकके इन वीचके स्थानींका संकलन किया जाय ता वे संख्यातभागवद्धिस्थानोंसे संख्यातगुर्णे ही उपलब्ध होते हैं, अतः यहाँ संख्यात-

जीवसमुदाहारो

३८७. जीवसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि अहु अणि शोगहाराणि—एयहाणजीव-पमाणाणुगमो णिरंतरहाणजीवपमाणाणुगमो सांतरहाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीव-कालपमाणाणुगमो विहुपस्रवणा जवमज्झपस्रवणा फोसणपस्रवणा अप्पाबहुए] ति ।

३८८. एयट्टाणजीवपमाणाणुगमेण एकेकम्मि द्वाणे जीवा अणंता ।

३८६. णिरंतरहाणजीवाणुगमेण जीवेहि अविरहिदाणि द्राणाणि ।

३६०. सांतर० जीवेदि अविरहिदाणि द्वाणाणि ।

३९१. णाणाजीवकालाणुगमेण एकेकिम्ह द्वाणिम्ह णाणाजीवो केविचरं कालादो होदि ? सव्बद्धा ।

भागवृद्धिस्थानोंसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे कहे हैं। इसके आगे जा प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न हुआ है उससे लेकर अंगुलंक असंख्यातवेभागगुणे स्थान जाने तक बीचमें जितने भी अनन्तरोपनिधाकी अपेत्रा अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिस्प स्थान उपलब्ध होते हैं वे सब परम्परोपनिधासे असंख्यातगुणवृद्धिको लिए हुए ही हैं। यतः ये स्थान संख्यातगुणवृद्धिस्थानोसे असंख्यातगुणे कहे हैं। इसके आगे सब असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थानोंमें जो अनन्तरोपनिधाकी अपेत्रा अनन्तभागवृद्धि आदि स्थान है वे सब परम्परोपनिधाकी अपेद्धा अनन्तगुणवृद्धिको लिए हुए ही हैं। यतः ये असंख्यातगुणे हैं अतः यहाँ असंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंसे अनन्तगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे कहे हैं।

जीवसमुदाहार

३८७. अब जीवसमुदाहारका प्रकरण हैं । उसमें ये आठ अनुयोगद्वार होते हैं —एकस्थान-जीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम, बुद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अरुपबहुत्व ।

३⊏८. एकस्थानजीवप्रमाणानुगमकी ऋषेक्षा एक एक स्थानमें जीव अनन्त हैं ।

विशेपार्थ—सब अनुभागबन्धस्थान ऋसंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनमंसे प्रत्येक स्थानमें कितने जीव होते हैं यह इस अनुयोगद्वारमें बतलाया गया है। इसमें प्रत्येक स्थानमें ऋनन्त जीव होते हैं ऐसा निर्देश किया है सो यह प्ररूपणा स्थावर जीवोंकी मुख्यतासे जाननी चाहिए। त्रस जीवोंकी ऋपेत्ता विचार करनेपर प्रत्येक स्थानमें त्रस जीव कमसे कम एक, दो या तीन स्नौर अधिकमे ऋषिक आवलिके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं।

३८६. निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी ऋपेक्षा जीवोंसे युक्त सब स्थान हैं।

विशेपार्थ—ये जो असंख्यातलोकप्रमाण अनुभानबन्धस्थान बतलाये हैं उनमेंसे प्रत्येकमें स्थावर जीव पाये जाते हैं इसलिए इस अपेन्नासे कोई भी स्थान जीवोंसे रहित नहीं होता। किन्तु जस जीवोंकी अपेक्षा इन स्थानोंमेसे कमसे कम एक. दो या तीन स्थान जीवोंसे युक्त होते हैं और अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जीवोंसे युक्त होते हैं।

३६० सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी ऋपेत्रा जीवोंसे युक्त सब स्थान हैं।

विशेषार्थ — यह पहले ही वतला आयं हैं कि जितने अनुभागवन्धस्थान होते हैं उन सबमें स्थावर जीव उपलब्ध होते हैं, अतः स्थावर जीवोंकी अपेश्वा एक भी सान्तरस्थान उपलब्ध नहीं होता। किन्तु त्रसजीवोंकी अपेश्वा विचार करनेपर जीवोंसे रहित कमसे कम एक, दो या तीन स्थान सान्तर होते हैं और अधिक से अधिक असंख्यात लोकप्रमाण स्थान सान्तर होते हैं।

३६१. नानाजीवकालप्रमाणानुगमकी श्रपेक्षा एक एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? सब काल है ।

- ३६२. विष्टुपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगहाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरो-विषधा च।अणंतरोवणिधाए जहण्णए अज्झवसाणद्वाणे जीवा थोवा।विदिए अज्झवसाण-द्वाणे जीवा विसेसाहिया। तदिए अज्झवसाणद्वाणे जीवा विसे०।एवं विसेसाधिया [विसेसाधिया] याव यवमज्झं। तेण परं विसेसहीणा। एवं विसेसहीणा विसेसहीणा याव उक्तस्सयं अज्झवसाणद्वाणं ति।
- ३६३. परंपरोवणिघाए जहण्णअज्झवसाणद्वाणेहितो तदो असंखेज्जा लोगा गंतूण दुगुणविद्धा । एवं दुगुणविद्धा दुगुणविद्धा याव यवमज्झं । तेण परं असंखेज्ज-लोगं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणविणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सयं अज्झवसाणद्वाणं चि । एयजीवज्झवसाणदुगुणविद्धा-हाणिद्वाणंतरं असंखेज्जा लोगा । णाणाजीवज्झवसाण-दुगुणविद्धा-हाणिद्वाणंतरं असंखेज्जा लोगा । णाणाजीवज्झवसाण-दुगुणविद्धा-हाणिद्वाणंतराणि आविल् असंले । णाणाजीवज्झवसाणदुगुणविद्धा-हाणिद्वाणंतराणि असंखेजजगुणाणि ।

विशेषार्थ—इन सब श्रनुभागवन्धस्थानों में यह काल स्थावर जावोंकी मुख्यतासे बतलाया गया है। त्रस जीवोंकी अपेचा विचार करनेपर एक एक स्थानमें त्रस जीवोंके रहनेका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल श्राविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि यद्यपि एक स्थानमें एक जीवके रहनेका उत्कृष्ट काल श्राठ समय ही है पर निरन्तर कमसे एकके बाद दूसरा जीव उस स्थानको प्राप्त करता रहे तो आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक एक स्थानमें त्रस जीवोंका सद्भाव देखा जाता है।

३६२. वृद्धिप्रक्रपणाकी अपेक्षा उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं — अनन्तरोपिनधा और परम्परोपिनधा। अनन्तरोपिनधाकी अपेक्षा जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। इससे दूसरे अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इससे तीसरे अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इससे तीसरे अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इसीप्रकार यवमध्यके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थानमें जीव विशेष अधिक विशेष अधिक हैं। तथा उससे आगे उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थानमें जीव उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेष हीन हैं।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान अतिविशुद्धिके बिना हो नहीं सकता और अतिविशुद्धिको लिए हुए जीव बहुत थोड़े होते हैं, इस्रलिए जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानमें सबसे थोड़े जीव कहें हैं। आगे यवमध्यतक व विशेष अधिकके क्रमसे बहुते जाते हैं और यवमध्यके बाद वे विशेष अधिकके क्रमसे हीन हीन होते जाते हैं।

३६३. परम्परोपनिधाकी अपना जो जघन्य अध्यवसानस्थान हैं उससे असंख्यात लोक-प्रमाण स्थान जाकर वे जीव दूनी युद्धिकां प्राप्त होते हैं। इसीप्रकार यवमध्यतक दूने दूने हाते गये हैं। उससे आगे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे दूने हीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अध्य-वसानस्थानके प्राप्त होनेतक वे दूने-दूने हीन होते जाते हैं। एक जीव अध्यवसानद्विगुणयुद्धिद्विगुण्-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं। नानाजीव अध्यवसानद्विगुणयुद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाजीव अध्यवसानद्विगुणयुद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एक जीव अध्यवसानद्विगुणयुद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः जहण्णिप इति पाटः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः उक्कस्सियं इति पाटः । ३. ता॰ प्रती अवद्विदि॰ आ॰ प्रती अवद्वि इति पाटः ।

३६४. यवमज्झपरूवणदाए हाणाणं असंखेजजदिभागे यवमज्झं। यवमज्झस्स हेद्वदो हाणाणि थोवाणि। उवरि हाणाणि असंखेजजगुणाणि।

३६५. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवस्स उक्कस्सए अन्झवसाणहाणे फोसणकालो थोवो । जहण्णए अन्झवसाणहाणे फोसणकालो असं०गुणो । कंडयस्स फोसणकालो तत्तियो चेव । यवमन्झे फोसणकालो असं०गुणो । कंडयस्स उवि फोसणकालो असं०गुणो । यवमन्झस्स हेहदो कंडयस्स उवि फोसणकालो असं०गुणो । यवमन्झस्स हेहदो कंडयस्स उवि फोसणकालो चेव । यवमन्झस्स उवि फोसणकालो तिसेसाधियो । कंडयस्स हेहदो फोसणकालो विसेसाधियो । कंडयस्स उवि फोसणकालो विसेसाधियो । कंडयस्स उवि फोसणकालो विसेसाधियो ।

३६४. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेदा सब स्थानोंके असंख्यातवें भागमें यवमध्य होता है। यवमध्यके नीचेक स्थान स्तोक हैं। इनसे ऊपरके स्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—नीचे चार समयवाले स्थानोंसे लेकर उपिम दो समयवाले स्थानोंके असंख्यातवें भागप्रमाण जाकर यवमध्य होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस हिसावसे यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक होते हैं श्रीर इनसे उपिरम स्थान श्रसख्यातगुणे होते हैं।

३६५. स्पर्शनप्ररूपणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवका उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल स्तांक है। इससे जयन्य अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। काण्डकका स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे यवमध्यके नीचे और काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे यवमध्यके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे अण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे सब स्थानों से स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।

बिशेपार्थ—यहां चतुःसमयिक आदि स्थानोंमेंसे किस स्थानको एक जीवने कितने काल तक स्पर्श किया है, इसका विचार किया गया है। इसीका ज्ञान करानेके लिए यहाँ अरुपबहुत्व दिया गया है। उसका खुलासा इस प्रकार है—

आ• प्रती यवमञ्चास्स उविंद कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकाको इति पाठः ।

३९६. अप्पाबहुगे ति सन्वत्थोवा उक्तस्सए अज्झवसाणद्वाणे जीवा। जहण्णए अज्झवसाणद्वाणे जीवा असं०गुणा। कंडए जीवा तत्तिया चेव। यवमज्झे जीवा असं०गुणा। कंडयस्स उविं जीवा असं०गुणा। यवमज्झस्स उविं कंडयस्स हेट्टदो जीवा असं०गुणा। कंडयस्स उविं जीवा असं०गुणा। कंडयस्स उविं यवमज्झस्स हेट्टदो जीवा तत्तिया चेव। यवमज्झस्स उविं जीवा विसे०। कंडयस्स हेट्टदो जीवा विसे०। कंडयस्स उविं जीवा विसे०। सन्वेसु इाणेसु जीवा विसेसाधिया।

एवं जीवसमुदाहारे ति समत्तमणियोगदाराणि । एवं मूलपगदिअणुमागवंधो समत्तो ।

समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है। श्रीर इससे सब स्थानोंका अर्थान् ४, ४, ६, ७, ८, ७, ६, ४, ३ और २ समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है।

३६६. श्रल्पबहुत्वकी श्रापेत्त। उत्कृष्ट श्रध्यवसानस्थानमं जीव सबसे स्तांक हैं। इनसे जघन्य श्रध्यवसानस्थानमं जीव श्रासंख्यातगुणे हैं। काण्डककं जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके जीव श्रासंख्यातगुणे हैं। इनसे ववमध्यके जपर श्रीर काण्डकके नीचे जीव श्रासंख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके जपर श्रीर काण्डकके नीचे जीव श्रासंख्यातगुणे हैं। काण्डकके उपर श्रीर यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके उपर जीव विशेष श्रिषक हैं। इनसे काण्डकके नीचे जीव विशेष श्रिषक हैं। इनसे काण्डकके उपर जीव विशेष श्रिषक हैं।

इस प्रकार जीवसमुदाहार त्र्यनुयोगद्वार समाप्त हुत्रा । इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिबन्ध समाप्त हुत्रा ।

२ उत्तरपगादिअणुभागवंधो

३९७. एत्तो उत्तरपगदिअणुभागवंधो पुन्वं गमणिजा । तत्थ इमाणि दुवे अणि-योगद्दाराणि णादन्वाणि भवंति । तं जहा---णिसेगपरुवणा फद्धयपरुवणा च ।

णिसेयपरूवणा

३९८. णिसेगपरूवणदाए णाणावरणीय०४-दंसणावरणीय०३-सादासाद०-चदुसंज०-णवणोक०१-चदुअ।उ० सन्वाओ णामपगदीओ णीचुचागोदं पंचंतराइगाणं देसघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादृण णिसेगो। उविरं अप्पिडिसिद्धं। केवल-णाणा०-छदंसणा०-बार वकसायाणं सन्वधादिफद्धयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादृण णिसेगो। उविरं अप्पिडिसिद्धं। मिच्छत्तं यिम्ह सम्मामिच्छत्तं णिद्धिदं तदो अणंतरं सन्वधादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादृण णिसगो। उविरं अप्पिडिसिद्धं।

एवं णिसेगपरूवणा ति समत्तमणियोगद्दारं।

२ उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध

३६७. इससे आगे उत्तरप्रकृति अनुमागबन्ध पहलेक समान जानना चाहिये। उसमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातच्य हैं। यथा—निपेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा।

निपेकप्ररूपणा

३६८. निपंकप्ररूपणाकी अपेचा चार झानावरणीय, तीन दर्शनावरणीय, सातावदनीय, असातावदनीय, जार संज्वलन, नौ नोकपाय, चार आयु, सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनके देशघाति स्पर्धकोंकी आदि वर्गणासे लेकर निपंक होते हैं। और व आगे बराबर चले गये हैं। केवलझानावरण, छद दर्शनावरण और बारह कपायोंके सर्वघाति-स्पर्धकोंकी आदि वर्गणासे लेकर निपंक होते हैं। और व अन्ततक बराबर चले गये हैं। मिध्यात्वके जहाँपर सम्यग्निध्यात्व समाप्त होता है वहाँसे आगे सर्वघाति स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणासे लेकर निपंक होते हैं और व आगे बरावर चले गये हैं।

विशेषार्थ—कर्मासद्धान्तके नियमानुसार प्रत्येक दर्मकी निषेक रचना जिस कर्मकी जितनी स्थित होती है उसके अन्ततक पाई जाती है। साधारणतः कर्म दो भागों में विभक्त हैं—सर्वधाति और देशधाति। यह विभाग अनुभागवन्धकी मुख्यतासे किया गया है। इसलिये इन दोनों प्रकारक कर्मों के निषेक प्रथम समयसे लेकर अन्ततक पाये जाते हैं। मिध्यात्वकर्मको छोड़कर शेष जितने कर्म हैं उन सबकी यह व्यवस्था जाननी चाहिये। मात्र मिध्यात्वकर्मको व्यवस्थामें कुछ अन्तर है। उपशमसम्यक्त्वक्ष परिणामों के वारण जब मिध्यात्वक तीन विभाग हो जाते हैं तब अनुभागकी अपेदा लताभाग और दारुका कुछ भाग सम्यक्त्वमोहनीयको प्राप्त होता है। इसके आगे दारुका कुछ भाग सम्यक्त्वमोहनीयको प्राप्त होता है। इसके आगे दारुका कुछ भाग सम्यग्तिथात्वमोहनीयको प्राप्त होता है। इसी कारणसे यहाँपर जहाँ सम्यग्तिध्यात्वका अनुभाग समाप्त होता है उससे आगेका भाग मिध्यात्व मोहनीयका कहा है।

इसप्रकार निषेकप्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

१ ता । प्रती गमण्णिजं इति पाठः । १ ता । प्रती णविश णोकसा । इति पाठः ।

फद्दयपरूवणा

३९९. फद्दयपरूवणदाए अणंताणंताणं अविभागपितच्छेदाणं सम्रुदयसमागमेण एगो वग्गो भवदि । एवं मूलपगिदभंगो कादच्वो ।

४००. एदेण अहुपदंण तत्थ इमाणि चदुवीसमणियोगदाराणि—सण्णा सन्त्रबंधो णोसन्त्रबंधो एवं याव अप्पाबहुगे ति । अजगार० पदणिक्खेओ विड्डिवंधो अज्झवसाण-सम्रदाहारो जीवसमुदाहारे ति ।

१ सण्णा

४०१. तत्थ वि सण्णा दुविधा — चादिसण्णा द्वाणसण्णा च। घादिसण्णा णाणवर०४ — दंसणा० ३ — चदुसंज०-णवणोक०-पंचंतरा० उक्कस्सअणुभागवंधो सन्वघादी। अणुक्कस्स-अणुभागवंधो सन्वघादी वा देसघादी वा। जहण्णश्रो अणुभागवंधो देसघादी। अजहण्णओ अणुभागवंधो देसघादी वा सन्वघादी वा। केवलणाणा०-छदंसणा०-मिन्छत्त-बारसक० उक्कस्स-अणुक्कस्स-जह०-अजह०अणुभागवंधो सन्वघादी। सेसाणं सादासाद० चदुआउ० सन्वाओ णामपगदीओ णोचुचा० उक्क०-अणु०-जह०-अज०अणुभाग० अघादी घादिपडिभागो।

स्पर्द्धकप्ररूपणा

३६६. स्पर्धकप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तानन्त अविभ गप्रतिच्छेदोंक समुद्रायसे एक वर्ग निष्पन्न होता है। इसीप्रकार मुलपकृतिबन्धके अनुसार कथन करना चाहिये।

४००. इस अर्थपदके अनुसार वहाँपर ये चीवीस अनुयागद्वार होते हैं — संज्ञा, सर्वबन्ध और नोसर्वबन्यसे लेकर अरूपबहुत्व तक। भुजगारबन्ध, पद्मिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवस्नानः समुदाहार और जीवसमुदाहार।

१ संज्ञा

४०२. उसमें भी संज्ञा दे। प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञाकी अपेज्ञा चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्ञलन, नी नाकपाय और पाँव अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति भी होता है और देशवाति भी होता है। अनुस्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति भी होता है। आर देशवाति भी होता है। अज्ञवन्य अनुभागबन्ध सर्वघाति भी होता है। केवलज्ञानावरण, छह दशनावरण, मिण्यात्व और बारह कपाय इनका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जधन्य और अज्ञवन्य अनुभागबन्ध सर्वघाति होता है। शेप सातावदनीय, असातावदनीय, चार आयु, सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीवगांत्र और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जधन्य अनुभागबन्ध घातिक प्रतिभागक अनुसार अघाति होता है।

विशेषार्थ — यह हम पहले कह आये हैं कि अनुभागवन्ध दो प्रकारका होता है — घाति और अचाति । जो जीवके अनुजीवी गुणोंका घात करनेवाला अनुभागवन्ध होता है उसे घाति कहते हैं। तथा जो जीवके प्रतिजीवी गुणोंका घात करनेवाला अनुभागवन्ध होता है उसे अघाति कहते हैं।

९ ता॰ प्रतौ अजगारा॰ इति पाटः। २ ता॰ प्रतौ वि दुस्सण्णा (सण्णा) दुवि**धा इति पाढः।** ३ ता॰ आ॰ प्रत्योः दंसणा॰ ४ चदुसंज० इति पाठः।

४०२. हाणसण्णा च णाणावर०[४]-दंसणावर०३-चदुसंज०-पुरिस०-पंचंत० उक्कस्सअणुभाग० चदुहाणियो । अणुक्क० चदुहाणियो वा तिहाणियो वा विद्वाणियो वा एयहाणियो वा । जह० अणुभा० एयहाणियो । अज० एयहाणि० वा विद्वाण वा तिहा० वा तिहा० वा विद्वा० वा । केवलणा०-छदंसणा०-सादासाद०-मिच्छत्त०-बारसक०-अह-णोक०-चदुआयु० सच्वाओ णाम०पगदीओ णीचुचागो० उक्क० अणुभा० चदुहा० । अणुक्क० अणुभा० चदुहा० तिहा० विद्वा० वा । जह० अणुभा० विद्वा० । अजह० विद्वाणगो० तिहा० चदुहा० ।

घाति अनुभागवन्धके दो भेद हैं—देशवाति और सर्वघाति। देशवाति अनुभागवन्ध जीवके अनुजीवी गुणोंका एकदेश घात करता है। इसके उदयकाल ने जीवका अनुजीवी गुण प्रगट तो रहता है परन्तु वह समल रहता है। उदाहरणार्थ—मितज्ञान मितज्ञानावरणकर्मके देशघाति स्पर्धकोंके उदयसे और सर्वघाति स्पर्धकोंके अनुदयका कार्य है। यहाँ मितज्ञानका जो अंश प्रकाशमान है वह मितज्ञानावरणकर्मके सर्वघातिस्पर्धकोंके अनुदयका कार्य है। और जितने अंशमें उसमें सदोपता है वह मितज्ञानावरणकर्मके देशघातिस्पर्धकोंके उदयका कार्य है। इससे स्पष्ट है कि सर्वघातिस्पर्धक जीवके अनुजीवी गुणका सामस्त्येन घात वरता है और देशघाति स्पर्धक एकदेश घात करता है। यहाँपर मितज्ञानावरणादि चार ज्ञानावरण, चजुःदर्शनावरण आदिक तीन दर्शनवरण, चार संज्ववन, नी नोपकाय और पाँच अन्तराय इनमें दोनों प्रकारके स्पर्धकोंका सद्भाव बतलाया है। तथा शेष घातिकर्मोंमें केवल सर्वघाति स्पर्धकोंका सद्भाव वतलाया है। अघातिकर्मोंका स्पर्धक जीवके अनुजीवी गुणों का सर्वथा घात करनेमें असमय होता है, इसिलए अघाति कहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह जीवके किसी भी गुणका घात नहीं करता। घात तो वह भी करता है परन्तु अनुजीवी गुणोंका घात नहीं करता इतना अभिभाय उक्त कथनका जानन। चाहिये।

४०२. स्थानसंज्ञाकी अपेद्धा चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुकृष्ट अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुकृष्ट अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागवन्ध एकस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागवन्ध एकस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागवन्ध एकस्थानिक होता है, द्विस्थानिक होता है, त्रिस्थानिक होता है, त्रिप्त्यानिक होता है। वे वलज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावदनीय, मिण्यात्व, वारह अपाय, आठ नोकपाय, चार आयु, सव नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीचगात्र और उच्चगात्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागवन्ध चतुःस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागवन्ध द्विस्थानिक होता है। अज्ञवन्य अनुभागवन्ध द्विस्थानिक होता है। अञ्चलक्ष्य अनुभागवन्ध द्विस्थानिक होता है। अञ्चलक्ष्य अनुभागवन्ध द्विस्थानिक होता है।

विशेपार्थ — श्रेणी के नौवें गुणस्थानक अनितम भागसे एक स्थानिक अनुभागवन्ध सम्भव है। यही कारण है कि चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्ञलन, पुरुषवेद और पाँच अन्त-रायका ज्ञचन्य, अज्ञचन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध एकस्थानिक भी कहा है। इनके सिवा अन्य कर्मोंका एकस्थानिक अनुभागवन्ध सम्भव नहीं है। इसलिए उनका अनुभागवन्ध एकस्थानिक नहीं कहा है। यद्यपि केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणका भी दसवें गुणस्थान तक बन्ध होता है, पर सर्वघाति होनेसे उनका एकस्थानिक अनुभागवन्ध नहीं होता।

२-७ सन्व-णोसन्वबंधो उक्कस्सादिबंधो य

४०३. यो सो सन्वबंधो० णाम उक्क० अणुक्क० जह० अज० मूलपगदिभंगो कादन्वो। जन्र सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधो

४०४. यो सो सादि०४ तस्स इमो णिइसो-पंचणाणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भय-दुर्गु० अप्पसत्थवण्ण०४ - उवघाद० पंचंत० उक्क० अणुक्क० जहण्ण० किं सादि०४ शादिय अद्धुववंधो । अज० किं सादि०४ शादिय बंधो वा०४ । तेजा० क० प्यत्थ०वण्ण०४ - अगु० णिमि० अणु० चत्तारिभंगो । सेसं तिण्णिपदा सेसाणं च कम्माणं चत्तारिपदा किं सादि० ४ शसादिय अद्धुववंधो ।

२-७ सर्व नोसर्ववन्ध तथा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्य-अजघन्यबन्ध

४०३. जो सर्ववन्थ और नोसर्ववन्थ है तथा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य स्रोर अजघन्य बन्ध है उसका भक्त मूल प्रकृतिबन्ध के समान जानना चाहिये।

८.११ सादि-अनादि-ध्रव-अध्रवबन्ध

४०४ जो सादि, श्रनादि, ध्रुव और अध्रुव बन्ध है उसका यह निर्देश है। उपकी अपेत्ता पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट, अनुस्कृष्ट और ज्ञयन्य अनुभागवन्य क्या सादि है, श्रनादि है, ध्रुव है या श्रध्रुव है ? सादि और अध्रुववन्य है। अज्ञवन्य अनुभागवन्य क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि है, अनादि है, ध्रुव है और अध्रुव है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरु अर्थ निर्माण के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यके चार भक्क है। इनके शेष तीन पद तथा शेप कर्मों के चारों पद क्या सादि हैं, अनादि है, ध्रुव हैं या अध्रुव हैं ? सादि और अध्रुव हैं।

विशेषार्थ — पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियोंका क्षपक सूक्त्मसाम्परायके अनितम समयमें, चार संज्वलनोंका अनिवृत्तिवाद्र चपकके अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें, निद्रा, प्रचला, भय, जुगुरसा, अप्रशस्त वर्णचतुरक और उपन्धातका क्षपक अपूर्वकरणके अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें, चार प्रत्याख्यानावरणका संयमको प्राप्त होनेवाले देशसंयतके अतिन्म समयमें चार अप्रत्याख्यानावरणका क्षायिक सम्यक्ष्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले अविरत्तमस्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें, स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्याद्य और अनन्तानुबन्धी चारका सम्यक्ष्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले मिध्यादृष्टिके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभागवन्ध होता है, यतः वह सादि और अध्रव है, इस्रलिए इनका जघन्य अनुभागवन्ध सादि और अध्रव कहा है। तथा इनके जघन्य अनुभागवन्ध क्षेत्र प्राप्त होनेके पहले इन सब प्रकृतियोंका अजयन्य अनुभागवन्ध होता है जो अपनी अपनी व्युच्छित्तिके पूर्व तक अनादि है और यथायांग्य स्थानमें व्युच्छित्ति होनेके वाद लोटकर पुनः बन्ध होनेपर सादि है। तथा ध्रव और अध्रव कमसे भव्य और अभव्यक्ती अपेक्षा होते हैं, इसलिए इनका अजघन्य अनुभागवन्ध सादि आदिके भेदसे चार प्रकारका कहा है। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चार गतिका पर्याप्त संज्ञी पञ्चित्रय मिथ्यादृष्ट जीव उत्कृष्ट संक्लेश

१ ता॰ प्रती -बंधो ३ (१) इति पाटः।

१२ सामित्तपरूवणा

४०५. एत्तो सामित्तस्स कचे तत्थ इमाणि तिण्णि—पचयपह्रवणा विपाकदेसी पसत्थापसत्थपह्रवणा ति ।

४०६. पचयपरूवणदाए पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-अट्ठक०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवाउ०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउ-व्विय० अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-देवाणुपु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्पर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-उचागो०-पंचंत०६५ एत्रो एकेकस्स पगदीओ मिच्छत्तपचयं असंजमपचयं कसायपचयं। सादावे० मिच्छत्तपचयं

परिणामोंसे करता है। यतः इसकी प्राप्ति अन्तर देकर पुनः पुनः सम्भव है और उत्कृष्टके बाद अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य भी इसी प्रकार होता रहता है, अतः इन पूर्वोक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सादि और अध्यवके भेदसे दो प्रकारका कहा है। तैजसशरीर. कार्मणशर्रार, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण इनका चपक अपूर्वकरणके अपनी व्युच्छित्तिके अन्तम समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है इसलिए वह सादि और अधव होनेसे इन आठ प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धको सादि और अध्रव कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट[े] श्रनुभाग-बन्धके प्राप्त होनेके पूर्व इन सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है जो उपशम श्रेणीमें अपनी बन्ध व्युच्छितिके पूर्वतक अनादि है और व्युच्छित्ति होनेके बाद लौटकर पुनः इनका अनुत्कृष्ट श्रानुभागवन्ध होनेपर वह सादि है। ध्रव और अध्रव भंग पहलेके समान हैं। इस प्रकार इन अ।ठ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धम सादि आदि चारों विकल्प घटित हो जानेसे वह चार प्रकारका कहा है। अब रहे इन आठ प्रकृतियों के जधन्य और अजधन्य अनुभाग बन्ध सो इनका जधन्य श्चनुभागवन्ध चारों गतिक मिथ्यादृष्टि जीवके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है। यतः इसकी प्राप्ति अन्तर देकर पुनः पुनः सम्भव है और जघन्यके बाद उसी क्रमसे इनका अजघन्य अनुभाग-बन्ध होता है। ऋतः इन ऋाठ प्रकृतियोंका जघन्य श्रीर ऋजधन्य ऋनुभागवन्ध सादि और अध्वके भेदसे दा प्रकारका कहा है। यह सैंवालीस ध्रुव वन्धवाली प्रकृतियोंका विचार है। इनके अतिरिक्त जो ७३ श्रप्रुव बन्धवाली प्रकृतियाँ हैं उनका बन्ध कादाचित्क होनेसे उनके उत्कृष्ट श्रादि चारों प्रकारके अनुभागवन्य सादि और अध्ववके भेदसे दो प्रकारके होते हैं यह कहा है।

१२ स्वामित्वप्ररूपणा

४०४. इससे आगे स्वामित्वका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं —प्रत्यय-प्ररूपणा, विषाकदेश और प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा।

४०६. प्रत्ययप्ररूपणाकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगित, पञ्चेन्द्रयज्ञाति, वैक्रियिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त और अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, यशःकीर्ति, त्रयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन पसठ प्रकृतियोमें प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध मिध्यास्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय और

१ ता॰ प्रतौ कच्चे (१) इति पाठः। २ ता॰ प्रतौ विपाकदेसू॰ इति पाठः। ३ ता● आ० प्रत्योः चदु॰वेडिव्यिय-वेडिव्यि॰ इति पाठः।

असंजमपचयं कसायपचयं जोगपचयं। मिन्छ०-णवुंस०-णिरयाउग०-चदुजादि-हुंड०-असंप०-णिरयाणु०-आदाव०-थावरादि०४ मिन्छत्तपचयं। थीणगिद्धि०३-अहुकसा०-इत्थि०-तिरिक्खा०-मणुसायु०-तिरिक्ख-मणुसग०-ओरालि०-चदुसंठी०-ओरालि० अंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० मिन्छत्तपच्चयं असं-जमपचयं। आहारदुगं संजमपच्चयं। तित्थयरं सम्मत्तपच्चयं।

४०७, विपाकदेसो णाम मदियावरणं जीवविपाका। चढु आउ० भवविपाका। पंचसरीर०-छस्संद्वाण-तिण्णिअंगो०-छस्संघड०-पंचवण्ण०-ढुगंध - पंचरस०-अद्वप०-अगुरु०-उप०-पर०-आदाउज्जो०-पत्तेय०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ०-णिमिणं एदाओ पुग्गलविपाकाओ। चढुण्णं आणु० खेत्तविपाका०। सेसाणं मदियावरणभंगो।

कषायप्रत्यय होता है। सातावदनीयका बन्ध मिध्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कपायप्रत्यय श्रीर योगप्रत्यय होता है। मिध्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगित, चार जाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्रामास्पाटिकासंहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावरआदि चारका बन्ध मिध्यात्वप्रत्यय होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, आठ कपाय, स्त्रीवेद, तिर्धेक्चायु, मनुष्यायु, तिर्धेक्चगित, मनुष्यगति, औदा-रिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योन, अप्रस्त विहा-योगित, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका बन्ध मिध्यात्वप्रत्यय और असंयमप्रत्यय होता है। आहारकद्विकका बन्ध संयमप्रत्यय होता है। आहारकद्विकका बन्ध संयमप्रत्यय होता है और तीर्थेङ्गर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वप्रत्यय होता है।

विशेषार्थ—मुख्य प्रत्यय चार हैं—मिध्यात्व प्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषाय प्रत्यय श्रीर योग प्रत्यय । मिथ्यात्वप्रत्यय प्रथम गुणस्थानमें होता है। श्रसंयमप्रत्यय चौथे गुणस्थानतक होता है। कषायप्रत्यय दशवें गुणस्थानतक होता है। श्रीर योगप्रत्यय तेरहवें गुणस्थानतक होता है। जिन प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यास्वगुणस्थानमें ही होता है आगे नहीं होता उनको यहाँ मिथ्यास्वप्रस्यय कहा है। जिनका बन्ध चौथे गुणस्थानतक होता है आगे नहीं होता उनको यहाँ मिध्यास्वप्रत्यय श्रीर श्रसंयमप्रत्यय कहा है। जिनका बन्ध दशवें गुणस्थानतक होता है आगे नहीं होता उनकी यहाँ मिध्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय श्रीर कषायप्रत्यय कहा है। सातावेदनीयका बन्ध तेरहवें गुण-स्थानतक होता है इसलिये उसे मिध्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कपायप्रत्यय श्रीर यागप्रत्यय कहा है। इतनी विशेषता है कि ब्राहारकद्विकका बन्ध संयमके सद्भावमें खीर तीर्थद्वर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वके सद्भावमें होता है। इसलिये इनको तत्तत्प्रत्यय कहा है। यद्यपि मिथ्यात्वके रहते हुए असंयम. कषाय और योग अवश्य पाये जाते हैं। असंयमके सद्भावमें मिध्यात्व पाया जाता है और नहीं भी पाया जाता है। पर कपाय और योग अवश्य पाये जाते हैं। कषायके सद्भावमें पूर्वके दो पाये भी जाते हैं ऋौर नहीं भी पाये जाते हैं। परन्तु योग अवस्य पाया जाना है और योगके सद्भावमें पहलेके तीन पाये भी जाते हैं और नहीं भी पाये जाते हैं। इसलिये यहाँ जिन प्रकृतियोंका मिध्यात्वप्रत्यय बन्ध कहा है उनके बन्धके समय असंयम, कषाय और योग अवश्य हाते हैं। मात्र मिध्यात्वकी प्रधानता होनेसे उनका बन्ध मिध्यात्वप्रत्यय कहा है। इसीप्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिये।

४०७. विपाकदेशकी ऋषेक्षा मितज्ञानावरण जीविवपाकी है। चार आयु भविवपाकी हैं। पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आङ्गापाङ्ग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, ऋाठ स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, ऋस्थिर, शुभ, ऋशुभ और निर्माण ये पुद्गलिवपाकी प्रकृतियाँ हैं। चार आनुपूर्वी चेत्रविपाकी प्रकृतियाँ हैं। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मितज्ञानावरणके समान हैं।

४०८. पसत्थापसत्थपस्वणदाए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोल-सक०-णवणोक०-णिरयाउ०-दोगदि०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पस्थवण्ण०४-दोआणु०-उप०-अप्पस्तथवि०-थावरादि०४-अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंतरा० ८२ एदाओ पगदीओ अप्पसत्थाओ । सादावेद०-तिण्णिआउ०-दोगदि०-पंचिदि०-पंचसरीर०-समचदु०-तिण्णिअंगो०-वज्जरिस०--पसत्थवण्ण०४-दोआणु०--उप०-उस्सा०-आदाउज्ञा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०४२ एदाओ पगदीआ पसत्थाओ। एवं पसत्थापसत्थापस्वणा समत्ता।

विशेषाथ—यं जो बन्धकी अपेक्षा १२० प्रकृतियां बतलाइं हैं उनके विषाकका आधार क्या है इस दृष्टिकों स्पष्ट करनेके लिए विषाकदेश अधिकार आया है। सब प्रकृतियाँ ४ भागों ने विभक्त की गई हैं—जीविषाकी, भविषाकी, पुद्गलिषाकी और चेत्रविषाकी। जीवके झानादि गुणों और विविध नरकादि अवस्थाओं के हेतुरूपसे जिन प्रकृतियों का विषाक होता है व जीविषाकी प्रकृतियाँ हैं। नरक भव आदिके हेतुरूपसे जिनका विषाक होता है वे भविषाकी प्रकृतियाँ हैं। शरीर, वचन और मनके कारणरूप पुद्गलोंको जीवोषयों गी बनाने में जिन प्रकृतियों का विषाक होता है वे पुद्गलिषाकी प्रकृतियाँ हैं और एक गितसे दूसरी गितमें जाते समय विष्रहगितमें जिन प्रकृतियोंका विषाक होता है वे चेत्रविषाकी प्रकृतियाँ हैं। यद्यपि रित और अरित आदि बहुत सी जीविषाकी प्रकृतियोंका स्वी व कण्डक आदि के निमित्तसे विषाक देखा जाता है पर इतने मात्रसे व पुद्गलिषाकी नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि ये स्वी आदि पदाथ रित आदिके विषाकमें नोकमें अर्थान् सहकारी कारण हैं, उनके फल नहीं। जब कि शरीरादि पुद्गलिषाकी प्रकृतियोंके ही कार्य हैं, इसिलए रित आदि जीविषाकी प्रकृतियोंसे पुद्गलिषाकी प्रकृतियोंके सी कार्य महान अन्तर है।

४०८. प्रशस्तापशस्तकी प्ररूपणा करनेपर पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, संालह कपाय, नौ नोकपाय, नरकायु, दो गित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपवात, अप्रशस्त विहायोगिनि, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगात्र और पाँच अन्तराय ये व्यासी प्रकृतियाँ अप्रशस्त हैं। सातवेदनीय, तीन आयु, दो गित, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, वअऋष्म-नाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपवात, उच्छुास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगात्र ये व्यालीस प्रकृतियाँ प्रशस्त हैं।

विशेषार्थ—यहाँ प्रशस्ताशस्तप्रस्पणामं पाँच ज्ञानावरण त्रादि ८२ प्रकृतियोंको श्वप्रशस्त ज्ञोर साताबेदनीय त्रादि ४२ प्रकृतियोंको प्रशस्त बतलाया है। सां इसका कारण यह है कि अप्रशस्त परिणामोंकी तीव्रतासे पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है और प्रशस्त परिणामोंकी उत्कृष्ट तामें साताबदनीय त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। यहाँ प्रकृतियोंमें प्रशस्त आर अप्रशस्तका भेद अनुभागकी दृष्टिसे ही किया गया है। तात्पर्य यह है कि जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध प्रशस्त परिणामोंसे और ज्ञान्य अनुभागबन्ध अप्रशस्त परिणामोंसे होता है व प्रशस्त परिणामोंसे होता है व प्रशस्त परिणामोंसे होता है व त्रप्रशस्त प्रशस्त वर्णचतुष्क और अप्रशस्त प्रकृतियाँ कुल १२० है पर यहाँ १२५ गिनाई है सो वर्णचतुष्कके प्रशस्त वर्णचतुष्क और अप्रशस्त वर्णचतुष्क ऐसा विभाग करके उनकी दानों प्रकारकी प्रकृतियाँ परिगणना की गई है, इसिलए कुल पर्वत्वा १२० होनेपर भी यहाँ दोनों मिलाकर १२४ प्रकृतियाँ परिगणित की गई है। इसप्रकार प्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्तप्रशस्त परिगणित की गई है।

४०९. एदेण अट्टपदेण सामित्तं दुविधं—जह० उक्क० । उक्कस्सए पगदं । दुवि०ओषे० आदे० । ओषे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०हुंडसंठा०-अप्पसत्थवणण०४—उप०-अप्पसत्थ०—अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्कस्सओ
अणुमागवंधो कस्स० १ अण्ण० चदुगद्यस्स पंचिद्यस्स सिण्ण० मिच्छादिहिस्स
सच्वाहि पञ्जतीहि पञ्जतगदस्स सागा०-जा० णियमा उक्कस्ससंकिलिद्वस्स उक्कस्सए
अणुभागवंधे वट्ट० । सादावे०-जस०-उच्चा० उक्कस्सअणुभा० कस्स० १ अण्ण० खवग०
सुहुमसंप० चिरमे उक्क० अणु० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ०
मदियावर०भंगो । णविर तप्पाओग्गसंकिलि० । णिरयाउग-तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज,०साधार० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिदियतिरिक्खजोणिणीयस्स वा सच्वाहि पज्जतीहि० सागा० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० अणु० वट्ट० ।
तिरिक्ख-मणुसाउ० तं चेव । णविर तप्पाओग्गविसुद्द० उक्क० अणु० वट्ट० । देवाउ०
उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० अप्पमत्त० सागा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० अणु०
वट्टमाणगस्स । णिरयग०-णिरयाणुपु० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० मणुसस्स वा
पंचिदियतिरिक्खजोणिणी० वा सण्णि० सच्वाहि पञ्ज० सागा०-जागा० णिय० उक्कस्स०
संकि० उक्क० अणुभा० वट्ट० । तिरिक्खगदि-असंपत्त०-तिरिक्खाणु० उक्क० अणु०

४०६. इस अर्थपक्षे अनुसार स्वामित्व दो प्रकारका हं - जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। इसकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है--श्रोध श्रीर श्रादेश। श्रोधसे पाँच ज्ञान।वरण. नौ दुर्शनावरण, श्रसातावदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगात्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिध्यादृष्टि, सव पर्याप्तियोंके द्वारा पर्याप्तिको प्राप्त हुन्ना, साकार जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रोशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। साताबंदनीय, यशः कीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? चपक सूचमसाम्परायसंयत और श्चन्तिम समयमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका स्वामी है। स्त्रीवंद, पुरुपवंद, हास्य, रति, चार संस्थान श्रीर चार संहननका भङ्ग मति-हानावरणके समान हैं। इतनी विशेषता है कि यह तत्प्रायोग्य संक्षेश परिणामवाले जीवके कहना चाहिये । नरकायु, तीन जाति, सूदम, अपर्याप्त श्रीर साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार जागृत, तत्त्रायाग्य संक्षोश परिग्णामवाला श्रीर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला, अन्यतर मनुष्य या संज्ञीपक्रीन्द्रयतिर्यक्ष उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। तिर्यक्रायु श्रीर मनुष्यायुका वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहाँ तत्प्रा-योग्य विशुद्ध परिणामवाला श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला जीव कहना चाहिये। देवायुकं उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, तत्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव देवायुकं उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? संज्ञी सब पर्याप्तयोंसे पर्याप्त हुआ, साकार जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लश परिणामवाला श्रीर उत्कृष्ट अनुमागबन्ध करने-बाला अन्यतर मनुष्य या पञ्चन्द्रियतिर्यञ्च उक्त दो प्रकृतियों के उस्कुष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

कस्स० ? अण्ण० देव-णेग्इगस्स मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० अणु वहू० । मणुसगदि-ओगिल०-ओगिल०अंगो०-वज्ञरि०-मणुसाणु० उक्क० अणुमा० कस्स० ? अण्ण० देव णेरइ० सम्मादि० सागा० सन्त्रविसु० उक्क० वहू० । देवगदि-पंचिदि०-वेउन्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-पसत्थ०वण्ण०४-देवाणु०-अगु०-पर०-उस्सा० -पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि०-तित्थय० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० खवग० अपुन्त्रकरण० परभवियणामाणं चरिमे अणु० वहू० । एइंदि०-थावर० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंत० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० वहू० । आदाव० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सिण्णस्स सागा०-जा० तप्पा०विसु० उक्क० वहू० । उज्जो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेग्इ० मिच्छा० सन्वाहि पञ्ज० सागा०-जागा० सन्वविसु० से काले सम्मत्तं पडिवज्जिदि त्ति उक्क० वहू० ।

४१०. पोरइएस पंचणा०-णवदंसणा०-आसादा०-मिच्छ० सोलसक० पंचणोक०-तिरिक्खग०-हुंड ०-असंपत्त ०-अप्पसत्थवण्ण ०४-तिरिक्खाणु ०-उप०-अप्पसत्थ ०-अथि-र।दिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० सन्बाहि पञ्ज० तियञ्चगति, त्रसम्प्राप्तासृपाटिका सहंनन आर तियञ्चगत्यानुपूर्वीक रुकुष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कीन है । मिध्य दृष्टि साकार-जागृत नियमसे उत्कृष्ट संकिलप्ट उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला अन्यत्र देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी हैं । मनुष्यगति, श्रीदारिकशरार, श्रीदारिक-श्राङ्गोपाङ्ग, वत्रऋपभनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ सम्यग्दृष्टि, साकार, जागृत, सर्वविशुद्ध श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनवाला श्रन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चन्द्रियजाति, वैक्रियिक-शरीर, स्त्राहारकरारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, ऋगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विद्यायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागवन्धेका स्वामी कौन है ? अन्यतर क्षपक अपूर्वकरण जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंका अन्तिम समयमे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला श्रौर **उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यंतर सोधमं और ऐशान कल्पका देव उ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट** अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपकं उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ संज्ञी, साकारजागृत. त्तरप्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तान गतिका जीव आतप के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध, तदनन्तर समयमें सम्यक्तवका प्राप्त होनेवाला और उस्कृष्ट अनुभागवन्धं करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी हैं।

४१०. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्वसातावदनीय, भिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यक्रमित, हुण्डसंस्थान, श्वसम्प्राप्तास्रुपाटिकासंहनन, श्वप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यक्रमास्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, श्वस्थिरश्चादि छह नीचगात्र धौर पाँच

[🤋] आ॰ प्रतो अगु॰ उप॰ उस्सा॰ इति पाटः ।

सागा०-जा० णिय० उक० संकिलि० उक० वट्ट० । सादावे०-मणुसगदि-पंचिदि० ओरालि०-तेजा०-क० समचदु०-ओरालि० अंगो० वजार० -पसत्थ० वण्ण० १८ – मणुसाणु०-अगु०३ – पसत्थ० -तस०४ – थिरादिछ० - णिमि० - तित्थय० - उच्चागो० उक्क० अणुमा० कस्स० १ अण्ण० सम्मा० सागार० सन्ववि० उक्क० वट्ट० । इत्थि० -पुरिस० - हस्स - रदि च दुसंठा० - च दुसंघ० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० मिव्छा० सागा० तप्पा० संकिलि० । तिरिक्खाउ० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० मिव्छा० सागा० तप्पा० विसु० उक्क० वट्ट० । मणुसाउ० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० सम्मा० तप्पा० विसुद्ध० उक्क० वट्ट० । उज्जोवं ओघं । एवं सत्तमाए पुढवीए । उविरमामु छसु पुढवीसु तं चेव । णवरि उज्जोवं तिरिक्खाउ० भंगो ।

४११. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-णिरयाणुपु० उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सण्णि० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० उक्क० अणु० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। सादावे०-देवगदिपसत्थसत्तावीस०-

श्चन्तरायक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामा कान है ? सब पर्याप्तियोस पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिप्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है । सातःवेदनीय, मनुष्यगति,पञ्चे न्द्रयज्ञाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम बतुरस्र संस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गापाङ्ग, वज्रऋपमनारा वसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्य।नुपूर्वी, अगुरुजवुत्रिक, प्रशस्तिविहायागिति,त्रस चतुष्क,स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थकूर श्रीर उद्देगीत्रके उत्कृष्ट अनुमागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध श्रीर उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्बग्दष्टि जीव उक्त प्रकृतियोक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। स्वी-बेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननक उत्कृष्ट अनुभागबन्यका स्वामी कीन है ? इसका भक्न मतिज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तत्प्रायांग्य संक्लेश परि-सामवाले जीवके कहना चाहिये। तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार जागृत, तत्त्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला ऋौर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिध्यादृष्टि जीव तिर्यक्कायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? तत्त्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। उद्योतका भङ्ग श्रोघके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवामं जानना चाहिये। पहले की छह पृथिवियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योत का भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है।

४११. तिर्यक्रोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, नरकंगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? मिध्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, उत्कृष्ट संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला, अन्यतर संज्ञी पञ्चित्वय जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामा है। सातावेदनीय, देवगित आदि प्रशस्त सत्ताइस प्रकृतियाँ और उच्चगंत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामा कौन है ? साकार-

[🤋] भा॰ प्रतौ पसस्थिव-वण्ण॰ इति पाठः ।

उचा उक [अणु कस्स ?] अण्ण संजदामंजद सागा णिय सन्तवि उक वह । इत्थि - पुरिस - हस्स - रिद-णिरया ज्निति विषय गिद — च दु जादि — च दु संठो ० — पंच संघ ० - तिरिक्खाणु - थावरादि अक अणु कस्स ० ? अण्ण सागा तप्पा लंकि लि । [तिरिक्ख — मणुसा ज्ञ — मणुस ० — ओरालि ० - ओरालि ० ओरा

४१२. तिरिक्ख ० अपज्ञत्तेसु पंचणा-णवदंस ० - असादा ० —] मिच्छ० - सोलसक ० - पंच-णोक ० - तिरिक्ख ० - एइंदि० - हुंड ० - अप्पसत्थवण्ण ० ४ - तिरिक्खाणु० - उप० - थावरादि ४ - अथिरादिपंच - णोचा० - पंचंत ० उक्क ० अणु० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० णिय० उक्क ० संकिलि० उक्क ० अणु० वट्ट ० । सादा० - मणुस० - पंचिंदि० औरालि० - तेजा० क० समचदु० - औरालि० अंगो० - वज्जरि० - पसत्थ ० वण्ण ० ४ - मणुसाणु० - अगु० ३ - पसत्थ ० - तस० ४ - थिरा - दिछ० - णिमि० - उच्च ० उक्क ० अणु० कस्स० ? अण्ण० सण्णिस्स मागा० सव्वविस् ७ उक्क० वट्ट ० । इत्थि० - पुरिस० - हस्स - रदि - तिण्णिजादि - चदुसंठा० पंचसंघ० - अप्पसत्थ ० - दुस्सर०

जागृत, नियमसे सब पर्याप्तियोंसे पयाप्त, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभ गवन्य करनेवाला अन्यतर संयत्मसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्वीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, नरकायु, तिर्यक्रगति, चार जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तियचगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और तत्यायाग्य संक्षेश परिणामवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यक्क आयु, मनुष्य आयु, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वश्रक्षप्रभागाचसहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्गृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिण्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है। नियमसे तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला, साकार-जागृत और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर संयता-संयत जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चिन्द्रयिवर्यक्विकमें जानना चाहिये।

४१२. तिर्यक्च अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋपभनाराचसंहनन, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायागिति, अस आदि चार स्थिर आदि छह, निर्माण और उज्ञगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक स्वामी कौन है १ साकार जागृत, सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक स्वामी है। स्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगिति और

उक्क० ? अण्ण० सिण्णि० सागा० तप्पा०संकि० उक्क० वद्व० । तिरिक्ख-मणुसाउ०- आदाउज्ञो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सिण्णि० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वद्व० । एवं मणुसअपज्ञ०-सन्वविगलिंदि०-पंचिदि०-तसअपज्ञ०-पुढवि०-आउ०-वणप्फदि-णियोद० बादर०पत्रेगं च ।

४१३. मणुसेस खिनगणं देवाउगं च ओघं। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

४१४. देवेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप० अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत०
उक्क० कस्स० १ अण्णद० मिच्छा० सागा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०।
सादा० मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०- तित्थय०उच्चा० उक्क० अणु० कस्स० १ अण्ण० सम्मा० सोगा० सच्ववि० उक्क० वट्ट०।
इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा०
तष्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट०। तिरिक्खायु०-उज्जो० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा०

दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाल। अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यक्षायु, मनुष्यायु, आतप और उद्योगके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक करनेवाला अन्यतर संज्ञी जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्यअपर्याप्त, सब-विकलेन्द्रिय, पश्चेन्द्रियअपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्यतिकायिक, निगाद और बाद्रप्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिये।

४१३. मनुष्योंमें चपक प्रकृतियोंका श्रीर देवायुका भङ्ग श्रोधके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग पर्श्वेन्द्रियतियंश्चोंके समान है।

४१४. देवों में पाँच जानावरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपयात, अस्थिरआदि पाँच, नीचगात्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्षेत्रायुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धक करनेवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, अौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋपभ नाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुज्ञघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धक करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। क्षिवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, तस्त्रायोग्यसंक्षे रायुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार जागृत, तस्त्रायोग्यसंक्षे रायुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका करनेवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका करनेवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

१ ता॰ प्रतौ साग॰ (गा) तप्पा॰ विसु॰ उ॰ विसु॰ उ॰ इति पाठः। २ ता॰ प्रतौ पत्तेण (यं) च इति पाठः।

तप्पा॰िवसु॰ । मणुसायु॰ उक्क॰ कस्स॰ ? अण्ण॰ सम्मादि॰ तप्पा॰िवसु॰ उक्क॰ वट्ट॰ । एइंदि॰-थावर॰ उक्क॰ कस्स॰ ? अण्ण॰ सोधम्मीसाणहेिहमदेवस्स मिच्छादि॰ सागा॰ उक्क संकिलि॰ उक्क॰ वट्ट॰ । असंपत्त॰-अप्पसन्थ॰-दुस्सर॰ उक्क॰ कस्स॰ ? अण्ण॰ सहस्सारंत॰ मिच्छा॰ सागा॰ णिय॰ उक्क॰ वट्ट॰ । आदाव॰ उक्क॰ कस्स॰ ? अण्ण॰ ईसाणंतदेवस्स मिच्छा॰ तप्पा॰िवसु॰ ।

४१५. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० पंचणा०-णवदंसणा० असादा०-मिच्छ०-सोलसक०--पंचणोक०--तिरिक्खगै०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा-दिहिस्स सागा० णिय० उक्क० वट्ट० । सेसं देवोघं । णविर असंपत्त०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० इत्थिभंगो । भवण०-वाणवें०-जोदिसि० तित्थयरं णित्थ । सणक्कुमार याव सहस्सार नि विदियपुढविभंगो । आणदादि याव णवगेवज्ञा नि सहस्सारभंगो । णविर तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जोव० वज्ज ।

स्वामी हैं। निर्यक्षायु और उद्यानके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामा कौन है ? तत्वायांग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर मिण्यादृष्टि जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है ? मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्वायांग्य विशुद्ध परिणामयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? मिण्यादृष्टि, साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? मिण्यादृष्टि, साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक स्वामी है। असम्प्राप्तास्पृणदिकासंदनन, अप्रशस्त विद्यागिति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। असम्प्राप्तास्पृणदिकासंदनन, अप्रशस्त विद्यागिति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? साकार जागृत और नियमसे उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर ईशान कल्य तकका मिण्यादृष्टि देव आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। स्वान्यतर ईशान कल्य तकका मिण्यादृष्टि देव आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

४१५. भवनवासी, व्यन्तर ग्रीर ज्यांतिषी तथा सौधम श्रीर एशान करुपके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, श्रमातावदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्कगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर, श्रस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायक उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्थामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्थामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिण्यादृष्टि उक्त देव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। श्रेप भङ्ग सामान्य देवों के समान है। इतनी विशेषता है कि श्रसन्त्राप्तास्त्रपाटिकसंहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वर प्रकृतिका भङ्ग जिस प्रकार सामान्य देवों में स्वीवेदके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामीकहा है उस प्रकार है। तथा भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिषी देवों तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवों सं दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। श्रानत कल्पसे लेकर नौ प्रैवेयक तकके देवों सं सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्कगति, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतको छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए।

ता० प्रतौ तिरिक्ख च (?) भ्रा० प्रतौ तिरिक्खं च इति पाठः ।

४१६. अणुदिस याव सन्वद्व ति पंचणा०-छदंसणा०-आसादा०-बारसक०-पंच-णोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० सागा० उक्क० वह० । सादा०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचढु०-ओरालि० ग्रंगो०-वज्जिरस०-पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरा-दिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० सागा० णिय० सन्वविसु० उक्क० वह० । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तप्पा०संकिलि० । मणुसायु० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तप्पा०नंकिलि० । पणुसायु० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तप्पा०विसु० उक्क० वह० ।

४१७. एइंदिएसु मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० वादर-पुढ०-वादरआउ०-वादरपत्तेय०-वादरणियोदपज्ज० सागा० सव्वविसु० । एवं मणुसायु० । णविर तप्पाओग्गविसुद्ध० । सेसपगदीणं पसत्थाणं सो चेव भंगो । णविर बादरतेउ०-वादरवाउ० ति भाणिदव्वं । संसं पंचिदि०तिरि०अपज्ज०भंगो । णविर बादरपज्जत्तग ति भाणिदव्वं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकायणं च । णविर तेउ-वाऊणं मणुसायु-मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० वज्ज० ।

४१६. श्रनुदिशसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, बारह कपाय, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुरक, उपघात, श्रस्थिर, श्रशुम, श्रयशःकीर्ति श्रोर पाँच अन्तराय इनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी कौन है ? साकार-जागृत, श्रोर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर देव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी है । सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समु-चतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वञ्चर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानु पूर्वी श्रमुक्तघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रोर उच्चगात्रके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्त्रामी कौन है ? साकार-जागृन, नियमसे सर्वविद्युद्ध श्रोर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला करनेवाला श्रन्यतर देव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी है । हास्य श्रीर रितके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी कौन है ? श्रन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला देव उक्त दो प्रकृतियों क उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्त्रामी है । तत्प्रायाग्य विद्युद्ध श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्त्रामी है ।

४१७. एके न्द्रयों में मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्दृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन हैं ? श्रन्यतर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त श्रीर बादर निगोद पर्याप्त जीवों में से साकार जागृत श्रीर सर्वविशुद्ध श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी हैं । इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तत्प्रायाग्य विशुद्धके कहना चाहिए । शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका बही भन्न हैं । इतनी विशेषता है कि बादर श्राग्नकायिक पर्याप्त श्रीर बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंको स्वामी कहना चाहिए । इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका भन्न पंचेन्द्रिय तिर्यद्ध श्रपर्याप्तकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि बादर पर्याप्त ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय श्रीर पाँच स्थावरकायवाले जीवोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि श्राग्नकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रको नहीं कहना चाहिए ।

४१८. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगी० ओयं। ओरालि० मणुसभंगो। केसिं च दुगदियस्स ति भाणिद्व्यं।

४१६. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त०-सोलसक०पंचणोक०-तिरिक्तवग०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्य०४-तिरिक्तवाणु०-उप०-थावरादि०४अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सण्णिस्स तिरिक्तव०
मणुस० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादा०-देवग०-पंचिदि०वेउिव्व०-तेजा०-क०--समचदु०-वेउिव० श्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० दुगदियस्स सम्मा० सागा० सव्विवसु० उक्क० वट्ट० । णवरि तित्थ० मणुस० । इत्थि०पुरिस०-इस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स० १
अण्ण० तिरिक्तव० मणुस० सागा० तप्पा० संकि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्तवायु-मणुसायुमणुसगदि-ओरालि०-ओरालि० श्रंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-आदाउज्जो०-उक्क० कस्स० १
अण्ण० तिरिक्तव० मणुस० सण्णि० मिच्छा० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० ।
४२० वेउिव्वयका० पंचणा०-णवटंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंच-

४१=. पचेन्द्रियद्विक, असद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें

श्रीयके समान भङ्ग है। श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है श्रीर दो गतिके कोई जीव स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिए।

४१६. त्रोंद।रिकमिश्रकाययांगी जीवोंमें पाच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, त्रासातावेदनीय, मिश्यात्व, सांतह कपाय, पाँच नाकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्तवर्ण-चतुष्क, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर ऋादि चार, ऋस्थिर ऋादि पाँच, नीचगांत्र और पाँच अन्यरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्त्रामी कीन है १ सीकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करनेवाला श्रन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यश्च या मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावदनीय, देवगति, पंचिन्द्रियजाति, वैकियिकशारीर, तंजसशरीर, कार्मणुशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक ऋाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानु-पूर्वी, अगुरुत्तवुत्रिक, प्रशस्त विद्ययागति, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीयङ्कर और उनगात्रके उत्कृष्ट त्र्यनुगागवन्यका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध त्र्यौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर दो गतिका सम्यग्द्राष्ट्र जीव उक्त प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागबन्ध-का स्वामी है। इतनी विशेषता है कि तीर्यङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुमागवन्धका स्वामी मनुष्य है। र्खावद, पुरुपवद, हास्य, रति, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरकं उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्रायाग्य संक्लिप्ट और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करनेवाला अन्यतर तियंख्व या मनुष्य उक्त प्रकृतियाँके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यक्रायु, मनुष्यायु, मनुष्यगति, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्जवमनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्यातके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रीर उत्कृष्ट अनुमागवन्य करनेवाला श्रन्यतर तिर्यक्क श्रीर मनुष्य संज्ञी मिथ्या-दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्त्रनुभागवन्धका स्त्रामी है। ४२०. वैकियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय,

णोक०-तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०—अथिरादिपंचं०--णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वह० । सादावे०-मणुस०-पंचिदि०--ओरालि०-तेजा०-क०-सम्चदु०-ओरालि० श्रंगो०-वज्जिर०-पसत्य०४—मणुसाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागा० सव्वविद्य० उक्क० वह० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद्-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० तप्पा०संकिलि० उक्क० वह० । तिरिक्खायु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छादि० सागा० तप्पाओग्गवि० उक्क० वह० । मणुसाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागा० तप्पा०विद्यु० उक्क० वह० । एइंदि०-थावर० उ० कस्स० ? अण्ण० देवस्स ईसाणंत० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । असंप०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सहस्सारंतस्स सव्वणेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि० उक्क० वह० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतस्स

मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुरक, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उपचात, ऋस्थिर ऋादि पाँच, नीचगात्र ऋौर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिप्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला श्रन्यतर देव श्रौर नारकी मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वत्रर्पभनाराचसंइनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीर्थङ्कर और उचगात्र-के उत्कृष्ट ऋतुभागवन्यका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करनेवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रति, चार संस्थान श्रीर चार संहननके उत्कृट श्रनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायाग्य संक्लिप्ट श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-रागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर देव ख्रौर नारकी मिण्यादृष्टि जीव निर्यख्वायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामा कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रौर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्हिष्ट जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरकं उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृन, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट श्रमुसागबन्ध करनेवाला श्रम्यतर इंशान करुप तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियांके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। त्रसम्प्राप्तास्रपाटिका संहनन, त्रप्रशस्त विहायोगति स्रोर दुःस्वरके उत्क्रुष्ट स्रनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि सर्व संक्लिप्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर सहस्नार कल्प तकका देव श्रीर सब नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। श्रातपके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध स्त्रीर उत्कृष्ट स्ननुभागबन्ध करनेवाला स्नन्यतर

१. ता॰ म्रा० प्रस्यो० म्रथिरादिछु० इति पाठः ।

देवस्स तप्पा०विस्रु० उक्क० वदृ० । उज्जो० ओघं । एवं चेव वेउव्वियमि० । णवरि उज्जोव० सत्तमाए पुढवीए मिच्छा० सागा० सव्वविसु० ।

४२१. आहार०-अहार्राम० पंचणा०-छद्ंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा०
सन्वसंकिलि० । सादावे ०-देवगदि-पंचिदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउन्वि०ऋंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०उच्चाः उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० सन्वविसु० । हस्स-रिद्० उक्क० कस्स० ?
अण्ण० सागा० तप्पा०संकिलि० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ठ० ।

४२२. कम्मइ० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खगिट-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—ितिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सण्णि० चदुगिद० मिच्छादि० सागा० सन्वसं०।सादा०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु ०--पसत्थ०४—अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-एशान तकका देव स्नातपके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्धका स्वामी है। उद्योतका भंग स्रोधके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट स्रनु-भागवन्धका स्वामी साकार-जागृन स्रोर सर्व विश्चद्र सातवीं प्रथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी होता है।

४२१. ब्राहारककाययोगी श्रोर ब्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रमानावरनीय, चार संख्यान, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, श्रग्नुम, श्रयशःकिति श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लिष्ट श्रोर उत्कृष्ट श्रमुमागवन्ध करनेवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंक उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, देवगति, पञ्च न्द्रिय जाति, विक्रियक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्न संस्थान, विक्रियक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुज्युत्रिक, प्रशस्त विह्ययोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रोर उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्विच्छुद्व श्रोर उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य संक्लिष्ट श्रोर उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य संक्लिष्ट श्रोर उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य विद्युद्व और उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य विद्युद्व और उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य विद्युद्व और उत्कृष्ट श्रमुमागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर जीव देवायुके उत्कृष्ट अनुमागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्यायोग्य विद्युद्व और उत्कृष्ट श्रमुमागवन्धका स्वामी है ।

४२२. कार्मणकाययोगी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्रगति, हुण्ड संस्थात, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उष्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी चार गतिका मिश्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त

१. ता॰ प्रतौ झादावे॰ [व] झा॰ प्रतौ झादावे इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ [शव] दंसगा॰, झा॰ प्रतौ छुदंसगा॰ इति पाठः। ३. ता॰ प्रतौ तेजा॰ समचदु॰ इति पाठः।

णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुग० सम्मादि० सागा० सव्विद्यु० । इत्थि०पुरिस०-हस्स-रिद-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगिद० मिच्छादि०
सागा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट० । मणुसगिदिपंचगस्स देव० णेरइ० सम्मादिदिस्स
सागा० सव्विद्यु० उक्क० वट्ट० । देवगिदिचदु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्खमणुस० सम्मादि० सागा० सव्वविद्यु० । एइंदिय-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स सागा० सव्वसंकिलि० उक्क० वट्ट० । तिणिजादी० ओघं । असंप०-अप्पसत्थ०दुस्सर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सहस्सारंतदेवस्स णेरइगस्स सव्वसंकिलि० उक्क०
वट्ट० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगिदिय० सागा० तप्पाओग्गविद्युद०
उक्क० वट्ट० । उज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए सागा० सव्वविद्यु०
उक्क० वट्ट० । सुहुम-अपज्ज०-साधा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० पणुस०
पंचिदि० सण्णि मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । तित्थय०
उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० सागा० सव्ववि० ।

वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तिधहायागीत, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और दचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर चार गतिका सम्यग्टिष्ट जीव ब्क्त प्रकृतियोंक उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रति, चार संस्थान ऋौर चार संह्ननके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन हं ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति पञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रौर उत्कृष्ट त्रानुभागवन्ध करनेवाला त्रान्यतर सम्यग्द्राध्ट देव और नारकी जीव हैं। देवगति चतुष्कके उत्क्रास्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यम्द्रप्टि तिर्यञ्ज और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति त्रौर स्थावरके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्षिष्ट श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्थतर ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका स्वामी है। तीन जातियोंका भङ्ग त्रोघके समान है। त्रसम्याप्तास्र्याटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकर-जागृत, सर्व-संक्षिष्ट और ब्त्ऋष्ट त्रमुभागवन्ध करनेवाला ऋन्यतर सहस्रार कल्प तकका देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृप्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, तत्त्रायोग्य विशुद्ध स्त्रोर उत्ऋष्ट स्रनुभागवन्धमं ऋवस्थित स्नन्यतर तीन गतिका जीव त्रातप प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौम है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्यातके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्त्रामी है। सूदम, अपर्याप्त और साधारणके बत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्रिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्धं करनेवाला अन्यतर पंचेन्द्रिय, संज्ञां मिध्यादृष्टि तिर्यक्ष श्रौर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके चत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका स्त्रामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका स्त्रामी कीन हैं ?

१. ता॰ प्रतौ देवगदिचदुक॰, भा॰ प्रतौ॰ देवगदिचदुआदि॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ सादा॰ इति पाठः ।

४२३. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक०हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिछ०-णीचागो०-पंचंत० उक्क० कस्स०१अण्ण० तिगदि०
सिण्ण० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादा०-जस०-उच्चा० उक्क०
कस्स० १ अण्ण० खवग० अणियिट्टचिरिमे अणुभाग० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्सरिद-चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिगदि० सागा० तप्पा०संकिलि०
उक्क० वट्ट० । आउचदुक्कं ओघं । णिरयगिद-णिरयाणुँ०-अप्पस० उक्काँ० कस्स० १
अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० सन्वसंकिलि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्खग०-एइंदि०तिरिक्खाणु०-थावर० उक्क० कस्स० १ अण्ण० ईसाणंतदेवीए मिच्छादि० सागा० णिय०
उक्क० संकिलि० । मणुसगदिपंचगस्स उक्क० कस्स० १ अण्ण० देवीए सम्मादि०
सागा० सन्ववि० । देवगदियादीणं ओघं । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क०
कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० संकि० उक्क० वट्ट० । आदाउज्जो०
उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० ।

साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध श्रीर उत्हृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर तीन गतिका जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनभागबन्धका स्वामी है।

४२३. स्त्रीवदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर ब्रादि छह, नीचगोत्र ऋौर पाँच ऋन्तर।यके उत्ऋष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्ऋष्ट संविज्ञष्ट श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर तीन गतिका संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति ख्रौर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्ति क्षपक उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्रीवंद, पुरुपवंद, हास्य, रति, चार संस्थान और पाँच संहतनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और इत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबत्ध-का स्वामी हैं। चार ब्रायुत्र्योंका भक्त स्रोघके समान है। नरकर्गात, नरकगत्यानुपूर्वी, स्रौर अप्रशस्त विहायोगतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसिक्षिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च अौर मनुयष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। तिर्युख्रगति, एकेन्द्रियज्ञाति, तिर्युख्रगत्यानुपूर्वी त्र्योर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे सर्वसंक्षिष्ट त्र्यौर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाली अन्यतर ऐशान कल्पतक की मिथ्यादृष्टि देवी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी स्वामी है। मनुष्यगति पञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट ऋनुभागवन्ध करनेवाली अन्यतर सम्यग्दृष्टि देवी मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी स्वामी है। देवगति आदिक आंघमें कही गई २६ प्रकृतियोंका भक्त ओघके समान है। तीन जाति, सूदम, श्रपर्याप्र श्रीर साधारणके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत. नियमसे संक्लिष्ट श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर तिर्यक्रश्रौर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके **एत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।** आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

१. ता० प्रती स्रोघं । खिरवाखु० इति पाठः । २. ता० स्रा० प्रत्योः स्रप्पस० दुस्सर० उक्क० इति पाठः ।

४२४. पुरिसवेदे पंचणा०--णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०--सोलसक०-पंच-णोक०-हुंड०-अप्पस०४-उपं०-अप्पस०-अधिरादिछ०-णीचा० पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकि० उक्क० वह० । खिवगाणं इत्थि-भंगो। इत्थि-पुरिसैदंडओ चढुआयु-णिरय-णिरयाणु० ओघं । तिरिक्तवग०-तिरिक्तवाणु० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० उक्क० संकिलि० । मणुसपंचग० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० सम्मादि० सागा० सव्ववि० । एइंदि०-थावर० उक्क० कस्स० १ अण्ण० ईसाणंतदेवस्स सव्वसंकिलि० । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्तव० मणुस्स० वा सागा० तप्पा०संकिलि० वह० । असंप० उक्क० कस्स० १ अण्ण सहस्सारंतदेवस्स मिच्छा० सागा० उक्क० संकिलि० । आदाउज्जो० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिगदि० सागा० तप्पा० विस्व० ।

४२५. णवुंसगे पंचणा०-णवदंसणा०-असादा० याव पढमदंडओ ओघो । णवरि तिगदि० पंचिंदि० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकिल्छि० । सादादिखवि-

साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

४२४. पुरुपवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातादिक ३, देवगति श्रादिक २६ इन ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रवेदी जीवोंके समान है । स्त्री-पुरुपवेदद्ण्डक, चार त्र्यायु, नरकगति त्र्यौर नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग त्र्योघके समान है । तियेक्चगति त्र्यौर तिर्यक्चगत्यानु-पूर्वीके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त स्त्रन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन है १ साकार-जागृत स्त्रीर सर्वविशुद्ध त्र्यन्यतर सम्यग्टिष्ट देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति त्र्यौर स्थावरके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त श्रन्यतर ऐशान करूप तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। तीन जाति सूदम, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्त्रामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रा-योग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत श्रोर उत्रुष्ट संक्लेशयुक्त श्रन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आतप श्रोर उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रौर तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है।

४२५. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण श्रीर श्रसातावेदनीय से लेकर प्रथम दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन प्रकृतियोंका स्वामी

ता॰ द्या॰ प्रत्योः द्यप्यस॰ ४ सम्मादिद्विस्स उप॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती खिवनायां इत्थि-पुरिस॰ इति पाठः ।

गाणं इत्थिभंगो० । इत्थिपुरिसं०दंडओ ओघो० । णवरि तिगदिय० सागा० तप्पा० संकिलि०। आउचदुक्कं णिरयगदि-णिरयाणु० ओघं। तिरिक्त्वग०-असंप०-तिरिक्त्वाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । मणुस-गदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० साग० सन्वविसु० । चदु-जादि-थावर४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्त्व० मणुस० तप्पा०संकिलि० । आदा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्त्व० मणुस० तप्पा०विसु० । उज्जोव० ओघं ।

४२६. अवगदवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज्ञ०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० उवसामै० परिवद० अणिय० चरिमे अणुभाग० वट्ट०। सादा०-जसगि०-उच्चा० ओघं।

४२७. कोर्थं-माण-माय० सादा०-जस०-उचा० इत्थिभंगो । सेसं ओघं । लोभे मुलोघं ।

४२=. मदि०-मुद० पंचणा०-णवदंसणा०-आसादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंच-णोक०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पसत्थवि³०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत०

साकार-जागृन, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला अन्यतर तीन गितका पक्च निद्रय संज्ञी जीव है। साता आदि ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। स्त्री-पुरुपवेद दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि साकार-जागृत और तत्प्रीयोग्य संक्लेशयुक्त तीन गितका जीव इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी है। चार आयु, नरकगित और नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग आयके समान है। तिर्यञ्चगित, असम्प्राप्तास्ट-पाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी कौन है १ साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी है। चार जाति और स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी कौन है १ तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी कौन है १ तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी कौन है १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्त्रामी है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है।

४२६. श्रतगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्तिम श्रनुभागकाण्डकमें विद्यमान श्रन्यतर गिरनेवाला उपशामक श्रानवृत्तिकरण जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति श्रीर उच्चगोत्रका भङ्ग श्रोचके समान है।

४२७. क्रोधकपायवाले, मानकपायवाले ख्रौर मायाकपायवाले जीवोंमें सातावेदनीय, यशः-कीर्ति ख्रौर उच्चगात्रका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। तथा शेप भङ्ग ख्रोघके समान है। लोभकपायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

४२८. मत्यज्ञानी स्त्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, स्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड संस्थान, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, स्रप्रशस्त

१. ता॰ प्रती॰ खिवगाग् इस्थि-पुरिस॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती उवसामा॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती उच्चा॰। कोघ॰ इति पाठः। ४. म्रा॰ प्रती पसस्थवि॰ इति पाठः।

उक्क० कस्स० १ अण्ण० चहुगदि० पंचिदि० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकि० उक्क० वह० । सादा०-देवग०-पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि० संगो०-पसत्थवण्ण०४—देवाणुपु०--अगु०३—पसत्थिव०—तस०४—थिरादिछ० -- णिमि०—उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मणुस० सागा० सन्वविद्य० संजमाभिग्रह० चिरमे अणु० वह० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स०रदि-चहुसंठा०-चहुसंघड० ओघं । तिण्णिआउ० ओघं । देवाउ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मणुसस्स सागा० तप्पा०सन्विद्य० । णिरयगदि-तिण्णिजादि-णिरयाणु०-उज्जोव०-मुहुम०-अप०-साहा० ओघं । तिरिक्खगदि-असंप०-तिक्खाणु० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिति०। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा६ सन्वाहि० सम्मताभिग्रह० चिरमे उक्क० अणु० वह० । एइदि०-थावर० उक्क० कस्स० १ अण्ण० ईसाणंतदेव० मिच्छा० सागा० उक्क० संकिति० । आदाव० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिगदिय० सागा० तप्पा० विग्र० । एवं विभंगे । णविर सण्णि ति ण भाणिद्व्वं ।

विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतरं चार गतिका पञ्चे न्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी हैं। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चोन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुत्रिक, विहायोगिति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चेगात्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके श्रभिमुख श्रीर श्रन्तिम श्रनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग ओघके समान है। तीन श्रायुत्रोंका भङ्ग श्रीघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट त्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत त्र्यौर तत्प्रा-योग्य सर्विवशुद्ध अन्यतर मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। नरकगति, तीन जाति. नरकगत्यानुपूर्वी, उद्योत, सूदम, अपर्यात श्रीर साधारणका भङ्ग श्रोघक समान है। तिर्यञ्चगति, त्र्यसम्प्राप्तासृपाटिका संहनन त्र्यौर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट त्र्यनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत स्त्रीर नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यत्र मिध्यादृष्टि देव स्त्रीर नारकी उक्त प्रकृ-तियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी हैं। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, सम्यक्तवके श्रभिमुख श्रीर श्रन्तिम उत्कृष्ट श्रनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर मिध्यादृष्टि देव श्रीर नारकी एक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति त्र्योर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत स्रोर उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्पतकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। श्रातपके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रोर तत्प्रा-योग्य विशुद्ध श्रन्यतर तीन गतिका जीव त्रातपके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार विभक्जज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें स्वामित्वका कथन करते समय संज्ञी ऐसा नहीं कहना चाहिए।

^{1.} ता० भ्रा । प्रत्योः सुहुम । भ्रप्यदि । सादा । भ्रोधं इति पाठः ।

४२६. आभि०-सुद्द०-ओधि० पंचणा०--छदंसणा०-असादा०-वारसक०--पंच-णोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चढुगदि० सागा० णिय० उक्क० संकि० मिच्छत्ताभिसुद्द० उक्क० वृह० । सादादिखिन-गाणं ओघं । हस्स-रिद० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चढुग० सागा० तप्पा०संकि० । मणुसाउ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० सागा० तप्पा०विसु० । देवाउ० ओघं । मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० सागा० सव्वविसुद्ध० । एवं ओधिदं०-सम्मादि० ।

४३०. मणपज्ज० पंचणा०-छद्संणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ-वण्ण०४-उप०-अथिर०-असुभ-अजस०-पंचत० उक्क० कस्स०? अण्ण० पमत्तसं० सागा० सन्वसंकि० असंजमाभिम्रह० उक्क० वट्ट० । सादादिखविगाणं ओघं । हस्स-रिद० उक्क० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसं० सागा० तप्पाओग्गसंकि० । देवाउ० ओघं । एवं संजदे । णवरि मिच्छत्ताभिम्रह० । एवं सामाइ०-छेद्रा० । णवरि सादावे०-जस० उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० अणियट्टि० खवग० चरिमे उक्क० वट्ट० ।

४२६. आमित्नवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अविक्वानी जोवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कवाय, पाँच नोकवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात, अस्थिर, अश्रुभ, अयशःकीनि और पाँच अन्तरायक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिण्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक करनेवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी ह । सातादि ३२ क्षाक प्रकृतियोंका भङ्ग आंवके समान हें । हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत और तत्वायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं । मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत और तत्वायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं । देवायुका भङ्ग ओव क समान हें । मनुष्यगिष्ठकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं । इसी प्रकार अवधिदशनी और सम्यग्रहष्ट जीवोंके जानना चाहिए!

४३०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नांकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और उरकृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातादि ३२ ६ पक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। हास्य और रितके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकारःजागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मिध्यात्वके अभिमुख जीवोंके पाँच ज्ञानावरणादिके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कहना चाहिए। इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इसनी विशेषता है कि इनमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और दश्चगोत्रके उरकृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी

४३१. [परिहारे] पंचणाणादी० मणपज्जवभंगो । णवरि सामाइ०-छेदो-वहावणाभिमुह० सव्वसंकि ति०। सादादीणं अप्पमत्त० सव्वविमु०। हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसं० तप्पाओग्गसंकि०। देवाउ० ओघं। मुहुमसंप० पंचणा०-चहुदंसणा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० उक्क० वट्ट०। सादा०-जस०-उच्चा० ओघं।

४३२. संजदासंजदे पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-अहक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ-वण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सागार० सन्वसंकि० मिच्छताभिम्रह० उक्क० वह० । सादावे०-देवगदिपसत्थहावीसं तित्थ०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागा० सन्वविम्रु० संजमाभिम्रह० उक्क० वह० । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरि० मणुस० सागा० तप्पा०संकि० उक्क० वह० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरि० मणुस० तप्पा०विम्रु० उक्क०

कौन हं ? श्रन्तिम उत्कृष्ट श्रनुभागकाण्डकमें विद्यमान श्रन्यतर श्रनिवृत्तिक्ष्पक जीव उक्त प्रकृ-तियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी है।

४३१. परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ३४ प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययक्षानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदापस्थापनासंयमके अभिमुख और सर्व संक्लेशयुक्त इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादिक के सविवशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ तत्यायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओषके समान है। सूद्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्तर गिरनेवाला उपशामक जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, यशकीर्ति और उच्चगोत्रका भङ्ग आंषके समान है।

४३२. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कपाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, अस्थिर, अशुभ, अयशः क्रीति और पाँच अन्तराय के उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त, मिध्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियों विश्वद्धर सहित और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध, संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध, संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी है । हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्वायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? तत्वायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाल। अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी है ।

१. ता॰ प्रतौ पंचयादि (राा॰) मयापजनभंगो इति पाठः !

४३३. असंजद० सादा०-देवगदिपसत्थद्वावीसं तित्थ०-उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मणुस० असंजदसम्मादिद्विस्स सागा० सव्वविस्र० संजमाभिम्रह० । देवाउ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मणुस० मिच्छादि० सागा० तप्पा०विस्र० उक्क० वट्ट० । सेसाणं ओघं० । चक्खु०-अचक्खु ओघं ।

४३४. किण्णाए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पस०-अथिराद्छ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ?
अण्ण० तिगदि० पंचिदि० सण्णि० मिच्छा० सागा० णि० उक्क० संकिलि० । सादा०
मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरालिऋंगो०--वज्जिर०--पसत्थवण्ण०४--मणुसाणु०-अगु०३--पसत्थवि०-तस०४- थिरादिछ०--णिमि०--उच्चा० उक्क०
कस्स० ? अण्ण० णेरइ० असंजदसम्मा० सागार० सव्वविमु० उक्क० वट्ट० । चदुणो०चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० तप्पाओ०संकि० । तिण्णि
आउ० ओघं० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि०
सम्मादि० तप्पा०विमु० उक्क० वट्ट० । णिरयगदि-णिरयाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण०

४३३. असंयत जीवोंमें सातावदनीय और देवगित आदि प्रशस्त अट्टाईस प्रकृतियाँ, तीर्थद्वर और उच्चगांत्रके उक्वष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध और संयमक अभिमुख अन्यतर असंयतमम्यग्दिष्ट मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग आंघके समान है। चत्तुदर्शनवाले और अचत्तुदर्शनवाले जीवोंमें स्वामित्व ओघके समान है।

४३४. कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह क्षाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघान, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं १ साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिध्याद्यष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गापाङ्ग, वऋषभाराच संहनन, प्रशस्त वण्णचतुष्क मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुज्ञचुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उञ्चगात्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं १ साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक करनेवाला अन्यतर असंयत सम्यग्दिष्ट नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। चार नोकपाय, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं १ तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। तीन आयुओंका मङ्ग श्रोघके समान हैं। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य विश्वद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हें १ तत्प्रायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य स्वायोग्य स्वायोग्य स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका स्वायोग्य संक्लेशका संक्लेशका संवयोग्य संक्लेशका संवयोग्य संवयोग्य संक्लेशका संवयोग्य स

१. ता० झा० प्रत्योः झगु० ४ पसत्थवि० इति पाठः।

तिरिक्त मणुस० उक्क० संकि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्त ०-असंप०-तिरिक्त णु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० उक्क० संकि० । देवगदि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्त ० मणुस० सम्मादि० सञ्चिवसु० उक्क० वट्ट० । चदु नादि—थावरादि४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्त ० मणुस० सागा० तप्पा० संकि० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्त ० मणुस० मिच्छा० तप्पा० विसु० । उज्जोव० ओघं । तित्थ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजदसं० सागा० तप्पा० विसु० ।

४३५. णील०-काऊ० पंचणा०--णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०- उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्णद० णेरइ० मिच्छादि० सागा० सन्वसंकिलि० उक्क० वट्ट०। सादा०-मणुसगदिपसत्थद्वावीसं उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० णेरइ० सम्मादि० सन्वविस्त०। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-चदुसंठा०-चदु-संघ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० णेरइ० भिच्छा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट०।

उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। नरकगित और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगित, असम्प्राप्तास्पादिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? सर्वविद्युद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक रवामी है। चार जाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। चार जाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। चार जाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? तत्प्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य मिण्यादिष्ट आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? तत्प्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और प्रमुख्य मिण्यादिष्ट आतपके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर असंयत सम्यग्दिष्ट मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

४३५. नील त्रोर कापीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, त्रसाता वेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तियख्रगित, हुण्डसंस्थान, श्रसम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपनात, अप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रोर पाँच त्रम्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त श्रोर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रम्यतर मिश्याद्दाष्ट नारकी उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, मनुष्यगित श्रादि प्रशस्त श्रद्धाईस प्रकृतियाँ श्रोर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविद्युद्ध अन्यतर सम्यग्दिष्ट नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार संस्थान श्रीर चार संहननके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका

तिण्णिआड० ओघं । देवाड०-देवगदि०४ किण्णभंगो । णिरय०-चढुजा०-णिरयाणु ०-थावरादि०४ उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० तप्पा०संकि० । आदाउज्जो० उक्क० कस्स० १ अण्ण० दुगदिय० तिगदिय० तप्पा०विसु० उक्क० वह० । णीलाए तित्थ० किण्ण० भंगो । काऊए तित्थय० णेरइ० सञ्ववि० ।

४३६. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड० - अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप० थावर-अथिरादिपंच०
णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सोधम्मीसाणंत० मिच्छादि० सव्वसंकि०।
सादा०-देवग०पसत्थतीसं तित्थय० उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत० सागा०
सव्ववि० उक्क० वट्ट०। इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ?
अण्ण० देवस्स सोधम्मीसाणं० मिच्छा० तप्पा०संकि० उक्क० वट्ट०। तिरिक्खाउ०आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स तप्पा०विसु०। मणुसाउ० ? देवस्स

स्वामी है। तीन आयुत्रोंका भङ्ग श्रांघके समान है। देवायु और देवगति चतुष्कका भङ्ग रूप्णलेश्याके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्हृष्ट
श्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है १ तात्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि तियुक्त और
मन्द्य उक्त प्रकृतियोंके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। आत्व और उद्योतके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ तत्मायोग्यिवशुद्ध और उत्हृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर दो गति
का जीव आत्वपके और तीन गतिका जीव उद्योतके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। नील
लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तथा कापोतलेश्यामें सर्वविशुद्ध नारकी
तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—यहां पर मनुष्यगित आदि अद्वाईस प्रशस्त प्रश्वतियाँ ये हैं—मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक श्ररीर, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरस्त संस्थान, श्रोदारिक आङ्गोपाङ्ग, वन्नर्भनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परवात,
उच्छ्वास, प्रशस्त विहायागिति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय,
यशःकीति और निर्माण।

४३६. पीतलंश्यामं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चमति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुरुक, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगांत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रअनुभागव्यका स्वामी कौन हैं? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिण्यादृष्टि सौधर्म-ऐशान करूप तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त तीस प्रकृतियोंके तथा तीर्थक्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत, सर्व विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। स्निवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्धक करनेवाला अन्यतर मिण्यादृष्टि सौधर्म और ऐशान कर्लतकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका

१. ता० प्रती चदुजा० गोरह० गिरयायु० इति पाठ:।

सम्मादि० तप्पाओग्गविसु० । देवाउ० ओघं ! मणुसगदिपंचग० उक० कस्स० ? अण्ण० देव० सम्मादि० सव्वविसु० । असंपत्त०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक० कस्स० ? अण्ण० ईसाणहेहिमदेवस्स मिच्छा० तप्पा०संकि० उक० वट्ट० ।

४३७. पम्माए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सेालसक०-पंचणोक०-तिरिक्खगदि - हुंड०-असंपत्त०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० सहस्सारंतदेवस्से मिच्छादि० सागा० सव्वसंकि०। सेसं तेउ०भंगो। णवरि एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज।

४३८. सुक्काए पंचणा०-णवदंसणा०-आसादा०-भिच्छ०-सेालसक०-[पंच-णोक०] हुंड०-असंप०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० आणदादिदेव० भिच्छादि० सागा० संकि०। सादादि-खिवगाणं ओघं। चदुणोक०-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० आणदादि-

स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है । देवायुका भङ्ग आयके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविद्युद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है । अस्म्प्राप्तास्त्रपादिकासंहनन, अप्रशस्त विद्याययोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि ऐशान कल्प तकका देव व नीचेका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—यहां देवगति आदि प्रशस्त तीस प्रकृतियाँ ये हैं—देवगति, पञ्चे न्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, आहारकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, मुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीथकर।

४३.९ पद्मलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, ऋसम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, ऋप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, ऋप्रशस्त विहायोगित, ऋस्थिर ऋादि छह, नीच गोत्र ऋौर पाँच ऋन्तरायके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं १ साकार-जागृत ऋौर सव संक्लेशयुक्त ऋन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां एकेन्द्रियजाति, ऋातप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होनेसे उनके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका स्वामित्व छोड़कर कथन करना चाहिए।

४२८. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दरानावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असन्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायागित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर आनतादिका मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातादि चपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । चार नोकषाय, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

देव० मिच्छा० तप्पा०संकि०। मणुसाउ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० असंजद-सम्मादि० तप्पा०विस्र०। देवाउ० ओघं। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० १ अण्ण० देव० सम्मादि० सव्ववि०।

४३६. भवसि० ओघं। अब्भवसि० पंचणाणावरणादि० ओघं। सादा०-पंचिदि०तेजा०-क०-समचढु०-पसत्थवण्ण४-अगु०३ -पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-[जस०]
णिमि०-उच्चा ० कस्स० १ अण्ण० चढुगदिय० पंचिदि० सिण्ण० सागा० सव्ववि०।
चढुणो०-चढुसंठा०-चढुसंघ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चढुग० तप्पा०संकि०। आउ०
मदि०भंगो। णिरयगदि-णिरयाणु० तिरिक्ख-मणुस० सव्वसंकि०। तिरिक्ख०-असंपत्तसे०-तिरिक्खाणु० देव० णेरइ० सव्वसंकि०। मणुसगदिपंचग० देव० णेरइ०
सव्विद्यु० उक्क० वट्ट०। देवगदि०४ उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस०
सागार० सव्विद्यु०। सेसाणं ओघं।

तत्प्रायांग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर मिश्यादृष्टि आनतादिका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कीन हैं ? तत्प्रायांग्य विशुद्ध अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी हैं। देवायुका भङ्ग श्रोधके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

विशेगार्थ—यहां जिन क्ष्यक प्रकृतियोंका निर्देश किया है वे ये हैं—सातावेदनीय, देवगति, पक्के न्द्रियज्ञाति, वैक्रियिकशरीर, अाहारकशरीर, तेजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुतघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायागित, त्रस, वाद्र, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगात्र।

४३६. भव्यों में श्रायके समान भङ्ग है। श्रमन्यों में पाँच ज्ञानावरणादिका भङ्ग श्रोघके समान है। स्वातावेदनीय, पञ्च न्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर समचतुरस्वसंस्थान, प्रशस्त वर्ण्चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, यशःकीर्ति, निर्माण श्रोर उच्चगात्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रोर सर्विश्चयु श्रन्यतर चार गतिका पञ्चे न्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। चार नोकषाय, चार संस्थान श्रोर चार संहननके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। चारों श्रायुश्चोंका भङ्ग मत्यज्ञानियों के समान है। नरकगति श्रोर नरकगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, श्रसन्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन श्रोर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, श्रसन्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन श्रोर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, श्रसन्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन श्रोर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? सर्वविश्च श्रोर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। स्वगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। सेवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। साकार-जागृत श्रोर सर्वविश्च श्रान्यतर तिर्यञ्च श्रोर मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है। साकार-जागृत श्रोर सर्वविश्च श्रान्यतर तिर्यञ्च श्रोर मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका स्वामी है।

श्वा० प्रतौ ग्रगु ४ इति पाठः । २. ता० प्रतौ थिरादिछ्० उच्चा०, ग्रा० प्रतौ थावरादिछ्० ग्रिमि० उच्चा० इति पाठः ।

४४०. खइग० ओधिभंगो । णाणावरणादि० सत्थाणे सन्वसंकि० । बेदगे ओधि०भंगो । णवरि खइगपगदीणं अप्पमत्त० सन्वविसु० । उवसम० ओधिभंगो ।

४४१. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-सोलसक०-इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु०-तिरिक्त०-वामण०--खीलिय०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०--उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचत० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चदुगदिय० सागा० सन्ब-संकि०। सादा०-पंचिद्द०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चदुगदि० सागा० सन्ब-विग्रु०। पुरिस०-इस्स-रदि-तिण्णिसंद्वाण-तिण्णिसंघडण० उक्क० कस्स० १ अण्ण० चदुग० तप्पा०संकिलि०। तिरिक्तायु०-मणुसायु० उक्क० कस्स० १ अण्ण० तिरिक्तायुग० सागा० तप्पा०विग्रु०। देवाउ० उक्क० कस्स० १ अण्ण० मणुस० तप्पा०

शेष प्रकृतियोंका भङ्ग त्रोघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ अभव्योंमें जिन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका भङ्ग खोघके समान कहा है वे खोघ प्ररूपणाके समय गिनाई ही गई हैं। उनकी संख्या ५६ है, इसलिए वहाँसे जान लेनी चाहिए। यहाँ अन्तमें शेष प्रकृतियोंका स्वामित्व खोघके समान कहा है पर उनका नामनिर्देश नहीं किया है। वे ये हैं—एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूद्म, अपर्याद खोर साधारण।

४४०. चायिकसम्यग्टिष्टियोंमें श्रविधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग हैं। इतनी विशेषता है कि ज्ञानावरणादिकका स्वस्थानमें सर्वसंक्लिष्ट चायिकसम्यग्टिष्टिके स्वामित्व कहना चाहिए। वेदकसम्यग्टिष्टियोंमें श्रविधज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि ३२ क्षपक प्रकृतियाँ हैं। उनका यहां सर्वविशुद्ध श्रप्रमत्तसंयत जीवके स्वामित्व कहना चाहिए। उपशमसम्यग्टिष्ट्योंमें श्रविधज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग हैं।

विशेषार्थ—३२ चपक प्रकृतियोंका अविधिज्ञानीके जिस स्थानमें उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है उसी स्थानमें उन प्रकृतियोंका उपशमसम्यग्दिष्टिके स्वामित्व कहना चाहिए। अन्तर इतना है कि अविधिज्ञानीके क्षपकश्रेणिमें कहना चाहिए और उपशम सम्यग्दिष्टिक उपशमश्रेणिमें।

४४१. ससादनसम्यग्दृष्टियोंमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसाता वेदनीय, सोलह कपाय, स्त्रीवेद, अरित, शांक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, तियञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायागित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत और सर्वसंक्लेश-युक्त अन्यतर चार गितका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कामणशरीर, समचतुस्त्र संस्थान, प्रशस्त वर्णाचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहागित, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, और सर्विशुद्ध अन्यतर चार गितका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। पुरुपवेद, हास्य, रित, तीन संस्थान और तीन संहननके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गितका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तियञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तियञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। तियञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १

...

विसु०। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सव्ववि०। देवगदि० ४ तिरिक्ख० मणुस० सागा० सव्वविसु०। उज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए सागार० सव्वविसु०।

४४२. सम्मामि० पंचणा०-छदंसणा०--असादा०--वारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि०
सागा० णि० उक्क० संकि० मिच्छनाभिमु० । सादावे०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०पसत्थवण्ण०४--अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ?
अण्ण० चदुगदि० सागा० सव्वविमु० समनाभिमु० । इस्स-रदि० उक्क० कस्स० ?
अण्ण० चदुगदि० तप्पा०संकि० । मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव-णेरइ०
सागा० सव्वविमु० सम्मनाभिमुह० । देवगदि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख०
मणुस० सम्मनाभिमुह० ।

४४३. मिच्छादिद्वी० मदि०भंगो । सण्णी० ओघं । असण्णी० तिरिक्खोघं । णवरि सादादीणं उक्क० कस्स० १ अण्ण० पंचिंदि० सागा० सव्वविसु० । आहार०

तत्प्रायाग्य विशुद्ध अन्यतर मनुष्य देव।युके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वाभी है। मनुष्यगितपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है? सर्वविशुद्ध देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगित चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर तिर्येश्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सवविशुद्ध अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

४४२. सम्यिगध्याद्दाष्ट जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नांकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, अस्थिर, अशुम, अयशःकीर्त और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुमागवन्धका स्वामी कीन हैं? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिध्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुमागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पञ्च निद्रयज्ञाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायागित, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उचनाविक उत्कृष्ट अनुमागवन्धका स्वामी कीन हें? साकार-जागृत, सर्वावशुद्ध और सम्यक्त्यके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी कौन हें? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत, सर्व विशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यक्ष और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यक्ष और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामी है।

४४३. मिथ्यादृष्टि जीवोंके मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवोंके श्रोघके समान भङ्ग है। श्रसंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्जोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातादि २६ प्रश्नृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रौर सर्वविद्युद्ध श्रन्यतर

ओघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उकस्सयं सामित्तं समत्तं।

४४४. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० जह० अणुभागबंधो कस्स० ? अण्ण० खवग० सुहुमसं० चिरमे० जह० वह० । थोणगिद्धि०३—मिच्छ०-अणंताणुवंधि०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मणुस० मिच्छादि० सागा० सव्विद्धा० संजमाभिसुह० जह० वह० । णिद्दा-पचला० जह० कस्स० ? अण्ण० अपुव्वकरणखवग० णिद्दा--पचलावंधचिरमे वह० । सादासाद०--थिराथिर--सुभासुभ-जस०-अजस० जह० कस्स० ? अण्ण० चदुग० मिच्छादि० वा सम्मादि० वा परि-यत्तमाणमिजिभमपरिणामस्स जह० अणु० वह० । अपच्चक्खाणा०४ जह० कस्स० ? असंज्ञी पंचिन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियों क उत्कृष्ट अनुभागवन्धक। स्वामी है । आहारक जीवोमें ओघके समान भक्त है । अनाहारक जीवोमें कार्मणकाययांगी जीवोंके समान भक्त है ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र उत्कृष्ट स्वामित्त्रका विचार करते समय मूलमें कहीं पर साकार-जागृत, और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला ये दो विशेषण दिये हैं और कहीं पर नहीं दिये हैं। पर ये जहाँ नहीं दिये हों वहाँ इन्हें भी लगा लेना चाहिए, क्योंकि जो साकार-जागृत होता है उसके ही उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। उसमें भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध से याय सब विशेषताओं के रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नियमसे होता ही है एसा भी एकान्त नियम नहीं है, इसलिए जब उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो रहा हो तभी उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए। इसी प्रकार कहीं उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त या सर्वविशुद्ध आदि विशेषणका भी मूलमें निर्देश न किया हो तो उसे भी जान लेना चाहिए। यहाँ पर असंज्ञीके उत्कृष्ट स्वामित्व कहते समय जो सातादि प्रकृतियोंका पृथक्षे संकेत किया है। वे ये हैं—देवगित, सातावेदनीय, पंचेन्द्रिय जाति, वैकियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैकियिक आङ्गापाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, बादर, पर्यात, प्रत्येक, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगात्र।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

४४४. जवन्यका प्रकरण हैं। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओय और आदेश। आप पाँच ब्रानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन हैं? अन्तिम जघन्य अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षिक सूक्त्मसाम्परायिक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व और अनन्ता-बन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मिश्यादृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। निद्रा और प्रचलाके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? निद्रा आर प्रचलाके वन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अपूर्वकरण क्ष्पक उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका मिश्यादृष्टि और सम्यग्रहि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं। अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य

अण्ण० मणुस० असंजदसम्मा० सागा० सन्विवसु० से काले संजमं पिडविज्ञिहिदि ति । एवं पचक्लाणा०४ । णविर संजदासंज० । कोथसंजल० जह० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियिद्दि० कोथसंजल० चिरमे अणुभा० वद्द० । एवं माण-मायाणं । लोभ-संजल० जह० कस्स ? अण्ण० खवग० अणियद्दि० चिरमे जह० वद्द० । इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० चदुग० पंचिदि० सिण्ण० मिच्छा० सन्वािह० सागा० तप्पा०विसु० । पुरिस० जह० कस्स० ? अण्ण० खवगस्स अणियद्दि० पुरिस० चिरमे अणु० वद्द० । हस्स-रिद-भय-दुगुं० जह० कस्स० ? अण्ण० खवग० अपुन्व० सागा० सन्विवसु० चिरमे अणुभा० वट्द० । अरिद-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० पमत० सागा० तप्पा०विसु० । णिरय-देवाउ० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० जहण्णिगाए पज्जत्तगणिन्वत्तीए णिन्वत्तमाणयस्स मिन्भमपिरणामस्स । तिरिक्ख०-मणुसाउ० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० निच्छादि० जहण्णियाए अपज्जत्तगणिन्वतीए णिन्वत्तमाणमिन्भम० । णिरय-देवगदि-दोआणु० ज० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० मिच्छा० परिय०मिन्भम० जह० वट्ट० ।

श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध श्रीर तदनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्टिष्ट मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चारके जवन्य श्राहुभागवन्यका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि यह संयतासंयतके कहना चार्हए । क्र.धसंज्वलनके जवन्य श्रतुभागवन्धका स्वामी कौन है १ क्रोधसंज्व-लनके अन्तिम अनुभागवन्धमें अवस्थित अन्यतर त्तपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त प्रवृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मानसंज्वलन श्रौर माया संज्वलनके जघन्य श्र<mark>नुभाग</mark>-बन्धका स्वामी जानना चाहिए। लोभसंज्वलनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ अन्तमें जघन्य त्रानुभागबन्ध करनेवाला त्रान्यतर क्षपक त्रानिवृत्तिकरण जीव लोभसंज्वलनके जघन्य श्रनुमागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसक्वंदके जघन्य श्रनुमागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और तत्त्रायोग्य त्रिशुद्ध अन्यतर चार गतिका मिध्यादृष्टि पञ्चोन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पुरुषवेदके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? अन्तमें पुरुषवेदका जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर चवक अनिवृत्तिकरण जीव पुरुषंवदंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामा है। हास्य, रति, भय और जुगुप्साके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध परिणामवाला और च्चन्तमें जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला त्रान्यतर त्तपक श्रपृर्वकरण जीव इनक जघन्य श्रनुभागवन्ध-का स्वामी है। अरित और शांकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृन और तत्त्र।योग्य विशुद्ध अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकायु श्रीर देवायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्त्रामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्त-मान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्ज और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यक्रायु श्रौर मनुष्यायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तिमान श्रीर मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्यञ्ज श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति, देवगति श्रीर दो श्रानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिग्णामवाला श्रोर जघन्य तिरिक्ता - तिरिक्ताणु - णीचा ० ज० क० ? अण्ण ० सत्तमाए पुढ० मिच्छा ० सव्विष्ठि पज्जनीहि पज्ज ० सागा ० सव्विष्ठ ० सम्मत्ताभिष्ठह ० जह ० वह ० । मणुस ० न्छसं ठा ० न्छसं घ० - मणुसाणु ० - दोविहा ० - मिन्छादि ० परिय ० मिन्छा ० जह ० कस्स ० ? अण्ण ० चहु - गिद् ० पंचिदि ० सिण्ण ० मिन्छादि ० परिय ० मिन्छा ० पंचि ० - तेजा ० - क० - प्यत्थ वण्ण ० ४ - अगु ० ३ - तस ० ४ - णिमि ० जह ० कस्स ? अण्ण ० चहु गदि ० मिन्छा ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० । ओरालि ० - ओरालि अंगो ० - उज्जो ० ज० क० अण्ण ० देवस्स ० णेरइ० मिन्छा ० सन्वाहि ० प० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० । वेउ व्वि ० - वेउ व्व ० ऋंगो ० ज० क० ? अण्ण ० तिरिक्त ० मणुस ० पंचि ० सिण्ण ० मिन्छा ० सन्वसंकि ० । आहारदु गं ० ज० क० ? अण्ण ० अप्पमत्तसंज ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० सागा ० णि ० उक्क ० संकि ० पमत्ताभिष्ठ ० जह ० वह ० । अप्पसत्थ ० ४ - उप ० जह ० संकि ० ।

श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्ज श्रौर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभागवन्ध-का स्वामी है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रकं जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन हैं ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुत्रा, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख श्रीर जवन्य श्रनुभाग-बन्ध करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, मध्यके सुभगादिक तीन युगल और उच्चगोत्रके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जवन्य अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य ऋनुभागबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके जयन्य श्रनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन जाति, सूद्रम, अपर्याप्त श्रीर साधारणके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्ज श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जयन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। पंचेन्द्रिय जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुराष्ट्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रीर नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। श्रीदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुन्ना, साकार-जागृत न्त्रीर नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रन्यतर मिध्यादृष्टि देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जयन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके जवन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त श्रन्यतर पंचेद्रिय संक्री मिथ्यादृष्टि तिर्येश्व श्रीर मनुष्य उक्त प्रशृतियोंके जयन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। श्राहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, प्रमत्त-संयमके श्रभिमुख श्रीर जवन्य श्रनुभागवन्य करनेवाला श्रन्यतर श्रप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियों के जवन्य श्रनुभागवन्थका स्वामी हैं। श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क श्रीर उपघातके जवन्य श्रनुभागवन्थका

१. ता पतौ मिष्का । सध्यसंदि । मिष्का सध्यसंदि (?) बाहारदुर्ग इति पाठः ।

कस्त० ? अण्ण० अपुञ्चक० खनग० परभवियणामाणं वंधचरिमे० बट्ट० । आदाब० जह० कस्त० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंतस्त देवस्त मिच्छादि० उक्क० संकि० जह० बट्ट० । तित्थय० ज० क० ? अण्ण० मणुस० असंजदसम्मा० सागा० णि० उक्क० संकि० मिच्छताभिम्रह० जह० वट्ट० ।

४४५. णिरएसु पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सागा० सव्ववि० ।
थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त०-अ्रणंताणुवं०४ जह० कम्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा०
सव्ववि० सम्मत्ताभिमु० जह० घट्ट० । सादासादा०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० वा मिच्छा० वा परिय०मिक्भम० । इत्थि०-णवुंस०
ज० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०विसु० । अरदि-सोग० जह० कस्स० ?
अण्ण० सम्मादि० सागा० तप्पा०विसु० जह० वट्ट० । तिरिक्खायु० मणुसायु० जह० कस्स० ? मिच्छा० जहण्णिगाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिवत्तमाणमिक्भम० जह० वट्ट० ।
तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ओयं । मणुस०-इस्संटा०-इस्संघ० मणुसाणु०-दो-

स्वामी कीन हैं १ परभवसम्बन्धा नामकर्मकी प्रकृतियोंक बन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। आत्रपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है १ उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सौधर्म-ऐशान कल्पतकका मिश्यादृष्टि देव आत्रपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट सं लिश-युक्त, मिश्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धक करनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४४५ नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुपवेद, हास्य, रति. भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, व्ययात श्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्द्रष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंक जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, सर्विशुद्ध, सम्यक्त्वके श्रभिमुख श्रीर जघन्य श्रनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिश्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, स्थिर, ऋस्थिर, शुभ, ऋशुभ, यशःकीर्ति ऋौर ऋयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिग्णामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिश्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदके ज्ञधन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रन्यतर मिश्या-दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरित श्रीर शोकके जघन्य श्चनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध श्रौर जघन्य श्रनुभागबन्ध करनेवाला स्त्रन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य त्र्रानुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यक्कायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान. मध्यम परिणामवाला श्रीर जघन्य श्रतुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिध्याद्दष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका विहा०-तिण्णियुगळ०-उचा० जह० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० परिय०मिडिक्सम० । पंचिदि०-ओराळि०-तेजा०--क०-ओराळि० झंगो०--पसत्थवण्ण४-अगु०३-उज्जो०--तस०४-णिमि० जह० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० सागा० णि० उक्क० संकि० जह० वट्ट० । तित्थ० जह० कस्स० १ अण्ण० सम्मादि० सागा० तप्पा०संकि० । एवं सत्तमाए पुढ० । णवरि मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० जह० कस्स० १ अण्ण० सम्माइिट्स सम्मामिच्छत्ताभिग्रहस्सं । एवं छउवरिमास् । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० मणुस-गदिभंगो ।

४४६. तिरिक्त्वेसु पंचणा०-छदंसणा०-अद्दक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४— उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० संजदासंजद० सागार० सव्वविसु० । थीण-गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सव्वविसु० संजमाभिमुह० जह० वट्ट० । अपचक्त्वा०४ एवं चेव । णवरि असंज० । इत्थि०-णवुंसँ० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० तप्पा०विसु० । अरदि-सोग० जह० कस्स० ?

भक्त श्रोघके समान है। मनुष्यगति, छह, संस्थान छह संह्नन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, सुभगादि मध्यके तीन युगल श्रोर उचगात्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मिथ्याद्दिट नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। पश्चे निद्रय जाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचनुष्क श्रोर निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त श्रोर जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिथ्याद्दिट नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यागत्यानुपूर्वी श्रोर उचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? सम्यग्निश्यत्वके श्रमिमुख श्रन्यतर सम्यग्दष्टि नारकी उक्त प्रश्रतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? सम्यग्निश्यत्वके श्रमिमुख श्रन्यतर सम्यग्दष्टि नारकी उक्त प्रश्रतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्रगिति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी श्रोर नीच-गोत्रका भङ्ग जैसा नारकियोंमें मनुष्यगतिका जघन्य स्वामित्व कहा है उस प्रकार जानना चाहिए।

४४६. तिर्यक्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुरक, उपघात और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संयतासंयत तिर्यक्च उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध, संयमासंयमके अभिमुख और जयन्य अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मिण्यादृष्टि तिर्यक्च उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके जयन्य अनुभागवन्यका स्वामी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्यायोग्य विशुद्ध

ता प्रती उच्चा॰ "भिमुहस्स, श्रा॰ प्रती उच्चा उक्क॰कस्स श्रयण॰ सम्मत्ताभिमुहस्स इति पाठः ।
 श्रा॰ प्रती इत्थि॰ पुरिस॰ ग्रवुंस॰ इति पाठः ।

अण्ण० संजदासंजर्दं ० तप्पा०विसु० । सादासादा०-थिरादितिण्णियुग०-आड०४ ओघं । तिण्णिगदि—चदुजादि--अस्संठा०--अस्संघ०--तिण्णिआणुपु०--दोविहा०---थावरादि०४ — [मिज्भिल्ल-] तिण्णियुग०-उच्चा० जह० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० परिय०मिज्भम० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० कस्स० १ अण्ण० वाद्रतेउ०-वाउ० सव्वाहि० सागा० सव्वविसु० । पचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क० वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४ — अगु०३-तस४ —णिमि० जह० कस्स० १ अण्ण० पंचिदि० सिण्ण० मिच्छाइि । सागार० णि० उक्क० संकि० । ओरालि०२ — आदाउज्जो० जह० कस्स० १ अण्ण० मिच्छादि० तप्पा०संकि० ज० अणु० वट्ट० । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० मणुसगदिभंगो ।

४४७. पंचिंदियतिरिक्तत्वअप० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंच-णोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स^४०१ अण्ण० सण्णि० सागा० सव्व-

श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्येक्च एक प्रकृतियोंके ज्ञचन्य त्रानुभागबन्धका स्वामी है। त्रारित ऋौर शोकके जवन्य अनुभागवन्यका स्वामी कीन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर संयतासंयत तियञ्च उक्त प्रकृतियोंके ज्ञांचन्य श्रानुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, स्थिर, श्रास्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति ये तीन युगल तथा चार आयु इनका भङ्ग ओघके समान है। तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन त्रानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थायर श्रादि चार, सभगादि मध्यकं तीन युगल श्रीर उच्चगात्रके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिश्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुमाग-बन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जगति, तियञ्जगत्यानुपूर्वी त्र्यार नीचगात्रके जवन्य त्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और सर्वविश्रद्ध अन्यतर वादर अग्निकायिक और बादर वायकायिक जीव उक्त प्रवृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्चीन्द्रयजाति, वैक्रियिक-शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क श्रीर निर्माणके जयन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत श्रीर नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्च न्द्रिय संज्ञी मिध्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है। स्त्रीदारिकशरीर, श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप श्रीर उद्योतके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? तत्प्रायाग्य संक्लेशयुक्त और जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका भङ्ग मनुष्यगति प्रकृतिके जघन्य स्वामित्वके समान है।

४४७. पक्चे न्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रौर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृन श्रौर सर्वावशुद्र अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च

१. ता॰ प्रती मिच्छा "ख॰ संजदासंजद॰, द्या॰ प्रती मिच्छा॰ तप्पा॰ विसु॰ " प्रया॰ संजदासंजद॰ हित पाठः। २. ता॰ प्रती पंचिं० " संकि॰, श्रा॰ प्रती पंचिंदि सरिया॰ " उक्क॰ संकि॰ हित पाठः। ६. ता॰ प्रती ज॰ वाउ॰ (वह॰) एवं, श्रा॰ प्रती ज॰ वा॰ उक्क॰ एवं हित पाठः। ४. ता॰ प्रती पंचत॰ उ० (ज०) क०, श्रा॰ प्रती पंचत उक्क॰ कस्स० हित पाठः।

विद्यु० । सादासादा०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगोद० जह० कस्स० ? अण्ण० परियत्त०मिष्ठभम० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० तप्पा०विद्यु० । दोआउ० ओघं । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० उक्क०संकि० । ओरालि० अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० ज० कस्स० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० तप्पा०संकि० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्विवगिलिंदि०-पंचिदि०-तस०अपज्ज०-सव्वपुढवि०-आउ०-वणप्पदि-णियोद०-बादरपत्ते० । मणुसेसु ३ खविगाणं ओघं । सेसाणं पंचिदि०तिरिक्खभंगो ।

४४८. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सन्ववि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छै०-अणंताणुवं०४ जह० कस्स०? अण्ण० मिच्छा० सागा० सन्विदसु० सम्मताभिग्रह० । सादादीणं चढुगुगलं ओघं । इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० तप्पा०विसु० ।

उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस-स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। स्त्रविद, नपुंसकवेद, अरित और शोकके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तद्मायोग्य विशुद्ध अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग आंघके समान है। औरारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चोन्द्रय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब प्रथिवीकायिक, सव जलकायिक, सव बनस्पतिकायिक, सव निगाद और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

४४८ देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन चार युगलोंका भक्त आयके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्यायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

१. ता॰ प्रतौ थीयागिद्धि० ४ मिच्छु० इति पाठः ।

अरदि-सोग० ज० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० तप्पा०विसु० । दोआयु० जह० कस्स० ? अण्ण० जहण्णिगाए पज्जतगणिव्वतीए णिव्वत्त० मिन्सम० । तिरिक्ख०-मणुस०- क्रस्संटा०-क्रस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०-तिण्णियुग-णीचागो०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मिन्सम० । एइंदि०-थावर० ज० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंत-देवस्स मिच्छादि० परिय०मिन्सम० । पंचिदि०--ओरालि० अंगो०--तस० जह० कस्स० ? अण्ण० सण्णक्कुमार उवर्रि याव सहस्सार ति मिच्छा० सव्वसंकि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-उज्जो०-वाद्र-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि० सागा० सव्वसंकि० । आदाव० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वसंकि० । तित्थय० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० सागा० तप्पासंकि० ।

४४६. एवं भवण०-वाणवंतर-जोदिसि०-सोधम्मीसाण० । णवरि पंचिदि०-ओराल्ठि०त्रंगो०-तस० जह० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० तप्पा०संकि० । अथवा पंचिदि०-तस० ज० कस्स० १ अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्भिम० । सणक्कुमार

अरित और शांकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य बिशुद्व अन्यतर सम्य-ग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्यका स्वामी है। दो आयुओंके जयन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान ऋौर मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुसागबन्धका स्वामी है। तियञ्चगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, मध्यके सुभगादिक तीन युगल, नीचगोत्र ऋौर उच्चगोत्रके जवन्य श्रानुभागवन्यका स्वामी कोन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रान्यतर मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुमागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति स्रोर स्थावरके जवन्य अनुमागबन्धका स्थामो कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामश्राला अन्यतर मिध्यादृष्टि ऐशान करुयतकका देव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुमागवन्यका स्वामी है। पञ्चीन्द्रय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गापाङ्ग श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? सर्वसंक्लेशयुक्त श्रन्यतर सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकका मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य त्र्यनुभागवन्धका स्वामी है। त्र्यौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलचुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक अौर निर्माणके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी कोन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत श्रोर सर्व संक्लेशयुक्त श्रन्य तर मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। आतपके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लेशयुक्त ऋन्यतर एशान कल्पतकका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य धनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जवन्य अनुभागवन्थका स्त्रामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्त्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतिके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४४६. इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी श्रीर सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पक्चे न्द्रिय जाति, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रन्यतर मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। श्रथवा पक्चे न्द्रिय जाति श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके

१. ता॰ प्रतौ दोवि॰ तिरिया इति पाटः ।

याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्जा ति सो चेव भंगो । णविर तिरिक्ख॰३ णित्थि॰। मणुस॰-पंचिंदि॰-ओरालि॰-तेजा॰-क॰-ओरालि॰श्चंगो॰-पसत्थवण्ण॰४-मणुसाणु॰-अगु॰३-तस॰४-णिमि॰ जह॰ कस्स १ अण्ण॰ मिच्छा॰ सन्वसंकि॰।

४५०. अणुदिस याव सन्बद्ध ति पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०अप्पसत्थवण०४-उप०-पंचत० जह० कस्स० ? अण्ण० सागा० सन्वविसु०। सादादिचदुगुगत्त० जह० कस्स०? अण्ण० परिय०मिक्सम०। अरदि-सोग० जह० कस्स० ?
अण्ण० सागा० तप्पा०विसु०। मणुसाउ० जह० कस्सै० ? अण्ण० जहण्णियाए
पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्त० परिय०मिक्सम०। मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०समचदु०-ओरालि० ऋंगो०-व ज्जरि०-पसत्थ०४--मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण सन्वसंकि०।

४५१. एइंदियाणं पंचिंदि०तिरि०अपज्जन्तभंगो । णवरि वादरस्से ति भाणि-

जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी हैं। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नो प्रेवेयक तक वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्येख्यगति, तिर्येख्यगत्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीन प्रकृतियोंका (तथा तिर्येख्यायुका) बन्ध नहीं होता। तथा इनमें मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रय जाति, औदारिकशारीर, तैजसशारीर, कामणशारीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुत्तघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं।

४५०. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत श्रोर सर्विविशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ श्रोर यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन चार युगलोंके जयन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? परिवतमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरित श्रोर शोकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत श्रोर तत्वायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान श्रोर मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव मनुष्यायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्याति, पञ्च निद्रय जाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचनुरक्षसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गापाङ्ग, वअर्थभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुनिक, प्रशस्त विद्यागिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रोर उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लिप्ट अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लिप्ट अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लिप्ट अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

४५१. एकेन्द्रियोंमें पक्केन्द्रिय तिर्यक्क अपर्याप्तकोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है

१ ता॰ प्रतो मणुसाउ॰ उ॰ (जह॰) क॰, घा॰ प्रतो मणुसाड**॰ उक्क॰ कस्स इति पाठः।**

दव्वं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० णीचा० तिरिक्खोघं । एवं सव्वएइंदिए ।

४५२. तेउ०-वाउ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरि-क्खग०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु-उप०-णीचा०-पंचंत० जह० कस्स० १ अण्ण० बादरस्स सव्वविद्य० । सेसं तिरिक्ख०अप०भंगो० ।

४५३. पंचिद्दि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधाद्दि०४-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारग ति ओघभंगो । ओरालियकायजोगी० मणुसि० भंगो । णवरि तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं ।

कि बादरोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। तथा तिर्यक्रगति, निर्यक्रगत्यानुपूर्वी श्रीर नीच-गोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंमें जानना चाहिए।

४५२. ऋग्निकायिक और वायुकायिक जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तियंद्धगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तियंद्धगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जपन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तियंद्ध अपर्याप्तकोंके समान है।

४५१. पद्घे न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कपायवाले, चजुदर्शनी, अचजुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें आघके समान भङ्ग हैं। श्रौदारिककायोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग हैं। इतनी विशेषता है कि श्रौदारिककाययोगी जीवोंके तिर्यक्षगति, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यक्षोंके समान है।

४५४. श्रौदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रोर सर्विवशुद्ध श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रोर मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्र्यात्व श्रोर श्रन्ततानुवन्धी चारके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रोर सर्विवशुद्ध श्रन्यतर पञ्च निद्रय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है । साता-श्रसाता, स्थिर-श्रास्थर, श्रुभ-श्रशुभ श्रोर यशःकीर्ति-श्रयशःकीर्ति इन चार युगलोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिश्र्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद श्रोर नपुंसक्वेदके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद श्रोर नपुंसक्वेदके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है । त्रायोग्य विशुद्ध श्रोर जघन्य श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर मिश्यादृष्टि

१. ता० सा० प्रस्योः सादादितिषिषायुग० इति पाढः ।

आयु० ओघं । तिरिक्तग०-तिरिक्तग७०-णीचा० ज० कस्स० ? अण्ण० बादरतेष्ठ०-वाउ० से काले सरीरपज्जती जाहिदि ति जह० वट्ट० । मणुसग०-पंचजादि-छस्संठा ०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तसादिचदुयुग०-सुभगादितिण्णियुग-उच्चा० जह० कस्स०? अण्ण० मिच्छा० परिय०मिक्सम० । देवगदिपंच० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ति० मणुस० सम्मा० सागा० सन्वसंकि० से काले सरीरपज्जती जाहिदि ति । णविर तित्थय० मणुसग० । ओरालि०—तेजा०-क०—पसत्थवण्ण०४—अगु०—णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० पंचिदि० सण्णि० मिच्छा० सन्वसंकि० । श्रोरालि०श्रगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० जह० कस्स० ? अण्ण० पंचि० सण्णि० तप्पा०संकि० ।

४५५. वेडिव्यका० पंचणा०-छदंसणा०-बारक०-पंचणोर्कै०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० सम्मादि० सागा० सव्वविसु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्ववि० सम्मत्ताभिमुह० । सादादिचदुयुग० जह० कस्स० ? अण्ण० देव०

जीव उक्त प्रशृतियोंके जवन्य अनुभागवन्थका स्वामी है। अरित और शांकके जवन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कीन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। दो त्रायुत्रोंका भङ्ग त्रांवक समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानु-पूर्वी श्रीर नीचगात्रके जयन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ जयन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला जो अन्यतर वादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्ति प्रहण करेगा वह उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्यका स्वामी है। मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह सहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि चार युगल, सुभगादि तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणाम-वाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। देवगति-पञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हं ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्येक्च और मनुष्य अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्ति प्रहण करेगा वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका स्वामी हैं। इतनी विशेषता है कि तीथङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रतुभागवन्यका स्वामी मनुष्यको कहना चाहिए। श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन हैं ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चोन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। श्रीदारिक श्राङ्गांपाङ्ग, परवात, उच्छवास, आतप श्रीर उद्यातके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? तत्रायाग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्च न्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है।

४५५. वैकियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कवाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख

१. ता० भ्रा॰ प्रत्योः मणुसग० पंचिदि० छुस्संठा० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पंचणा० इति पाठः ।

णेरइ० सम्मादि० मिच्छादि० परिय०मज्भिम०। इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० १ अण्ण० देव० णेरइ० तप्पा०विसु०। अरदि०-सोग० ज० क० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० सम्मादि० सागा० तप्पा०विसु०। दो आयु० ज० क० १ अण्ण० देव० णेरइ० जहण्णियाए पज्जत्तर्गाणव्वतीए णिव्वत्त० परिय०मज्भिम०। मणुस०-ब्रस्संठा०-ब्रस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुग०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० परिय०मज्भिम० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० कस्स० १ अण्ण० णेरइ० सत्तमाए पुढवीए मिच्छा० सागा० सव्ववि० सम्मत्ताभिम्रह० जह० वट्ट०। एइंदि०-थावर० ज० क० ? अण्ण० देव० ईसाग० परि०मज्भिम०। पंचिं० ओरालि० ऋंगो०-तस० ज० कै०? अण्ण० सणकुमार उवरिमदेव०सव्वणेरइ० मिच्छादि० सव्वसंकि० । ओराहि०-तेजा०-क०--पसत्यवण्ण०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज०क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि०। आदाव० ज०क० ? अण्ण० ईसाणंतदेव० मिच्छादि० सव्वसंकि०। उज्जो० ज० क०? अण्ण० देव० अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्य-तर सम्यन्दृष्टि या मिण्यादृष्टि देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद स्त्रीर नपुंसकवेदके जघन्य ऋनुमागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध स्त्रन्यतर देव ख्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य खनुभागवन्धका स्वामी है। खरित ख्रीर शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रीर तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दष्टि देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जयन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। दो श्रायुत्रोंके जयन्य श्रनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान स्रोर परिवर्तमान मध्यम परिणाम वाला श्रान्यतर देव श्रीर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रानुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, मध्यके सुभगादिक तीन युगल श्रीर उच गोत्रके जघन्य श्रमुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव श्रौर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्थका स्वामी है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी स्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रतुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख श्रौर जवन्य श्रनुभागबन्ध करनेवाला श्रन्यतर सात्वी पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति त्रीर स्थावरके जवन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर ऐशान कल्पका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पक्रोन्द्रियजाति, औदा-रिक त्राङ्गोपाङ्ग त्र्योर त्रसके जघन्य त्रानुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त त्रान्यतर मिथ्यादृष्टि सानत्कुमारसे ऊपरका देव और सब नरकोंका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी है। श्रोदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु-त्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेश-युक्त म्रान्यतर मिथ्यादृष्टि देव म्र्यौर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य म्रानुभागबन्धका स्वामी है। श्रातपके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वपंक्लेशयुक्त श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि ऐशान करुप तकका देव आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका

^{1.} ता॰ प्रती तस॰ ड॰ (जह॰) क॰ इति पाटः ।

णेरइ० सव्वसंकि० । तित्थ० ज० क० । अण्ण० देव० णेरइ० सव्वसंकि० । एवं चेव वेजिव्वयमि० । णवरि श्राउत्रां णित्थ ।

४५६. आहार०-आहारमि० पंचणा०-छंदसणा०-चहुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ-वण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० क० ? अण्ण० सागा० सन्ववि०। सादादिचहुयुगै० ज० क० ? अण्ण० परिय०मिष्मम०। अरिद-सोग० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०विसु०। देवायु० ज० क० ? अण्ण० परिय०मिष्मम०। देवग०-पंचिदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-समचहु०--वेउन्वि० स्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० सागा० उक्क०संकि०।

४५७, कम्मइ० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मादि० सागा० सन्ववि०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छादि० सागा० सन्ववि०।

स्वामी कीन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर देव श्रीर नारकी उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव श्रीर नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुओंका बन्ध नहीं होता।

४५६. आहारककाययोगी और आहारकिमश्रकाययोगी जीवोमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और सर्विवशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रश्चनियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। साता आदि चार युगलोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव उक्त प्रश्चतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तात्यायोग्य विशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रश्चतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव देवायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव देवायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगति, पर्क्चोन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरूलधुत्रिक प्रशस्त विहायोगिति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उन्वगात्रके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर जीव उक्त प्रश्नुतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

४५७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और सर्वविद्युद्ध अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और सर्वविद्युद्ध अन्यतर चार गतिका मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभाग

१. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः चदुम्रायुग॰ १ ति पाठः ।

सादादिचदुयुगल० ज० क० ? अण्ण०-चदुगिद् सम्मादि मिच्छा० परि०मि किम्म । इत्थि०-णवुंस० ज० क० ? अण्ण० चदुगिद मिच्छा० सागा० तप्पा०सन्वि० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मादि तप्पा०विसु० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढ० सागा० सन्विवसु० । मणुसग०-छस्संद्य०-मणुसाणु०--दोविहा०--तिण्णियुग०--उच्चा० ज० क० ? अण्ण० चदुग० मिच्छा० परिय०मिक्मिम० । एइंदि०-थावर० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० परि०मिक्मिम० । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साह्यं० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परिय०मिक्मिम० । पंचि०-ओरालि०अंगो०-तस्थ० ज० क० ? अण्ण० देव० सहस्सारंतस्स सन्वणेरइय० मिच्छा० सन्वसंकि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४--अगु०-णिमि० ज० क० ? अण्ण०चदुगदि० मिच्छा० सन्वसंकि० । पर०-उस्सा०-उज्जो०-वादर-पज्ज०-पर्ने० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० सन्वसंकि० । देवगदि०४ ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मा० सन्वसंकि० ।

वन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिग्णामवाला अन्यतर सम्यम्द्रष्टि या मिथ्यादृष्टि चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रमुभागबन्धका स्वामी है। स्वीवेद श्रौर नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तात्प्रायांग्य सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरित स्रीर शोकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? तत्प्रायांग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका सम्य-म्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जघन्य त्रानुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? साकार-जागृत श्रीर सर्वविशुद्ध श्रान्य-तर सातवी पृथिवींका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल ऋौर उच गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्थका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति श्रीर स्थावरके जवन्य त्र्यनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिलामवाला श्रन्य-तर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन जाति सुद्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका स्त्रामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चे न्द्रिय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि सहस्रार कल्प तकका देव और सब नरकोंका नारकी उक्त प्रकृतियोंके ज्ञचन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। श्रौदारिकशरीर, तैजसञ्चरीर, कार्मण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्य। दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। परघात, उच्छवास, उद्योत, बादर, पर्याप्त श्रीर प्रत्येकके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियों के जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागबन्धका

१. ता० भ्रा० प्रत्योः सादा० इति पाठः । २ ता० भ्रा० प्रत्योः तस० ४ इति पाठः ।

आदव-तित्थर्ये० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० सव्वसंकि०।

४४८. इत्थि० पंचणा०-चदुदंसाणा०--चदुसंज०-पुरिस०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० खवग० अणियिट्ट० चिरमे ज० अणु० वट्ट० । पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-अहणोक०चदुआयु०-आहारदुग-अप्पसत्थवण्ण०४—उप०-तित्थय० ओघं।णविर इत्थि०-णवुंस० तिगदि० तप्पा० । सादादिचदुयुग० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सम्मादि० परिय०मिज्मम० । णिरय-देवगदि तिण्णिजादि-दोआणु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधा० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परि०मिज्मम० । तिरिक्ख०-मणुसग०-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-तिण्णियुग०-णीचुचा० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० परि०मिज्मम० । पंचिदि०-[वेउ०-] वेउ० श्रंगो०-तस० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सव्वसंकि० । ओरालि०-आदा-वुज्जो० ज० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० सव्वसंकि० । तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—वादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सव्वसंकि० ।

स्वामी है। त्रातप और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य त्रानुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेश-युक्त त्रान्यतर तीन गतिका जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य त्रानुभागबन्धका स्वामी है।

४५८. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद श्लीर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कोन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्ध करने-वाला अन्यतर चपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त प्रकृतियोंके जधन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पाँच दशनावरण, मिथ्यात्व, बारह कपाय, आठ नाकपाय, चार आयु, आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, उपघात श्रौर तीर्थेङ्करका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद श्रौर न्पंसकवेदका जवन्य स्वामित्व तत्प्रायाग्य तीन गतिवालेके कहना चाहिए। सातादि चार यगलके जघन्य अनुभागबन्धक। स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति, देवगति, तीन जाति, दां त्रानुपूर्वी, सुदम, त्रपर्याप्त त्रीर साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्यक्र और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्यका स्वामो है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय जाति. छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर, तीन युगल, नीचगोत्र श्रीर उच्च-गोत्रके जघन्य अनुमागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्चे न्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ और त्रसके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लेशयुक्त ऋन्यतर तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। श्रीदारिक शरीर, श्रातप श्रीर उद्योतके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन है। सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिण्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिध्यादृष्टि जीव

३. ञा० प्रतौ सन्वसंकि० तित्थय० इति पाठः ।

ओरालि० श्रंगो० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० तप्पा०संकि०।

४५६. पुरिस० पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—तस०४—णिमि० ज०क०१अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सव्वसंकि०। ओरालि०-ओरालि०ग्रंगो०-उज्जोव०१ देव० सव्वसंकि०। वेउव्वि०-वेउव्वि०ग्रंगो० ज०क०१ अण्ण० तिरि० मणुस० सव्वसंकि०। आदाव० ओघं०। सेसं इत्थिवेदभंगो।

४६०. णवुंसगे णिरयगदि-देवगदि-चदुजादि दोआणु०-थावरादि०४ ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परि०मिज्भम० ! ओरालि०-ओरालि० झंगो०— उज्जो० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि० । पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४—अगु०३—तस०४—णिमि० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छादि० सव्व-संकि० । सेसं ओघं । णवरि आदावं तिरिक्खोघं ।

४६१, अवगद० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० ओघं। सादा०-जस०-उच्चागो० ज० क० ? अण्ण० उवसा० परिवदमा० चरिमे जह० अणु० वट्ट०।

उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। औदारिक आङ्गापाङ्गके जवन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

४५६. पुरुषवेदी जीवों में पञ्चो न्त्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लेश-युक्त अन्यतर तीन गतिका मिण्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। श्रीदारिक शरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। येक्रियक श्राद्रार तिर्यक्र श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। श्रातपका भङ्ग श्राचके समान है। श्रेप प्रकृतियों का भङ्ग स्त्रीवेदी जीवों के समान है।

४६०. नपुंसकवेदी जीवोंमें नरकगित, देवगित, चार जाित, दो आनुपूर्वी और स्थायरादि चारके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्येश्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। औदारिकशारीर, श्रोदारिकशाङ्गापाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेश-युक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्चे निर्यय जाित, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि आतप प्रकृतिका भङ्ग सामान्य तिर्थेश्चोंके समान है।

४६१. श्रपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रौर पाँच श्रन्तरायका भक्त श्रोघके समान है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति श्रौर उचगोत्रके ज्ञघन्य श्रनुभाग- बन्धका स्वामी कौन है १ जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाला उपशामक गिरते हुए श्रन्तिम समयमें ज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है।

१. ता॰ प्रतौ तप्पा॰ इति पाठः।

४६२. मदि-सुदे पंचंणा०-णवदंसणा०--मिच्छत्त०--सोलसक०-पंचणोक०-अप्प-सत्थवण्ण०४—उप०-पंचंत० ज०क० ? अण्ण० मणुस० सागा० सन्वविसु० संजमाभि०। सादादिचदुयुगल०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०--सुभगादि०तिण्णि-युगै०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण चदुग० परि०मिज्भिम०। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० चदुग० तप्पा०विसु०। सेसं ओघं । एवं विभंगे मिच्छा-दिहि त्ति।

४६३. आभि०-सुद् ०-ओधि० खिवगाण संजमपाओग्गाणं च ओघं। सादादि-चढुगुग० ज० क० ? अण्ण० चढुगदि० परि०मिज्भिम०। मणुसाउ० ज० क० ? अण्ण० देव० वा णेरइ० ज० पज्ज० मिज्भिम०। देवाउ० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० ज० पज्ज० मिज्भिम०। मणुसगिद्पंच० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिम्र०। देवगिद्०४ ज० ? तिरिक्ख-मणुस० सागार० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिम्र०। पंचिद०--तेजा०--क०--समचढु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थ०-

४६२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगल, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, सुभग आदि तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं? स्त्रीवंद, नपुंसकवंद, अरित और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। होप प्रकृतियोंका भङ्ग आंघके समान है। इसी प्रकार विभङ्ग- ज्ञानी और मिण्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

४६३. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रोर श्रविध्ञानी जीवोंमें क्ष्यक प्रकृतियों श्रोर संयमप्रायाग्य प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोपके समान है। सातादि चार युगलोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्तिसे पर्याप्त श्रोर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर देव श्रोर नारकी मनुष्यायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्तिसे पर्याप्त श्रोर मध्यम परिणामवाला तिर्यश्च श्रोर मनुष्य देवायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। त्रज्ञपतिपञ्चकके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त श्रोर मिध्यात्वके श्रभिमुख श्रन्यतर देव श्रोर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त श्रोर मिध्यात्वके श्रभिमुख श्रन्यतर तिर्यश्च श्रोर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। स्थात्वके श्रभिमुख श्रन्यतर तिर्यश्च श्रोर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। पश्च निद्रय जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरका-

रै. ता॰ भा॰ प्रत्योः दोविहा॰ थिरादिछयुग॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ सेसं [दे] दोघं इति पाठः।

तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०--णिमि०--उच्चा० ज० क० १ अण्ण० चदुगदि० सागा० णि० उ० संकि० मिच्छत्ती०। आहारदु० [अप्पसत्थवण्ण४-उप०-] तित्थयरं च ओघं०। एवं ओधिटंस०-सम्मा०।

४६४. मणपज्ज० देवग०-पंचिदि०-वेडिव्व०- तेजा०-क०-समचढु०-वेडिव्व०-त्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा० ज० क० १ अण्ण० पमत्तसंज० सव्वसंकि० असंजमाभिमु० । तिन्थय० ज० १ पमत्तसंज० असंजमाभि० । सेसं ओघं । एवं संजदा० । णवरि पढमदंडओ मिच्छत्ता-भिमु० । एवं सामाइय-च्छेदो० । णवरि पंचणाणावरणादि० ज० क० १ अण्ण० खवग० अणियिह०। परिहारे मणमज्जव०भंगो। णवरि देवगदिआदीओ असंजमाभिमुहाणं ताओ सामाइ०-छेदोव०णाभिमुह० काद्व्वं । याओ खवगपगदीओ ताओ अप्पमत्तस्स

संस्थान, प्रशस्त वणचतुष्क, अगुरुत्तपुत्रिक, प्रशस्त विहायागित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगात्रके जवन्य अनुभागवन्यका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिण्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। आहारकिष्ठक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और तीर्यङ्कर प्रकृतिका भङ्ग आंघके समान है। इसी प्रकार अवध्दर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां चपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्रोघके समान कहा है। उनमेंसे क्षपक प्रायोग्य प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिकको छोड़कर छह दर्शनावरण, चार संव्यलन स्रोर पुरुपवेद-हास्य-रित-भय स्रोर जुपुःक्षा ये पाँच नोकणवा संवमप्रायोग्य प्रकृतियाँ ये हैं— सध्यकी स्राठ कपाय, स्ररित स्रोर शोक।

४६४. मनःपर्ययज्ञानी जीवामें देवगित, पञ्चे न्द्रियज्ञाति. वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गापाङ्ग, प्रशस्त वण्चतुर्फ, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुर्फ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगत्रिक जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? सर्व सक्लेशयुक्त और असंयमक अभिशुख अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन हे ? असंयमक अभिमुख अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । शेप प्रकृतियोंका भङ्ग आंघके समान है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें प्रथम दण्डकमें जो देवगित, आदि २५ प्रकृतियाँ कहीं हैं उनके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी मिध्यात्वके अभिभुख संयत जीव है । इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपथापनासंयत जीवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके पाँच ज्ञानावरणदिकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चपक अनिवृत्तिकरण जीव इनके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चपक अनिवृत्तिकरण जीव इनके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें मनःपर्ययक्ताती जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययक्तानी जीवोंमें जिन देवगित आदि प्रकृतियोंका असंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहा है उनका परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहा है उनका परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहा है उनका परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहा स्वामित्व कहना

ता० प्रती संकि० । मिच्छा० । भा० प्रती संकि० मिच्छा इति पाठः । २. ता० प्रती भसंजमाभिमु० क्ष तित्थय ज० पमत्तसंज० भसंजमाभि० क्ष [एति बहान्तर्गतः पाठः पुनरुकः प्रतीयते] सेसं भोषं इति पाठः ।

सव्ववि० । सुहुमसंप० अवगद०भंगो ।

४६५, संजदासंजदे पंचणा०--छदंसणा०--अद्वकसा०--पंचणोकसा०-अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-पंचत० ज० क० ? अण्ण० मणुस० सागा० सव्वविद्यु० संजमाभिष्ठ० ।
सादादिचदुयुग० ज० ? परि०मिज्भम० । अरिदं-सोग० ज० क० ? अण्ण०
तप्पा०विद्यु० । देवाउ० जहण्ण० ? तिरिक्ख० मणुस० जहण्णियाए पज्जत्तगणिव्वत्तीए
परि०मिज्भम० । देवग०--पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०--वेउव्वि० श्रंगो०पसत्थवण्ण०४ -देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०उच्चा० ज० क०? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० सव्व० मिच्छत्ताभिष्ठ०। तित्थ०
ज० ? असंजमाभिष्ठह०।

४६६. असंजदे पंचणा०--छदंसणा०-वारसक०--पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४ – उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० असंज०सम्मादिहिस्स सागा० सन्ववि० संजमा-

चाहिए। तथा जो चपक प्रकृतियाँ हैं उनका जवन्य स्वामित्व सर्वविशुद्ध श्रप्रमत्तसंयत जीवके कहना चाहिए। सूच्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें श्रपगतंबदी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—सामायिक और छेदांपस्थापनासंयत जीवोंमें जिन ज्ञानात्ररणादि प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व श्रनिवृत्तिकरण च्रक जीवके प्राप्त होता है वे ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँव श्रन्तराय। तथा परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जिन च्रपक प्रकृतियोंका जघन्य स्वामी सर्वविशुद्ध श्रप्रमत्तसंयत जीवको वतलाया है। वे ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक को छोड़कर छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवद-हास्य-रित-भय-जुगुप्सा ये पाँच नोकपाय, चार श्रप्रवद-हास्य-रित-भय-जुगुप्सा ये पाँच नोकपाय, चार श्रप्रवस्त वर्ण और उपघात। शेव कथन स्पष्ट ही है।

४६५. संयतासंतत जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, त्राठ कपाय, पाँच नोकपाय, त्रप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपवान और पाँच अन्तरायक जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और संयमक अभिमुख अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरित और शोकके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवायुके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्च द्रियज्ञाति, वैक्रियिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरक्र-संस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चात्रके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यक्क और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? असंयमके अभिमुख अन्यतर जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? असंयमके अभिमुख अन्यतर जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी है।

४६६. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ?

भा० प्रती मिष्मम० देहग० पंचिंदि० वेउब्वि० भ्रारदि इति पाठः ।

भिमु०। सैसं ओघं।

४६७. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पंचणोकसाय-अप्पसत्थवण्ण०४'उप०-पंचंत० ज० क० १ अण्ण० णेरइ० असंजदस० सागा० सन्विवसु० । सादादिचदुगु० १ तिगदि० परि०मिज्मम० । थीणिगिद्धि०३—मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० क०
अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सागा० सन्विवसु० सम्मत्ताभिसु० । इत्थि०-णवुंस० ज०
क० १ अण्ण० णेरइ० तप्पा०विसु० । अरदि-सोग० ज० क० १ अण्ण० णेरइ० सम्मादि०
तप्पा०विसु० । आउचदु० ओघं । णिरयं०-देवग०-चदुजादि-दोआणु०-थावरादि०४
ज० क० १ अण्ण० तिरि० मणुस० परि०मिज्मम० । तिरिक्त्वगदि-तिरिक्त्वाणु०णीचा० ओघं । मणुसग०-छस्संटाण-छस्संघडण-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुगछ०उच्चा० ज० क० १ अण्ण० तिगदि० परि०मिज्मम० । पंचिदिय०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—तस०४—णिमि० ज० क० १ अण्ण० तिगदियस्स सागा० सन्वसंकि० । ओरा०-ओरा०छंगो०-उज्जो० ज० क० १ णेरइ० मिच्छा० सन्वसंकि० ।

साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध ऋौर संयमके ऋभिमुख ऋन्यतर ऋसंयतसम्यग्दिष्ट जाव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य ऋतुभागवन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ऋावक समान है।

४६७. कृटण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपयात और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत श्रीर सर्वविशुद्ध श्रन्यतर श्रसंयत सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रनु-भागवन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जवन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्त-मान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व ऋौर श्रनन्तानुबन्धी चारके जवन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविद्युद्ध श्रीर सम्यत्वके श्रिभमुख श्रन्यतर मिध्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायाग्य विशुद्ध अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। ऋरति श्रीर शोकके जवन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन है १ तत्प्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर सम्यग्द्रष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। चार आयुका भङ्ग आंघके समान है। नरकगति, देवगति, चार जाति, दा त्रानुपूर्वी त्रौर स्थावर त्रादि चारक जघन्य अनु-भागबन्धका स्वामी कौन है १ परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तियस्त्र और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्त्रामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रका भक्क श्रोघके समान है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित मध्यके सुभगादिक तीन युगल स्त्रीर उचगात्रके जघन्य स्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परि-वर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पक्कोद्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन हैं ? साकार-जागृत श्रीर सर्वे संक्लेशयुक्त श्रन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर उद्योतके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त श्रन्यंतर मिध्या-

[ঃ] আ০ প্রतী बारसक० অप्पसत्थवर्ग्य ४ इति पाठः । ২. স্লা০ প্রतী স্লাতস্তুত ग्रिर्वण इति पाठः ।

वेउन्वि०-वेउन्वि० ग्रंगो० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० सागा० सन्वसंकि० । आदाव० ? दुर्गादयस्स तप्पा०संकि० । तित्थ० ओघं ।

४६८. णील-काउलेस्साणं [पंचणाणावरणादि जाव] णिरयग०दंडगा ति किण्ण-भंगो । तिरिक्तव -तिरिक्तवाणु०-णीचा० ज० क० १ अण्ण० बादरतेष्ठ०-वाष्ठ० सागा० सव्विवि० । पंचिदि० [ओरालि-तेजा०-कम्म०] ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-अगु३—तस०४—णिभि० ज० क० १ अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि० । मणुस०-छ्रसंठा०- छ्रसंघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुगल०-उच्चा० १ तिण्णिगदि० परि० मिच्छा० । [वेउव्वि०-वेउव्वि० ग्रंगो० ज० क० १ अण्ण० तिरिक्तव० मणुस० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि०।] आदाव० जः क० १ अण्ण० दुगदि० तप्पा०संकि० । उज्जो० १ णेरइ० सव्व०संकि० । णीलाए तित्थ० मणुस० तप्पा०संकि० । काऊए तित्थय० णिरयोघं।

दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त श्रन्यत्तर मिध्यादृष्टि तिर्यञ्ज और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर दो गतिका जीव आतप के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग श्रोवके समान है।

४६८. नील श्रीर कापोत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण दण्डकसे लेकर नरकगति दण्डक तकका भक्क कृष्णलेश्याके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगात्रके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर-वायुकायिक जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्चे न्द्रियजाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, श्रस-चतुष्क श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है १ साकार-जागृत श्रीर सर्व संक्लेश-युक्त श्रन्थतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यगति. छह संस्थान, छह संहननः मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल श्रोर उच गोत्रकं जघन्य ऋतुभागबन्धका स्वामी कौन है १ परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला ऋन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिक-श्राङ्कोपाङ्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कोन है ? साकार-जागृत श्रौर सर्व संक्लिप्ट श्रन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्येख्न या मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। त्रातपके जघन्य श्रनुभागवन्थका स्वामी कौन हैं ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट श्रन्यतर दो गतिका जीव श्रातपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्वोतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त श्रान्यतर नारकी उद्यातके जघन्य श्रानुभागबन्धका स्वामी है। नीललेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्त्रामी तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त मनुष्य है। तथा कापातलेश्यामें तीर्थद्वर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्त्रामी सामान्य नारिकयोंके समान है।

ता० श्रा० प्रत्योः सन्त्रसंकि० । सादादिचदुयुग० ज० तिगदि० परि०मिनमा० । श्राठ० श्रोघं ।
 मणुस० इति पाठः । २. ता० श्रा० प्रत्योः परि०मिनमा० इत्थि० गावुंस० ज० क० १ तप्पा० विसु० ।
 श्रादिसोग० ज० १ गोरह० श्रसंजद० तप्पा० विसु० । श्रादाव० इति पाठः ।

४६६. तेउते० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४—
उप०-पंचंत० ज० क० १ अप्पमत्त० सन्विद्युग । थीणगिद्धि०३—मिच्छ०-बारसक०अरिद-सो०-आहारदुगं ओघं । सादादिचदुगुग० ज० १ तिगदि० पिरमिजिसम० ।
इत्थि० ज० १ तिगदि० तप्पा०विसु० । णवुंस० ज० १ देव० तप्पा०विसु० । तिरिक्खमणुसायु० १ देव० मिच्छा० मिज्सम० । देवायु० ज० १ तिरि० मणुस० मिज्सम० ।
तिरिक्खग०-मणुस०-एइंदि०-पंचि०-छस्संठा०-छस्संघ०—दोआणुपु०—दोविहा०—तस०थावर-तिण्णियुगछ०-दोगोद० ज० क० १ अण्ण० देव० परि०मिजिसम० । देवगदि०४
ज० क० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सन्वसंकि० । ओरालि०-तेजा०क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—आदाउज्जो०-वादर-पज्जत्त-पत्ते०—णिमि० ज० क० १
अण्ण० सोधम्मीसाणं० मिच्छादिद्दिस्स सन्वसंकि० । ओरालि०न्छंगो० ज० १
सोधम्मीसा० तप्पा० संकि० । तित्थय० ज० १ देव० सोधम्मीसा० असंजद० सन्वसंकि० ।

४६६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचान और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व विशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन. मिथ्यात्व, वारह कपाय, अरित, शांक और आहारकद्विकका भङ्ग आंघके समान है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिएामवाला तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन हैं ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध तीन गतिका जीव स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है १ तत्त्रायांग्य विश्रद्ध देव नपुंसकवेदके जघन्य ऋनुभागबन्धका स्वामी है ? तिर्यञ्चायु ऋौर मनुष्यायुके जघन्य ऋनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चोन्द्रिय-जाति. छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर,मध्यके सुभगादि तीन युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्चान्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रानुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य श्रानु-भागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लिष्ट अन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्यश्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि सौधर्म श्रीर ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्रायोग्य संक्लेश युक्त अन्यतर सौधर्म श्रीर ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कीन है ? सर्व संक्लेश युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दष्टि सौधर्म और ऐशान कल्पका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य धानुभागबन्धका स्वामी है।

४७०. प्रमाए एवं चेव । णविर पंचिं - ओराल्यि - तेजा०-क०-भोरालि०-श्रंगो०-पसत्थवण्ण०४ – अगु०३ – तस०४ – णिमि० ज० क० १ अण्ण० देव सहस्सार० मिच्छा० सव्वसंकि०। तिरि०-मणुस०- छस्सठा०- छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तिण्णि-युग०-दोगोद० ज० क० १ अण्ण० देव० सहस्सार० परि०मिज्भिम०। इत्थि०-णवुंस० ज० १ देव० तप्पा०सव्वविद्यु०।

४७१. सुकाए सादादिचदुयुगल० ज० १ तिगदि० परि०मिज्सम० । इत्थि०णवुंस० ज० १ देव० तप्पा०विसु० । पंचिदि ०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो०पसत्थवण्ण०४ एवं [जाव णिमिण ति] णवगेवज्जभंगो । मणुसायु० ज० १ देव०
मिच्छा० । देवायु० १ तिरि० मणुस० जह० पज्जै० णि० मिज्सम० । देवगदि०४
ज० १ तिरि० मणुस० मिच्छा० सव्वसंकि० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-तिण्णियुग०-दोगोद० ज० १ देव० मिच्छा० परि०मिज्सम० । तित्थय० ज० १ देव० सव्वसंकि० । सेसं ओघं ।

४७०. पद्मलेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चे न्द्रिय जाति, स्रोदारिक शारीर, तैजसशरीर, कामणशर्रार, स्रोदारिक स्राङ्गापाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, स्रगुरुत्तघु- त्रिक, त्रसचतुष्क स्रोर निर्माणके जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त स्रन्यतर सहस्रार कल्पका मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यक्रगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो स्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, मध्यके सुभगादि तीन युगल स्रोर दो गोत्रके जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला स्रन्यतर सहस्रार कल्पका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी है। स्रोवेद स्रोर नपु सकवेदके जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य सर्विवशुद्ध स्रन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्रनुभागवन्धका स्वामी है।

४७१. शुक्तलेश्यामें सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका
स्वामी है। स्निवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध देव
उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्च निद्रय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर,
कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गापाङ्ग और वर्णचतुष्कमे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका भङ्ग नव मेबेयकके समान है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिध्यादृष्टि देव मनुष्यायु
के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त
निवृत्तिसे निवृत्तमान और नियमसे मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके
जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ?
सर्व संन्तेशयुक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका
स्वामी है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, मध्यके सुभगादि तीन युगल और दो
गोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर
मिध्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका

ता● भाप्रत्यो० : विसु० गावुंस० पंचिदि० इति पाठः। २. ता● भा० प्रस्योः जह० गो० प्रज० इति पाठः।

४७२. अब्भवसि० पंचणा०-जवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक० - पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचत० ज० क० १ अण्ण० चढुग० पंचि० मिण्णि० सागा० सब्बिवसु० । सादासादा०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थिरादि-छसुग०-उचा० ज० चढुग० परि०मिज्भिम० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० क० १ अण्ण० चढुग० तप्पा०विसु० । सेसं ओघं ।

४७३. खइगे ओधिभंगो ! णवरि सत्थाणे जहण्णयं करेदि | वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०--अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागार० विसु० । सेसं ओधिभंगो० | उवसम० ओधिभंगो० | तित्थय० मणुस० सन्वसंकि० |

४७४. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चढुगदि० सागा० सव्विवसु०। सादासाद०-मणुस०-पंचसंठा०--पंचसंघ०--मणुसाणु०--दोविहा०-इयुगल०--उच्चा० ज० चढुगदि० परि०-

भागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जवन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है । शेप प्रकृतियोंका भङ्ग आंघके समान है ।

४७२. श्रभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुक, उपघात और पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्च निद्रय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थिर आदि छह युगल और उचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवतमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरित और शोकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायाग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । शेप प्रकृतियोंका भक्त ओघके समान है ।

४७३. त्तायिक सम्यक्त्वमें श्रविधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यह जघन्य श्रमुभागबन्ध स्वस्थानमें करता है। वेदक सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दशनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रौर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रमुभागबन्धका स्वामी कीन है? साकार-जागृत श्रौर सवेविशुद्ध श्रन्यतर श्रप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रमुभागबन्धका स्वामा है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रविध्ञानी जीवोंके समान है। उपशम सम्यक्त्वमें श्रविध्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इसमें सर्व संक्लेशयुक्त मनुष्य तीथङ्कर प्रकृतिक जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी है।

४०४. सासादनसम्यक्त्वमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कवाय, पाँच नोकवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगत्यानपुर्वी, दो विहायोगित, स्थिरादि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य

मिन्सिमः । इत्थि०-अरदि-सोगः जि कः १ चदुगः तप्पाः विद्युः । तिरिक्ख-मणुसायुः जि चदुगदिः मिन्सिमः । देवायुः जि १ तिरिः मणुसः मिन्सिमः । तिरिक्खः तिरिक्खाणुः जि । देवायुः जि १ तिरिः मणुसः मिन्सिमः । तिरिक्खः तिरिक्खाणुः जि । देवगः वेवाणुः जि १ तिरिक्खः मणुसः परिः मिन्सिमः । ओरालिः ओरालिः अंगोः । देवगः वेवाणुः जि १ तिरिक्खः मणुसः परिः मिन्सिमः । ओरालिः ओरालिः अंगोः । उज्जोः जिः चदुगः सन्वसंकिः । पंचिदिः नेजाः -कः पसत्थवण्णः ४ —अगुः ३ —तसः ४ — णिमिः जि १ चदुगदिः सन्वसंकिः । वेविविः ---वेविवः अंगोः जि १ तिरिः मणुसः सन्वसंकिः ।

४७५. सम्मामि० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४ -डप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुग० सन्ववि० सम्मत्ताभिम्रह० । सादादिचदुयुग० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि०मिष्भम० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ग० चदुग० तप्पा०-विम्रु० । मणुसगदिपंचग० ज० क० ? अण्ण० देव-णेरइ० सन्वसंकि० मिच्छत्ताभिम्र० ।

श्रतुभागवन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, ऋरति श्रीर शोकके जघन्य श्रतुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। तिर्यक्रायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कीन हैं? मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला तिर्यञ्ज श्रीर मनुष्य देवायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। देवगति श्रौर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला श्रन्यतर तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। पक्क न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कामणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क त्रौर निर्माणके जघन्य त्रानुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सब संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्कके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तियञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४७५. सम्यग्मिश्यात्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पाँच नोकषाय, ध्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात त्रोर पाँच त्रान्तरायके जघन्य अनुभागवन्धक। स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। अरित और शोकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। मनुष्यगित पञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सनुष्यगित पञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी है। सनुष्यगित पञ्चकके जघन्य

१. ता० प्रती देवागु० इति पाठ:।

देवगदि ०४ ज० क० १ अण्ण० तिरि० मणुस० सन्वसंकि० मिच्छत्ताभिग्रहस्स । पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-मुभग-सुस्सर आदेज्ज-णिमिण-उच्चा० ज० कै० १ अण्ण० चदुग० सागा० सन्वसंकि० मिच्छत्ताभिग्र०।

४७६. असण्णि० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--अप्प-सत्थवण्ण०४-उप०--पंचंत० ज० क० ? अण्ण० पंचि० सागा० सव्विवसु०। सादा-साद०-तिण्णिग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० मिडिक्सम०। इत्थि०--णवुंस०-अरदि--सोग० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०विसु०। आयु० ओघं। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं। पंचिदि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-वेडिव्व०श्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिम० ज० क० ? अण्ण० सागा० सव्वसंकि०। ओरालि०--ओरालि०--श्रंगो०-आदाउज्जो० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०संकि०। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं सामित्तं समत्तं।

नारकी उक्त प्रशृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। देवगित चतुष्कके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त श्रीर मिध्यात्वके श्रीममुख श्रन्यतर तिर्येश्च श्रीर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है। पञ्चे न्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विद्दायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण् श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हे? साकार-जागृत, सर्व संक्लेरायुक्त श्रीर मिध्यात्वके श्रीममुख श्रन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामी है।

४७६. श्रसंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवान श्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत और सर्विद्युद्ध श्रन्यतर पश्चिन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी है। सातावदनीय, श्रसातावदनीय, तीन गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर श्रादि चार, स्थिरादि छह युगल श्रीर उचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, श्ररित श्रीर शोकके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, श्ररित श्रीर शोकके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? तत्त्रायोग्य थिशुद्ध श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी है। चारों श्रायुश्रोंका भङ्ग श्रोघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुरक, श्रगुरुलघुत्रिक, त्रसंचतुरक श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? साकार-जागृत श्रीर सर्वसंक्लेशयुक्त श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी है। श्रीदारिकशरीर, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप श्रीर उद्योतके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? तत्त्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? तत्त्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी कौन हैं? तत्त्रायोग्य संक्लेशयुक्त श्रन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्यका स्वामी

१. भा॰ प्रती देवगदि ज॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती भादेज......ज॰ क॰, भा॰ प्रती भादेज॰ सम॰ (भजस॰)......ज॰ क॰ इति पाठः।

१३ कालपरूवणा

४७७. कालं० दुविधं--जह० उक्क० । उक्क० पगदं० । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ० - सोलसक०-भय-दु० - ओरालि०-अप्पसत्थवं०४ — उप० पंचत० उक्क० अणुभागवंधगा ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क० अणंतकालमंसले० पोग्गल० । सादा०--आहारदुग-उज्जो०--थिर-सुभ--जस० उक्क० [जहण्णुक्क०] एग०। अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-छण्णोक०-चदुआयु०-णिरय०-चदुजादि--पंचसंठा०-पंचसंव०--णिरयाणु०--आदाव०--अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादिछँ० उक्क० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० उक्क० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० वेद्याविहसागँ० सादि०। तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु०-णीचा० उक्क० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० वेसम०।

हैं। श्राहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार जघन्य श्रनुभागवन्धका स्वामित्व समाप्त हुश्रा। इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुश्रा।

१३ कालप्ररूपणा

४७७. काल दा प्रकारका है -जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेता निर्देश दो प्रकारका है - स्रोघ स्रोर स्रादेश। स्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, भिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशरीर, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उनघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्यका कितना कात्त हे १ जयन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल दो समय है। ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुर्गल परिवर्तन प्रमाण है। सानावेदनीय, आहारकद्भिक, उद्योत, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है स्त्रीर उत्कृष्ट काल स्रन्तमु हूर्त है। श्रसात वेदनीय, छह नोकपाय, चार त्राय, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रातप, त्रप्रशस्त विद्वायोगति, स्थावरादि चार त्रीर त्रस्थिरादि छहके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुतकृष्ट श्रनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। पुरुपवेदके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुतकृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो अयासठ सागर है। तिर्यक्र्यगति, तिर्यक्र-गत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धको जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वक्रपंभनार। चसंहतन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

^{3.} ता॰ मा॰ प्रस्तोः मोराजि॰ मोराजि॰ मप्यसस्थन॰ इति पाठः। २. ता॰ मा॰ प्रस्योः धावरादि ४ थिरादिछ्॰ इति पाठः।३. ता॰ मा॰ प्रस्योः वेसम॰ खावट्टिसाग॰ इति पाठः।

उक्क० ज० एग०, उक्क० बेंसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेतीसं सा०। देवगदि०४ उक्क० जहण्णुकस्सेण एग० । अणु० ज० एग० उक्क० तिण्णि पिलदो० सादि०। पंचि०-पर०--उस्सा०-तस०४ उक्क० ज० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० पंचा-सीदिसागरोवमसदं । तेजा०---क०--पसत्थवण्ण०४-अगु०--णिमि० [उक्क०] ज० [उक्क०] एग०। अणु० तिभंगो। जो सो सादिओ० ज० श्रतो०, उक्क० अद्ध्रपोग्गल०। समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेळाविह० सादिरे० तिण्णिपिलदो० देसू०। ओरालि०श्रंगो० उक्क० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेतीसं सा० सादि०। तित्थ० उक्क० एग०। अणु० ज० श्रंतो०, उक्क० तेतीसं० सादि०।

जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तैंतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल सा'धक तीन पत्य है। पक्चोन्द्रय जाति, परघात, उच्छ्वास श्रौर त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट त्रातुभागवन्धका जयन्य त्र्योर उत्कृष्ट काल एक समय है । त्रातुःकृष्ट त्रात्मागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल एक सौ पचासो सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुकुष्ट अनुभागबन्धके तीन भक्न हैं। उनमसे जो सादि भक्न है उसका जघन्य काल अन्त-मु हूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उचगेत्रिके उत्कृष्ट अनुभागबन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुस्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन परुय श्रधिक दो छयासठ सागर है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जचन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है त्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तैंतीस सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तैंतीस सागर है।

विशेपार्थ—सामान्यतः उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए जिन प्रकृतियोंका क्ष्मपकश्रेणीमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है उनको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा क्ष्मपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्ष्मपकश्रेणीमें अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्ति के अन्तिम समयमें होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जिन मार्गणाओंमें क्ष्मपकश्रेणी सम्भव है उन सब मार्गणाओंमें इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह काल इसी प्रकार जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें साधारणतः अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समान ही इन चपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल है। मात्र कुछ मार्गणाएँ इस नियमकी अपवाद हैं। उदाहरणार्थ औदारिकमिश्रकाययोग, वैकियिक-मिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ही बनता है। कारण इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अनुभागक बन्ध योग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अनुभागक वन्ध योग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल समय हो बनता है। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त अनुभागक वन्ध योग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल काल समयके लिए ही होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल होते होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल होते होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल होते होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागक व्यक्त काल काल काल होते हैं।

कालका विचार सर्वेत्र जानना चाहिए, इसलिए स्रागे हम सर्वेत्र केवल स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागवन्धके कालका ही विचार करेंगे। यहां इस बातका निर्देश कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि कहीं प्रकृति परिवर्तनसे स्नौर कहीं स्रनुभागबन्धके योग्य परिणामोंके बदलनेसे प्रायः सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। प्रकृति परिवर्तनका उदाहरण— कोई जीत्र सातात्रेदनीयका बन्ध कर रहा है। फिर उसने साताके स्थानमें एक समय तक ऋसाताका बन्ध किया श्रीर दूसरे समयमें पुनः वह साताका बन्ध करने लगा। यह प्रकृति परिवर्तनसे अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका एक समय जघन्य काल है। परिणामोंके बदलनेका उदाहरण--किसी जीवने मितज्ञानावरएका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध किया। पुनः वह उत्कृष्ट बन्धके योग्य परिएामोंकी हानिसे एक समयके लिए उसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने लगा। यह परिणामपरिवर्तनका च्दाहरण है। इस प्रकार प्रायः सर्वत्र सब प्रकृतियोंके श्चनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय उपलब्ध हो जाता है । जिन मार्गणाश्चोंमें इसका श्रववाद है वहां इसका अलगसे निर्देश किया ही है। अब सब प्रकृतियों क अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके उत्कृष्ट कालका विचार करना शेव रहता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियां कही हैं उनका श्रोयसे एकेन्द्रियोंमें श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सदा होता रहता है त्रोर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अपनन्त काल प्रमाण है, अपतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल अनन्त काल प्रमाण कहा है। सातावेदनीय श्रादिक दूसरे दण्डकमें जितनी प्रकृतियां गिनाई हैं वे सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं श्रीर परावर्तमान प्रकृतियोंका उरकृष्ट वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी तरह तीसरे दण्डकमें कही गई असातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालके विषयमें जानना चाहिए। यद्यपि तीसरे दण्डकमें चार श्राय भी सम्मिलित हैं श्रीर ये परावर्तमान प्रकृतियाँ नहीं हैं पर इनका बन्ध श्रम्तर्मुहर्त काल तक ही होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त ही कहा है। बीचमें सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानको प्राप्त कर सम्यक्तवके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। ऐसे जीवके निरन्तर एक मात्र पुरुपवेदका ही बन्ध होता है, क्योंकि नपुंसक-.. वेदकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें श्रोर स्त्रीवेदकी सासादन गुणस्थानमें बन्यव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए पुरुपवेदके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर कहा है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी अौर नीचगोत्रका निरन्तर वन्ध अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवोंके होता रहता है और इन जीवोंकी कायस्थिति ऋसंख्यात लोकके जितने प्रदेश हों उतने समयप्रमाण है, अतः इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यगति, वन्नर्पभनाराचसंहनन त्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका सबसे त्र्राधिक काल तक निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिके देव करते हैं श्रीर उनकी उत्कृष्ट श्रायु तेंतीस सागरप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तैतीस सागर कहा है। एक पूर्वकोटि की आयुवाला जो मनुष्य मनुष्यायुका प्रथम त्रिभागमें बन्ध कर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके इतने काल तक निरन्तर देवगतिचतुष्कका बन्ध होता रहता है, अतः देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य कहा है। जो बाईस सागरकी आयुवाला छठें नरकका नारकी जीवनके श्रन्तमें श्रन्तमु हूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त कर छ्यासठ सागर काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा । फिर सम्यग्मिध्यात्वमें जाकर पुनः छ्यासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा श्रोर श्रन्तमें इकतीस सागरकी आयुके साथ नव प्रैवयकमें उत्पन्न हुआ उसके एक सौ पचासी सागर काल तक पक्क न्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास भीर त्रसचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट

४७८. णिरएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिं ०-ओरालि०-तेजा०--क०-ओरालि०श्रंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु०ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं०। पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरि०--मणुसाणु०--पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०--उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०,

श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल एकसी पचासी सागर कहा है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्ववनिधनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके तीन भक्त प्राप्त होते हैं - अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि-सान्त । अनादि-अनन्त विकल्प अभन्योंके प्राप्त होता है। अनादि-सान्त विकल्प उन जीवोंके होता है जिन्होंने क्रमसे सम्यक्त्व ऋौर संयमको प्राप्त कर ऋौर क्षपकश्रेणि ऋ।रोहण कर बन्धव्युच्छित्तिके समय इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध किया है। तथा सादि-सान्त विकल्प उन जीवोंके होता है जो उपशमश्रेणी पर चढ़कर इनकी वन्धव्युन्छित्ति करनेके बाद पुनः उत्तर कर इनका बन्ध करने लगे हैं। यहां सादि-सान्त विकल्पका ऋधिकार है। उसकी ऋपैक्षा इन प्रकृतियोंके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रर्थपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहनेका कारण यह है कि जो जीव श्रर्थपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणी पर चढ़ा ऋौर इसके ऋन्तमें वह क्षपकश्रेणी पर चढ़ा, उसके कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक इन प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्टवन्ध देखा जाता है। अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अर्धपुट्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है । जो उत्तम भोगभूमिका जीव समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्वर, त्रादेय त्र्योर उच्चगोत्रका वन्ध कर रहा है वह यदि जीवनके अन्तमं वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रथम छ्यासठ सागर काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया त्र्यौर साधिक छ्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्यके साथ रहा । उसके इतने काल तक इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो छगासठ सागर त्र्योर कुछ कम तीन पत्य प्रमाण कहा है । नरकमें त्र्यौदारिक त्र्याङ्गोपाङ्गका निरन्तर बन्ध होता है त्र्यौर नरकको उत्कृष्ट त्र्यायु तेतीस सागर है। तथा एसा जीव नरकमें जानेके पहले खोर निकलनेके वाद खन्तर्मु हुर्त काल तक खोदारिक खाङ्गोपाङ्गका वन्ध करता है. श्रतः श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्गके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर प्रमाण कहा है। जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला सम्यग्दृष्टि मनुष्य तेतीस सागर श्रायुका बन्ध कर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके साधिक तेतीस सागर काल तक तीर्थद्वर प्रकृतिका **त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्ध देखा जाता हैं, त्रातः इसके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका उत्कृष्ट काल** साधिक तेतीस सागर कहा है ।

४७८. नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यक्रगति, पक्रोन्द्रयजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, त्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल देतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्त्रसंस्थान, वन्नपंभनाराचसंहनन, मनुष्यागत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यागिति, सुभग, मुस्वर, श्रादेय श्रीर उद्यगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक

उक्क० तेतीसं० देस्न० । उज्जोवं ओघं । तित्थय० उ० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० तिण्णि साग० सादि० । सेसाणं उ० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । एवं सत्तमाए पुढवीए । इस्र उवित्मास्र एवं चेव । णविर तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० सादभंगो । सेसाणं अप्पप्पणो द्विदी भाणिदव्वा ।

४७६. तिरिक्त्वेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-भय०-**दु**०-ओराल्लि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अग्र०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सादासाद०-छण्णोक०-आयु०४-णिरय०-मणुस०-

समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। उद्यातका भंग आघके समान है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हुत्ते है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। प्रारम्भको छह पृथिवियोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। शेप प्रकृतियोंके अनु-त्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी-अपनी उत्कृष्टि स्थित कहनी चाहिए।

विशेपार्थ-नारिकयों में पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जीवन भर निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। पुरुपवेद आदि दुसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनु-भागवन्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। उद्योतके विषयमें जो स्रोघ प्ररूपणामें काल कहा है वही यहां भी जानना चाहिए। स्रोघप्ररूपणासे यहां कोई विशेषता न होनेसे यह स्रोघके समान कहा है। तीर्थद्वर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरक तक होकर भी साधिक तीन सागरकी आयुवालेसे अधिक आयुवाले नारकीके नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। इन पूर्वोक्त प्रकृतियोंके सिवा शेप जितनी प्रकृतियाँ नरकमें वैंधती है वे सब परावर्तमान हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त प्राप्त होनेके कारण उक्त प्रमाण कहा है। सामान्यसे नारिकयोंमें यह जो काल कहा है वह सातवीं पृथिवीमें अविकल घटित हो जाता है, इसलिए सातवीं पृथिवीके कथनको सामान्य नारिकयोंके समान कहा है। प्रथमादि छह पृथिवियोंमें सब काल इसी प्रकार है। मात्र जहाँ पर पूरा तेतीस सागर या कुछ कम तेतीस सागर काल कहा है वहा पर श्रपनी श्रपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिको ध्यानमें रखकर यह काल कहना चाहिए। तथा तीर्थद्भर प्रकृतिके कालका विचार प्रथमादि तीन पृथिवियोंमें ही करना चाहिए। चौथी आदि शेष चारों पृथिवियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके कालका विचार नहीं करना चाहिए।

४७६. तिर्यक्रोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कृषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त उपचात, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रमुभागवन्य काल एक समय है श्रीर अपन सम्य स्वर्य काल एक समय है श्रीर अपन सम्य स्वर्य काल सम्य स्वर्य काल स्वर्य काल स्वर्य काल स्वर्य काल स्वर्य काल स्वर्य काल स्वर्य स्वर्य

चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि० श्रंगो० — इस्संघ०--दोआणु० — आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०- थावरादि०४ — थिराथिर--सुभासुभ--द्भग-दुस्सर--अणादे० - जस०--अजस० उक्क० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो० । पुरिस०--देवग०--वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०श्रंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० तिण्णि पलिदो० सादि ० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचागो० ओघं । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० ज० ए०, उक्क० वेसम० । अणु० ज० ए०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । एवं पंचिदिय--तिरिक्ख०३ । णवरि पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४ — अगु०-उप०-णिमि०-पंचत० उक्क० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० पुन्वकोडिपुयत्तेण० । पुरिस०--देवगदि०४ — समचदु०--पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० ज० ए०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० । जोणिणीसु देस्०। तिरिक्ख०-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-णीचा० साद्भं०।

काल है। सातावदनीय, असातावदनीय, छह नोकपाय, चार आयु, नरकगति, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, त्रोदारिक त्राङ्गापाङ्ग, छह संहनन, दा त्रानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, त्राप्रशस्त विहायोगति, स्थावर त्रादि चार, स्थिर, ऋस्थिर, छुम, ऋशुम, दुर्मग, दुःस्वर, ऋनादेय, यशः-कीर्ति ऋौर ऋयशःकीर्तिके उत्क्रष्ट ऋनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है ऋौर उत्क्रष्ट काल दो समय है। अनुतकृष्ट अनुमागबन्यका जबन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तम हुते है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक ऋाङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, ऋादेय ऋौर उचगोत्रके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल साधिक तीन परुष है। तिर्वेक्सगति, तिर्येक्सगत्यानुपूर्वी ऋौर नीचगोत्रका भङ्ग श्रोचके समान है। पञ्चोन्द्रयजाति, परवात, उच्छ्वास श्रोर त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपचात, निर्माण श्रौर पाँच श्रन्तरायकं उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जधन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दा समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पुवकोटिष्रथक्तव अधिक तीन परुय हैं। पुरुपवेद, देवगति चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगात, सुभग, सुस्वर, त्रादेय त्रीर उचगात्रके उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल तीन परुय है। किन्तु योनिना तिर्यञ्चोमें कुछ कम तीन परुय है। तिर्यञ्चगति, श्रोदारिक-शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी त्रोर नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है ।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ ध्रुववन्धिनी है। एकेन्द्रियोंमें इनका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, श्रीर एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण

ता० प्रतौ तिचिग्रपितः इति पाठः ।

४८०. पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपगदीणं उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० । एवं सव्वअपज्जत-सव्वविगित्रिंदिय-सव्वसुहुमपज्ज०-अपज्ज० सव्वबादरअपज्जत्तगा ति । णविर विगतिंदियपज्जत्तगाणं धुवपगदीणं अणु० ज० एग०, उ० संखेज्जाणि वाससह० ।

है. ब्रतः इनके ब्रनुऋष्ट ब्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल ब्रनन्त काल कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय त्रादि परावर्तमान प्रकृतियां हैं, त्रातः इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तम् हर्त कहा है। भोगभूमिके तिर्यञ्जके निरन्तर पुरुपवेद आदि तीसरे दण्डकमं कही गई प्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध होता है त्र्यौर ऐसा जीव पूर्व पर्यायमें तिर्यक्र होकर भी प्रशस्त परिणामोंसे ब्रन्त-मु हूर्तकालतक अन्तमें इनका बन्ध करता है, अतः इनके अनुरक्षप्र अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल स्रोधमें तिर्यञ्चगतिकी त्र्यपेदासे ही घटित करके बतलाया है, अतः यह प्ररूपणा अोघके समान कही है। पंचेन्द्रियजाति. परघात, उच्छवास और त्रसचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल तिर्यक्रोंमें भोगभूमिकी प्रधानतासे प्राप्त होता है, क्योंकि जो तिर्यक्त मर कर भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके मरणके समय अन्तम् हर्तकालसे लेकर भोगभूमिकी छुल पर्याय भर निरन्तर इनका बन्ध होता रहता है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उक्कृष्ट काल साधिक तीन परुप कहा है। पश्च निद्रुप तिर्यञ्च-त्रिकमें भी यह व्यवस्था वन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य तिर्येख्वोंके समान कहा है। किन्तु इस व्यवस्थाके कुछ ऋपवाद हैं। बात यह है कि पक्च न्द्रियतियक्दित्रिककी उत्कृष्ट काय-स्थित पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य हैं, अतः इनमें श्रीदारिक शरीरको छोड़कर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि शेप सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्तव श्रिधिक तीन पत्य कहा है, क्योंकि ध्रुवबन्धिनी होनेसे इनका इतने कालतक निरन्तर बन्ध होता है। तिर्युक्चत्रिकके भोगभूमिमें पुरुपवेद आदिका निरन्तर बन्ध सम्भव है, क्योंकि जो चायिक सम्यग्द्दष्टि मनुष्य तिर्यञ्जोमें उत्पन्न होता है उसके भोगभूमिमें निरन्तर पुरुपवेद आदिका ही बन्ध होता है, अतः यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल तीन पत्य कहा है। पर ऐसा जीव तिर्युख्च योनिनियोंमें नहीं उत्पन्न होता श्रीर वहां ऋपर्याप्त श्रवस्थामें इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका भी बन्ध होता है, अतः इनमें यह काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

४८०. पञ्च निद्रय तिर्यञ्च त्रपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट त्रमुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागबन्धका जघन्य काल एक समय हे त्रीर उत्कृष्ट काल त्रम्तमु हूर्त है। इसी प्रकार सब त्रपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब सूत्तम पर्याप्त, सब सूत्तम त्रपर्याप्त त्रीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है।

विशेपार्थ—यहां जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उन सबमें एक जीवकी कायस्थिति अन्तर्मु हूर्त से अधिक नहीं है। यही कारण है कि इनमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। मात्र विकलत्रयोंमें इनके पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है इसलिए इनमें धुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष प्रमाण कहा है। इनमें धुवबन्धवाली प्रकृतियों ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान,

४८१. मणुसेसु [३] खिवगाणं उ० एग०। अणु० [पंचिदिय-] तिरिक्खभंगो०। पुरिस० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपित्रदो० सादि०। मणुसिणीए देस्०। देवगदि०४—समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० ए०। अणु० ज० ए०, उक्क० तिण्णिपित्रि० सादि०। मणुसिणीसु देस्०। पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उ० एग०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपित्रदो० सादि०। तित्थ० उ० एग०। अणु० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी देख्०। सेसाणं पचिदियतिरिक्खभंगो।

त्र्यौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, छह संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलवु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय । शेष कथन सुनम है ।

४-१. मनुष्यत्रिकमं चपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग पञ्च नित्रय निर्यक्षोंके समान है। पुरुषवेदके उन्कृष्ट अनुभागवन्धका काल आंघके समान है। अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक नीन पत्य है। किन्तु मनुष्यिनियोंमें यह काल कुछ कम नीन पत्य है। देवगिन चतुष्क, संचतुरस्त्रपंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्यर, आदेय और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है । अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक नीन पत्य है। किन्तु मनुष्यिनियोंमें कुछ कम नीन पत्य है। पञ्च नित्रय जानि, परघान, उच्छ्वास और असचनुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका घन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। अनुतकृष्ट काल कुछ काम एक पूर्वकोटि है। होप प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्च नित्रय निर्म काल एक समय है।

विशेषार्थ-मनुष्योंमें जो क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुसागवन्यका जवस्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है वे ये हैं - सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकिथिकरारीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियेक आङ्गोपाङ्ग, आहारक आङ्गोराङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क, देवनत्यानुपूर्वा, अगुरुत्तघु. प्रशस्त विहायोगित, स्थिरादि पाँच श्रीर निर्माण । इन चपक प्रकृतियोंके अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार तियञ्जोंमें घटित करके बतलाया है उस प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिए। पुरुपवेदके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल तो स्रोघमें ही घटित करके बतला आये हैं। उससे यहां कोइ विशेषता न होनेसे वह त्रोघके समान कहा है। मात्र यहाँ इसके अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धके उत्कृष्ट कालमं विशेषता है। जो इस प्रकार है—जिस मनुष्यने पूर्व कोटि कालके त्रिभागमें मनुष्य युका बन्ध कर क्रमसे क्षायिक सम्यग्दरोन प्राप्त किया। वह मरकर तीन पल्यकी आयु लेकर उत्तम भागभूमिमें उत्पन्न होता है। यतः सम्यग्दृष्टि के एक मात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है अतः मनुष्योंमें पुरुष वेदके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभाग बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य प्राप्त होनेसे यहां वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र ऐसा जीव मरकर मनुष्यिनियोंमें नहीं उत्पन्न होता, अतः इनमें वह कुछ कम तीन पल्य कहा है। यह भी, जो मनुष्यिनी तीन परयकी आयु लेकर उत्पन्न हुई और सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होने पर सम्यक्त्व ग्रहण कर जीवन भर उसके साथ रही उसके कहना चाहिए। पञ्चे न्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास स्रोर त्रसचतुष्क ये भी चपक प्रकृतियां हैं इसलिए इनके उत्कृष्ट स्रतुभाग बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल तो एक ही समय होगा, पर इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभाग बन्धके उत्कृष्ट कालमें तिर्यक्रोंसे विशेषता होनेके कारण यहां इनका काल अलगसे कहा है। बात यह है

४८२. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय०-दु०-मणुस०पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि० झंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थिव०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० एकत्तीसं सा० । सेसाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० द्यंतो० । एवं सन्वदेवाणं अप्यप्यणो कालो णादन्वो ।

कि जो मनुष्य भोगभू मिमं उत्तन्न होता है वह विशुद्ध परिणामों से मरने के पूर्व अन्तर्मु हूर्त कालसे इन प्रकृतियों का बन्ध करने लगता है इसिलए इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट काल तीनों प्रकारके मनुष्यों में साधिक तीन परुष घटित होने से वह यहां उक्त प्रमाण कहा है। पर्याप्त मनुष्यों में यहां अन्य विशेषता भी घटित कर लेनी चाहिए। तीर्थ कर प्रकृति भी क्षपक प्रकृति है, इसिलए इसके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु मनुष्य पर्यायमें इसका निरन्तर बन्ध कुछ कम एक पूर्वकाटिकाल तक ही सम्भव है, इसिलए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८२. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्याति, पञ्चेन्द्रियजाति, श्रोदारिक शारीर, तैजस शारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्न संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्श्वभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्राप्त उत्कृष्ट काल दो समय है। श्राप्त उत्कृष्ट श्राप्त प्रभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। श्राप्त श्राप्त अनुत्कृष्ट श्राप्तभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्राप्तभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्राप्त श्राप्त अनुत्कृष्ट श्राप्तभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्राप्त स्वर्त वेशेके श्रपना श्रपना काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्राप्त है। इसी प्रकार सव देवोंके श्रपना श्रपना काल जानना चाहिए।

विशेपाथ—यहां देवोंमें प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियां कहीं हैं वे ध्रुवविधनी हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्य यदि होता है तो वह भी ध्रुवविधनी हैं। यही कारण है कि सामान्यसे देवोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिक जो आठ प्रकृतियां दूसरे दण्डकमें कहीं हैं उनमेंसे मिथ्यात्व मिथ्यादाष्टके और शेष सात मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टिके ध्रुवविधनी हैं किन्तु अनुद्शादिकमें एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही हाता है अतः इन आठके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल पूरा इकतीस सागर कहा है। इनके सिवा शेप जितनी प्रकृतियाँ बचती हैं वे सब यहाँ पर परावर्तमान हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। यह सामान्य देवोंमें कालकी प्रकृत्यणा हैं। विशेषकृतसे जिन देवोंकी जो उत्कृष्ट स्थित हो उसे जानकर और अपनी अपनी विधनेवाली प्रकृतियोंको जानकर कालकी प्रकृत्यणा करनी चाहिए। यद्यपि बारहवें कल्प तक तिर्यक्कगति, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भी बन्ध होता है इसलिए वहां तक मनुष्य

४८३. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा। बादरे श्रंगुल० असंखे०, तिरिक्खगदितिगस्स कम्मिहिदी। बादरपज्जत्ते संखेजाणि वाससहस्साणि। सुहुमे असंखेजा लोगा। सेसाणं अपज्जत्तभंगो।

४८४. पंचिं०-तस०२ पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०--भय - दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एग०, उक्क० कायद्विदी० ।

गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रोर उचगोत्र परावतमान प्रकृतियाँ हां जाती हैं। इसी प्रकार दृसरे कल्प तक एकेन्द्रिय जाति श्रोर स्थावरका भी वन्ध होता है इसिलए वहां तक पश्च न्द्रिय जाति श्रोर त्रस ये दो प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हो जाती हैं पर सौधर्मादि कल्पोंमें सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न होते हैं श्रोर सम्यग्दृष्टियोंके इनका बन्ध नहीं होता, इसिलए सौधर्मादि कल्पोंमें यथासम्भव सम्यग्दृष्टिकी श्रपेक्षा मनुष्यगति, पञ्च निद्रयजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस श्रोर उच्चगोत्र ये ध्रववन्धिनी ही हैं श्रोर इस श्रपेक्षासे इन कल्पोंमें इन प्रकृतियोंके श्रनुकृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रपने श्रपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थित प्रमाण मिल जाता हो, श्रतः वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र भवनित्रकमें सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न नहीं होते श्रतः यहां जिनकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम करके इन प्रकृतियोंके श्रनुकृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। दोष कथन मुगम है।

४८३. एकेन्द्रियोंमें ध्रुववन्धवाली श्रीर तिर्यक्कगित त्रिकके उत्क्रष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट काल दो समय है। श्रनुत्क्रष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। वादर जीवोंमें श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। किन्तु तिर्यक्कगितित्रिकका कर्मस्थितिप्रमाण है। वादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सूदम जीवोंमें श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। होप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रपर्यात्र जीवोंके समान है।

विशेपार्थ-यदापि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण ऋर्थान् असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कही है: तथापि यह कायस्थिति एकेन्द्रियोंमें वादरसे सूच्म और सूच्मसे बादर तथा पर्याप्त ऋौर ऋपर्याप्त होते हुए प्राप्त होती है और ऋसंख्यात लोक प्रमाण काल तक सूहम रहनेके बाद ऐसे जीवके बादर होने पर पर्याप्त अवस्थामें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट बन्ध भी होने लगता है। यदि यह मानकर भी चला जाय कि ऐसे जीवके पर्याप्त अवस्थामें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पर्याप्तकी कायस्थितिके त्र्यन्तमें करावेंगे तो भी बादर पर्याप्त जीवकी कुल कायस्थिति संख्यात हजार वपं प्रमाण ही है। यदि सामान्यसे बादर जीवकी कायस्थिति ली जाती है तो वह अंगुलके असं-ख्यातवें भागप्रमाण ही होती है। पर इससे सूदम जीवोंकी कायस्थितिमें विशेष अन्तर नहीं आता, श्रतः यहांके एकेन्द्रियोंमें उक्त प्रकृतियोंके श्रानुस्कृष्ट श्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रासंख्यात लोक प्रमाण कहा है। शेव बादरादिककी जो कायस्थिति है उसे ध्यानमें रख कर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध का वहां उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र तिर्यक्रगतित्रिकके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल वादरों में कर्म स्थिति प्रमाण कहा है। सो इसका कारण यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ही इन प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध होता है स्रोर बादर अग्निकायिक स्रोर वायुकायिक जीवोंकी काय-स्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है, अतः इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कर्म स्थिति प्रमाण कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो वे सब परावर्तमान हैं अतः उनके अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तम् हूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८४. पञ्चे न्ट्रियद्विक श्रीर त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभाग- सादा०-आहारदुग-उज्जो०-थिर-सुभ-जस० उक्क० अणुक्क० ओग्नं। असाद०-सत्तणोर्के०आयु०४-णिरय०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदाव-अप्पसत्थ०थावरादि०४-अथिरादिछ० उक्क० अणु० ओग्नं। तिरिक्ख०-ओरालि॰-ओरालि०ग्रंगो०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० ओग्नं। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०।
मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु० उक्क० अणु० ओग्नं। देवगदि०४ उक्क० अणु० ओग्नं।
पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० अणु० ओग्नं। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सरआदे०-उच्चा० उक्क० अणु० ओग्नं। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० उक्क०
एगै०। अणु० जै० ग्रंतो०, उ० कायहिदी०। तित्थय० उक्क० अणु० ओग्नं।

वन्धका काल श्रोवके समान है। श्रनुःकृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण हैं। सातावेदनीय, आहारकद्विक, उद्योत, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके डत्कृष्ट त्रौर त्रातुत्कृष्ट त्रातुभागवन्धका काल त्र्योघके समान है। त्रासातावेदनीय, सात नोकपाय, चार श्रायु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, श्रातप, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर त्रादि चार और अस्थिर आदि छहके उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुमागवन्धका काल आघके समान है। तिर्यञ्जगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्येक्चगत्यानुपूर्वी ख्रौर नीचगात्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल आंघके समान है। अनुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। मनुष्य-गति, वज्रपंभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उन्कृष्ट ज्योर त्र्यनुन्कृष्ट त्र्यनुभागवन्धका काल श्रोधके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रोर धनुत्कृष्ट श्रनुगागवन्धका काल श्रोधके समान हैं । पञ्च न्द्रियजाति, परवात, उच्छ्वास ऋौर त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट ऋौर श्रनुत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका काल खोषक समान है। समचतुरस्रेसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, खादेय खौर उचगोत्रके उत्दृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवत्यका काज आयके समान है। तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुतवु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्न हे और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट ग्रीर अनुत्कृष्ट ग्रनुभागवन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध आघमें संज्ञी पक्षे न्द्रिय पर्याप्त करता है इसलिए यहाँ उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञवन्य और उत्कृष्ट काल आघके समान बन जाता है अतः वह आघके समान कहा है। तथा ये ध्रु वबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे पक्षे न्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध सम्भव है इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण कहा है। पक्षे न्द्रियद्विककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोदि प्रथक्त अधिक एक हजार सागर और सो सागरपृथक्त प्रमाण है और त्रसद्विककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोदि प्रथक्त अधिक एक हजार सागर और सो सागरपृथक्त प्रमाण है और त्रसद्विककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोदि प्रथक्त अधिक दो हजार सागर और दो हजार सागर है। सातादण्डकके कालका खुलासा आघ प्रकृतणाके समय कर आये हैं। उससे यहाँ कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इस दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके कालमें अन्य

१. ता० श्रा० प्रत्योः छुएगोक० इति पाठः । २. ता० प्रतो उक्क० [ज०] ए० इति पाठः । ३. ता० श्रा० प्रत्योः श्रग्रु० ज० ज० इति पाठः ।

४८५. पुढवि०-आड० धुवियाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, ड० असंखेजा लोगा। बादरे कम्मिटिदी। बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि बाससहस्साणि। सुहुमाणं असंखेज्जा लोगा। सेसाणं अपज्जत्तभंगो।

४८६. तेंड०-वाड० धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ड० ज० ए०, उ०

कोई विशेषता न होनेसे वह स्रोघके समान कहा है। स्रसातावेदनीय स्रादि तीसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाई हैं उनका काल भी यहाँ श्रांघके समान घटित हो जानेसे वह श्रोघके समान कहा है। मात्र पुरुपवेदको त्रोघशरूपणामें त्रालगसे बतलाया है श्रीर यहाँ उसे सम्मिलित कर लिया है। इसलिए इसका श्रोधमें जिस प्रकार काल कहा है उसी प्रकार यहां उसका श्रलगसे काल कहना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। तिर्यञ्चगति, श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगात्र इनके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्यका जयन्य श्रोर उत्कृष्ट काल तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्यका जयन्य काल तो श्रोघके ही समान है। मात्र त्र्यनुत्कृष्ट त्र्यनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्भव है जीर ऐसा जीव संक्लेश परिणामवश नरकमें जानेके पहले व बादमें अन्तर्मु हुर्न काल तक इनका बन्ध करता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति, वर्ज्यभनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका काल जैसा श्रोघमें बतलाया है वह यहाँ ऋविकल घटित हो जाता है इसलिए यह प्रमूपणा ऋायके समान की है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्क, पक्चोन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास ऋौर त्रसचतुष्क तथा समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र तथा तीर्थं द्वर प्रकृतिकी अपेक्षा काल श्रोघके समान यहाँ घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुसागवन्यका उत्कृष्ट काल इन्हीं मार्गणाओंमें सम्भव है, इसलिए इन मार्गणात्रोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल योघके समान कहा है। श्रव रहीं तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुन्क, श्रगुरुलघु श्रौर निर्माण सो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें ज्योघसे कुछ विशेषता है। बात यह है कि ज्योघ प्रह्मपणामें अमुक मार्गणाका कोई वन्धन न होनेसे वहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जो काल बतलाया है वह यहाँ सम्भव नहीं है। इन प्रकृतियोंके घ्रववन्धिनी होनेसे यहाँ यह इन मार्गणात्रों की कायस्थिति प्रमाण हो बनता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८५. पृथिवीकायिक श्रौर जलकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाती प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। इनके बादर जीवोंमें कर्मस्थिति-प्रमाण है। वादर पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। सूद्म जीवोंमें श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ — पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इनके बादरोंकी कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है और सूदमोंकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८६. अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली श्रौर तिर्यक्रगतित्रिकके उत्कृष्ट

वेस०। अणु० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा। बादरे कम्मिटिदी। पज्जते संखेजाणि वाससहस्साणि। सुहुमे असंखेजा लोगा। सेसाणं अपज्जतभंगो।

४८७, वणप्फदि० एइंदियभंगो । तिरिक्खगदितिग० परिय० भाणिदव्वं । बादर०पत्ते० बादरपुढविभंगो । णियोद० पुढविभंगो ।

४८८. पंचमण०-पंचवचि० साद०-देवगदि०-पंचिदि०-चदुसरीर-समचदु०-दोत्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-उज्जो०-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उचा० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उक्क० श्रंतो० । सेसाएां उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० ।

अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध का जघन्यकाल एक समय है। श्रीर उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। वादरोंमें कर्मस्थिति-प्रमाण है। पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूद्दमोंमें श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्त जीवोंके समान है।

विशेपार्थ—श्रिकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें तिर्यक्रमाति, तिर्यक्रमात्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका ही बन्ध होता है। इनकी प्रतिपत्त प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, श्रतः यहां ये ध्रुव-वन्धिनी ही हैं। शेष कथन सुगम है।

४५७. वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके:समान भङ्ग है। मात्र यहां तिर्येख्नगतित्रिकको परिवर्तमान प्रकृतियोंके साथ कहना चाहिए। वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें वादर पृथिवी-कायिक जीवोंके समान भङ्ग है। तथा निगोद जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—एकेन्द्रियों में अग्निकायिक और वायुकायिक जीव भी सम्मिलित हैं इसलिए उनमें इनकी अपेता तियक्रगतित्रिकको धुवनिधनी मान कर काल कहा है पर वनस्पतिकायिक जीवोंमें यह बात नहीं है इसलिए इनमें तिर्यक्रगतित्रिककी परिवर्तमान प्रकृतियोंके साथ परिगणना करनेकी सूचना की है। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंकी कायस्थित वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान होनेसे इनमें कालकी प्ररूपणा वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान कही है। निगाद जीवोंकी कायस्थित यद्यपि ढाई पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है पर इनके वादर जीवोंकी कायस्थित बादर पृथिवीकायिक जीवोंके ही समान है। यह देखकर यहां सामान्यसे निगाद जीवोंकी प्ररूपणा पृथिवीकायिक जीवोंके समान जाननेका निर्देश किया है।

४८८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें सातावेदनीय, देवगित, पख्चे न्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्न संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उद्यगित्रके
उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुँ हुर्त है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इन्तमुँ हुर्त है।

विशेपार्थ—इन पूर्वोक्त योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहां सब प्रकृतियोंके अनु-त्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा प्रथम दण्डकमें जो सातावेदनीय आदि प्रकृतियां कही गई हैं वे सब चपक प्रकृतियाँ हैं और चपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह ओघमें बतला ही आये हैं, अतः वह ओघप्ररूपणा ४८६. कायजोगी० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छत्त०--सोलसक०--भय--दु०ओरालि०-अणसत्थ०४-उप०-पंचंत० उक्क० अणु० ओघं। तिरिक्खगिदितिगं च अधं।
सादा०-देवगिद-पंचिदि०-वेडिव्व०-आहार०-समचदु०-देशियंगो०-देवाणु०-पर०--उस्सा०उज्जो०-पसत्थिव०-तस०४-थिरादिछ०-तित्थय०-उच्चा० उ० ए ०। अणु० ज० एग०,
उक्क० श्रंतो०। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० वेस०। अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो०।
तेजा०-क०-पसत्थवणण०४-अगु०-णिमि० उ० एग०। अणु० णाणावरणभंगो।

४६०. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय--दु०-ओरालि०-अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-पंचंत० उक्क० ओर्च । अणु० ज० ए०, उ० वाबीसं वाससहस्साणि देम्० । तिरिक्खगदितिगस्स च उक्क० ओर्घ । अणु० ज० ए०, इन योगोंमें भी बन जाती हे, अतः यहां इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । शेप कथन सुगम है ।

४६. काययोगी जीवोमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, ख्रोदारिक शरीर, ख्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात ख्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल ख्रांचके समान है। तिर्यक्चगतित्रिकके उत्कृष्ट ख्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल ख्रांचके समान है। सातावेदनीय, देवगति, पश्चिन्द्रियज्ञाति, विक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्र संस्थान, दं ख्राङ्गोपाङ्ग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्यात, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर ख्रादि छह, तीर्यङ्कर ख्रोर उच्चगांत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुत्वयु ख्रोर निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उद्युष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। तैजस शरीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावर्णके समान है।

विशेषार्थ — यहां प्रथम दण्डकमं कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुमाग-बन्धका उत्कृष्ट काल श्रोघमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे कहा है श्रोर एकेन्द्रियोंके एकमात्र काययोग ही होता है, श्रतः काययोगमें इन प्रकृतियोंको प्ररूपणा श्रोवके समान वन जानेसे वह श्रोघके समान कही है। तिर्यञ्चगतित्रिककी प्ररूपणाका भी यही कारण है, इसलिए यहां वह भी श्रोघके समान कही है। एक तो सातावेदनीय श्रादि श्रधिकतर प्रकृतियाँ परिवर्तमान हैं, दूसरे संज्ञी पञ्चोन्द्रियके काययोगका काल श्रम्तमुं हूर्त है, इसलिए यहां इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रम्तमुं हूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तेजसशरीर श्रादि श्राठ प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके भी निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरणके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६०. श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिक शरीर, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। तिर्यक्रगतित्रिकके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका काल

१. ता॰ प्रती ट॰ [जह॰] ए॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती पंचंत॰ छोघं इति पाठः ।

उ० तिण्णिवाससहस्साणि देसू० । उज्जो० सादभंगो । सेसं कायजोगिभंगो ।

४६१. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दु०-देवगदि-चदुसरीर-समचदु०-वेउव्वि० ग्रंगो०-पसत्थवण्ण०४—देवाणु०-अगु०-उप०-णिमि०तित्थय०-पंचंत० उक्क० एग०। अणु० ज० ग्रंतो०, उक्क० ग्रंतो०। णविर समचदु०
अणु० ज० एग०। दोआयु० ओघं। सेसाणं उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क०
ग्रंतो०। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०।

श्रोधके समान है। श्रनुत्रुष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है। च्द्योत प्रकृतिका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा शेप प्रकृतियों का भङ्ग काययोगी जीवों के समान है।

विशेषार्थ—श्रौदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। इतने काल तक ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध श्रौदारिककाययोग रे रहते हुए श्रग्निकायिक श्रोर वायुकायिक जीवोंमें ही सम्भव है। उसमें भी वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति तीन हजार वर्षप्रमाण होती है, किन्तु इसमें श्रोदारिकमिश्रकाययोगका काल भी सम्मिलित है इसलिए उसे श्रलग करने पर कुछ कम तीन हजार वर्ष होते हैं, श्रतः श्रौदारिककाययोगमें तिर्यञ्चगतित्रिकके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। श्रेप कथन सुगम है।

४६१. स्रोदारिकमिश्रकाययोगो जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलहं कपाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, चार शरीर, समचतुरस्न संस्थान, विकियिक स्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, स्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर स्रोर पाँच स्रन्तरायके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्थका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागवन्थका जघन्य काल स्रन्तर्मु हूर्त है। इतनी विशेषता है कि समचतुरस्त्रसंस्थानके स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागवन्थका जवन्य काल एक समय है। दो स्रायुत्रोंका भंग स्रोधके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्थका जवन्य काल एक समय है। स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागवन्थका जवन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल स्रन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैकियिक-मिश्रकाययोगी स्रोर स्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—श्रौदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धयोग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं, इसलिए यहाँ पर सब प्रकृतियांक उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु उसमें भी पहले दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ गिनाई हैं उनका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध शरार पर्याप्तिके प्रहण करनेके एक समय पूर्व होता है इसलिए इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूतें कहा है। मात्र समचतुरस्त्रसंस्थान इसका श्रपवाद है। इसका शरीर पर्याप्तिके प्रहण करनेमें एक श्रादि समयका श्रन्तर देकर भी उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव हैं, इसलिए इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त कहा है। समचतुरस्त्रसंस्थानके समान श्रेष प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना चाहिए, इसलिए उन सबके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त कहा है। वैक्रियिक-मिश्रकाययोग श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगमें इस दृष्टिसे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए उनके

४६२. वेडिव्यका० उज्जोवं ओघं। सेसाणं उक्क० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० ज० एग०, उ० झंतो०। एवं आहारका०।

४६३. कम्मइ० [थावर] संजुत्ताणं उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिसम०। एवं तससंजुताणं । देवगदिपंचग० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० वेसम०।

४६४. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ-व०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओद्यं। अणु० ज० एग०, उक्क० कायद्विदी०। सादा०-आहार-दुग-थिर-सुभ--जसगि० उक्क० अणु० ओद्यं। असादा०--छण्णोक०--चदुआयु०-णिरय-गदि०-तिरिक्ख०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-

कथनको श्रोदारिकमिश्रकाययोगीके समान कहा है । मात्र इनमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियाँ जानकर यह काल घटित करना चाहिए ।

४६२. वैकियिककाययोगी जीवोंमें उद्योतका भङ्ग खोघके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध का जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ — श्रोवसे उद्यात प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्व प्रह्ण करनेके एक समय पूर्व होता है। यतः इस अवस्थामें वैकियिककाययोग सम्भव है, अतः वैकियिक काययोगमें उद्यात प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रोर अनुन्कृष्ट अनुभागवन्थका काल त्र्यायके समान घटित हो जानेसे वह श्रोधके समान कहा है। तथा वैकियिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है इसिलए इसमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। शेप कथन सुगम है।

४६३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें स्थावर संयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार त्रससंयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल जानना चाहिए। देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगके तीन समय एकेन्द्रियोंमें ही सम्भव है श्रीर उनके देवगति-चतुष्क तथा तीर्थङ्कर प्रकृति इन पाँचका बन्ध नहीं होता, श्रातः इनके अनुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके सिवा कार्मणकाययोगमें श्रान्य जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं वे स्थावरसंयुक्त या त्रससंयुक्त जो भी प्रकृतियाँ हों उन सबका बन्ध एकेन्द्रियके सम्भव होनेसे उनके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६४. स्नीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल श्रोधके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कायस्थितिप्रमाण है। सातावेदनीय, आहारकद्विक, स्थिर, शुभ श्रोर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल श्रोधके समान है। असातावेदनीय, छह नोकवाय, चार आयु, नरकगित, तिर्यक्कगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित,

थावरादि०४—अथिरादिछ०-णीचा० उक्क० अणु० पंचिदियतिरिक्खभंगो । पुरिस०मणुसग०-ओरालि० त्रंगो०-वज्जिरि०-मणुसाणु० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उक्क०
पणवण्णं पिलदो० देस्० । देवगदि०४ उक्क० एग० ! अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिंपिलदो० देस्० । पंचिदि०--समदु०--पसत्थ०- तस०-सुभग--सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ०
एग० ! अणु० ज० एग०, उ० पणवण्णं पिलदो० देसू० | ओरालि० उ० ओघं । अणु०
ज० एग०, उ० पणवण्णं पिल० सादि० । तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४--अगु०-णिमि०
उ० एग० ! अणु० ज० एग०, उक्क० कायिद्विश्व० । पर०-उस्सा०-वादर-पज्ज०-पत्ते०
उ० एग० ! अणु० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पिल० सादि० । तित्थ० उ० एग० ! अणु०
ज० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू० ।

स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर त्रादि छह श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका काल पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चोंकं समान है। पुरुपवंद, मनुष्यगति, स्रोदारिक स्राङ्गोपाङ्ग, वस्त्रपंभनाराच संहतन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल श्रोचके समान है। अनुत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य काल एक समय है अौर उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पत्य है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन परुव है। पञ्च निद्वयज्ञाति, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उचगोत्रके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्यका जघन्य त्र्योर उत्कृष्ट काल एक समय है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पत्य है। श्रीदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका काल श्रोयके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पस्य है। तैजसंशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, ऋगुरुलघु झोर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल प्रत्येकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समये हैं। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जयन्य काल एक समय है ज्यार उत्कृष्ट काल साधिक पचवन परुप है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उद्घष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकांटि हैं।

विशेगर्थ — प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ घ्रु ववन्धिनी होनेसे इनका स्त्री-वेदकी कायस्थितियमाण काल तक निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल स्त्रीवेदकी कायस्थितियमाण कहा है। स्त्रीवेदकी कायस्थिति सो पत्य प्रथन्त्वप्रमाण है। दूसरे दण्डकमें कही गई साता आदि और तीसरे दण्डकमें कही गई असाताआदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। इनके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतसे अधिक किसी भी अवस्थामें नहीं बनता। ओघसे साता आदिका और पक्षे न्द्रिय तियञ्जाके असाता आदिका यह काल अन्तमु हूते ही बतलाया है, इसलिए इन दोनों दण्डकोंमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कमसे आघ और पञ्जे न्द्रिय तियञ्जोंके समान कहा है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब इनका काल एक समान है तब उसे अलग-अलग क्यों कहा ? समाधान यह है कि सातादिक दण्डकमें एक तो आहारकद्विक सम्मिलित हैं। दूसरे सातावेदनीय, स्थिर, धुभ और यशःकितिका रापनी प्रतिपद्म प्रकृतियोंके बिना भी वन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके काल

४६५. पुरिसवेदेसु पढमदंडओ णाणावरणादि० सागरोवमसदपुथत्तं । विदिय-दंडओ सादादि० तिदयदंडओ असादादि० इत्थिभंगो । मणुसगिदपंचगदंडगस्स अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । सेसं पंचिदियपज्जत्तभंगो । णविर पंचिदियदंडओ तेविद्यसागरोवमसदं ।

की समानता त्रोघके समान बतलाई है त्रोर त्रसातादिक दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही गई हैं उनका तिर्यक्किके अपनी अपनी व्युच्छित्ति काल तक नियमसे बन्ध होता है, अतः यहां इनके कालकी समानता पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चांके समान बतलाई है। पुरुपवेद त्र्यादि चौथे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही हैं उनका देवी सम्यग्दृष्टिके नियमसे बन्ध होता है स्रोर देवीके सम्यग्दर्शनकी अवस्थितिका उत्क्रष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य है। इसके वाद यदि वह सम्यग्दर्शनके साथ मरती है तो नियमसे पुरुषवेदी मनुष्य ही होती है, अतः यहां इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य कहा है। उत्तम भागमृमिकी मनुष्यिनी अपर्याप्त अवस्थाको छोड़कर नियमसे देवगतिचतुष्कका बन्ध करती है अतः यहां देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन परुप कहा है। देवीके सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने पर पञ्चीन्द्रिय जाति त्र्यादि प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका नहीं; इमलिए इन प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पत्य कहा है। देवीके पचवन पत्य काल तक तो ख्रोदारिकशरीरका बन्ध होगा हो। इसके बाद भी पर्यायान्तरमें उसका अन्तर्म हर्त काल तक बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है। तैजसरारीर आदि अ ववन्यिनी प्रकृतियाँ है। स्त्रीवेदीके अपनी कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका नियमसे बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल स्त्रीयेदकी कायस्थितिप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदकी कायस्थितिका निर्देश हम पहले कर ही आये हैं। परघात. उच्छवास, बादर ऋौर पर्याप्त ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। देवीके तो इनका बन्ध होता ही हैं, पर वहां उत्पन्न होनेक पहले अन्तर्म हर्त काल तक भी इनका बन्ध होता है, इसलिए यहां इनके त्रानुत्क्राट्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है। तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यग्द्रिट मनुष्यिनीके सम्भव है. देवी सम्यग्द्रिटके नहीं। त्रीर मनुष्यिनीके सम्यग्दर्शन कुळ कम पूर्वकोटि काल तक ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहां तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धको उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। शेप कथन सुगम है।

४६५. पुरुविदी जीवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई झानात्ररणादि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथनत्त्रप्रमाण है। दूसरे दण्डकमें कही गई साताविदनीय आदिक और तीसरे दण्डकमें कही गई असाताविदनीय आदिकका भन्न स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकदण्डकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। शेप प्रकृतियोंका भन्न पञ्च न्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चे न्द्रिय दण्डक सौ त्रेसठ सागर है।

विशेषार्थ — पुरुपवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए यहां पर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। साता आदि दूसरे दण्डकमें श्रीर असाता आदि तीसरे दण्डकमें परावर्तमान प्रकृतियोंका विचार किया है। इसलिए यहां पुरुषवेदमें इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल क्रीवेदी जीवोंके समान बन जाता है, अतः वह क्षीवेदी जीवोंके समान कहा है। तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंके मनुष्यगित पञ्चकका नियमसे वन्ध होता रहता है, इसके बाद उसके मनुष्य होने पर और देवपर्यायके पहले देवगितचतुष्कका बन्ध होता है, अतः मनुष्यगितपञ्चकके अनुत्कृष्ट

४६६. णवुंसगे पंचणाणावरणादिपढमदंडें० सादादिविदियदंडओ असादादितिदयदंडओ ओघं। पुरिस०-मणुसग०-वज्जिर०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० ज०
एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिरिक्तवगिदितगं ओघं। देवगिदि०४ उ० एग०।
अणु० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। पंचिदि०-पर०--उस्सा०--तस०४ उक्क०
एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। ओरालि० अंगो० ओघं।
तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उ० अणंतका०।
समचदु०-पसत्थवि०--सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० ज० ए०, उ०
तेतीसं० देसू०। तित्थ० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसा० सादि०।

अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। पञ्चे न्द्रियदण्डकमें पञ्चे न्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्क ये सात प्रकृतियाँ ली जाती हैं। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें जो एक सौ पचासी सागर बतलाया है उसमें नारकके बाईस सागर सिम्मिलत हैं और नारको नपुंसकवेदी होता है जब कि यहां पुरुपवेदीका विचार चला है, अतः बाईस सागर कमकर इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६६. नपुंसक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि, प्रथम दण्डक, सातावेदनीय त्रादि द्वितीय दण्डक श्रीर श्रसातावेदनीय श्रादि तृतीय दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, वश्रपेभ-नाराच संहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल श्रोधके समान है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यक्र-गतित्रिकका भङ्ग स्रोघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पञ्चे न्द्रिय जाति, परघात, उच्छवास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गका भङ्ग श्रोघके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु श्रौर निर्माणके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रानन्त काल है। समचतुरस्त्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगीत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेपार्थ—एकेन्द्रिय नपुंसक ही होते हैं और प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे बनता है। ओघ प्ररूपणामें भी यह काल इसी अपेक्षासे कहा है इसलिए तो पांच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके कालको ओघके समान कहा है। तथा दूसरे और तीसरे दण्डक में कही गई प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्त-मुंहूर्त यहां भी उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-

१. ता॰ घा॰ प्रस्यो पंचमदंड॰ इति पाठः।

४९७, अवगदवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-सादा०-जस०-ज्ञा०-पंचंत० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० ग्रंतो०।

४६⊏, कोधादि०४ तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उक्क० एग०। अणु० जे०

भागबन्धके कालको श्रोधके समान कहा है। नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक इस जीवके पुरुपवेद, मनुष्यद्विक स्रोर प्रथम संहननका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण श्रोघसे कहा है। यहां भी यह बन जाता है, क्योंकि श्राग्निकायिक श्रीर वायकायिक जीव नप सक ही होते हैं, अतः यह प्ररूपणा अधिके समान की है। नपु सकवेदमें देवपातिचतुष्कका निरन्तर बन्ध सम्यग्दृष्टि मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चके ही सम्भव है श्रीर एसे जीवके न तो जीवनके प्रारम्भसे सम्यग्दरीन होता है अौर न यह भोगभूमिज होता है और कर्मभूमिमें इनकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटिसे श्रधिक नहीं होती, श्रतः यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। नरकमें पञ्च न्द्रिय जाति, परवात, उच्छवास और त्रस चतुष्कका निरन्तर बन्ध होता है, तथा अन्तम् हर्त काल तक आगे पीछे भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-गन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके श्रानुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर नारिकयोंकी मुख्यतासे प्राप्त होता है। श्रोघसे यह काल इतना ही बनता है, अतः इसका काल आविके समान कहा है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघु और निर्माण ये ध्रववन्धिनी प्रकृतियां हैं, ऋपनी व्युच्छित्तिके पूर्वतक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है, क्योंकि नपु सकवेदकी इतनी कायस्थिति है। नरकमें सम्यक्त्य के कालके भीतर समचतुरस्त संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, ऋ।देय ऋौर उच्चगोत्रका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका नहीं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही बन्ध सम्भव है। उसमें भी ऐसा जीव साधिक तीन सागरकी आयुसे अधिक आयु लेकर वहां उत्पन्न नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। शेव कथन सुगम है।

४६७. श्रपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, रचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकसूद्रमसाम्परायके अन्तिम समयमें और शेष अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उपशमश्रेणि
से उतरते हुए अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका एक
समय काल कहा है। तथा अपगतवेदके शेष समयमें इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है।
किन्तु अपगतवेदका जघन्य काल एक समय है और अपगतवेदी होनेके प्रारम्भ कालसे लेकर
उपशान्तमोद्द तकका काल व उतर कर पुनः सवेदी होने तकका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ
इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

४६८. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु श्रौर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट

१. ता॰ प्रती गिमि॰ प्राप्तु॰ ज॰ इति पाठः ।

एग०, उक्क० श्रंतो० । सेसाणं मणजोगिभंगो ॥

४६६. मदि०-सुद्० पंचणाणावरणादिपढमदंडओ-सादादिविदियदंडओ तिरिक्ख-गदितिगं च ओघं ! असादा-सत्तणोक०-चदुआयु०--णिरयगदि-चदुजादि--पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०--आदाव०--अप्पसत्थिव०--थावरादि०४-अथिरादिछ० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० झतो० । एवं उज्जोवं वज्जरिस० । णविर उक्क० एग० । मणुस०-मणुसाणु० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० एक-तीसं० सादि० । देवगदि४-समचदु०--पसत्थवि०--सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पत्ति० देसू० । पंचि०--ओरालि० झंगो०-पर०--उस्सा०-तस०४ उक्क० एग० ! अणु० ज० ए०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० ।

श्चनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है त्रोर उत्कृष्ट काल त्र्यन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंका भक्त मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशे गर्थ—मनोयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट अनुभागबन्धका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके बतला आये हैं वह कोधादि चार कषायवाले जीवों में भी धन जाता है। फिर भी यहां पर तैजसशरीर आदि कुछ प्रकृतियों का अलगसे उल्लेख कर जो उनका काल कहा है सो प्रकारका दिग्दर्शन कराना मात्र उसका प्रयोजन है। तात्पर्य यह है कि जो अपक प्रकृतियाँ हैं उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त जैसा मनोयोगियों के कहा है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिए। तथा शेप प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल शन्तर्मु हूर्त मनोयोगी जीवों के समान यहाँ भी होता है, कारण कि चारों कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त मनोयोगी जीवों के समान यहाँ भी होता है, कारण कि चारों कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त होता है। तथा चपकश्रेणिमें भी चारों कपायोंका सद्भाव पाया जाता है। मात्र स्वामित्वको अपेना जहाँ जो विशेषता आती है उसे जान कर यह काल घटित करना चाहिए।

४६६. मत्यज्ञानी त्रोर श्रुताज्ञानी जीवों मं पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डक त्रीर तिर्यक्रगतित्रिकका भन्न त्रीयके समान है। असातावेदनीय, सात नोकपाय, चार त्रायु, नरकगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रातप, त्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर त्रादि चार त्रीर त्रिस्थर त्रादि छहके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। त्रानुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार उद्योत त्रीर वन्नपंभनाराचसंहननके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। मनुष्यगित श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, सुमग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। पञ्च निद्रय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपङ्ग, परघात, उच्छ्वास श्रीर त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल

ओरास्ति० उ० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका० । तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०-णिमि० उक्क० अणु० ओघं ।

५००. विभंगे पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्खग०-अप्पसत्थवण्ण४--तिरिक्खाणु०-उप०--णीचा०--पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० वेसम०।

एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रीदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रनुभाग-वन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रनन्त काल है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रांचके समान है।

विशेपार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादिके त्र्यनुभागवन्धका काल दूसरे दण्डकमें कही गईं सातावेदनीय आदिके अनुभागवन्धका काल और तिर्यक्रगितित्रिकके श्रानुभागबन्धका काल जो स्त्रोचमें कहा है वह यहाँ श्राविकल वन जाता है, इसलिए यह स्रोवके समान कहा है। असातावेदनीय और सात नो हपाय आदि सब परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त कहा है। उद्योत श्रौर वन्नर्पभनाराच संहननका उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्य सम्यक्त्वके त्र्यभिमुख हुए क्रमसे नारकी त्र्यार देव-नारकीके एक समयके लिए होता है इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल असातांवेदनीय आदिके समान है यह स्पष्ट ही है: क्योंकि ये परिवर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुतकृष्ट अनुभागबन्यका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त बन जाता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्यक्ष्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जवन्य त्र्योर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इन दोनों प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध त्र्यन्तिम मैवेयकमें ऋधिक समय तक उपलब्ध होता है। तथा नौवें मैवयकमें उत्पन्न होनेके पूर्व ऋन्तर्मु हुतै काल तक इनका बन्ध होता है. इसलिए इनके अनुत्कृट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सधिक इकतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क त्रादिका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके श्रिभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यहाँ इनका निरन्तर ऋधिक समय तक अनुभागबन्ध उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त जीवके होता है. श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। पक्र निद्वय जाति श्रादि प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुमागवन्य सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जबन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनका श्रधिक कात तक श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सातवें नरकमें सम्भव है श्रीर वहाँ उत्पन्न होनेके पूर्व अन्तर्मा हुर्त काल तक भी इनका बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रीदारिकशरीरका भी उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सम्यक्त्वके श्रमिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसका निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियके अनन्त काल तक होता रहता है, इसलिए इसके अनुस्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। तैजसशरीर आदि ध्र वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। अभिष्मे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो काल कहा है वह मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानीके सम्भव है, इसलिए यह श्रोघके समान कहा है।

५००. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, अय, जुगुप्सा, तिर्यक्रगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट आल दो समय है।

अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्व०। सादा०-देवगदि४-समचदु०-पसत्थ०-उज्जो०-थिरादिछ०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। मणुसगदि०-मणुसाणु० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० एकत्तीसं० देस्व०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०--क०--ओरालि० अंगो०--पसत्थव०४-अगु०३-तस४-णिमि० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्व०! संसाणं असादादीणं उ० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

५०१. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणी०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा-०-क०--समचदु०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस४-सुभग-

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, देवगितचतुष्क, समचतुरस्न संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, उद्योत, स्थिरादि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। पञ्चे न्द्रियजाति औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुनिक, त्रस चतुष्क और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है। शेष असातादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेष असातादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है।

विशेषार्थ— विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर होनेसे यहाँ पाँव ज्ञानावरएादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ परिवर्तमान हैं और इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यकत्वके
अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक
समय कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुईत कहा है। मनुष्यगतिद्धिक और पश्चीन्द्रय जाति आदि प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुभागवन्ध
सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय कहा है। किन्तु मनुष्यगतिद्धिकका अधिक समय तक निरन्तर बन्ध नौवें प्रवेयकमें
सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर कहा है
और पश्चीन्द्रय जाति आदिका अधिक समय तक निरन्तर बन्ध सातवीं पृथिवीमें होता है, अतः
इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष असातादि
परावर्तमान प्रकृतियाँ है इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल दो समय कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल दो समय कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हूर्त कहा है।

५०१. श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पक्कोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

१. भा॰ प्रती चतुदंसगा॰ इति पाठ पाठः ।

सुस्तर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० एग०। अणु० ज० श्रंतो ०, उक्क० छाविह० सादि०। सादा०-अरदि - सोग-आहार०दुग-थिराथिर-सुभासुभ - जस०-अजस० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। अपचक्खाणा०४—तित्थय० उक्क० एग०। अणु० ज० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। पचक्खाणा०४ उक्क० एग०। अणु० ज० श्रंतो०, उक्क० बादालीसं ० सादि०। हस्स-रदि-दोआयुग० उक्क० अणु० ओयं। मणुसगदिपंचग० उक्क० ओयं। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग०। देवगदि०४ उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादि०। एवं ओथिदं०-सम्मादिहि ति।

समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलवुचतुष्क, प्रशस्त विहायो-गति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्र्यादेय, निर्माण, उच्चगोत्र त्रीर पाँच त्रान्तरायके उत्कृष्ट अनु-भागवन्य का जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल श्रन्तमु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक छ्वासठ सागर है। सातावेदनीय, श्ररति, शोक, त्राहारकद्विक, स्थिर, ऋस्थिर, हाम, ऋहाम, यशःकीर्ति ऋौर ऋयशःकीर्तिके उत्हृष्ट ऋनुभाग-बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल ऋन्तमु हूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट ऋनु-भागवन्यका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल श्रन्त-मुंहुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। प्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर है। हास्य, रति ऋौर दो ऋायुऋोंके उत्कृष्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट त्रानुभागवन्त्रका काल त्रोघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्धका काल त्रोघके समात है। अनुत्कृष्ट अनुमागबन्धका जवन्य काल एक समय है अोर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रुप्ट काल साधिक तीन परुय है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी श्रोर सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेपार्थ — प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियाँ कही हैं उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिण्यात्वके अभिमुख होने पर होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका चपकशेणीमें आपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा आभिनिवोधिक आदि तीनों ज्ञानोंका जघन्य काल अन्तुमुँ हूर्त है और उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छ्यासठ सागर है इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तुमुँ हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। सातादि दूसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं और इनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिण्यात्वके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका क्ष्यकश्रेणिमें अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा परावर्तमान होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तुमुँ हुत कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार, तीर्थक्कर और प्रत्याख्यानावरण चारका उत्कृष्ट काल अन्तुमुँ हुत कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार, तीर्थक्कर और प्रत्याख्यानावरण चारका उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतौ झखु॰ झंतो॰ इति पाठ॰ः । २. ता॰ प्रतौ झड [दा] स्तीसं, झा॰ प्रतौ चोदासीसं इति पाठः ।

५०२. मणपज्जबे पंचणा-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पंचिदि० वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०ग्रंगो० ---पसत्थापसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०--तस४-सभग-सुस्सर--आदे०-णिपि०--तित्थ०--उच्चा०--पंचत० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उ० पुन्वकोडी देसूणं। सेसं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-च्छेदो०। एवं चेव परिहार०-संजदासंजद०। णवरि धुविगाणं उक्क० एग०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुन्वकोडी देसू०।

श्रनुमागवन्य मिथ्यात्वके श्रमिमुख हुए जीवके श्रन्तिम समयमें होता **है, इस**लिए इनके उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य त्र्यौर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनमेंसे अप्रत्याख्यानावरण चार त्रौर तीर्थङ्करके त्रानुस्कृष्ट त्रानुभागवन्यका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि सर्वार्थिसिद्धिमें तो इनका निरन्तर बन्ध होता ही है। तथा अप्रत्याख्यानावरणका सर्वार्थसिद्धिसे आनेकं बाद अविरत अवस्थामं और तीर्थक्ररका पहले और वादमें भी विरत श्रीर श्रविरत श्रवस्थामें बन्ध होता है। किन्तु प्रत्याख्यानावरण चारके श्रवुतकृष्ट श्रवुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर है, क्योंकि सम्यग्द्रप्टि जीव इतने ही काल तक अविरत श्रीर विरताविरत त्रावस्थामें रहता है, इसलिए इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर कहा है। हास्य, रति और दो आय अर्थान् मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागवन्धका काल जिस प्रकार श्रांघमें बतला श्राये हैं उससे यहाँ कोई विशेषता न होनेसे वह स्त्रोघ के समान कहा है। मनुष्यर्गातपञ्चकका उत्कृष्ट स्त्रनुभागबन्ध सर्व विशुद्ध सग्यग्टिष्ट देव नारकीके होता है। स्राघसे यह स्त्रामित्व इसी प्रकार है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल स्रोचके समान कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट स्रानुभागबन्ध सर्वार्थिसिद्धिमें निरन्तर सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका जघन्य त्र्यौर उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि ये चपक प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य आपनी बन्ध-व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें ही होता है। तथा जो चाथिक सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्व मनुष्यायुका बन्ध कर चायिकसम्यग्दृष्टि हो उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके निरन्तर देवगति चतुष्कका बन्ध होता रहता है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन परुय कहा है। शेव कथन सुगम है।

५०२. मनः पर्ययक्षानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्यलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पक्रे न्द्रियजाति, वैकियिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, वैकियिक आङ्गापाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीथक्कर, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिक्षानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार परिहारविद्युद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार परिहारविद्युद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके धुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ-मनःपर्ययज्ञानमें प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट

५०३. सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो । असंजदे पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोस्रसक०--भय--दु०-ओरास्ठि०-अप्पस०४-उप०--पंचंत० उक्क० अणु० ओघं। एवं सादादिदंडओ० । पुरिस०-ओरास्ठि०श्रंगो० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। तिरिक्ख०३-मणुस०-मणुसाणु०-वज्जरि०-देवगदि०४ तित्थयरं च ओघं। पंचिदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उक्क० अणु० ओघं।

अनुभागवन्ध असंयमके अभिशुख होने पर अन्तिम समयमें और प्रशस्त प्रकृतियोंका क्ष्पकश्रीण में अपनी व्युच्छितिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्छृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्छृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध उपशमश्रीणसे उतरते समय एक समयके लिए होकर दूसरे समयमें मरकर देव होनेसे एक समयके लिए प्राप्त होता है और मन:पर्ययज्ञानका उत्छृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे इतने समय तक भी होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय और उत्छृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। इनके सिवा शेष सब परावर्तमान प्रकृतियाँ बचती हैं, इसलिए उनका जैसे अवधिज्ञानीके काल वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित हो जानेसे वह अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके यह सब काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिए उनके कथनको मनःप्रययज्ञानी जीवोंके समान कहा है। परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें और सब काल तो इसी प्रकार है सो अपना अपना स्वामित्वका विचार कर वह पूर्वोक्त प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनोंके ध्रु चवन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन दोनों मार्गणाओंकी प्राप्ति श्रीणमें सम्भव नहीं है और इनमें मार्गणाओंका जघन्य काल अन्त-स्र्वृह्त है, अतः इनमें सब ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्स्तु हैते कहा है।

पू०३. सूद्दमसाम्परायसंयत जीवोंमं श्रपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। श्रसंयत जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिकशरीर, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। इसी प्रकार सातादि दण्डकके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान जानना चाहिए। पुरुपवेद श्रोर श्रोदारिक श्राङ्गापाङ्गके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक वेतीस सागर है। तिर्यञ्चगतित्रिक, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वश्रपंभनाराचसंहनन, देवगित चतुष्क श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग श्राघके समान है। पञ्चोन्द्रयज्ञाति, समचनुरुश्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर उच्चगन्त्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रोर जिल्हेष्ट काल साधिक वेतीस सागर है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रोर निर्माणके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है।

विशेषार्थ—श्रपगतवेदसे सूद्मसाम्परायसंयममें श्रन्य कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूद्म-साम्यरायमें वॅंधनेवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रपगतवेदी जीवोंके ५०४. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु० ओघं ।

५०५. किण्ण-णील-काउ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय०-दु०तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०--तेजा०-क०--ओरालि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० वेसम०।
अणु० ज० एग०, उक्क० तेतीसं सत्तारस सत्त साग० सादि०। सादासाद०-छण्णोक०चदुआयु०-वेउव्वियञ्च०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-आदाव-थावरादि४थिरादितिण्णियुगल०-दूभग-दुस्सर-अणादे० उ० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज०
एग०, उ० श्रंतो०। पुरिस०-मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-

समान कहा है। असंयत जीवोंमें प्रायः अधिकतर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका काल श्रोध के समान बन जाता है। जिसमें कुछ विशेषता है उनका यहां स्पष्टीकरण करते हैं—पुरुषवेदका निरन्तर वन्ध सर्वार्थसिद्धिमें और उसके बाद मनुष्य पर्यायमें सम्भव है। इसी प्रकार औदारिक श्राङ्गोपाङ्गका निरन्तर वन्ध भी वहां सम्भव है पर यहां नरककी अपेता लेना चाहिए, कारण कि नरकसे निकलनेके बाद भी अन्तर्मु हूर्त काल तक श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्गका बन्ध होता रहता है, इसलिए असंयतोंमें इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। असंयतोंमें पञ्च न्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संयमके अभिमुख होनेपर असंयतसम्यग्दिष्टके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय छहा है। तथा इनका निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिमें और वहाँ से च्युत होनेपर भी होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेप कथन सुगम है।

५०४. चजुरर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचजुर्र्शनवाले जीवोंमें क्षोचके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—त्रसपर्याप्त जीवोंमें पञ्चोन्द्रियों की मुख्यता है श्रीर इनके चजुदर्शन नियमसे होता है, इसलिए त्रसपर्याप्तकोंके पहले जो प्ररूपणा कर श्राये हैं वह चजुदर्शनवाले जीवोंमें अविकल बन जाती है। तथा श्रचजुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक होता है, इसलिए श्रोधप्ररूपणा श्रचजुदर्शनवाले जीवोंमें श्रविकल बन जाती है यह उक्त कथनका तात्पर्य हैं।

५०५. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुःसा, तियेख्वगित, पद्धोन्द्रयज्ञाति, श्रोदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणकशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्ध्वगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रमुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रर सागर श्रोर साधिक सात सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, छह नोकपाय, चार श्रायु, वैक्रियिकषट्क, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, श्रातप, स्थावर आदि चार, स्थिर श्रादि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर श्रोर श्रमादेयके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुत्ते है। पुरुषवेद, मनुष्यगिति, समचतुरस्र संस्थान, वश्रषभनाराच संहनन,

स्रस्सर-आदेज्ज०-उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेतीस सत्तारस [सत्त] साग० देस्र०। उज्जोवं ओघं। तित्थय० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। एवं णील०। काऊणं तित्थय० तिदय- पुढविभंगो। णील० काउ० तिरिक्ख०३-उज्जो० सादावेदणीयभंगो।

५०६. तेउ० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस-गदि-स्रोरालि० - ओरालि०स्रंगो^९०-वज्जरि० - अप्पसत्थ०४-मणुसाणु०-उप०-पंचंत उ०

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कमसे कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर श्रोर कुछ कम सात सागर है। उद्योतका भङ्ग श्रोघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हूर्त है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल नीललेश्यामें जानना चाहिए। तथा कापोत लेश्यामें तीसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। तथा नील श्रोर कापोत लेश्यामें तिर्यक्कगतित्रिक श्रोर उद्यातका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

विशेपार्थ-ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कहीं गई प्रकृतियों का निरन्तर ऋनुभागबन्ध कृष्णादि तीन लेश्यात्रोंमें उनके उत्कृष्ट काल तक सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। पर पुरुपवेद आदि प्रकृतियोंका निरन्तर वन्ध इन लेश्यात्रोंमें सम्यग्दृष्टिके ही सम्भव है, स्रतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कृष्ण लेश्यामें कुछ कम तेतीस सागर, नील लेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर श्रौर कापोत लेश्यामें कुछ कम सात सागर कहा है। सातावेदनीय श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, श्रतः तीनों लेश्याश्रोंमें इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तम् हुर्त कहा है। कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध मनुष्योंके ही होता है श्रीर इनके इन लेश्यात्रोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुर्त है, इसलिए तो इन दोनों लेश्यात्रोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तम् हर्त कहा है और कापीत लेश्यामें तीर्थक्रर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरकतक साधिक तीन सागरकी आयुवाले नारिकयोंके भी सम्भव है, इसलिए कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल तीसरी पृथिवीके समान कहा हैं। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्जगतित्रिकका निरन्तर वन्ध होता है, इसलिए कृष्ण-लेश्यामें तो इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर बन जाता है पर नील ख्रौर कापोत लेश्यामें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट काल साधिक सन्नह सागर ख्रौर साधिक सात सागर नहीं बनता । किन्तु प्रथम दण्डकमें इनका यह काल कह आये हैं, अतः उसका बारण करनेके लिए यहां पर इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल सातावेदनीयके समान कहा है। इसी प्रकार उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जचन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय त्रोघके समान कृष्ण लेश्यामें ही बनता है। किन्तु यहां पहले तीनों लेश्यात्रोंमें इसका काल श्रोघके समान कह श्राये हैं जो नील श्रीर कापीत लेश्यामें नहीं बनता. श्रतः इन दोनों लेश्याश्रोंमें उसके कालका अलगसे निर्देश किया है।

५०६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, श्रौदारिकशारीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वञ्चर्षभनाराचसंहनन, श्रप्रशस्त

१. ता॰ म्रा० प्रत्योः भ्रोरालि॰ तेजा॰ क॰ श्रोरालि॰ श्रंगी॰ इति पाठः ।

जि एग०, उ० वेसम० | अणु० ज० एग०, उ० वेसाग० सादि० | सादा०-देवगदि-वेडिव्व०-आहार०-दोग्रंगो०-देवाणु०-थिर-सुभ-जस० उक्क० एग०।अणु०ज० एग०,णविर देवगदि०४ श्रंतो०, उ० श्रंतो० | असादा०-छण्णोक०-तिण्णिआयु०-तिरिक्त्वग०-एइंदि०-पंचसंटा०--पंचसंघ०--तिरिक्त्वाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०--थावर०--अथिरादिञ्च०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० बेसम० | अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० | पंचिदि०-सम-चदु०-[पर०-उस्सा०-] पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० एग० | अणु० ज० एग०, उक्क० वेसाग० सादि० | तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० उक्क० एग० | अणु० ज० श्रंतो०, उ० बेसाग० सादि० | एवं पम्माए वि | णविर एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज० | पंचिदि०-तस० ध्रुवं कादव्वं |

वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघान श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्हृष्ट काल दो समय है। अनुत्रृष्ट अनुभागबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर असूष्ट काल साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, देवगति, वैक्रियिकशारीर, श्राहारकशरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, स्थिर, शुभ श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवस्थका जयन्य काल अन्तम हर्त है और सबका उत्कृष्ट काल अन्तम हर्त है। असाताबेदनीय, छह नोकपाय, तीन श्राय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संक्ष्मन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विद्वायोगति, स्थावर, श्रस्थिर श्रादि छह श्रीर नीचगात्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। पञ्च न्द्रियजाति, समचतुः स्त्रसंस्थान, परघात, जन्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उन्नगात्रके उत्कृष्ट श्र**नुभाग**-बन्धका जघन्य श्रीर उत्हृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्क्रप्ट काल साधिक दो सागर है। तैजसशरीर, कार्मण्यरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलवु, वःदर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रोर तीर्थङ्करके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जवन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य काल अन्तर्मु हर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें एकेन्द्रियजाति, त्यातप त्यौर स्थावरको छोड़कर काल कहना चाहिए। तथा पख्चेन्द्रियजाति श्रीर त्रसको धव करना चाहिए।

विशेषार्थ—पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर होनेसे यहाँ ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल इतना कहा है वह भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। साता दण्डक और असाता दण्डककी सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि जितनी प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका सर्विवशुद्ध अप्रमत्त संयतके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः उन सबके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्यन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। पीत लेश्याके कालमें मनुष्य और तिर्यक्षके नियमसे देवगित चतुष्कका बन्ध होता है और इनके पीतलेश्यका का काल अन्तर्मु हूर्त है, इसलिए यहां देवगितचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका

५०७. सुक्काए पंचणाणावरणादिसम्मादिद्विपगदीओ पुरिस०-अप्पसत्थ०४— उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० वेमम० । अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं सा० सादि० । थीणगिद्धि०३—मिच्छ०-अणंताणुवं४ उ० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० एकत्तीसं० सादि० । सादादिदंडओ ओघं । असादा०-छण्णोक०--दोआयु०-पंच-संठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज० एग०, उ० वेतिसं सा० । देवगदि०४ सादमगो । पंचिदिय-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—तस०४—णिमि०-तित्थ० उ० एग० । अणु० ज० यंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । समचदु०-पसत्थ०--सुभग- सुस्सर-आदे०--उच्चा० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०।

जयन्य खोर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त कहा है। यही बात तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंके विषयमें भी जान लेनी चाहिए। पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक अठारह सागर है. इसलिए जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल पीत लेश्यामें साधिक दो सागर कहा है उनका यहां साधिक अठारह सागर काल कहना चाहिए। तथा पद्म लेश्यामें एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरका वन्ध न होनेसे पद्ध न्द्रिय जाति और त्रस ये दो ध्रुववन्धिनी प्रकृतियाँ हो जाती हैं, अतः इनका काल तैजसशरीर आदि प्रकृतियाँके समान घटित कर लेना चाहिए; क्योंकि ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं इसलिए उनके समान यहां काल प्राप्त होनेमें कोई वाधा नहीं आती। शेप कथन सुगम है।

५०७. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि सम्यम्दृष्टिके वैधनेवाली ध्रववन्धिनी प्रकृतियाँ, पुरुपवेद, श्रप्रशस्त वर्णचार, उपचात श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय हं श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेती त सागर है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक इकर्तास सागर है। सातादि दण्डकका भङ्ग त्रोवके समान है। त्रसातावेदनीय, छह नोकपाय, दो त्राय, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है त्रोर उत्कृष्ट काल त्रान्तमु हुर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका काल त्रोघके समान है। अनुतकृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण और तीथङ्करके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त हं त्रीर उत्क्रष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, मुस्वर, त्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ--प्रथम दण्डकमें ये प्रकृतियाँ हैं--पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उग्घात श्रोर पाँच श्रम्तराय। ये प्रकृतियाँ सम्यग्दृष्टिके भी वेंंधती रहती हैं, इसलिए शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट काल तक इनका बन्ध सम्भव होनेसे ५०८. भवसि० ओघं। अब्भवसि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि० तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४—अग्रु०-उप०--णिमि०--पंचंत० उ० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सादासाद०-सत्तणोक०-चदु-आयु०-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०—णिरयाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०-थावरादि४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० उ० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। तिरिक्खगदितिगं ओघं। मणुस०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० मदि०भंगो। एवं वज्जरि०। देवगदि०४ -समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर--आदेज्ज--उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० ज० एग०, उ०

इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उल्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रादि श्राठ प्रकृतियोंका बन्ध श्रन्तिम प्रेवयक तक ही सम्भव हैं इसिलए यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। सातादण्डक श्रोर असाता दण्डकका विचार सुगम है। मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर वन्ध होता है, इसिलए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। कोई जीव एक समय तक उपशमश्रीणमें देवगतिचतुष्कका बन्ध कर मर कर देव हो जाय तो उसके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय बन जाता है, इसिलए यहां देवगतिचतुष्कका मङ्ग सातावदनीयके समान कहा है। पञ्च न्द्रियज्ञाति श्रादि श्रोर समचतुरस्त्र संस्थान श्रादिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय स्पष्ट ही है। शुक्ललेश्याका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है और यहां पञ्च न्द्रियज्ञाति श्रादि ध्रुववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसिलए यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। किन्तु समचतुरस्त्र श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध कमसे कम एक समय तक श्रोर श्रिधकसे श्रिधक साधिक तेतीस सागर तक सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

५०८. भन्य मार्गणामें त्रोंघके समान भङ्ग है। त्रभन्य मार्गणामें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, त्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रप्रशस्त काल एक समय है त्रोर उत्कृष्ट काल त्रान्त काल है। सातावेदनीय, त्रप्रसातावेदनीय, सात नोकपाय, चार त्रायु. नरकगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, त्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावरादि चार, स्थिर, त्रस्थर, श्रुभ, त्रश्रम, दुःस्वर, त्रनादेय, यशःकीर्ति त्रौर त्रयशःकीर्तिके उत्कृष्ट त्रनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है त्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। त्रप्रत्रिकका भङ्ग त्रोघके समान है। मनुष्यगित त्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट त्रनुभागवन्थका काल त्रोघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार वन्नवंभनाराचसंहननका काल जानना चाहिए। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, त्रादेय स्रौर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट त्रनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है स्रौर उत्कृष्ट काल दो समय स्रौर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट काल दो समय

१. ता० द्यां० प्रत्योः एवं सन्त्राणि देवगदि०४ इति पाठः ।

तिण्णिपस्ति० देसू०। पंचिंदि०-ओरास्ति० अंगो०-पर०- उस्सा०-तस०४ उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० मदि०भंगो।

५०६. खइगसं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० वेसम०। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं सा० सादि०। आहारदुग--थिर-सुभ--जस० ओघं। असादा०--चदुणोक०--दोआयु०--अधिर०असुभ-अजस० उक्क० अणु० ओघं। मणुसगिदपंचग० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं०। देवगिद०४ उक्क० अणु० ओघं। पंचिदि०-तेजा०-क०-[समचदु०-]पसत्थ०४— अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० ज० स्रतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०।

है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हं श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पर्व्य है। पञ्च निद्रय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उन्छ्वास श्रीर त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ— अभन्यों में पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर अनुत्कृष्ट वन्ध अनन्त काल तक सम्भव होनेसे यहां वह उक्त प्रमाण कहा है। सानावदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियां होनेसे उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्न कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अपाण अध्यसे घटिन करके वनला आये हैं। वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए वह अध्यक्ते समान कहा है। मत्यज्ञानियों के मनुष्यगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर वतला आये हैं वह यहाँ इन दोनोंका वन जाता है, इसलिए वह मत्यज्ञानी जीवों के समान कहा है। उत्तम भोगभूमिमं पर्याप्त होनेपर देवगित आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य कहा है। नरकमें व वहाँ से निकलने पर अन्तर्मु हूर्न काल तक पञ्च न्द्रियज्ञाति आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिये यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियों के समान साधिक तेतीस सागर कहा है। शेव कथन सुगम है।

५०६. च्वायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात श्रोर पाँच अन्तरायक उत्कृष्ट अनुभागवन्थका ज्ञघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुन्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, आहारकद्विक, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल ओघके समान है। असातावेदनीय, चार नोक्षाय, दो आयु, अस्थिर, शशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल आघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल ओघके समान है। पञ्चित्वय जाति, तेजसशरीर, कार्मण्यारीर, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृत्रिक, प्रशस्त विहायोगगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उद्योत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल अन्तर्भ हूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

- ५१०. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०चढुसंज०-पुरिस०-भय०-दु०-पंचिदिं०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४ - पसत्थिव० - तस४-सुभग--सुस्सर-आदे० --णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उ० एग०। अणु० ज० श्रंतो०, उक्क० छाविह०। सेसं आभिणि०भंगो। णवरि देवगदि०४ अणु० उक्क० तिण्णि पत्ति० देसू०।
- ५११. उवसम० पचणा०--छदंसणा०--वारसक०--पुरिस०--भय-दु०-पंचिदि०-तेजा० - क०-समचदु० - पसत्थापसत्थ०४ – अग्र०४ – पसत्थवि० - तस४ – सुभग - सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ०ए० । अणु० ज० उ० द्यंतो० । सादासाद०-

विशेषार्थ—त्वायिकसम्यक्त्वमं ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमं कही गई प्रकृतियोंका अपनीअपनी वन्यव्युच्छिति होने तक निरन्तर वन्य सम्भव है और यह काल उत्कृष्टरूपसे साधिक तेतीस
सागर है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल उत्कृप्रमाण कहा है।
मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर वन्य होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका
उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणिसे उतरकर और ज्ञान्तमुं हूर्त
काल तक पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका वन्य करके पुनः उनकी वन्यव्युच्छित्ति करना है उसके
इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका ज्ञान्य काल अन्तर्मु हूर्त उपलब्य होता है, अतः यह उक्त प्रमाण
कहा है। इनका निरन्तर बन्य साधिक तेतीस सागर काल तक सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट
अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। होप कथन सुगम है।

५१०. वेदकसम्यन्दिष्ट जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञलन, पुरुवंद, भय, जुनुष्सा, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणुशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अपुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त है और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। शेष मङ्ग आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका विशेषता है कि देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका विशेषता है कि देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका विशेषता है कि

विशेषार्थ — वेदकसम्यक्त्वमें प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण।दि अप्रशस्त प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागवन्य मिश्यात्यके अभिमुख हुए जीवके एक समयके लिए होता है तथा पद्में न्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्र अप्रसत्तसंयतके एक समयके लिए होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा वेदक-सम्यक्त्वका जवन्य काल अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य काल अन्तमु हूर्त और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर कहा है। देवगित चतुष्कका वेदक सम्यक्त्वमें अधिक काल तक वन्य उत्तम भोगभूमिमें ही सम्भव है और यहां पर वेदक सम्यक्त्व कुछ कम तीन पत्य तक ही पाया जाता है, इसलिए यहाँ देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभावन्यका उत्कृष्ट काल इछ कम तीन पत्य कहा है। शेव कथन सुगम है।

५११. डपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुष्सा, पख्ने न्द्रिय जाति, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगात्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल

१. भ्रा॰ प्रतौ पुरिस॰ पंचिंदि॰ इति पाटः ।

अरदि-सोग-देवगदि४-आहार०दुग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उ०ए० । अणु० ज० ए०, उ० त्रंतो० । हस्स-रिह-मणुसगिद्धंच० उ० ज० ए०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० त्रंतो० ।

प्रश्न. सासणे सादासाद०-इत्थि०-अरदि-सोग-वामण०-र्लालिय०-उज्जो०-अप्प-सत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अज० उ० ए०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिआयु०-चदुसंठा०-चदुसंघै० उ० ज० ए०, उ० वेस०! अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। सेसाणं उ० ए०। अणु० ज० ए०, उ० बावलियाओ।

एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित शोक, देवगतिचनुष्क, आहारकृष्टिक, स्थिर अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशाकोति और अयशाकोतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं। हास्य, रित और मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं। समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं।

विशेपार्थ—उपशमसम्यक्त्यका उत्कृष्ट काल ज्यन्तर्मु हूर्त होनेसे सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट कात ज्यन्तर्मु हूर्त कहा है यह स्पष्ट ही है। यहाँ विचार केवल उत्कृष्ट अनुभागवन्धके कालका करना है। पाँच ज्ञानावरणादि अवशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिण्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है तथा चयक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अपनी-ज्यपनी बन्धव्युन्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन सबके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। मन्त्र मनुष्यगिष्ठिकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सर्वनिशुद्ध देव और नारकीके तथा हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध तत्यायोग्य संक्लेशयुक्त चारां गतिके जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य वाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। शेव कथन सुगम है।

पृश्यः सासादनसम्यक्त्वमं सातांवदनीय, असातांवदनीय, स्त्रीवेद, अरित, शोक, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहानोगित, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्यर, अनादेय, यशःकीर्ति ख्रोर अयशःकीर्तिके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य ख्रौर उत्हृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्हृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रित, तीन आयु, चार संस्थान ख्रौर चार संहननके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है ख्रौर उत्हृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है ख्रौर उत्हृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेष प्रकृतियों के उत्हृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट काल ख्रह्म ख्रीर उत्हृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाई हैं उनमेंसे कुछका उत्कृष्ट अनुभाग-वन्ध चारों गतिके सर्वसंक्लिष्ट जीवके और कुछका चारों गिनके सर्वविशुद्ध जीवके होता है। यतः यह एक समय तक ही होता है अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुन कहा है, छह आविल नहीं

१ ता॰ प्रतौ तिण्णिश्रायु॰ चदुसंघ॰ इति पाठः।

५१३. सम्मामि० सादासाद०--अरदि-सो०-थिराथिर--सुभासुभ-ज०-अजस० उ० ए०। अणु० ज० ए०, उ० ग्रंतो०। हस्स-रदि० ओघ। सेसाणं उ० ए०। अणु० ज० उ० ग्रंतो०। मिच्छादिद्दी० मदि०भंगो। सण्णी० पंचिदियपज्जत्तभंगो।

५१४. असण्णीसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०,उ० अणंतकाल०। तिरिक्खगदितिगं ओघं।सेसाणं उ० ज० ए०,उ० बेस०।

सो इसका यह कारण प्रतीत होता है कि ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः छह आविल कालके भीतर भी इनके बन्धका परिवर्तन सम्भव है, अतः वह छह आविल काल द्वारा न बतला कर अन्तर्मु हूर्त काल द्वारा व्यक्त किया है। किन्तु पुरुषवेद आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्वायोग्य संक्लेश परिणामोंसे होता है अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहनेका कारण पहले कह ही आये हैं। शेप जो पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ हैं उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सर्वसंक्लेशयुक्त जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा व ध्रुववन्धिनी हैं तथा सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आविल है अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आविल कहा है।

५१३. सम्यग्मिध्यात्वमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। हास्य और रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका काल श्रोघके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। मिध्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है। संज्ञी जीवोंमें पक्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ —सम्यग्मिण्यात्व गुण्एस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है, इसलिए तो यहाँ सब प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल तथा ध्रुवविन्धनी प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त वहा है। यद्यपि वैक्रियिकपट्क और औदारिक चतुष्क इनका भी सम्यग्मिण्यादृष्टिके बन्ध हाता है पर यहाँ वे अधिकारीभेदसे वँधनेके कारण परावर्तमान नहीं हैं। अब रहा सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धके जघन्य कालका विचार सो हास्य और रितको छोड़कर किसीका मिण्याद्यके अभिमुख होने पर और किसीका सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर बन्ध होता है, अतः इन सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल समय कहा है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका काल ओघके समान बन जानेसे वह अोघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

५१४ असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणः, नी दर्शनावरणः, मिण्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वणचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। तिर्यक्रगिति विकके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल श्रोधके

अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो०।

४१४. आहारगेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत०- उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० त्रंगुल० असंखे०। तेजइगादीणं पि उ० ओघं। अणु० णाणा०भंगो०। सेसाणं पि ओघभंगो । तित्थ० उ० ए०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। अणाहारा० कम्मइगभंगो।

एवं उकस्सकालं समतं।

५१६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० एग०। अज०

समान है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहुर्त है।

विशेपार्थ— असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। शेप कथन सुगम है।

पश्य. श्राहारक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, श्रोदारिकशरीर, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। तेजसशरीर श्रादि प्रकृतियोंके भी उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका काल भी श्रोघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रनाहारक जीवोंमें कामणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—श्राहारक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इनमें पाँच ज्ञानावरणादि श्रोर तैजसशरीर श्रादिके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रंगुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिके श्रपूर्वकरण में श्रपनी बन्धव्युच्छित्तिके श्रन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसका निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिमें श्रोर उसके श्रागे पीछेकी मनुष्य पर्यायमें सम्भव है, इसलिए इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुन्या।

५१६. जघन्य कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-स्त्रोघ और आदेश। स्रोघसे पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुक्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक

१. ता० प्रतौ सेसागं स्रोघभंगो इति पाठः।

तिण्णिभंगां०। ज० श्रंतो०, उक्क० अद्ध्योग्गल०। सादासादँ०-चदुआयु-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्पसत्थिव० थावरादि०४-थिराथिर-सुभा-सुभ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० ज० ज० एग०, उक्क० चतारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। इत्थि०--णवुंस०--अरदि०सोग--आदाउज्जोव० ज० ज० एगँ०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। पुरिस० ज० ए०। अज० जह० एगँ०, उक्क० वेञ्चाविद्वि० सादि०। इस्स-रदि-आहारदुगं ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० असंखेज्जा० लोगा। मणुस०-वर्ज्जार०-मणुसाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं। देवगदि-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपित्व० सादि०। पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अज० ज० एग०, उ० पंचा-सीदिसागरोवगसदं। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० ज० ज०

समय है। अजघन्य अनुभागवन्धके तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे सादि-सान्त विकल्पकी अपेना जघन्य काल अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। साता वेदनीय, असाता-वेदनीय, चार त्रायु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति श्रौर त्र्ययशःकीर्तिके जघन्य श्रनुमागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है अौर उत्कृष्ट काल अन्तर्भृहर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। पुरुपवेदके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञाचन्य अनुभागवन्धका जचन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छवासठ सागर है। हास्य, रित श्रीर श्राहारकद्विकके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रनु-भागबन्धका जघन्य त्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। त्राज्ञवन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वत्रपंभनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर टत्कृष्ट काल चार समय है। त्रजघन्य त्रमुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीके जयन्य श्रनुभाग बन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। अजवन्य अनुभागबन्धका जचन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पक्क निद्रयजाति, परवात, उच्छ्वास ऋौर त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल एकसी पचासी सागर है। श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघ श्रीर निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल

ता• श्रा० प्रत्योः तिभंगि० इति पाटः ।
 ता० प्रतौ सादासाद।साद (?) इति पाटः ।
 ता० प्रतौ श्रादाबुज्जोव० ज० ए० इति पाटः ।
 ता० प्रतौ श्रादाबुज्जोव० ज० ए० इति पाटः ।

एग०, उ० वेसम० । अज० ज० एगँ०, उक्क० अणंतकाल्पसंखेजजपांग्गलपरियद्दं । वेडिव्व०-वेडिव्व० ग्रंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० देवगदिभंगो । समचदु०-पसत्थ०--सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० वेद्याविद्य साग० सादि० तिण्णि पल्लि० देस्० । ओरालि०- ग्रंगो० ज० ज० एग०, उ० वेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । तित्थ० ज० एग० । अज० ज० ग्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० ।

एक समय है और उत्हृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जयन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल श्रनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। वैक्रियिकशारीर श्रोर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल देवगतिके समान है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर उच्चगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य साधिक दो छ्यासठ सागर है। श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्हृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थद्वर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्हृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ-यहां प्रथम दण्डकमें जितनी प्रकृतियां गिनाई हैं उनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समय तक ही होता है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभागवन्ध यथास्वामित्व अपनी अपनी बन्ध व्युच्छित्तिके त्रन्तिम समयमें ही सम्भव हैं, इसलिए इनके जघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये सब ध्रुववन्धिनी प्रकृतियां हैं, अतः इनके अजघन्य अनु-भागबन्धके तीन भङ्ग बन जाते हैं--श्रनादि-श्रनन्त, श्रनादि-सान्त श्रीर सादि-सान्त। उनमेंसे श्रनादि श्रनन्त भङ्ग श्रभव्योंके हाता है। श्रनादि-सान्त भङ्ग भव्योंके श्रपनी श्रपनी बन्ध व्युच्छित्तिके पूर्व तक होता है श्रीर सादि-सान्त भङ्ग उन भव्योंके होता है जिन्होंने यथायोग्य सम्यक्त्व पूर्वक उपशमश्रेणि त्रारोहण किया है। इनमेंसे तीसरे भङ्गकी श्रपेना इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागका जघन्य काल श्रन्तर्भुहूर्त कहनेका कारण यह है कि श्रपनी-श्रपनी बन्ध-व्यच्छित्तिके बाद लौटकर पुनः इनका बन्ध शारम्भ होने पर इनका पुनः बन्धव्युच्छित्तिके योग्य श्रवस्थाके उत्पन्न करनेमें श्रन्तर्मुहूर्त काल लगता है। यथा किसी भव्यने श्रर्धपुर्गल परिवर्तनके प्रथम समयमें उपशम सम्यक्त्वको उत्पन्नकर मिध्यात्वकी बन्धव्यच्छित्ति की। पुनः वह मिध्यात्वमें श्राकर उसका बन्ध करने लगा तो उसे पुनः सम्यक्तको प्राप्त करनेमें श्रन्तर्मुहूर्त काल लगेगा। इसी प्रकार श्रान्य प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिए। तथा श्रर्धपुद्गल परावर्तन कालके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें इन सब प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति करने पर इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है, श्रतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय श्रादिक दूसरे दण्डकमें जितनी प्रकृतियां कही हैं उनमेंसे कुछका जघन्य श्रनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले मिथ्यादृष्टि श्रौर सम्यग्दृष्टिके त्रौर कुछका मध्यम परिणामवाले मिध्यादृष्टिके होता है, यतः इनका जघन्य त्र्युभाग-बन्ध कमसे कम एक समय तक श्रीर श्रधिकसे श्रधिक चार समय तक होता रहता है, क्योंकि

१. ता॰ प्रती भ्रज॰ पुग॰ इति पाठः ।

इनके ब्रानुभागवन्धके कारणभूत परिग्णामोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है, श्रतः इनके जघन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य काल एक समय त्रीर उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा चार श्रायत्रोंको छोड़कर ये परावर्तमान प्रकृतियां होनेसे इनका कमसे कम एक समय तक श्रीर श्रधिकसे श्रधिक अन्तर्भुहूर्त काल तक ही बन्ध होता है। तथा चार आयुत्रोंका यद्यपि एकबार बन्ध अन्तर्महर्तं तक ही होता है पर इनका एक समय तक अजधन्य बन्ध होकर दूसरे समयमें जघन्य बन्धं सम्भव है, श्रतः इन सब प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद श्रादिके जघन्य श्रनुभागवन्धका जो स्वामी बतलाया है उसके ऋनुसार इनके जघन्य ऋनुभागबन्धके योग्य परिणाम दो समयसे ऋधिक काल तक नहीं हो सकते, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त कहा है। पुरुपवेदका जघन्य श्रनुभागबन्ध चपक श्रनिवृत्तिकरण जीवके श्रपनी बन्धव्युच्छि त्तिके श्रन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जधन्य श्रनुभागवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यह एक तो परावर्तमान प्रकृति है। दूसरे मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्व होकर सम्यक्तवके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरोपम है श्रीर ऐसे जीवके एकमात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, श्रतएव इसके श्रमुत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्क्रष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर कहा है। हास्य श्रीर रतिका जघन्य श्रनुभागबन्ध श्रपूर्वकरण चपकके श्रपनी बन्ध व्युच्छित्तिके श्रन्तिम समयमें श्रीर श्राहारकद्विक हा जघन्य अनुभागवन्य प्रमत्तसंयतके श्रभिमुख अप्रमत्तसंयतके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा हास्य और रित ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त कहा है। अब रहीं आहारकद्विक सो इनका उपशेमश्रेणिमें एक समय तक अजघन्य श्रनुभागबन्ध बन सकता है, क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय इनका एक समय तक बन्ध करके मरा श्रीर देव हो गया उसके यह सम्भव है। तथा इनका श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध श्रधिकसे श्रधिक अन्तमुं हूर्त काल तक ही होता है यह स्पष्ट ही है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हूर्त कहा है। तियञ्जगतित्रिकका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए मिध्यादृष्टि जीवके श्रन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्दृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये एक सो प्रतिपत्त प्रकृतियाँ है, दूसरे अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा ये प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा प्रतिपक्ष प्रष्टतियाँ होनेके साथ सर्वार्थसिद्धिमें इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। देवगति-द्विक भी प्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं और मध्यम परिणामोंसे वेंधती हैं, ख्रतः इनके जघन्य श्रमुभागका जघन्य काल एक समय अौर उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्यके इनका निरन्तर बन्ध साधिक तीन पल्य काल तक होता रहता है, श्रतः इनके श्रजधन्य श्रनुभागका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। पञ्चे न्द्रिय जाति श्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका . जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका ५१७. णिरएसु धुविगाणं उक्कस्सभंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु० बंधि०४-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु ०-णीचा० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० । णवरि मिच्छ० अज० ज० ख्रतो० । सादादीणं ओघभंगो । इत्थि-णवुंस०-चढुणोक०-उज्जो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० ख्रंतो० ।

खुलासा अनुत्कृष्टके समान है। श्रोदारिकशारीर श्रादिके श्रजघन्य श्रमुभागवन्धके उत्कृष्ट कालको ब्रोंड़कर शेप सब खुलासा पञ्चोन्द्रिय जाति त्र्यादि प्रकृतियोंके समान कर लेना चाहिए। मात्र इनका निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियोंके सदा काल होता रहता है और उनकी कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए इनके श्रज्ञघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकद्विक भी सप्रतिपन्न प्रकृतियां होनेके साथ सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे जघन्य अनुभागवन्धका प्राप्त होती हैं, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय त्रीर उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनका देवगतिके साथ मनुष्य सम्यग्दृष्टिके स्राधिक काल तक वन्ध होता है, इसलिए इनके स्राज्यन्य श्रानुभागवन्धका काल देवगतिके श्राज्ञघन्य श्रानुभागवन्धके समान कहा है। समचतुरस्रसंस्थान श्रादि प्रकृतियाँ एक तो सप्रतिपत्त हैं। दूसरे इनका मध्यम परिणामोंसे बन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। तथा उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त जीवके इनका निरन्तर बन्ध होता है स्त्रीर ऐसा जीव इस पर्यायके स्त्र तमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर छ्यासठ सागर काल तक उसके साथ रहा । तथा अन्तमें सम्यग्मिध्यात्वको प्राप्त होकर पुनः वेदक सम्यक्तवको प्राप्त कर छ्यासठ सागर काल तक उसके साथ रहा उसके भी इनका निरन्तर बन्ध होता है. अत: इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य अधिक साधिक दो खयासठ सागर वहा है। श्रीदारिकश्राङ्गापाङ्ग भा सप्रतिपक्ष प्रकृति है श्रीर इसका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध सर्वे संक्लिप्ट परिणामोंसे होता है, ऋतः इसके जघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा सप्रतिपत्त प्रकृति होनेसे इसके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है यह तो स्पष्ट ही है। साथ ही जो नारकी इसका तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध करता है श्रीर वहाँसे निकल कर श्रन्तम् हुर्त काल तक इसका श्रीर बन्ध करता है इसकी श्रपेक्षा इसके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। तीर्थं हुर प्रकृतिका जवन्य श्रनुभागवन्ध मिथ्यात्वके श्रभिमुख सम्यग्दृष्टि मनुष्यके श्रन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जघन्य ऋनुभागका जघन्य ऋौर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसका उपशम-श्रेणिकी श्रपेक्षा श्रन्तमु हुर्त काल तक श्रज्ञघन्य श्रनुभागबन्ध सम्भव है, क्योंकि जो जीव श्रन्त-मुंहर्म काल तक इसका बन्ध कर उपशमश्रेणि पर त्रारोहण करता है उसके श्रपूर्वकरणमें इसकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है श्रीर इसका निरन्तर बन्ध मनुष्य श्रीर देवके साधिक तेतीस सागर काल तक होता रहता है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुं हुतं श्रीर उत्क्रष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है।

४१७. नारिकयों में घु वबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है। सातादि प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। स्निवेद, नपु सकवेद, चार नोकषाय और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

१. ता॰ प्रतौ तिरिक्स॰ तिरिक्स (?) तिरिक्साणु॰ इति पाठः ।

पुरिस० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० तेतीस० देस्र० । मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज>-उच्चा० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं देस्र० । तित्थय० ज० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणं-ताणु०४-तिरिक्ख०३ [जह० एग० । अज० जह० द्यंति । उक्क० तेतीसं० ।] मणुसग०३ ज० एगे० । अज० ज० द्यंतो०, उक्क० तेतीसं० देस्र० । छसु उवरिमासु तिरिक्ख०३ सादभंगो । सेसाणं णिरयोघं । अपणो हिदीओ काद्वाओ ।

दो समय है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। पुरुपवेदके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगित, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ञ्रपभनाराचसंहनन, मनुष्यागत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्वायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल खुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और श्रजघन्य अनुभागवन्धका काल उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, निध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त हे और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। मनुष्यगतिद्विक और उच्चगात्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। उत्पर्का छह पृथिवियोंमें तिर्यञ्चगितित्रकका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा शेव प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य नारिकियोंके समान है। मात्र अपनी श्रपनी स्थिति करनी चाहिए।

विशेषार्थ—नारिकयों में भ्रु वबन्धवाली प्रकृतियां ये हैं। पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, पक्षे न्द्रिय जाति, स्रोदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, स्रोदारिक स्रांगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण स्रोर पाँच स्रम्तराय। इनका सातवें नरकमें मिध्यादृष्टिके निरन्तर बन्ध होता है। इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय स्रोर उत्कृष्ट काल दो समय तथा स्रातुत्कृष्ट स्रानुभागबन्धका जघन्य काल एक समय स्रोर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पहले वतला स्राये हैं। वही यहां जघन्य स्रोर स्रजघन्य स्रनुभागबन्धका काल प्राप्त होता है, स्रतः यह काल उक्त प्रमाण कहा है। यहां स्त्यानगृद्धि तीन स्रादिका जघन्य स्रनुभागबन्ध सम्यक्त्वके स्रभिमुख हुए जीवके स्रन्तिम समयमें होता है, स्रतः इनके जघन्य स्रनुभागबन्ध कमसे कम एक समय तक स्रोर स्रधिकसे स्रधिक तेतीस सागर तक होता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र जो सम्यग्दिष्ट नारकी मिध्यादिष्ठ होकर मिध्यात्वका बन्ध करने लगता है वह मिध्यात्वके साथ वहां स्रन्तमुं हूर्त काल तक स्रवस्य रहता है, स्रतः मिध्यात्वके स्रजघन्य स्रनुभागबन्धका जघन्य काल स्रन्तमुं हूर्त कहा है। सातादिक स्रधु वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके जघन्य काल स्रन्तमुं हूर्त कहा है। सातादिक स्रधु वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके

१. ता॰ प्रतौ मगुसागु॰ ३ ज॰ ए॰, घा० प्रतौ मगुसागु॰ ज॰ एग॰ इति पाठः।

४१८. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अद्दक्ष०-भय-दुगुंच्छ०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४—अगु०-उप०—णिमि० पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० अणंतका०। थीणगिद्धि०३—मिच्छ०-अद्दक० ज० एग०, अज० ज० एग०, मिच्छ० ज० खुद्दाभव०. उक्क० अणंतका०। सादादिदंडओ ओघं। इत्थि०--णवुंस०--चदुणोक०--ओरालि० झंगो०--आदाउज्जो० ओघं इत्थिभंगो। पुरिस०-वेडव्वि०--वेडव्वि० झंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेस०। अज० ज० एग०,

जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जो काल श्रोधसे कहा है वही यहां प्राप्त होता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। स्त्रीवेद आदि एक तो अधुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, दूसरे इनमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे श्रीर उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा त्रजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय त्र्यौर इत्क्रप्ट काल अन्त-मुं हुर्त कहा है। पुरुषवेद भी इसी प्रकारकी प्रकृति है पर इसका सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इसके श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति श्रादि प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है. इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा हैं। तथा ये एक तो परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, दृसरे इनका सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य ऋौर श्रजघन्य अनुभागवन्धका काल उत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें यह काल इसी प्रकार है। मात्र स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियों के कालमें कुछ अन्तर है। बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें एकमात्र मिध्यात्व गुणस्थानमें ही मरण होता है, इसलिए इसमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार श्रौर तिर्यञ्चगित-त्रिकके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तम् हुत कहा है। तथा मनुष्यगतिद्विक और उचगोत्रका जघन्य श्रनुभागबन्ध सम्यग्मिध्यात्वके श्रभिमुख हुए सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है, इसलिए सातवें नरकमें इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यहां सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तम् हूर्त ऋौर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हुर्त श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें मनुष्यगतिद्विक श्रीर उचगोत्रका भी बन्ध होता है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चगतित्रिक परावर्तमान प्रकृतियाँ हो जाती हैं, अतः यहां इनका काल सातावेदनीयके समान कहा है। शेप कथन सुगम है।

प्रदः तिर्यक्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ऋाठ कपाय, भय, जुगुप्सा, ऋौदारिक-शारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋपशस्तवर्णचतुष्क, ऋगुरुलघु, उपघात, निर्माण ऋौर पाँच ऋन्तरायके जघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल द्यानन्त काल है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व ऋौर ऋाठ कषायके जघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है, मिध्यात्वका खुद्दाभव-महणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल सबका ऋनन्त काल है। सातावेदनीय ऋादि दण्डकका भङ्ग ऋोघके समान है। क्वीवेद, नपुंसकवेद, चार नोकषाय, ऋौदारिक ऋाङ्गोपाङ्ग, ऋातप और उद्योतका भङ्ग ऋोघसे क्वीवेदके समान है। पुरुषवेद, वैक्रियिकशारीर ऋौर वैक्रियिक ऋाङ्गोपाङ्गके जघन्य ऋनु- उक्क० तिण्णिपिलि० । तिरिक्ख०३ उक्कस्सभंगो । देवगिद-समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०धुभग-सुस्सर-आदे-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०,
उ० तिण्णि पिलि० । मणुसग०-मणुसाणु० सादभंगो । पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४
ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ ।
णविर धुवियाणं अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पिलि० पुन्वकोडिपुध० । तिरिक्ख०३ सादभंगो । ओरालि० इत्थिभंगो । पुरिस०-वेउन्वि०-वेउन्वि० झंगो जहण्णुक्कस्सभंगो ।
अज० अणु०भंगो । देवगदि-समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०--सुभग-सुस्सर--आदे०-उच्चा०
ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० अणु० भंगो ।

भागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पर्य है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग उत्कृष्टके समान है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पञ्च न्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास श्रीर त्रसचतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय हैं। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान हैं। इसी प्रकार पञ्जोन्द्रिय तिर्यक्चित्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ध्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकांटिप्रथक्त्व अधिक तीन परुय है। तिर्यक्रातित्रिकका भक्त सातावेदनीयके समान है। श्रीदारिकशरीरका भक्त स्त्रीवेदके समान है। पुरुपवेद, वैक्रियिक-शरीर श्रीर वैकियिक त्राङ्गोप।ङ्गके जघन्य त्रानुभागवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागबन्धका भङ्ग श्रमुत्रृष्टके समान है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल चार समय है। तथा श्रजघन्य त्रानुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ — श्रोघमें हम सब प्रकृतियों के जघन्य श्रनुभागबन्धके जघन्य श्रीर उत्कृष्ट कालका तथा श्रजघन्य श्रनुभागबन्धके जघन्य कालका खुलासा कर श्राये हैं। उन कारणों को पुनः पुनः दुहराना ठीक नहीं है, श्रतः श्रागे इनके कालोंकी विशेष चरचा नहीं करेंगे। यदि कहीं कोई विशेषता होगी तो उसपर श्रवश्य ही प्रकाश डालोंगे। श्रव रहा यहां श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका खुलासा इस प्रकार है—तिर्यञ्जोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका कायस्थिति कालतक निरन्तर बन्ध होता रहता है इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल श्रनन्त काल कहा है। यही बात स्त्यानगृद्धि श्रादि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके विषयमें भी जाननी चाहिए। मात्र मिध्यात्व प्रकृतिका श्रजघन्य श्रनुभागबन्ध तिर्यञ्जोंमें खुदाभवमहप्रमाणकाल तक भी सम्भव है, क्योंकि को जीव श्रन्य पर्यायसे श्राकर श्रीर खुदाभवमहप्रमाण काल तक तिर्यञ्ज पर्यायमें रहकर श्रन्य पर्यायमें चला जाता है उसके इतने काल तक तिर्यञ्ज पर्यायमें मिध्यात्वका श्रजघन्य श्रनुभागबन्ध देखा जाता है, इसलिए इसके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल खुदाभवमहण्यमाण कहा है। श्रोधसे क्रीवेदके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जो काल कहा है वह यहां क्रीवेद श्रादि नीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका

४१६. पंचि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-मोलसक०-णव-णोक०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण४ - अगु०-उप०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-णिमि०-पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० ग्रंतो० । संमाणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० ग्रंतो० । एवं सन्वअपज्जतगाणं सुहुमपज्जतापज्ज०-सन्ववादर०-अपज्ज०-सन्वविगलिंदि० । णवरि एइंदिय-सुहुमोणं च पज्जत्त-अप० बादरअपज्ज० तिरि०३ ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । विगलिंदिएसु धुविगाणं अज० अणुक्कस्सभंगो ।

श्रविकल बन जाता है इसलिए यह काल श्रोघ स्त्रीवेदके समान कहा है। पुरुपवेद श्रादि चौथे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमं तिर्यञ्ज सम्यग्दृष्टिकं निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अज्ञचन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पत्य कहा है। तिर्यक्क-गतित्रिकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जो काल कह आये हैं वही यहां इनके जघन्य और अजयन्य अनुभागवन्धका प्राप्त होता है, इसलिए यह उत्कृष्टके समान कहा है। देवगति त्रादि प्रकृतियोंका उत्तम भागभूमिमें सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके निरन्तर वन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पत्य कहा है। तिर्यक्रोंमें मनुष्यद्विकका बन्ध सामादनगुणस्थान तक होनेसे ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ बनी रहती हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है। निर्यक्कोंमें पञ्चे न्द्रिय जाति त्रादि प्रकृतियोंके त्रानुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य घटित करके वतला आये हैं। इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल इसी प्रकार वन जाता है, इसलिए यह श्रनुत्कृष्टके समान कहा है। यहां सामान्य तिर्यञ्जोंमें सब प्रकृतियोंका जो काल कहा है वह पञ्जोन्द्रय तिर्यञ्जित्रिकमें श्रविकल घटित हो जाता है। मात्र जिन प्रकृतियोंके कालमें अन्तर है उसका श्रलगसे निर्देश किया है। बात यह है कि इन तीन प्रकारके तियंद्र्वोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है इसलिए इनमें ध्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिए। तथा इनके तिर्यञ्चगतित्रिक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हो जाती हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है। यहां श्रीद।रिकशरीर भी सप्रतिपत्त प्रकृति है इसलिए इसका भक्क स्त्रीवेदके समान कहा है। पुरुषवेद आदि और देवगति आदिका यहां सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इन तीन मार्गणात्रोंमें इन प्रकृतियोंका जैसा काल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय घटित करके बतला त्राये हैं यथायोग्य वैसा वन जानेसे वह मृलमें कही गई विधिसे कहा है।

५१६. पक्चे न्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकपाय, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत, निर्माण श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हूर्त है। शेष प्रकृतियों के जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हि। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हुर्त है। इसी प्रकार सब श्रपर्याप्त, सब सूद्म श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हुर्त है। इसी प्रकार सब श्रपर्याप्त, सब सूद्म श्रोर उत्कृष्ट पर्याप्त श्रोर स्व वादर श्रपर्याप्त श्रोर सब विक्लेन्द्रिय जीवों ज्ञोर बादर श्रपर्याप्त जीवों तर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा विकलेन्द्रियों ध्रवन्धवाली

५२०. मणुस०३ खिवगाणं ज० ओघं । अज० सेसाणं वज्ज पंचिदि०तिरि०-भंगो । अज० सन्वाणं अणुकस्सभंगो । तित्थय० ज० अज० उकस्सभंगो ।

४२१. देवेसु पंचणा०--छदंसणा०-बारसक०--पुरिस०--भय--दु०-पंचिदि० ओरालि०-तेजा-क०-ओरालि० ग्रंगो०--पसत्थापसत्थवण्ण४--अगु०४-तस०४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। सादासाद०-दोआयु०-तिरिक्ख०--एइंदि०-पंचसंटा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्प-सत्थवि०-थावर-थिराथिर-सुभासुभ--दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस०-णीचा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उ० श्रंतो०। मणुस०-समचदु०-

प्रकृतियोंके त्रजघन्य त्रानुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है ।

बिशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें विकलत्रयोंको छोड़कर सबकी काय-स्थित अन्तर्मु हूर्त है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। मात्र पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है किन्तु एकेन्द्रियोंमें सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। विकलत्रयोंकी कायस्थिति अधिक है, इसलिए इनमें धुववन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। होप कथन सुगम है।

५२०. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका काल स्रोघके समान है। स्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल स्रोर शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्रनुभागवन्धका काल पक्चे न्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है। तथा शेप सब प्रकृतियोंके स्रजघन्य स्रनुभागवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्रोर स्रजघन्य स्रनुभागवन्धका काल उत्कृष्टके समान है।

विशेपार्थ—श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन कपाय, हास्य, रित, भय श्रीर जुगुप्सा ये चार नोकषाय श्रीर पाँच श्रम्तराय इन प्रकृतियोंका चपकश्रेणिमें जघन्य श्रनुभाग-बन्ध होता है श्रीर क्ष्यकश्रेणि मनुष्यत्रिकमें होती है, श्रतः यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभाग-वन्धका काल श्रीघके समान कहा है। यद्यपि पुरुपवेदका भी जघन्य श्रनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है पर इसके श्रजघन्यानुभागवन्धका काल श्रनुत्कृष्टके समान है, इसलिए यहां इसकी परिगणना नहीं की। शेप कथन स्पष्ट ही है।

५२१. देवोंमं पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्च न्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, श्रप्रास्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रतुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सातावेदनीय, श्रमातावेदनीय, दो श्रायु, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रुभ, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, यशा-कीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रतुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रतुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल

वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०—उच्चा० ज० ज० एग०, उ०चत्तारि-सम० । अज० अणुक्क०भंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० एग० । अज० अणु०भंगो । णवरि मिच्छ० अज० ज० ग्रंतो ० । छण्णोक०-आदाउज्जो० ज० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वदेवाणं जहण्णं सामित्तं णादृण अप्पणो द्विदी णादव्वा ।

५२२. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० अणुक्रस्सभंगो । सत्तणोक०-ओराल्डि० ग्रंगो०--पर०- उस्सा०-आदा-

अन्तमु हूर्त है। मनुष्यगित, समचनुरस्रसंस्थान, वज्जपेभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, मुभग सुस्वर आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजधन्य अनुभागवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्न है। छह नोकपाय, आतप और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका काल उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सब देवोंके जघन्य स्वित्वको जानकर अपनी स्थित जाननी चाहिए।

विशेषार्थ-सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियां ऋौर तीसरे दण्डकमें कहीं गई मनुष्यगति त्रादि सब प्रकृतियाँ ध्रुववन्धिनी हैं, इसलिए इनके स्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति श्रादिके अजवन्य अनुभागबन्धके कालका भङ्ग यद्यपि अनुत्कृष्टके समान कहा है पर उसका यही अभिप्राय है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय ऋादि प्रकृतियां ऋघु वबन्धिनां हैं, इसलिए इनके ऋजधन्य ऋनुभागबन्धका जयन्य काल एक समय त्रौर उत्क्रष्ट काल त्र्यन्तर्मुहते कहा है। यद्यपि इनमें दो त्र्यायु भी सम्मिलित हैं पर इससे श्रजघन्य श्रनुभागबन्धके जघन्य काल एक समयमें कोई श्रन्तर नहीं पड़ता। खुलासा पहले कर त्राये हैं। स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिका जवन्य त्रनुभागवन्ध सम्यक्त्वके त्राभिमुख हुए जीवके होता है, इस लए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेर्तास सागर पहले घटित करके बतला त्राये हैं। त्राज्ञचन्य त्रानुभागबन्धका यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है. इसलिए यहां श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रनुत्कृष्टके समान कहा है। मात्र मिध्यात्वके श्रजघन्यवन्धके जघन्य कालमें विशोषता है। कारण कि मिश्यात्वका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है। इतने काल तक मिध्यात्वका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए मिध्यात्वके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य काल श्रान्तर्मु हूर्त कहा है। छह नोकपाय, श्रातप श्रीर उद्योत ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं। उत्कृष्ट अनुभागवन्धके समय इनका जो काल कहा है वह यहां भी बन जाता है, इसलिये उक्त प्रमाण कहा है। यहां भवनवासी आदि देवोंमें अलग अलग कालका विचार नहीं किया है सो जहां जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उसका तथा अपनी ऋपनी स्थिति और स्वामित्वका विचार कर वह घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२२. एकेन्द्रियोंमे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके श्रौर तिर्यञ्जगितित्रकके जधन्य श्रनुभागबन्ध का जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका भङ्ग श्रनुत्कृष्टके समान है। सात नोकषाय, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परधात, उच्छ्वास, श्रातप श्रौर

^{ी.} ता० प्रती भ्रणंताणुबं०४ ज० ए० भ्रज्ज● ज० भ्रंती इति पाठः।

उज्जो० ज० अज० उक्कस्सभंगो । संसाणं अपज्जत्तभंगो । णवरि सञ्वत्थै अज० अप्पप्पणो अणुक्कस्सभंगो । एवं बादर० बादरपज्जत्तापज्जत्तगाणं च सुहुमाणं ।

४२३. पंचिंदि०-तस०२ सव्वपगदीणं जह० ओघं। अज० सव्वाणं अप्प-प्पणो अणुक्कस्सभंगो। णवरि अप्पसत्थाणं धुविगाणं अज० ज० त्र्यंतो०, उ० अणु०भंगो।

उद्योतके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्ट श्रनुयोगद्वारके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है सर्वत्र श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रपने श्रपने श्रनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार बाद्र एकेन्द्रिय, बाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त, बाद्र एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त श्रीर सूद्म जीवोंकं जानना चाहिए।

विशेषार्थ — एकेन्द्रियों में ध्रुववन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्व विशुद्ध परिणामोंसे, ध्रुव-वन्धवाली प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संक्लेशाह्म परिणामोंसे और तिर्यञ्चगतित्रिकका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसलिए यहां जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्कृष्ट के समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके अनुत्कृष्ट अनुभानवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण वतलाया है वही यहाँ भी प्राप्त होता है। सात नोकपाय और औदारिक आङ्गोपाङ्ग अधु ववन्धिनी और यथासम्भव सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं तथा परघात आदि चार अप्रतिपत्त प्रकृतियाँ होकर भी अधु ववन्धिनी हैं, इसलिए उत्कृष्ट अनुयागद्वारमें इनका काल जो अपर्याप्तकोंके समान वतलाया है वैसा ही यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा शेप प्रकृतियोंका काल भी अपर्याप्तकोंके समान घटित कर लेना चाहिए। मात्र एकेन्द्रियोंके अवान्तर भेदोंमें काल कहते समय अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल जैसा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल अलग अलग कहा है उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

५२३. पक्चे न्द्रियद्विक श्रीर त्रसद्विकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। तथा सब प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रपने श्रपने श्रनुकृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके श्रज्ञघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपने श्रपने श्रनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—ज्ञचन्य स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि इन चारों मार्गणाओं में ज्ञचन्य स्वामित्व श्रोघके समान बन सकता है, इसलिए इनमें ज्ञचन्य अनुभागवन्धका ज्ञचन्य काल श्रोघके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, अतः उसका निर्देश आंघके समान किया है। अब रहा अज्ञचन्य अनुभागवन्धका काल सो यहाँ अन्य सब प्रकृतियोंका तो वह अनुत्कृष्टके समान बन जाता है। मात्र ध्रु वबन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंका ज्ञचन्य अनुभागवन्ध, जिनका क्षपण श्रेणिमें बन्ध सम्भव है उनका तो क्षपकश्रेणिमें अपनी अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है और जिनका चपकश्रेणिमें बन्ध सम्भव नहीं है उनका यथास्वामित्व अपनी अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनका अज्ञचन्य अनुभागवन्ध अन्तर्भु हूर्त कालसे कम इन मार्गणाओं वन ही नहीं सकता। इसलिए यहाँ इनके अज्ञचन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्भु हूर्त और उत्कृष्ट काल अपने अपने अनुत्कृष्टके समान कहा है।

१. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः सन्वट्ट॰ इति पाठ:।

४२४. सन्वपुढ०--आउ०-वणप्फिद्--पत्ते०--णियोद० जह० अपज्जत्तभंगो । अज० सन्वाणं अणुक्कस्सभंगो । एवं चेव तेउ०-वाउ० । णवरि धुविगाणं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ज० एग०, उ० वेसम० । अज० अणु०भंगो ।

५२५. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक० पंच-णोक०-तिरिक्खगदि०३-आहारदुग-अप्पसत्थ०४ उप०-तित्थय०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० अंतो०। इत्थि०-णवुंस०-अरिद्-सोग-पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०--तेजा०-क०-दोअंगो०-पसत्थ०४-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि० ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० इत्थिभंगो।

५२४. सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक स्त्रोर निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका काल अपर्याप्तकोंके समान है श्रीर सब प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागवन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक स्त्रोर वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें घ्रु वबन्धवाली प्रकृतियों, तिर्यक्रगति, निर्यक्रगत्यानुपूर्वी स्रोर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय स्त्रोर उत्कृष्ट काल दें। समय है। तथा अजधन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ--पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक आदि जीवोंकी कायस्थिति अपर्याप्तकोंके समान न होकर अलग अलग वतलाई है, इसलिए यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें है। मात्र इनमें तियंख्यगतित्रिक ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनमें इन तीन प्रकृतियोंको ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों के साथ परिगणना करके कालका निर्देश किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

पूर्य. पाँचों मनोयोगी स्रोर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नों दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यक्चगतित्रिक, त्राहारकद्विक, त्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थंद्वर स्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। स्रीवेद, नपुंसकदेद, अरित, शोक, पञ्चोन्द्रय जाति, स्रौदारिकशरीर, वैकिथिकशरीर, नंजसशरीर, कार्मणशरीर, दो श्राङ्गोपाङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क स्रोर निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल स्रन्तमुं हूर्त है। शेप साता श्रादि प्रश्नृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। तथा अजघन्य अनुभागवन्धक कालका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोगी श्रीर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रनु-भागवन्धका स्वामित्व श्रोचके समान है, इसिलये यहाँ प्रथम दंडकमें पाँच ज्ञानावरणादिक जिननी प्रकृतियाँ गिनाई हैं उनका जघन्य श्रनुभागवन्ध स्वामित्वको देखते हुए एक समय तक ही हो सकता है, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन योगोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तमुं हूर्त होनेसे इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त कहा है। दूसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही गई हैं उनके स्वामित्वको देखते हुए यहाँ उनका जघन्य श्रनुभागवन्ध एक श्रीर ५२६. कायजोगीसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत-सोलसक०-भय-दु०--अप्प-सत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० अणंतका०। सादादीणं ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम०। अज० अणुक्कस्सभंगो। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिदि०-वेउिव०-दोत्रंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० ज० एग०, उक० श्रंतो०। पुरिस०--इस्स--रदि--आहारदुग-तित्थ० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० श्रंतो०। ओरालि०-तेजा-क०-पसत्थ०४— श्रगु०-णिमि० ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० ज० एग०, उक० अणंतकालं०। तिरिक्लगदि०३ ओघं।

दो समय तक बन जाता है, इसलिए उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल प्रथम दण्डकके समान घटित कर लेना चाहिए। सातादिक तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल स्त्रीवेदके समान है। इसका अभित्राय यही है कि जिस प्रकार स्त्रीवेदके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हैं वि जिस प्रकार स्त्रीवेदके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हैं हो घटित करके बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

५२६. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, संलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अनत्तकाल हैं। आजघन्य आदिके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट अनत्तकाल हैं। सातावेदनीय आदिके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं। श्लीवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, पख्ले न्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्यात और असचतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल दो समय हैं। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल दो समय हैं। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल दो समय हैं। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। पुरुववद, हास्य, रित, आहारकद्विक और तीर्थं इसके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट आनन्त काल है। तिर्थेक्क गतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका काल के समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। तिर्थेक्क गतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका काल के समय है और अजघन्य अनुभागवन्धका काल के समय है।

विशेषार्थ — यहाँ आगेकी मार्गणाओं में कालका बोध करनेके लिये तीन बातोंका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। प्रथम — जिन मार्गणाओं में जिन प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्ध क्षपक-श्रेणिमें या आगेके तत्प्रायोग्य विशुद्धगुणको प्राप्त करनेके सन्मुख हुए या नीचेके तत्प्रायोग्य संक्लेश-गुणको प्राप्त करनेके सन्मुख हुए जावके अन्तिम समयमें होता है उनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होता है, इसलिए उनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। द्वितीय — जिन प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामों होता है उनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल वार समय होता है। उदाहरणार्थ — यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई साताआदि प्रकृतियों का जघन्य

५२७. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा० मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०-अप्पसत्थव०४--उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० वावीसं वाससह-स्साणि देसू०। सादादीणं ओघं। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिदि०-ओरालि० [ऋंगो०-] वेउिव्वै०-वेउिव्व०ऋंगो०-पर०--उस्सा०-आदावुज्जो०--तस०४ मणजोगि-भंगो। पुरिस०-हस्स-रदि--आहारदुग०-तित्थ० ज० एग०। अज० अणुक्कस्सभंगो०।

अनुभागबन्ध ऐसे ही परिणामोंमें होता है, अतः उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय त्रीर उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। जिन प्रकृतियोंका जघन्य त्रानुभागवन्ध सर्वविकाद-परिणामोंसे या तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामोंसे, उत्कृष्ट संक्लिप्टपरिणामोंसे या तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट-परिणामोंसे होता है उनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होता है। यथा-यहाँ तीसरे दण्डकमें कही गईं स्त्रीवेद आदि प्रकृतियोंका जघन्य अन-भागबन्ध ऐसे ही परिणामोंसे होता है, अतः उनके जवन्य अनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इन सिद्धान्तोंका ध्यानमें रखकर श्रागे कालका विचार किया जा सकता है, अतः हम केवल अजघन्य अनुभागवन्धके कालका ही विचार करेंगे। उसमें भी श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल कुछ श्रपवादोंका छोड़कर प्रायः सर्वत्र एक समय ही है, श्रतः उसका भी बार बार उल्लेख नहीं करेंगे। जहाँ कुछ विशेषता होगी उसका वहाँ अवश्य ही निर्देश कर देंगे। काययोगका उत्कृष्ट काल अनन्त है। अववन्धिनी होनेसे इतने कालतक प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादिका निरन्तर वन्ध सम्भव हैं, इसलिए इनके अजधन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण कहा है। दृसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदि सप्रति-पक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्थका ब्ल्कुष्ट काल अनुत्कृष्टके समान अन्तम् हर्त कहा है। तीसरे दण्डकमें कही गई स्त्रीवंद आदि कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और परघात आदि चार सप्रतिपत्त न होकर भी उत्कृष्टसे अन्तर्मु हूर्त काल तक बन्धवाली हैं, इसलिए इनके भी श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल श्रम्तम् हर्त कहा है। चतुर्थ श्रादि गुणस्थानोंमें पुरुपवेदका निरन्तर बन्ध होता है, पर वहाँ काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हते है। यही बात जिनके तीर्थद्भरप्रकृतिका बन्ध होता है उनके विषयमें भी लागू होती है। शेप हास्य, रित स्रोर स्नाहारक-द्विकका बन्ध अन्तर्मु हर्तसे अधिक काल तक नहीं होता यह स्पष्ट ही है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्सु हुर्त कहा है। काययोगमें तिर्यक्रगतित्रिकका निरन्तर बन्ध श्रोचके समान असंख्यात लोक काल तक होना सम्भव है, क्योंकि अग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके काययोग रहता ही है और तिर्यञ्जगितित्रिककी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध न होकर केवल इन्हींका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनका भङ्ग श्रोघके समान कहा है।

५२७. श्रोदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुण्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रोर पाँच श्रान्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। सातादिकका भङ्ग श्रोघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, श्राति, शोक, पश्चे न्द्रियजाति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वैकियिकशारीर, वैकियिकश्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत श्रोर त्रसचतुष्कका भङ्ग मनायोगी जीवोंके समान है। पुरुषवेद, हास्य, रित, श्राहारकद्विक श्रोर तीर्थङ्करके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्टकाल एक समय है

१, ता० म्रा० प्रत्योः पंचिद्वि म्रोराति० म्रोराति० वेउब्वि० इति पाटः ।

तिरिक्खगदितिगं ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि-वाससह० देस्र० । ओराल्लिय०-तेजा०-कम्मइगादि०णव-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० बावीसं वाससह० देस्र०।

५२८. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-[पुरिस०-इस्स-रदि-] भय-दु०-देवगदिपंचग०-ओरालि०--तेजा०--क०-पसत्थापसत्थव४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० उक्क० झंतो०। सादासाद०-दोआयु०-

तथा अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। तिर्यक्रगतित्रिकके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर आदि नौ निर्माणपर्यन्तके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है।

विशेषार्थ--श्रीदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है श्रीर प्रथम दण्डकमें कही गई ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस इजार वर्ष कहा है। अनितम दण्डकमें कही गई औदारिकशरीरआदि नी और निर्माण ये घ्र वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं । यद्यपि इनमें सप्रतिपत्त प्रकृति स्रौदारिकशरीरका भी समावेश है पर एकेन्द्रिय जीवके यह ध्रुवबन्धिनी ही है, इसलिए इनके भी श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट-काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। यहाँ नौ प्रकृतियोंमेंसे स्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, स्रौर कार्मणशरीर व निर्माण ये चार प्रकृतियाँ तो कही ही हैं। शेप पाँच ये हैं--प्रशस्त वर्ण-चतुष्क स्रोर त्रगुरुलघु । सातादिक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका काल स्रोचके समान यहाँ भी बन जाता है, अतः वह अधिके समान कहा है। स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों में से स्त्रीवद, नपुंसक्वेद, अरित और शोक ये तो सप्रतिपक्ष ही हैं। यद्यपि एकेन्द्रियके श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्गका ही बन्ध होता है पर त्रससंयुक्तप्रकृतियोंके बन्धके समय ही इसका बन्ध होता है, इसलिए श्रीदारिककाययोगमें यह कहीं सप्रतिपक्ष है श्रीर कहीं श्रध्न वबन्धिनी है। परघात, उच्छवास, त्रातप त्रौर उद्योत इनका निरन्तर बन्ध त्रन्तम् हर्त कालतक होता है। त्राब रहीं पक्के न्द्रियजाति, वैक्रियिकद्विक और त्रसचतुष्क सो यद्यपि सम्यग्दृष्टिके इनका निरन्तर बन्ध होता है पर वहाँ श्रौदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल श्रन्तम हर्तसे श्रधिक नहीं है, इसलिये इन स्त्रीवेद त्रादिके त्रजवन्य त्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल त्रानुत्कृष्टके समान त्रान्तम् हुतै कहा है। तिर्यक्र्यगति-त्रिकका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके ही होता है श्रीर श्रीदारिककाययोगके रहते हुए वायुकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है. इसलिए यहाँ इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है।

५२८ श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देवगित पद्धक, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रसात है। श्रजघन्य श्रत्रभाग-वन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रत्रभाग-वन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्भु हूर्त है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, दो श्रायु, मनुष्य-

मणुसगिद--पंचजादि--छस्संठा०--छस्संघै० -- मणुसाणु० -- दोिषहा० -- तसथावरादिदसयुग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० अणु०भंगो। इत्थि०-णवुंस०अरदि--सोग--ओरालि० अंगो०-[पर०-उस्सा०-]आदाउज्जो० ज० ज० एग०, उक्क०
वेसम०। अज० अणु०भंगो। तिरिक्ख०३ ज० ज० उ० एग०। अज० ज० एग०,
उ० अंतो ै०।

५२६. वेडव्वियका० पंचणा०--छदंसणा०--वारसक०--णवणोक०--पंचिंदि०-ओराल्ठि०--तेजा०--क० -ओराल्ठि० ऋंगो०--पसत्थापसत्थव०४--आदाउज्जो०--तस०४--णिमि०--तित्थ०--पंचंत० ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० अणु०भंगो। थीण-

गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और उच्चगोत्र के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। स्निवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगितित्रकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे और प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संवलेश परिणामोंसे, शरीरपर्याप्ति अगले समयमें प्रहण करनेवाला है ऐसे जीवके, यथायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसिलये इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जिनके उनका जघन्य अनुभागवन्ध होता है उनके एक समय कम अन्तर्मु हूर्त काल तक और जिनके उनका जघन्य अनुभागवन्ध नहीं होता उनके पूरे अन्तर्मु हूर्त काल तक इनका अजघन्य अनुभागवन्ध होता है इसिलए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उच्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। दो आयुको छोड़कर सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान बन जाता है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार स्वीवेद आदिके कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तिर्यक्रगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्ध बादर अग्निकायिक व वायुकायिक जीवके शरीरपर्याप्तिके प्रहण करनेके एक समय पूर्व होता है, इसिलए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिलए यहां इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य कान्य कान्य काल एक समय कार्त हैं, इसिलए यहां इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय कार्त हैं, इसिलए यहां इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय कार हैं, इसिलए यहां इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय कार हैं। होता है यह स्पष्ट ही है।

५२६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, नौ नोकषाय, पञ्चोन्द्रयजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्कं, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्कं, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रोर पाँच श्रम्तरायके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय

^{े.} ता॰ प्रती पंचजादि झस्संघ॰ इति पाठः । २ ता॰ प्रती तिरिक्ख॰३ ज॰ ज॰ ए॰ उ॰ श्रंतो॰, सा॰ प्रती तिरिक्ख॰३ स॰ ज॰ एग॰ । सजा॰ ज॰ एग॰ श्रंतो॰ इति पाठः ।

गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-तिरिक्खगदि३ ज० एग०। अज० अणु०भंगो। सादादीणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० ऋंतोम्रु०।

५३०, वेडिव्वयमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थव०४—अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० उ० अंतो० । सादासाद०-मणुसग०-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० अणु०भंगो । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० अणु०भंगो । पुरिस०-हस्स-रदि-तिरिक्ख०३—पंचिंदि०-ओरालि० अंगो०-आदाउज्जो०-तस० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० ।

है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिध्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चतुष्क श्रीर तिर्यक्रगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। सातावेदनीय श्रादिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है।

विशेपार्थ—वैकियिकयोगमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। वह यहां भी प्रथम दण्डक और द्वितीय दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन जाता है, इसलिए वह अनुत्कृष्टके समान कहा है। मात्र द्वितीय दण्डककी प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल वैकियिककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेता घटित करना चाहिए। सातावेदनीय आदिका काल स्पष्ट ही है।

५३०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, श्राग्रस्त वर्णचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रौर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्राप्त असातावेदनीय, मजुष्यगति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मजुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर, स्थिर श्रादि छह युगल श्रौर उच्चगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रजुत्कृष्टके समान है। स्रीवेद, नपुंसकवेद, श्राति श्रौर शोकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रात्कृष्टके समान है। पुरुपवेद, हास्य, रित, तिर्थक्रगतित्रिक, पञ्चेद्रिय जाति, श्रौदारिक श्रङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रोर त्रसके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रने श्रात है। श्राचन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तपुर्ह है।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल श्चन्तमुं हूर्त है श्रोर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ वैक्रियिकमिश्रकायोगमें भ्रुवबन्धिनी हैं, श्चतः यहाँ इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल श्चन्तमुं हूर्त कहा है। यहाँ जिनके तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्ध होता है उनके वह भ्रुवबन्धिनी ही है, श्चतः उसे भ्रुवबन्धिनी प्रकृतियों से साथ परिगणित किया है। दूसरे श्रोर तीसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियाँ सप्रतिपक्ष हैं। उनके

५३१. आहारका० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०-- सत्तणोक०-- देवगदि-एगुणतीस-उच्चा०-पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० ग्रंतो०। सादासाद०--देवायु०-थिरादितिण्णियुग० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि-सम०। अज० ज० एग०, उक्क० ग्रंतो०।

५३२. आहारमि० पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०--पुरिस०-भय-दु०--देवगदि-एगुणतीस-उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० उ० ग्रंतो०। सादासाद०-थिरादि-तिण्णियुग० आहारकायजोगिभंगो। चत्तारिणोक०--देवाउ० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० ग्रंतो ०।

श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका काल श्रनुत्कृष्टके समान वन जाता है, श्रतः इन प्रकृतियों के श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका काल श्रनुत्कृष्टके समान कहा है। पुरुपवेद श्रादि सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं। इसिलए इनके भी श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त कहा है। मात्र श्रातप श्रीर उद्योत श्रप्रतिपक्षरूप हैं। पर इनका जघन्य वन्धकाल एक समय श्रीर उत्कृष्ट वन्धकाल श्रन्तमुं हूर्त होनेसे उनके भी श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका उक्त काल कहा है।

५३१. त्राहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, सात नांकपाय, देवगित उनतीस प्रकृतियाँ, उचगे।त्र त्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दां समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चन्तर्मु हूर्त है।

विशोपार्थ--यहाँ आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा तथा प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य बन्धकी अपेक्षा दोनों प्रकारसे सन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त वन जाता है, इसलिए उक्त प्रमाण कहा है।

५३२. आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुष्वेद, भय, जुगुप्सा, देवगित उनतीस प्रकृतियाँ, उचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग आहारक-काययोगी जीवोंके समान है। चार नोकपाय और देवायुके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है।

विशेषार्थ — आहारककाययोगी जीवोंके ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डक व चार नोकषायके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है और आहारकिमश्रमें एक समय बतलाया है। इसका कारण यह है कि इनका जघन्य बन्ध सर्विवशुद्ध या सर्वसंक्लेश परिणामोंसे होता है जो आहारकिमश्रकाययोगके अन्तिम समयमें ही होता है जैसा कि वैक्रियिकिमश्रमें भी बतलाया है। अर्थात् वैक्रियिककाययोगमें दो समय और वैक्रियिकिमश्रमें एक समय इसी अपेना बतलाया है। देव आयुका जघन्य अनुभागबन्ध भी आहारकिमश्रकाययोगके अन्तिम समयमें ही होता है। इसी

१. श्रा॰ प्रती श्रज॰ उ॰ श्रंतो॰ इति पाटः ।

४३३. कम्मइ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-हस्स-रदि-भय-दु०तिरिक्तं०३ — ओरालि० -- तेजा०-क० -- पसत्थापसत्थवण्ण४ — अगु०४ - आदाखजो०बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णिसम० ।
सादासाद०-एइंदि०-हुंड०-थावरादि४ —थिराथिर--सुभासुभ-दूभ०--[दुस्सर-]अणादे०जस०-अजस० ज० अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० । इत्थि०-मणुस०--तिण्णिजादि-पंचसंठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० अज०
ज० एग०, उ० वेसम० । पुरिस०-देवगदिपंचग-पंचिदि०-ओरालि०अगो०--तस०
ज० अज० ज० एग०, उ० वेसम० । णवुंस०-अरदि-सोग ज० ज० एग० उ० वेसम० ।
अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० । अथवा कम्म० सन्वपगदीणं ज० एग० ।
अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० देवगदिपंचगं वज्ज० ।

कारण त्रागे श्रन्तर प्ररूपणामें त्राहारकिमश्रकाययोगमें देवायुके त्रजवन्य त्रानुभागवन्धका श्रन्तर नहीं बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

५३३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगतित्रिक, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आनप, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तीन समय है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान स्थावर श्रादि चार, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, श्रना-देय, यशक्तीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्ऋष्ट काल तीन समय है। स्त्रीवेद, मनुष्यगति, तीन जाति, पाँच संस्थान, छह संहनन, मनुष्य-गत्यातुपूर्वी, दो विहायोगति,सुभग,सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रतुभागवन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। पुरुषवेद, देवगतिपख्नक, पक्ने न्द्रिय जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर त्रसके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रम्भागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। नपुंसकवेद, श्रारति श्रीर शोकके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अथवा कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तीन समय है। मात्र देवगतिपञ्चकको छोड़कर यह काल जानना चाहिए।

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे श्रीर प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है। किन्तु अपर्याप्त योग होनेसे यहां ऐसे परिणाम एक समय तक ही हो सकते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध परि-

१. ता० प्रतौ हस्सरिद्भ० तिरिक्ख०३ इति पाठः । २. ता० द्या**० प्रत्योः ज० द्याज० एग०** इति पाठः ।

५३४. इत्थिवे० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०-भय०-दु०--अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० अणु०भंगो । णविर मिच्छ० अज० ज०
झंतो० । सादासाद०-चदुआयु०-णिरय०--तिरिक्ख०--चदुजादि-पंचसंठा०--पंचसंघ०दोआणु०--अप्पसत्थ०--थावरादि०४--थिरादितिण्णियुग०-दूभग०--दुस्सर०-- अणादे०णीचा० ज० ज० एग०, उक० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० झंतो० ।
इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-आदाउज्जो० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज०
ज० एग०, उ० झंतो० । पुरिस० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक० पणवण्णं
पिलदो० देस्० । हस्स-रदि-आहारदुगं ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० झंतो० ।
मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ज०

वर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इसलिए यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। स्रीयेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका वन्ध उन्हीं जीवोंके होता है जो अधिक से अधिक दो विप्रहसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। यही बात पुरुपवेद आदि चौथे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके विपयमें जाननी चाहिए। नपुंसकवेद, अरित और शोक का जवन्य अनुभागवन्ध अपने अपने योग्य विशुद्ध परिणामोंसे होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके अजवन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है यह स्पष्ट ही है। यहां विकल्परूपसे सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश कया है सो आगमसे जानकर उसकी संगति विठलानी चाहिए। इससे ऐसा विदित होता है कि देगगतिपञ्चकका बन्ध तो उसी जीवके सम्भव है जो अधिकसे अधिक दो मोड़ा लेकर उत्पन्न होता है पर अन्य प्रकृतियोंके बन्धके लिए ऐसा कोई नियम नहीं है।

५३४. र्छावेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उन्द्रष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्म हूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगित, तिर्यञ्चगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोन्नके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जघन्य काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्षान्य है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्षान्य है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। इत्याप अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। इत्याप अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन

एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० जह० एग०, उ० पणवण्णं पिल० देसू० । देव-गिद् ॰-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णि पिल० देसू० । पंचिंदि०-ओरालि० अंगो०-तस० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पिल० देसू० । ओरालि०-पर०--उस्सा०--बादर-पज्जत-पत्ते० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पिल० सादि० । वेउव्वि०-वेउव्वि० अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णि पिल० देसू० । तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०--णिमि० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० ज० एग०, उ० पिलदोवमसदपुथत्तं । तित्थय० ज० एग० । अज० [ज०] एग०, उ० पुठ्वकोडी देसू० ।

वज्रर्पभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच-गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पत्य है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य त्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन परुय हैं। पञ्चे द्रियजाति, श्रोदारिक त्राङ्गोपाङ्ग श्रोर त्रसके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य है। श्रीदारिकशारीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त श्रीर प्रत्येकके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक सयय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्क्रष्ट काल साधिक पचवन पल्य है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। तेजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रप्ट काल दां समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रप्ट काल सौ परुय पृथक्त्वप्रमाण है। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य त्रातुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकांटि है।

विशेषार्थ—यहां प्रथमदण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका वन्ध कायस्थिति प्रमाण काल तक सम्भव है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल भी यही है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। मात्र मिध्यात्वका निरन्तर बन्ध कमसे कम अन्तर्भृहूर्त तक अवश्य होता है, क्यों कि मिध्यात्व गुणस्थानका इससे कम काल नहीं है, इसलिए इस प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्भृहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि या तो सप्रतिपत्त प्रकृतियों हैं या उत्कृष्टसे अन्तर्भृहूर्त काल तक बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्भृहूर्त कहा है। यही बात क्षीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के विषयमें जाननी चाहिए। पुरुषवेदका सम्यग्दृष्ट देवियों के निरन्तर बन्ध होता है और स्रविदियों सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुझ कम पचवन पत्य है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। हास्य और रित ये सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं और आहारक द्विकका बन्धकाल ही अन्तर्भुहूर्त हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका एत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त कहा है। सम्यग्दृष्ट देवियों के मनुष्यगित आदिका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष अन्तर्भुहूर्त कहा है। सम्यग्दृष्ट देवियों के मनुष्यगित आदिका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष

५३५. पुरिसेसु पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइगा ति ज० एग० । अज० ज० श्रंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुत्रत्तं । सादादिविदियदंडओ इत्थिवेदादितदियदंडओ इथि०भंगो । पुरिस० ओघं । इस्स-रिद-आहारदुगं ओघं । मणुस०-वज्जिरि०-मणुसाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं० सा० । देवगदि-देवाणु० ज० अज० ओघं । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० वेसम० । अज० ज० एग०, उ० तेविहसागरोवमसदं । ओराल्ठि०-ओराल्ठि०श्रंगो० ज० ज० एग०, उ० वेसम० । अज० अणु०भंगो० । वेउिच्व०--वेउिच्व०श्रंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । [अज०] देवगदिभंगो। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि०

प्रकृतियोंका नहीं, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य कहा है। भागभूमिमं पर्याप्त मनुष्यिनियोंके देवगितिद्विक और वैकियिकद्विकका नियमसे बन्ध होता है और उत्तम भोगभूमिका उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। इसमेंसे अपर्याप्त अवस्थाका काल कम कर देने पर कुछ कम तीन पल्य शेप रहता है, अतः इन चार प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। सम्यग्द्रि देवियोंके पञ्चेन्द्रिय जाति आदि तीन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य कहा है। देवीके पचवन पल्य काल तक तो औदारिकशरीर आदि का बन्ध होगा ही, आगे भी अन्तर्मु हूर्त काल तक वह नियमसे होता रहता है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक पचवन पल्य कहा है। तैजसशरीर आदि ध्रु वबन्धिनी प्रकृतियां हैं और इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है। कर्मभूमिकी मनुष्यिनी आठ वर्षके बाद सम्यक्त्वका लाभ करके शेप पूर्वकोटि काल तक तीर्थद्वर प्रकृतिका बन्ध कर सकती है, अतः इसके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है।

५३५. पुरुपवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणसे लेकर पाँच अन्तराय तक प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्चन्तर्म हर्त है श्रीर उत्क्रष्ट काल सी सागर पृथक्त प्रमाण है। सातावेदनीय श्रादि दूसरे दण्डक श्रीर स्त्रीवेद श्रादि तीसरे दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पुरुपवेदका भङ्ग ओघके समान है। हास्य, रति श्रौर श्राहारकद्विकका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यगति, वन्नपेभ-नाराच संहनन स्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगित स्रोर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्रोर अजघन्य अनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। पख्चे न्द्रिय जाति, परवात, उच्छ्वास श्रौर त्रसचतुष्कके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकसो त्रेसठ सागर है। श्रोदारिकशरीर श्रोर औदारिकश्राङ्गो-पाङ्गके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल दो समय है। अज-घन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्लौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका भक्क देवगतिके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रौर निर्माण के जघन्य अनुभागबन्धका काल स्रोधके समान है। स्रजधन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक

ज॰ ओघं। अज॰ ज॰ एग॰, उ॰ कायिहदी॰। समचदु॰--पसत्थ॰--सुभग-सुस्सर-आदे॰-उच्चा॰ ज॰ अज॰ ओघं। तित्थ॰ ओघं।

४३६. णबुंसगे पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय०-दु०--अप्प-सत्य०४--उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० अणंतकात्तं०। णविरि मिच्छ० अज० ज० द्यंतो०। सादसाद०-चदुआयु०-णिरयगदि०-चदुजादि-पंचसंठौ०-पंचसंघ०--णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०--थावरादि०४--थिरादितिण्णियुग०--दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम०। अज० ओघं। इत्थि०-णवुंस०-हस्स-

समय है और उत्हृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, त्रादेय श्रीर उचगोत्रके जयन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग श्रोघके समान है।

विशेषार्थ-पुरुषवेदी जीवके पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकोक्त प्रकृतियोंका जघन्य श्रनु-भागबन्ध जिस अवस्थामें होता है उसे देखते हुए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य काल अन्तर्म हर्त होता है, क्योंकि पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्म हर्त है। इनके अजघन्य अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्तवप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगतिद्विक श्रीर वक्रर्षभनाराचसंहननका नियमसे बन्ध होता है, इससे इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। देवगतिद्विकके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल ओघसे साधिक तीन पल्य घटित करके बतला श्राये हैं। वह पुरुषवेदी जीवोंके ही सम्भव है, श्रतः यहां यह काल श्रोघ के समान कहा है। देवगतिद्विकका वन्ध करनेवालेके वैक्रियिकद्विकका नियमसे बन्ध होता है, अतः वैक्रियिकद्विकके श्रनुभागबन्धका काल देवगतिके समान कहा है। पञ्चे न्द्रियजाति श्रादि सात प्रकृ-तियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जो उत्कृष्ट काल एकसी त्रेसठ सागर कहा है वह एकसी पचासी सागरमेंसे छटे नरकके बाईस सागर कम कर देने पर उपलब्ध होता है। इन्ने काल तक पुरुषवेदी जीवके इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। सर्वार्थसिद्धिके देवोंके ऋौदारिकद्विकका निरन्तर बन्ध होता रहता है, श्रत: इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रनुत्कृष्टके समान तेतीस सागर कहा है । तेजसशरीर त्रादि प्रकृतियां ध्रुववन्धिनी है, त्र्यतः इनके त्र्यज्ञघन्य त्र्यनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण कहा है। श्रोघसे समचतुरस्रसंस्थान श्रादिके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य घटित करके बतला श्राये हैं। वह पुरुपवेदी जीवोंके ही सम्भव है, श्रतः यहाँ यह काल त्र्योघके समान कहा है। तीर्थक्रर प्रकृतिके अजयन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सिधक तेतीस बनता है। श्रोघसे भी यह काल इतना ही है, श्रतः यह भी श्रोघके समान कहा है।

५३६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तग्रंहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगित, जार चाित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

भा० प्रतौ पंचत ज० एग० ड० इति पाठः । २. ता० प्रतौ व्यारयगदिपंचसंठा० इति पाठः ।

रदि-सोग--आहारदुग--आदाउज्जोव० ओघं। पुरिस० ज० ए०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। तिरिक्खगदितिगं ओघं। मणुस०--समचदु०--क्ज्जरि०-मणु-साणु०-पसत्थ०--सुभग-सुस्सर--आदे०--उच्चा० ज० अज० णिरयोघं। देवगदि०-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तािसम०। अज० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। पंचि ०-ओरालि० श्रंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। ओरालि०--तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिम० ज० अज० ओघं। वेउव्वि०-वेउव्वि०श्रंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अज० देवगदिभंगो। तित्थ० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसाग० सादि०।

चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, श्ररति, शोक, श्राहारकद्विक, श्रातप श्रीर उद्योतका भङ्ग श्रोघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यक्रगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्जर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल सामान्य नारिकयोंके समान है। देवगति श्रौर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजचन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पञ्चोन्द्रियजाति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छवास श्रीर त्रसचतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है ओर उत्क्रष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णंचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रौर निर्माणके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिकश्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्यकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग देवगतिके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य स्त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा ऋजघन्य ऋनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है। प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादि ध्रवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनका इतने काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसिलए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण कहा है। मिध्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जप्तु हूर्त क्यों है इसका हम पहले स्पष्टीकरण कर आये हैं। सातादिकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अघिके समान अन्तु हूर्त यहाँ भी बन जाता है, क्योंकि ये सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ है, अतः यहाँ यह काल अघिके समान कहा है। कालकी दृष्टिसे यही बात स्वीवेद आदिके विषयमें जाननी चाहिए। जो नारकी सम्यग्दृष्ट होता है उसके निरन्तर पुरुषवेदका बन्ध होता है। इसीसे यहाँ पुरुषवेदके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। ओघसे तिर्यक्रगितिष्ठकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल

ता० प्रतौ तिरिक्खगदि४ भ्रोघं इति पाठः । ४. म्रा० प्रतौ पुल्वकोडि० पंचि० इति पाठः ।

५३७. अवगदवे० पंचणा०--चदुदंसणा०--सादा०--च**दुसं**ज०--जस०--उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक० श्रंतो०।

५३८. कोधे पंचणा०-छदंसणा०--चहुसंज०-भय०--दु०--अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० जे० उ० झंतो०। केसिंचि अज० ज० एग०। थीण-गिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि--तिरिक्ख०३-आहारदुग-तित्थ० ज० एग०। अर्जे० [ज०] एग०, उक्क० झंतो०। सादासाद०-चदुआयु०-तिण्णिगदि-

श्रसंख्यात लोकप्रमाण बतलाया है। वह नपुंसकवेदी जीवोंके ही उपलब्ध होता है, क्योंकि श्रग्नि-कायिक श्रीर वायुकायिक जीव, जिनके इतने काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता है, नपुंसकवेदी ही होते हैं, श्रतः यह काल श्रोघके समान कहा है। सामान्य नारिकयोंमें मनुष्यगति श्रादिके श्रज-घन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर घटित करके बतला श्राये हैं। नारकी नपुंसकवेदी होनेसे यहाँ भी वह बन जाता है, श्रतः यह काल सामान्य नारिकयों के समान कहा है। जो नपुंसकवेदी मनुष्य पर्याप्त जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहता है उसके निरन्तर देवगतिद्विकका बन्ध होता है। यह काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण होनेसे देवगतिद्विकके अज्ञवन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैकियिकद्विकके श्रजघन्य अनुभागबन्धका काल देवगतिके समान कहनेका यही कारण है। सातवें नरकके नारकीके वहाँ से मर कर नपुसकवेदी तिर्येख्न होने पर श्रन्तम् हर्त काल तक पञ्च न्द्रियजाति आदिका नियमसे बन्ध होता रहता है। उत्क्रष्टरूपसे यह काल साधिक तेतीस सागर होनेसे पक्क न्दिय जाति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। श्रीदारिकशरीर श्रादिके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जो काल श्रोधमें कहा है वह सबका सब नपुंसकवेदी जीवोंके ही घटित होता है। कारण कि अनन्त काल प्रमाण कायस्थिति नपुंसकवेदमें ही सम्भव हैं, अतः यह काल अोघके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका नरकमें साधिक तीन सागर काल तक बन्ध सम्भव है, अतः इसके अजधन्य अनुभागबन्ध-का उत्क्रष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है।

५३७. श्रपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र स्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है स्रोर उत्कृष्ट काल अन्त-मुंहूर्त है।

विशेषार्थ--बन्धके प्रकरणमें अपगतवेदका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त होनेसे इनमें सब प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहा है।

५३८. क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। मात्र किन्हींके मतसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है। स्त्यानगृद्धिनिक्र, मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, तिर्यक्रगितित्रक, आहारकदिक और तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय,

१. ता॰ प्रतौ म्रज्ज॰ ए॰ उ॰, म्रा॰ प्रतौ म्रज्ज॰ उ॰ इति पाटः। २. ता॰ मा॰ प्रत्योः एग०। उक्क॰ म्रज्ज॰ इति पाटः।

चहुजादि-- इस्संठा० - इस्संघ० - तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिइयुग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम० । अज० मणजोगिभंगो । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग--पंचिदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क० -दोश्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० श्रंतो० । एवं माण-माया-लोभाणं ।

४३६. मदि०-सुद् ० पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइग त्ति ज० अज० सादादि-विदियदंडओ इत्थि०-णवुंस०--हस्स-रिद-अरिद-सोग-तिरिक्खगिदितिग-आदाउज्जो०ज० अज०ओघं। पुं० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० झंतो०। मणुसर्ग०-मणुसाणु० ज०

चार त्रायु, तीन गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर त्रादि चार, स्थिर त्रादि छह युगल त्रीर उचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भक्न मनोयोगी जीवोंके समान है। स्नीवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, पक्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आक्नोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायमें जानना चाहिये।

विशेपार्थ— नहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभागवन्य क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य ऋौर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अपनी स्वामित्वसम्बन्धी विशेषताके साथ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके सम्बन्धमें भी यही बात जाननी चाहिए। अन्यत्र इन सब प्रकृतियोंका अजधन्य अनुभागवन्ध होता है। किन्तु कोध कपायका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त होनेसे यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त कहा है। यद्यपि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका काल भी इसी प्रकार घटित किया जा सकता है पर वहाँ पहले पाँच ज्ञानावरणादि सव प्रकृतियोंके त्र्यज्ञघन्य त्र्यनुभागबन्धका जघन्य स्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुर्त ही कहा है। सो यहाँ किसी भी कषायके साथ जीव किसी भी गतिमें उत्पन्न हो सकता है श्रीर इसलिए क्रोध कषायका एक समय काल नहीं बनता।सम्भवतः इस मतको ध्यानमें रखकर यह विधान किया है। तथा 'केसिंचि' इत्यादि द्वारा जो अजघन्य अनुमागबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है सो क्रोधकपायके साथ नरकगितमें ही जाता है, अन्य गतिमें जानेवालेके क्रोधकपाय बदल जाता है सम्भवतः इस मतको ध्यानमें रखकर यह निर्देश किया है, क्योंकि इस मतके अनुसार क्रोध कवायका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है। मात्र मान, माया और लोभ कषायमें काल कहते समय मरण श्रीर व्याघात दोनों प्रकारसे इनका जघन्य काल एक समय लेना चाहिए।

५३९. मत्यज्ञानी त्रौर श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणसे लेकर अन्तरायतककी प्रकृतियों के जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका तथा सातावेदनीय आदिक दूसरा दण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्येख्नगतित्रिक, आतप और उद्योतके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

१. भा॰ प्रती भोघं। पुंसभंगो । मणुसग॰ इति पाठः।

जि एग०, उक्क० चतारिसम०। अज० ज० एग०, उ० एकत्तीसं० सादि०। देवग०समचढु०--देवाणु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदेज्ज--जस०--उच्चा० ज० ज० एग०,
उ० [चतारिसम०। अज० ज० एग०, उ०] तिण्णिपल्लि० देसू०। पंचिंदि०-ओरालि०झंगो०-पर०--उस्सा०--तस४ ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० ज० एग०, उ०
तेतीसं सा० सादि०। ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०--णिमि० ओघं।
वेउन्वि०-वेउन्वि०श्चंगो० ज० ज० एग०, उ० वेसम०। अज० देवगदिभंगो।

५४०. विभंगे पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइग त्ति ज० एग० । अज० ज०

श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त है। मनुष्यगित श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वी के बचन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। देवगित, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशाकीर्ति श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। पञ्च निद्रय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्ववास, श्रीर त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। श्रीदारिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रगुरुलाधु श्रीर निर्माणका भङ्ग श्रोघके समान है। वैक्रियिकशारीर श्रीर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका भङ्ग देवगितिके समान है।

विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरण दण्डक, सातावेदनीय दण्डक और स्नीवेद आदिका जो काल ओघसे कहा है वह यहां अविकल बन जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। पुरुषवेदका सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसलिये यह जघन्य और उत्कृष्ट एक समय कहा है। तथा परावर्तमान प्रकृति होनेसे इसके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विकका अजघन्य अनुभागवन्ध नौवें मैवेयकमें और वहाँ से आनेके बाद अन्तर्म हूर्त काल तक होता है, इसलिए उत्कृष्ट रूपसे यह साधिक इकतीस सागर कहा है। देवगित आदिका भोगभूममें पर्याप्त अवस्था होनेपर नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य कहा है। पञ्च निद्रय जाति आदिका सातवें नरकमें और वहांसे निकलने बाद अन्तर्म हूर्त काल तक नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। आघ से औदारिकशरीर आदिका जो काल कहा है वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। वैकियकदिकका बन्ध देवगितके साथ होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका कि यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए वह आघके समान कहा है। वैकियकदिकका बन्ध देवगितके साथ होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका काल देवगितके समान कहा है।

५४०. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदिसे लेकर पाँच अन्तराय तककी प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य

१. ता० प्रतौ एग० तेसीसं इति पाठः ।

एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्०। णविर मिच्छत्त० अज० जै० श्रंतो०। सादासाद०चढुआयु०--णिरयगिद्--देवगिद--चदुजादि--छस्संठा०--छस्संघ० -- दोआणु०--दोविहा०थावरादि४--थिरादिछयुगल-उच्चा० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम०। अज० ज०
एग०, उक्क० श्रंतो०। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग--आदाउज्जो० ओघं। पुरिस०इस्स-रदि० ज० ओघं०। अज० ज० एग०, उ० श्रंतो०। तिरिक्खगिदि३ ज० एग०। अज० णाणा०भंगो। मणुस०-मणुसाणु० ज० ओघं। अज० ज० एग०, उ०
एक्तिसं० देस्०। पंचिदि०--ओरालि०--तेजा०-क०-ओरालि०श्रंगो०--पसत्थ०४अगु०३-तस०४--णिमि० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस्०। वेउव्व०-वेउव्व०श्रंगो० इत्थिभंगो।

काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार श्राय, नरकगति, देवगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर श्रादि चार, स्थिर त्रादि छह युगल श्रीर उचगोत्रके जवन्य त्रानुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय हैं ऋोर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, ऋातप ऋौर उद्योत का भङ्ग त्रोघके समान है। पुरुपवेद, हास्य त्रीर रतिके जघन्य त्रानुभागवन्धका काल त्रोघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तुम् हुर्त है। तिर्यक्रागितचतुष्कके जवन्य त्रानुभागवन्धका जवन्य त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। त्राजवन्य श्रवुभागवन्धका काल ज्ञानावरएक समान है। मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर च्ट्छिष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। पञ्चीन्द्रय जाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यरीर, श्रौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्र्यगुरुलघृत्रिक, त्रसचतुष्क श्रौर निर्माण के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्चनभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उन्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। बैक्कियिक-शरीर त्रीर वैकियिक त्राङ्गोपाङ्गका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—विभक्षज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है. अतः इसमें पाँच ज्ञाना-बरणादि प्रथम दण्डककी प्रकृतियों के तथा तिर्यञ्जगितित्रक और पञ्जो दिन्नय जाति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मिध्यात्व गुणस्थानका काल अन्त-मुंहूर्त है और मिध्यात्वका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए मिध्यादृष्टि जीवके अन्तिम समयमें होता है। इसका ही यह अथं है कि शेष समयमें उसका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है। इसीसे इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि सप्रतिपच्च प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहां कही गई दो आयु यद्यपि सप्रतिपच्च प्रकृतियां नहीं हैं पर उनका उत्कृष्ट बन्ध ही अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, अतः उनकी साता आदिके साथ परिगणना कर ली है। स्वीवेद आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल जो आंघके समान कहा है सो यहां भी अजघन्य अनुभाग-

ता॰ मा० प्रत्यो मिच्छत्त ग्रावजा॰ ज० इति पाठः। २. मा० मतौ तिरिक्खगिदि० ४ ज० इति पाठः।

४४१. आभि०-सुद्०--ओधि० पंचणा०-खदंसणा०--चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०--पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थापसत्थ०४-- अगु०४--पसत्थ०-तस०४-- सुभग-सुस्सर--आदे०--णिमि०--उच्चा०--पंचंत० ज० एग०। अज० ज० श्रंतो०, उक्क० द्याविद्वि० सादि०। सादासाद०-दोआयु०--थिरादितिण्णियुग० ज० अज० ओघं। अपचक्ताणावर०४-- तित्थ० ज० एग०। अज० ज० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। पचक्ताणा०४ जह० एग०। अज० [ज०] श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। चदुणोक०-आहारदुगं ओघं। मणुसगदिपंचग० ज० एग०। अज० ज० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीस० सागं०। देवगदि०४ ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० तिण्णिपलि० सादि०।

बन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त लिया है। सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ होनेसे यहां पुरुपवेद आदिके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर्मु हूर्त है यह स्पष्ट ही है। यहां मनुष्यगतिद्विकका निरन्तर बन्ध नौवें प्रैवेयकमें कुछ कम इक्तीस सागर तक होता है। इससे इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियकद्विक यहां सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका भङ्ग स्त्रीवेदके समान कहा है।

५४१. श्रामिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायो-गति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र त्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त हैं स्त्रीर उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर हैं। सातावेदनीय, त्रसातावेदनीय, दो त्रायु स्त्रीर स्थिर श्रादि तीन युगलके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रप्रत्याख्या-नावरण चार त्रीर तीथङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमु हुर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। प्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्तमु[ं]हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर है। चार नोकपाय श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य श्रनु-भागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्त-मु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट साधिक तीन परुय है।

विशेषार्थे—आभिनिवोधिकज्ञानी आदिका जयन्य काल अन्तर्म हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर प्रमाण होनेसे यहां प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्म हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। सातावेदनीय आदिका काल अभिने समान है यह स्पष्ट ही है। चतुर्थ गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्म हूर्त और उत्कृष्ट काल

१. ता॰ थ्रा॰ प्रत्योः तेत्तीसं॰ सादि॰ इति पाठः ।

४२. मणपज्जवे पंचणा-छदंसणा०-चढुसंज०-पुरिस०--भय०-दु०--देवगिद्-पंचिदि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०--समचदु०-वेडिव्वयग्रंगो ०--पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थिव ०--तस०४-सुभग--सुस्सर--आदे०--णिमि०--तित्थ०-उच्चा०--पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक्क० पुन्वकोडी देसू० । सेसं ओधिभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो० । एवं चेव परिहार०-संजदासं० । णवरि अज० ज० ग्रंतो० । सुहुमसंपरा० अवगदवेदभंगो ।

साधिक तेतीस सागर है, अतः यहाँ अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थक्कर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबम्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। चतुर्थ और पद्धम गुणस्थानका मिलाकर जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर है, अतः यहाँ प्रत्याख्यानावरण चारके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर कहा है। चार नोकपाय और आहारकिहकका भङ्ग ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। सम्यग्दृष्ट नारक और देवोंके मनुष्यगति पद्भकका नियमसे बन्ध होता है। तथा इनका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और देवोंमें उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। सम्यग्दृष्ट मनुष्यका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है, और इनके निरन्तर देवगित चतुष्कका बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल एक्त प्रमाण कहा है।

५४२. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद भय, जुगुप्सा, देवगित, पख्ने न्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, वैक्रियिक ब्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त वहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, ब्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उचगोत्र ब्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अगुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । शेप भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार परिहारिवशुद्धिसंयत आरे संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके पाँच ज्ञानावरणादिके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्भ हूर्त है । सूद्रमसांपरायसंयतका भङ्ग अपगतवेदियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके पाँच ज्ञानावरणादि तथा जिनके तीर्थंद्वर प्रकृति वँघती है उनके वह भी ध्रुवविध्नी प्रकृतियाँ है। साथ ही मनःपर्ययज्ञानमें उपशमश्रेणिमें नरणकी अपेना इनका एक समय तक भी बन्ध सम्भव है। कारण कि उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छिति होनेके बाद पुनः लौटते समय एक समय तक बन्ध होकर मरने पर मनःपर्ययज्ञानमें इनका अज्ञान्य अनुभागबन्ध एक समय तक देखा जाता है। तथा मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः यहाँ इन प्रकृतियों के अज्ञान्य अनुभागबन्धका ज्ञान्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियाँ अध्युवबन्धिनी हैं, अतः उनके ज्ञान्य और अज्ञान्य अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार अवधिज्ञानी जीवोंके कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी वह बन जाता है, अतः वह अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। संयत, सामायिक-संयत और खेदोपस्थापन।संयतोंके भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंके

ता० प्रतौ समचतु० [दो] श्रंगो० इति पाठः । २. ता० प्रतौ श्रगु० पसत्थ० इति पाठः ।

५४३. असंजदे पंचणाणावरणादिपहमदंडओ ओघं । सादादिविदियदंडओ इत्थिदंडओ इस्म--रदि--तिरिक्खगदि०४ -देवगदि४ ओघं । पुरिस० ज० ओघं । अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं० सादि० । मणुसगदि०३ ओघं । पंचिंदियदंडओ मदि०भंगो । तित्थय० ओघं । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० आघं । ओधिदं०-सम्मादि० ओधिभंगो ।

५४४. किण्णाए पंच णाणावरणादिपढमदंडओ णिरयभंगो। णवरि अज० ज० श्रांतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। थीणगिद्धि०३—मिच्छ०--अणंताणुबंधि०४ ज० एग०। अज० ज० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सादासाद०-चहुआयु०-णिरय--देवगदि--चहुजादि--पंचसंठा०--पंचसंघ०--दोआणु०--अप्पसत्थ०-थावरादि४- थिरादितिण्णियुग०--दूभग--दुस्सर--अणादे० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०।

जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान कहा है। परिहार-विशुद्धिसंयत श्रीर संयतासंयतोंमें भी ऐसे ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनोंका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है, श्रतः इनमें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त कहा है।

५४३. श्रसंयतों में पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। सातावेदनीय श्रादि द्वितीय दण्डक, स्नीवेद दण्डक, हास्य, रित, तिर्यञ्चगितचतुष्क और देवगितचतुष्कका भङ्ग श्रोघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागवन्धका काल श्रोघके समान है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगिति त्रिकका भङ्ग श्रोघके समान है। पञ्च न्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग श्रोघके समान है। चज्जदर्शनी जीवोंमें त्रस पर्याप्त जीवोंके समान मङ्ग है। श्रचजुदर्शनी जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। श्रवधिदर्शनी श्रीर सम्यन्दृष्टि जीवोंमें श्रवधिद्यानी जीवोंके समान भङ्ग है। श्रवधिदर्शनी श्रीर सम्यन्दृष्टि जीवोंमें श्रवधिद्यानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ— उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय इन मार्गणात्रोंका जिस प्रकार स्पष्टीकरण किया है उसे ध्यानमें रखकर तथा श्रोध व श्रन्य जिन मार्गणात्रोंके समान यहाँ काल कहा है उसे भी ध्यानमें रखकर काल घटित किया जा सकता है, श्रतः यहाँ हमने श्रलगसे विचार नहीं किया है।

५४४. कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकका भक्त सामान्य नारिकयों के समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ अजधन्य अनुभागवन्धका जधन्य काल अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जधन्य अनुभागवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजधन्य अनुभागवन्धका जधन्य काल अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगित, देवगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, अपशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जधन्य अनुभागवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजधन्य अनुभाग-

ता॰ प्रतौ इत्थि॰ इत्थि (?) दंडको इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ देवगदिपंचसंठा॰ इति पाठः।

अज० ज० ए०, उक्क० श्रंतो० । इत्थि०--पुरिस०-णवुंस०-इस्स--रदि--अरदि--सोमतिरिक्तगिदि०३--मणुस०-समचदु--वज्जरि०--मणुसाणु०--आदाउज्जो०--पसत्थ०-सुभगसुस्सर-आदे०-उच्चा० णिरयोघं । तित्थ० ज० एग० । अज० ज० उ० श्रंतो० । एवं
णील्ल-काऊणं । णवरि तिरिक्तव०३ सादभंगो । णीलाए तित्थय० ज० ज० एग०,
उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो० । काऊए तित्थ० णिरयोघं ।

बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। स्नीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रित, अरित, शोक, तिर्यक्रगतित्रिक, मनुष्यगित, समचतुरस्रसंस्थान, वअर्पभनाराच-संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्रगितित्रकका भंग सातावेदनीयके समान है। तथा नीललेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। आजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। कापोतलेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिका भंग सामान्य नारिकयोंके समान है।

विशेपार्थ-कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रवदन्धिनी प्रकृतियां हैं ऋौर मिध्यात्व गुणस्थानमें स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिका निरन्तर बन्ध होता है। तथा कृष्ण लेश्याका जवन्य काल श्रन्तमु हुर्त श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, श्रतः इसमें इन प्रकृतियोंके श्रजवन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहां स्त्यानगृद्धि त्र्यादिका जघन्य त्रानुभागबन्ध सम्यक्त्वके त्राभिमुख हुए सर्वविशुद्ध मिध्यादृष्टिके श्रन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त तो बन जाता है पर ज्ञानावरणादिका यह काल कैसे बनता है यह अवश्य ही विचारणीय है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टिके कहा है, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य श्चनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय त्र्यौर उत्कृष्ट काल दो समय नारिकयोंके समान बन जानेसे इनके अजधन्य अनुभाग बन्धका जधन्य काल एक समय प्राप्त होता है। यह नहीं हो सकता कि नरकमें ऋौर सातवें नरकमें तो इन प्रकृतियोंके ऋजघन्य ऋतुभागबन्धका जघन्य काल एक समय बन जावे और कृष्णलेश्यामें न बने और ऐसी अवस्थामें जब कि कृष्ण लेश्यामें इनके जघन्य अनु-भागबन्धका स्वामी सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि नारकी होता है। इस समस्त प्रकरण पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ नविर कह कर जो अजघन्य अनुभागबन्धका जवन्य काल अन्तर्मु हूर्त कहा है वहाँ वह एक समय होना चाहिए। इसकी पुष्टि अन्तरपरूवणासे भी होती है। सातावेदनीय श्रादि श्रध्न वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदि हैं तो अधु वबन्धिनी प्रकृतियां पर यहां सम्यग्दृष्टिके पुरुपवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंइनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायागिति, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उचगोत्रका ही बन्ध होता है। नारिकयोंमें भी इसी प्रकार व्यवस्था है, श्रतः इन सब प्रकृतियोंकी कालप्ररूपणा नारिकयोंके समान बन जानेसे वह सामान्य नारिकयोंके समान की है। कृष्ण लेश्यामें मिथ्यात्वके श्रभिमुख हुए सर्व संक्लिष्ट मनुष्यके तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तमु हुर्त कहा है। नील श्रीर कापीत लेश्यामें

भू४५. तेऊए पंचणा०--ब्रदंसणा०--बारसक०--भय--दु०--अप्पसत्थ०४-खप०पंचंत० ज० एग० । अज० ज० श्रंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । थीणगिद्धि०३-पिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ ज० [एग०] । अज० [ज०] एग० श्रंतो०, उक्क० णाणा०भंगो । सादासाद०--तिण्णिआयु०--तिरिक्खग०--एइंदि०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थ०-थावर-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-आणादे०-णीचा० जै०ज०
एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० श्रंतो० । इत्थि०-णवुंस०-अरदिसोग-देवगदि०४-आदाउज्जो० ज० ज० ए०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क०
श्रंतो० । पुरिस० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक्क० णाणा०भंगो । हस्स-रदिआहारदुगं ओघं। मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०उच्चा० ज० ज० ए०, उक्क० चत्तारि सम० । अज० ज० एग०, उक्क० बे सागै०
सादि० । पंचिदि०--ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि० श्रंगो०--पसत्थ०४-अगु०३--

श्रीर सब काल तो कृष्ण लेश्या के समान है। मात्र दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि जहां कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट काल लिया है वहां नील श्रीर कापोत लेश्याका काल कहना चाहिए। दूसरे तीर्थें हुर प्रकृतिका काल श्रपने श्रपने स्वामित्वके श्रनुसार कहना चाहिए जो मूलमें कहा ही है।

५४५. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रौर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। स्त्यानगृद्धितीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चारके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर श्चन्तम् हूर्तं है। तथा उत्कृष्ट काल ज्ञानावरण के समान है। सातादेदनीय, श्रसातावेदनीय, तीन श्रायु, तिर्यक्रगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, स्थिर श्रादि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है त्र्यौर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, देवगतिचतुष्क, श्रातप श्रीर उद्योतके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। पुरुपवेद के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल ज्ञानावरएके समान हैं । हास्य, रति ऋौर श्राहारकद्विकका भङ्ग श्रोघके समान हैं । मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान. वज्रर्षभनार।चसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। पक्क न्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त

१. आ॰ प्रती ऋगादे० ज० इति पाठः । २. ता० प्रती बेस० साग० इति पाठः ।

तस०४-णिमि०-तित्थय० ज० ज० एग०, उक्क० बे समे० । अज० ज० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । एवं पम्माए । णवरि पंचिंदि०-तस० तेजइगभंगो ै।

५४६. सुकाए पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उपघा०-

वर्ण चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रौर तीर्थङ्कर के जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें पक्चे न्द्रियजाति श्रौर त्रसचतुष्कका भङ्ग तैजसशरीरके समान है।

विशेपार्थ -पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि का जवन्य त्रनुभागवन्थ ऐसे सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके होता है जिसके वे परिणाम अन्तर्मु हूर्तके पूर्व नहीं प्राप्त हो सकते तथा पीत-लेश्याका उत्क्रष्ट काल साधिक दो सागर है, इसलिए यहां प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके जयन्य श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय तथा श्रजयन्य श्रनुभागवन्यका जवन्य काल अन्तम् हुर्त अौर उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। पीतलेश्याके कालमें एक समय शेव रहने पर जो जीव सासादनसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके पीतलेश्यामें स्त्यानगृद्धि तीन श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारका श्रजधन्य श्रनुभागबन्ध एक समय तक देखा जाता है। इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय कहा है पर इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानमें पीतलेश्याका एक समय काल घटित नहीं होता, इसलिए मिध्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जयन्य काल अन्तर्मुहर्त कहा है। यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जीवस्थान कालप्ररूपणामें पीतादि लेश्याका जघन्य काल एक समय संयतासंयत, प्रमत्तसंयत ऋौर श्रप्रमत्त-संयत जीवोंके ही घटित करके बतलाया है, नीचके गुणस्थानोंमें नहीं । (फर भी यहां स्त्यानगृद्धि तीन श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है। इससे हमने यह सम्भावना की है। त्रागे शुक्ललेश्यामें भी यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहां इन स्त्यानगृद्धि त्रादिके त्रजघन्य त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरण के समान साधिक दो सागर है यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय श्रादि श्रध्र ववन्धिनी प्रकृतियां हैं इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तम् हुर्त कहा है। यही बात स्त्रीवेद आदि के सम्बन्धमें जाननी चाहिए । यद्यपि सम्यग्दृष्टि मनुष्यके देवगतिचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता है पर मनुष्य पर्यायमें लेश्या त्रान्तम् हर्तके बाद बदलती रहती है इसलिए पीतलेश्यामें इनके त्राजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त उपलब्ध होनेसे इन प्रकृतियोंकी परिगणना स्त्रीवे<mark>द आदि</mark> के साथ की है । सम्यग्दृष्टि देवके निरन्तर पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अजघन्य श्चनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरणके समान साधिक दो सागर कहा है। हास्यादि चार श्रध्नुव∙ बन्धिनी प्रकृतियां हैं, स्वामित्वकी श्रपेक्षा भी श्रोघसे यहां कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इनका काल श्रोघके समान कहा है। सम्यग्दृष्टि देवके मनुष्यगति श्रादिका निरन्तर बन्ध होता है, श्रतः इनके श्रज्ञचन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। यही बात पञ्जे न्द्रियजाति श्रादिके सम्बन्धमें जाननी चाहिए। पद्मलेश्यामें यह सब व्यवस्था बन जाती है। मात्र यहां एकेन्द्रियजाति स्रोर स्थावरका बन्ध नहीं होनेसे पक्चेन्द्रियजाति स्रोर त्रसकी ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों के साथ परिगणना होती है। यही कारण है कि पद्मलेश्यामें इन दो प्रकृतियोंका भङ्ग तैजसशरीरके समान कहा है।

५४६. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुष्सा,

१. ता॰ प्रतौ बेसा॰, ब्रा॰ प्रतौ बे साग॰ इति पाठः । २. ब्रा॰ प्रतौ तस॰ ४ तेजइगर्भगो इति पाठः ।

पंचंति जि एगि । अजे जि जि श्रंतो , उक्क तेतीसं सिदि । थीणगिद्धि ३—

मिच्छ०-अणंताणु०४ जि एगि । अजे जि एगि श्रंतो , उक्क एकत्तीसं सिदि ।

सादासाद ०-दो आयु०-पंचसं ठा०-पंचसं घ०--अप्पसत्थ०--थिरादितिण्णियुगल०--दूभगदुस्सर-अणादे ०-णीचा जि जि जि एगि , उक्क चत्तारिसम । अजे जि एगि ,

उक्क श्रंतो । इत्थि ०-णवुंस०-अरिद-सोग-देवगिद ०४ जि जि एगि , उक्क वेसम ।

अजे साद मंगो । पुरिस जि एगि । अजे जि एगि , उक्क तेत्तीसं सिद ।

इस्स-रिद-आहारदुगं ओघं । मणुसगिद पंचगि जि जि एगि , उक्क वेस । अजे जि एगि , उक्क तेत्तीसं । पंचिदि ०--तेजा०--क०-पसत्थ ०४--अगु०३-तस०४-
णिमि०-तित्थ ०-जे जि एगि , उक्क वेसम । अजे जह एगि , उक्क तेत्तीसं ०

सादि । समचदु०-पसत्थ ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा जि ओघं । अजे जि एगि , उक्क तेत्तीसं ० सादि ।

श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्तमुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्ता<u>न</u>ुबन्धी चारके जघन्य श्र<u>न</u>्भागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर श्रन्त-मुंहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त विहायोगित, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। स्नीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक श्रीर देवगतिचतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रज्ञघन्य श्रनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पुरुष-वेदके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। हास्य, रित श्रीर श्राहारक-द्विकका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट काल दा समय है। श्राज्यन्य श्रानुभागबन्यका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पञ्चोन्द्रिय जाति, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क. अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रीर तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। समचतुरस्त्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रोधके समान है। श्रजघन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है ऋौर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ — शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ३५ प्रकृतियाँ, पुरुषवेद, पञ्चे न्द्रिय जाति आदि १६ प्रकृतियाँ, श्रोर समचतुरस्र आदि ६ प्रकृतियाँ इन ५८ प्रकृतियों के अजघन्य अनुभाग-बन्धका किन्हींके ध्रु ववन्धिनी होनेसे तथा किन्हींके सम्यक्त्वीके नियमसे बँधनेवाली होनेसे उत्कृष्ट

१. ता॰ भा॰ प्रत्योः पंचंत॰ ज॰ एग॰, श्रज्ज॰ ज॰ एग॰, श्रज्ज॰ इति पाठः। २. ता॰ भा॰ प्रत्योः उच्चा॰ भोषं। ज॰ भोषं इति पाठः।

५४७. भवसि० ओघं। अब्भवसि० धुवियाणं पसत्थापसत्थ०४ ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सेसाणं मदि०भंगो। णविर सव्वाणं ज० अपज्जत्तभंगों। अज० अणु०भंगो।

५४८. खइगसम्मा० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०--पुरिसै०-भय--दु०-अप्प-सत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० श्रंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । सादासाद०--दोआयु०--तिण्णियुग० ज० अज० ओघं । इस्स--रदि०४-आहारदुगं

काल साधिक तेतीस सागर कहा है। जो द्रव्यिलगी मुनि नौवें प्रैवेयकमें उत्पन्न होता है उसकें स्त्यानगृद्धि ३ आदि प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है, आतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। साता आदि २५ और स्त्रीवेद आदि प्रयं अधुवन्बन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। यहां देवगित चतुष्कके विषयमें पीतलेश्यामें किया गया स्पष्टीकरण जान लेना चाहिए। हास्यादि ४ का भंग आंघके समान कहनेका यही अभिपाय है। मनुष्यगित पञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है।

५४७. भन्यमार्गणाका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रभन्योमें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ, तथा प्रशस्त वर्णचतुष्क श्रोर श्रप्रशस्त वर्णचतुष्कके जधन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रनन्त काल है। रोप प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों के समान है। इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रप्यांत्र जीवोंके समान है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रप्यांत्र जीवोंके समान है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रमुत्रकृष्टके समान है।

विशेषार्थ—श्रोघसे जो काल कहा है वह भन्यमार्गणामें श्रविकल बन जाता है, श्रबः इसे श्रोघके समान कहा है। श्रभन्य मार्गणामें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका श्रनन्त काल तक श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध सन्भव हैं। नेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा शेप प्रकृतियोंका भक्त मत्यज्ञानी जीवोंके समान है ऐसा कहनेका श्रभिप्राय इतना ही है कि श्रभन्य नियमसे मिण्यादृष्टि होते हैं, इसलिए मत्यज्ञानी जीवोंमें जो काल कहा है वह यहाँ बन जायगा। पर मत्यज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल यहाँ नहीं बन सकता, क्योंकि मत्यज्ञानी जीव परिणामोंकी विशुद्धि द्वारा क्रमसे सम्यक्त्व श्रादि गुणोंको भी उत्पन्न करते हैं। यह दूसरी बात कि इन गुणोंके सद्भावमें मत्यज्ञान नहीं होता पर श्रभन्योंमें ऐसी योग्यता नहीं होती, श्रतः उनमें शेप प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका काल पूरी तरह किसके समान होता है यह दिखलाते हुए कहा है कि श्रपर्याप्तकोंके शेप प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका काल जानना च।हिए श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका काल श्रपने ही श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धके कालके समान जानना चाहिए।

५४८. चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और तीन युगलके

ता॰ भ्रा॰ प्रत्योः ज॰ भ्रप्पसत्थभंगो इति पाटः । २. ता॰ प्रती बारसक॰ बारसक० (?)
 पुरिस॰ इति पाठः ।

ओघं। मणुसगिद्विपंचग० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं। देवगिद्व०४ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पिल्ल० सादि०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थिव०-तस०४—सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा ० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेतीसं० सादि०। तित्थकरं एवं चेव।

५४६. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक० पुरिस० भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०--समचदु०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०--तस०४-सुभग--सुस्सर--आदे०--णिमि०-उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० त्रंतो०, उक्क० छाविह०। अपच-क्खाणा०४ तेत्तीसं सादि०। पचक्खाणा०४ वादालीसं० सादि०। सादासाद०-दोआयु०-तिण्णियुग० ज० अज० ओघं। देवगदि०४ ज० एग०। अज० [ज०]

जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघ के समान है। हास्य, रितचतुष्क श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग श्रोघ के समान है। मनुष्यगित पञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल
एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय
है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगित चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल
एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय
है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है। पञ्चिन्द्रयज्ञाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसंचतुष्क, सुभग,
सुस्वर, आदेय, निर्माण श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है
और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है
और उत्कृष्ट काल दो समय है। तीथङ्कर प्रशृतिका भङ्ग इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—यहां पाँच ज्ञानावरणादि ३६, पञ्चोन्द्रयजाति त्र्यादि २१ त्रोर जिनके बन्ध होता है उनके तीर्श्वहर ये ५८ प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी है, त्र्यतः इनके त्र्यज्ञचन्य त्र्यनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है, क्योंकि संसार त्र्यवस्थामें इतने काल तक क्षायिक सम्यक्त्वकी उपलब्धि होती हैं। प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि उनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है, त्रातः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल त्रान्तमुं हूर्त कहा है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्तवका जघन्य काल ही त्रान्तमुं हूर्त है। दूसरे असंयत और संयमासंयम आदि गुण स्थानोंका जघन्य काल भी अन्तमुं हूर्त है। शेष प्रकृतियोंके कालका स्पष्टीकरण आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके जैसा किया है उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिए।

५४६. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण उच्चगात्र श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजवन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल अन्तर्मुं हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। किन्तु अप्रत्याख्यानावरण चारका साधिक तेतीस सागर और प्रत्याख्यानावरण चारका साधिक व्यालीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और तीन युगलके जघन्य और

ता० भा० प्रस्थोः गिमि० तिस्थ० उच्चा० इति पाठः ।

श्रंतो॰, उक्क॰ तिण्णि पलि॰ देसू॰। मणुसगिद्धंचग॰ ज॰ एग॰। अज॰ [ज॰] श्रंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं॰। तित्थ॰ ज॰ एग॰। अज॰ ज॰ श्रंतो॰, उ॰ तेत्तीसं॰ सादि॰। सेसं ओधिभंगो।

५५०. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०-पुरिस०-भय०-दु०--मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०झंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०--णिमि०-तित्थ०--उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० उ० झंतो०। सादादि० ओधिभंगो। एवं इस्स-रदि-अरदि-सोग-देवगदि०४-आहारदुगं।

श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका काल श्रांघके समान हैं। देवगितचतुष्कके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है। मनुष्यगित पञ्चकके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मु हूर्त हे श्रोर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल श्रन्तर्मु हूर्त हे श्रोर उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। शेप भङ्ग श्रवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ-वेदकसम्यक्तका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर होंनेसे यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजयन्य अनुभागवन्यका जघन्य काल अन्त-मुँहर्त श्रीर उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर कहा है। मात्र वेदक सम्यक्त्वके साथ श्रासंयमका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर और असंयम व संयमासंयम दोनोंका मिलाकर उत्कृष्ट काल साधिक व्यालीस सागर होनेसे यहाँ अप्रत्याख्यानावरण चारके श्रीर प्रत्याख्यानावरण चारके अजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर श्रौर साधिक व्यालीस सागर कहा है। सातादि दण्डकका भङ्ग स्रोघके समान है यह स्पष्ट ही है। मनुष्य या तिर्यञ्चके वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य होनेसे यहाँ देवगति चतुष्कका जचन्य काल अन्तर्मु हुर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। देवोंम और नारिकयोंमें वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और देवोंमें उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होनेसे यहाँ मनुष्यगति पञ्चकके श्रजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मनुष्योंमें वेदकसम्यक्त्वका जवन्य काल अन्तमु हूर्त और मनुष्य व देवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवालेका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर होनेसे यहाँ तीर्थंद्वर प्रकृतिके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल भ्रन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि नरक श्रीर देवमें तीर्थक्कर प्रकृतिका जिसके बन्ध होता है वह नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होता है, इसलिए यहाँ जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त घटित नहीं होता। शेष प्रकृतियोंका भक्क श्रवधिज्ञानके समान है यह स्पष्ट ही है ।

५५०. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्च न्द्रियजाित, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्ष-संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वअपंभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तिवहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, द्वगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्भुहूर्त है। सातावेदनीय श्रादिका भङ्ग श्रवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार हास्य, रित, श्ररति, शोक, देवगित-

५५१. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सोग्रसक०-भय-दु०-तिगदि०-पंचिदि०-चदुसरीर०-दोद्यंगो०-पसत्थापसत्थव०४-तिण्णिआणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा० पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० झावितगाओ। सादासाद०-तिण्णिआयु०-चदुसंठा०-पंचसंघै०-अप्पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० ओघं। अज० ज० एग०, उक्क० झंतो०। इत्थि०-अरदि-सोग०-उज्जो० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० झंतो०। पुरिस०-इस्स-रदि० ज० एग०। अज० इत्थि०भंगो। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ओघं। अज० ज० एग०, उ० झावित्रगाओ।

५५२. सम्मामिच्छे पंचणाणावरणादिधुविगाणं ज० एग०। अज० ज० उ० चतुष्क श्रीर श्राहारकद्विकका भक्न जानना चाहिए।

विशेषार्थ—-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है, क्यों कि उपशमसम्यक्तवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

प्रश्. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तीन गित, पक्चे न्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आविल है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन आयु, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्नीवंद, अर्रात, शोक और उद्यातके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुपवंद, हास्य और रितके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग स्त्रीय उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग स्त्रीवंदके समान है। समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग आघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आघिके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आघिके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आविल है।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल छह श्राविल होनेसे यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके श्रज्ञवन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल छह श्राविल कहा है। यहाँ सातावेदनीय श्रादिके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त कहनेका कारण इनका श्रध्नुववन्धिनी प्रकृतियाँ होना है। शेष कथन सुगम है।

५५२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि घ्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके जघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और

१. भा॰ प्रती चदुसंठा॰ चदुसंघ॰ इति पाठः ।

श्रंतो । सेसं ओधि भंगो । मिच्छादिष्टी विषय भंगो । सण्णी विदय-पज्जतभंगो ।

४५३. असण्णीसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। णविर तिरिक्खगदि०३ अर्जे० असंखेज्जा लोगा। तिण्णिवेद-इस्स-रिद-अरिद-सोग०-पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-दोस्रंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०-४ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० स्रंतो०। णविर ओरालि० अज० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सेसाणं अप्पज्जतभंगो।

उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। शेप भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। मिध्यादृष्टि जीवोंमें मत्य-ज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवों पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिश्यादृष्टिमं ये घ्रु वबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-चतुरक्तसंस्थान, प्रशस्त वर्णाचतुष्क, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और पाँच अन्तराय। तथा देव और नारिकयोंके मनुष्यगित-पञ्चक और मनुष्य व तिर्यञ्चोंके देवगितचनुष्क। इनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सर्विशुद्ध जीवोंके और प्रशस्त प्रकृतियोंका मिश्यात्वके अभिमुख हुए सर्व संक्तिष्ठ जीवोंके ज्ञीर प्रशस्त प्रकृतियोंका मिश्यात्वके अभिमुख हुए सर्व संक्तिष्ठ जीवोंके ज्ञीर प्रशस्त प्रकृतियोंका मिश्यात्वके अभिमुख हुए सर्व संक्तिष्ठ जीवोंके जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अन्यथा इनका अजघन्य अनुभागवन्ध होता है और सम्यिश्यात्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

प्र. १. श्रसंज्ञी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली श्रौर तिर्यक्रगतित्रिकके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रनन्त काल है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रगतित्रिकके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक है। तीन वेद, हास्य, रित, श्राक, पश्चे न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उन्छ्वास, श्रातप, उद्योत श्रौर त्रसम्बतुष्कके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। इतनी विशेषता है कि श्रौदारिकशरीरके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रनन्त काल है। श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ— असंक्षियोंकी कायस्थिति अनन्त काल हैं। पर इनमें तियंद्वगितित्रिकका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव ही करते हैं और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसीसे तिर्यञ्चगित त्रिकके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा है। इसी प्रकार औदारिकशरीरका इनके निरन्तर बन्ध होता रहता है, क्योंकि यहाँ औदारिक आङ्गोपाङ्गके समान न तो अध्यवबन्धिनी है और न सप्रतिपक्ष ही। इसीसे यहाँ इसके

ता० चा० प्रत्योः ज० एग० ड० झंतो • इति पाठः। २, चा० प्रती ग्विर तिरियागिद्• ६
 चाज • इति पाठः।

४४४. आहारे घुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज० ओघं। अज० ज० एग०, उ० ऋंगुल० असंखे०। सेसं ओघं। णवरि मिच्छ० अज० ज० खुद्दाभव०तिसमयूणं। तित्थ० अज० ज० एग०। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं कालं समत्तं।

१४ अंतरपरूवणा

५५५. श्रंतरं दुवि०-जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा-छदंसणा०-असादा०-चदुसंजै०--सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क०अणुभागबंधंतरं केव०? ज० एग०, उक्क० श्रणंतकाल-

श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रनन्त काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५५४. त्राहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली त्रौर तिर्यञ्चगितित्रकके जघन्य अनुभागबन्धका काल श्रोघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। शेष भङ्ग आंघके समान है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवप्रहण प्रमाण है। तथा तीर्थद्वर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवों के समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—श्रोघसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका श्रौर तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य श्रम्भाग-बन्ध एक समय तक होता है। वह काल यहाँ भी सम्भव है, इसलिए यह श्रोघ के समान कहा है। तथा इनका श्रजघन्य श्रमुभागवन्ध उपशमश्रीएसे उतरते समय श्रौर सासादनमें एक समय तक होकर मरकर जीवके श्रनाहारक हो जाने पर श्रजघन्य श्रमुभागवन्धका जघन्य काल एक समय बन जाता है, श्रतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा श्राहारकोंकी कायस्थिति श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनके श्रजघन्य श्रमुभागवन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। मिध्यात्व गुणस्थानमें श्राहारक तीन समय कम जुल्लक भवष्रहण प्रमाण श्रवह्य रहता है, श्रौर इस कालमें मिध्यात्वका श्रजघन्य श्रमुभागवन्ध होता है, इसलिए यहाँ मिध्यात्वके श्रजघन्य श्रमुभागवन्धका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा है। उपशमश्र णीसे उतर कर श्रौर एक समय तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्धकर मरणद्वारा जीवका श्रनाहारक हो जाना सम्भव है। इसीसे यहाँ इसके श्रजघन्य श्रमुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। श्रेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

१४ अन्तरप्ररूवणा

५५५. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य श्रोर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी श्रपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है—अोघ श्रोर श्रादेश । श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, चार सञ्वलन, सात नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर, श्रशुभ, श्रयशःकीर्ति श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका कितना अन्तर है । जघन्य अन्तर एक

१. ता॰ प्रती छुदंसगा॰ चंदुसंज॰ इति पाठः ।

मसंखेजा पोग्गलपिर० । अणु० ज० एग०, उक्क० झंतो० । थीणगिद्ध०३—मिच्छ०अणंताणुबं०४—इत्थि० उ० ज० एग०, उ० अणंतकालं० । अणु० ज० एग०, उ० बे
ल्ञाविह० देस्० । सादा०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचद्ध०-पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थिव०तस०४—थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ० उक्क० णिथ्थि झंतरं । अणु० ज० एग०, उक्क० झंतो०।
अह० उ० ज० एगं०, उ० अणंतका० । अणु० ज० एग०, उ० पुन्वकोडी देस्० ।
णवुंस०-पंचसंदा०-पंचसंद्य०-अप्पसत्थ०-दृभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० णाणावरणभंगो । अणु० ज० एग०, उ० वेद्याविह० सादि० तिण्णिपिल० देस्० । णिरयमणुसायु-णिरयगदि-णिरयाणु० उ० अणु० ज० एग०, उ० अणंतका० । तिरिक्खायु०
उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० सागरोवमसद्पुध०। देवायु० उ० ज० एग०,
उ० अद्धपोग्गल० । अणु० ज० एग०, उ० अणंतकालं० । तिरिक्खादि-तिरिक्खाणु०
उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० तेविहसागरोवमसदं । मणुस०-मणुसाणु० उ०
ज०एग०, उ० अद्धपोग्गल० । अणु० ज० एग०, उक्क० असंखेज्ञा लोगा । देवगदि०४

समय हैं श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुरुगल परिवर्तन प्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है । स्त्यान-गृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार श्रौर स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। सातावेदनीय, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कामंणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर त्रादि छह, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमु हूर्त है। आठ कपायोंकं उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। अनुस्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो ख्र्यासठ सागर श्रीर कुछ कम तीन पत्य है। नरकायु, मनुष्यायु, नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुखष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सो सागर पृथक्त्व प्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यक्रगति स्रौर तिर्यक्रगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्रान्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर

ता० म्रा० प्रत्योः सादासाद० पंचिंदि० इति पाठः । २. म्रा० प्रतौ म्रष्ट० ज० एग० इति पाठः ।

उक्क० णित्थ श्रंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अणंतका० । चहुजादि-आदाव-थाव-रादि०४ उक्क० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं । ओरालि०-ओरालि०श्रंगो०-वज्जिरि० उक्क० मणुसगदिभंगो । अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पित्ति० सादि० । आहारदुग० उ० णित्थ० श्रंतरं । अणु० ज० श्रंतो ०, उ० अद्ध्योग्गल० । उज्जो० उ० ज० श्रंतो०, उक्क० अद्ध्योग्गल ० । अणु० ज० एग०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं । उच्चा० उ० णित्थि श्रंतरं । अणु० ज० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट
अन्तर अनंत काल है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका
अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट
अन्तर एक सौ पचासी सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गापाङ्ग और विश्वपेभनाराच
संहननके उत्कृष्ट अनुभागवंधका अंतर मनुष्यगति के समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य
अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट
अनुतर साधिक तीन पत्य है। आहारकिष्ठकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर
अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर
अर्थन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अपन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है
अर्थेर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्थ संज्ञी पक्चे न्द्रिय मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव करता है। इसके ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और यदि इस पर्यायका त्याग कर निरन्तर एकेन्द्रिय आदि अन्य पर्यायों में परिश्रमण करता रहे तो अनन्त कालके अन्तरसे भी हाँ सकते हैं। इसी प्रकार जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी संज्ञी पक्चे न्द्रिय मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामवाला जीव है उन सबके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण घटित कर लेना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य काल एक समय है। तथा इनकी वन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः इनका वन्ध करनेमें अधिकसे अधिक अन्तर्भुहूर्त काल लगता है। अतः यहां इन प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका अयन्तर कालका उत्कृष्ट अनुभागवन्थ चपकश्रेणिमें होता है इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्थके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा ये अधृववनिधनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जयन्य

१. द्या॰ प्रती उ॰ सागरोवमसद् इति पाटः। २ द्या॰ प्रती श्रंतरं। ज॰ श्रंतो॰ इति पाटः। ३. ता• प्रती उज्जो॰ उ॰ ज॰ उ॰ श्रद्धपोग्ग॰ इति पाटः।

श्वन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हर्त कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका यह श्रन्तर लाते समय तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीवको उपशमश्रेणि पर आरोहण कराके और वहाँ क्रमसे एक समय काल तक और अन्तर्म हुतं काल तक अवन्धक रख कर यथाविधि पुनः बन्ध कराके यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। जो जीव संयमासंयम आदिका धारी होता है उसके श्रप्रत्याख्यानावरण चारका श्रौर जो संयमका धारी होता है उसके प्रत्याख्यानावरण चारका बन्ध नहीं होता और इन संयम।संयम व संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसके बाद जीव नियमसे असंयमी हाता है, अतः यहाँ इन आठ कपायोंक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और श्रसम्प्राप्तास्प्रपाटिका संहननका द्वितीयादि गुणस्थानोंमें श्रीर शेपका तृतीयादि गुणस्थानोंमें बन्ध नहीं होता। साथ ही भोगभूमिमें भी पर्याप्त ऋवस्थामें इनका वन्ध नहीं होता इसलिए यदि कोई जीव सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वकं साथ कुछ कम दो बार छ्यासठ सागर काल तक परिश्रमण करनेके पूर्व उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो जाय तो कुछ कम तीन पत्य श्रधिक कुछ कम दो छय।सठ सागर कालका अन्तर देकर इनका बन्ध होगा। यही कारण है कि यहां इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक कुद कम दो छयासठ सागर कहा है । एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करते हुए नरकायु स्त्रोर नरकगतिद्विकका तो वन्ध होता ही नहीं । मनुष्यायुका बन्ध सम्भव है पर तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण होनेसे जो जीव इतने काल तक तिर्यंक्र है उसके मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं होगा, ऋतः इन चारों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धके समान इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर त्रानन्त काल कहा है। तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट त्रान्तर सौ सागरपृथक्तवप्रमाण है, त्रात: यहाँ इसके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उन्कृष्ट अन्तर सौ सागर प्रथक्त्व-प्रमाण कहा है। देवायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तत्त्रायाग्य विशुद्ध परिणामवाले अप्रमत्तसंयत जीवके होता है ऋौर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानका उत्कृष्ट ऋन्तर कुछ कम ऋर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है. त्रतः यहाँ इसके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम श्राधपुदुगल परिवर्तन प्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रिय त्रादि चतुरिन्द्रिय तकके जीवके देवायुका बन्ध होता ही नहीं, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्चन्तर श्चनन्त काल कहा है। जो दोबार छ्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिश्यात्व के साथ रहकर त्र्यन्तिम प्रैवेयकमं इकतीस सागर कालतक मिथ्यात्वके साथ रहता है उसके तिर्यंक्च-गतिद्विकका इतने काल तक बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दष्टि देव नारकीके होता है। यह अवस्था पुनः अधिकसे अधिक कुछ कम अर्थ-पुदुगल परिवर्तनके बाद उपलब्ध होती है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम त्रार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनका यदि श्रिधिकसे श्रिधिक काल तक बन्ध ही न हो तो श्रिप्तिकायिक श्रीर वायुकाथिक जीवोंके नहीं होता श्रीर यह उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य म्मन्तर एक समय त्र्यौर उत्कृष्ट त्र्यन्तर त्र्रासंख्यात लोक प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निपंध किया है। तथा श्रानन्त काल तक एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यायमें इनका बन्ध ही नहीं होता, श्रातः इनके अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्त काल कहा है। चार जाति श्रादिका बाईस सागर तक छटे नरकमें, फिर वहाँसे सम्यक्त्वके साथ निकले हुए जीवके दो बार छयासठ सागर कालके भीतर फिर ३१ सागर आयुके साथ उत्पन्न हुए नौवें प्रैवेयकमें बन्ध ४५६. णिरयेसु पंचणा०-छ्रदंसणा०--बारसक०--भय-दु०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०४-तस४-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देसू०। अणु० ज० एग०, उक्क० वेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४-इत्थि०-णग्रंस०-तिरिक्खगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थ०-दूभग०-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं०

ही नहीं होता। इस कालका जोड़ एकसौ पचासी सागर है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर कहा है। श्रीदारिक-शरीर श्रादि तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका स्वामी मनुष्यगतिके समान है, श्रतः इनके उत्कृष्ट **अनुभागबन्धका अन्तरकाल मनुष्यगतिके समान** कहा है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य उत्तम भोग-भूमिमें उत्पन्न होता है उसके सम्यक्त्वके प्रारम्भ कालसे उत्तम भोगभूमिमें रहनेके काल तक इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अत: इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन परुय कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके इसके अन्तरकालका निषेध किया है। अप्रमत्तसंयतका जघन्य अन्तर अन्तर्सुहूर्त श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल कहा है। उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध सातवें नरकके नारकींक होता है और सम्यक्तका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अधेपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण है, अतः इसके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रर्धपुद्गल परिवर्तन कालप्रमाण कहा है। तथा जो जीव दो बार छ्यासठ सागर कालतक सम्यक्त्व और मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्वक साथ रहकर मिथ्यात्वके साथ ऋन्तिम मैवेयकमें उत्पन्न होता है उसके इतने कालतक इसका बन्ध ही नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर कहा है। उच्चगात्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध त्तपकश्रेणीमें होता है ऋतः इसके उत्कृष्ट ऋनुभागबन्धके अन्तरकालका निर्पेध किया है। तथा अग्निकायिक ऋौर वायुकायिक जीवोंके इसका बम्ध ही नहीं होता और इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति श्रसंख्यात लोकप्रमाण है, श्रतः इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यहाँ सर्वत्र अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय एक समयके अन्तरसे दो बार उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराके ले आना चाहिए। मात्र जहाँ उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्धका त्र्यन्तर काल नहीं है वहाँ उपशमश्रे शिमें एक समयतक उन प्रकृ-तियोंका बन्ध न कराकर ले आना चाहिए। मात्र ऐसे जीवको उपशमश्रे णिमें एक समयतक उन प्रकृतियोंका अवन्धक रखकर और दूसरे समयमें मरण कराकर देवोंमें उत्पन्न कराकर उन प्रकृतियोंका बन्ध कराना चाहिए।

प्रव. नारिकयों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा, पक्चे - न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमचतुष्क, निर्माण और पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट और

देस् । दोआउ० उक्क० अणु० ज०एग०, उ० छम्मासं देस् ० । मणुसग०--मणुसाणु०उच्चा० उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं देस् ० । उज्जो० उक्क० ज० अंतो०,
अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देस् ० । सादासाद०-पंचणो०-समचढु०-वज्जरि०पसत्थ०--थिराथिर-सुभासुभ--सुभग--सुस्सर--आदेज्ज-जस०--अजस० उ० ज० एग०,
उक्क० तेत्तीसं० देस् ० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । तित्थ० उ० ज० एग०,
उ० तिण्णिसाग० सादि० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । एवं सत्तमाए पुढवीए ।
इस उवरिमास एसेव भंगो । णवरि मणुस०३ सादभंगो । उज्जो० णवुंसगभंगो । सेसाणं
अप्पप्पणो हिदी कादच्वा ।

श्रनुष्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुत्रोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है, तथा अनुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और दोनोंका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं । सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, पाँच नोकपाय, समचतुरस्रसंस्थान, वञ्चर्पभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर, अस्थिर, ग्रुभ, अग्रुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्टं अनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्रान्तम् हुर्त है। तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर **ऋन्तर साधिक तीन सागर है। ऋनुत्ऋष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट** उत्क्रष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीमें जानना चाहिए। प्रारम्भकी छह प्रथिवियोंमें यही भक्क है। इतनी विशेषता है कि यहाँ मनुष्यगतित्रिकका भक्क सातावेदनीयके समान है ऋौर उद्योतका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा रोग प्रकृतियोंकी अपनी अपनी स्थिति करनी चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी मिण्यादृष्टि नारकी और प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्थका स्वामी सम्यग्दृष्टि नारकी है। ये एक समय के अन्तरसे या प्रारम्भमें और अन्तमें यदि इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्थ करे और मध्यमें एक समय तक या कुछ कम तेतीस सागर काल तक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थ करता रहे तो इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हानेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धि तीन आदिका मिण्यादृष्टिके बन्ध होता है और सम्यग्दृष्टिके नहीं इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्थ कराके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका विषये सम्यन्दृष्टि रख कर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट अनुभागवन्थका विषये सम्यन्दृष्टि रख कर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका उत्कृष्ट अनुनागवन्थका वाहिए। तथा दोनों प्रकारका

४५७. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अद्दक०--भय-हु॰-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणं-ताणुबं०४-इत्थि० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० देस्र०। सादा०-

जघन्य ध्वन्तर पूर्ववत् एक समयके अन्तरसे बन्ध कराके ले आना चाहिए। दोनों आयुर्ओके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यद्विक और उचगोत्रका सम्यग्दृष्टि नारकीके उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करावे । फिर कुछ कम तेतीस सागर काल तक मिध्यात्वमें रखकर पुनः अन्तमें सम्यग्दृष्टि बनाकर वैसा ही बन्ध करावे तो इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर श्रानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यह दोनों प्रकारका जघन्य श्रन्तर एक समय एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट बन्ध कराके ले आवे। उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख नारकीके होता है। अतः यह अवस्था कमसे कम अन्तमु हूर्तका अन्तर देकर श्रीर अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरका श्रन्तर देकर प्राप्त होती है, अतः उद्योतके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा उद्योत अध्ववदिधनी प्रकृति होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और कोई मिध्यादृष्टि नारकी प्रारम्भ और अन्तमें इसका बन्ध करता है और वीचमें कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्टिप्ट होकर उसका बन्ध नहीं करता. श्रतः इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। सातावेदनीय श्रादिमेंसे किन्हींका मिध्याद्यप्टि और किन्हींका सम्यग्द्यप्ट उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। यह कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे करता है. अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा ये सब सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुस्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध तीसरे नरक तक ही होता है। उसमें भी साधिक तीन सागरकी अग्रयवाले नारकीसे अधिक स्थितिवालेके नहीं होता. श्रतः इसके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर कहा है, क्योंकि यहाँ एक समयके अन्तरसे या साधिक तीन सागरके अन्तरसे उत्कृष्ट अनु-भागवन्य सम्भव है। तथा इसके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। सातवीं पृथिवीमें यह श्रोघ नारकप्ररूपणा श्रविकल बन जाती है, इसलिए उसके कथनको सामान्य नारकीके समान कहा है। मात्र यहाँ से चौथी पृथिवी तक तीर्थङ्कर प्रकृतिकी श्रपेक्षा कथन नहीं करना चाहिए। शेष छह पृथिवयोंमें भी श्रपनी श्रपनी स्थितिके श्रनसार यह श्चन्तर कालप्ररूपणा बन जाती हैं। इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें मनुष्यगतित्रिक सप्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं, अतः इनका अन्तर सातावेदनीयके समान कहना चाहिए। तथा इन पृथि-वियोंमें उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिथ्याद्दष्टि साकार-जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वालेके होता है, अतः इसका अन्तर काल नपुंसकवेदके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है।

५५७. तिर्यक्रोंमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोचके समान है। अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यान-गृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार श्रोर स्नीवेदके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोचके पंचिदि ॰-समच ढु०-पर० उस्सा०-पसत्थ०-तस०४ — थिरादि छ० उ० ज० एग०, उक्क० अद्ध्योग्गल० । अणु० ओघं । असादा०--पंचणोक०-अथिर--असुभ--अजस० उक्क० अणु० ओघं । अपचक्खाणा०४ — णवुंस०-- तिरिक्ख०-- च ढुजा०-ओरालि०-पंचसंदा०-- ओरालि० अंगो०-- छस्संघ०-- तिरिक्खाणु०-- आदाउज्जो०-- अप्पसत्थिव०-थावरादि०४ — दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० पुञ्चकोडी देसू० । तिण्णिआयु० उ० अणु० ज० एग०, उक्क० पुञ्चकोडितिभागं देसू० । तिरिक्खायु० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उक्क० पुञ्चकोडी सादि० । णिरय०--णिरयाणु० उ० अणु० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० जणंतका० । अणु० ओघं । देवगदि०४ उ० ज० एग०, उ० अद्ध्योग्गल० । अणु० ओघं । उच्च० उ० ज० एग०, उक्क० अद्ध्योग्गल० । अणु० ओघं । तेजा०-क०-पसत्थ०४ — अगु०-णिमि० उ० ज० [एग०, उ० अद्ध्योग्गल० । अणु० जोघं । तेजा०-क०-पसत्थ०४ — अगु०-णिमि० उ० ज० [एग०, उ० अद्ध्योग्गल० । अणु० ज० एग०] उ० वेसम० ।

समान है। ऋतुत्कृष्ट ऋतुभागवन्धका जघन्य ऋन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ऋन्तर कुछ कम तीन पत्य है। सातावेदनीय, पक्चोन्द्रियजाति, समचतुरस्त्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह्के उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट त्रन्तर त्रर्धपुदुगलपरिवर्तनप्रमाण है। त्रमुत्कृष्ट त्र्रमुभागबन्धका त्र्रन्तर स्रोधके समान है। श्रमातावेदनीय, पाँच नोकपाय, अस्थिर, श्रशुभ श्रीर श्रयशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुतकृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तिर्येख्वगति, चार जाति, श्रौदारिकशरीर, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यख्वगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, त्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर त्रादि चार, दुर्भग, दुःस्वर श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तीन आयके उत्क्रष्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। अनुतकृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। मनुष्यगति श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ओघके समान है। उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपिर-वर्तन है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ओघकं समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है।

१. ता॰ प्रती उच्चा॰ श्रद्धपोगा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती उ॰ ज॰ ए॰ उ॰, স্থা• प्रती उ॰ ज॰ उ॰ इति पाठः।

विशेषार्थ—तिर्यञ्जोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल श्रोघके समान बन जाता है, इसलिए वह श्रोघके समान कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट श्रतुभागबन्धका ज्ञधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके श्रतुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्हृष्ट श्रन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कहीं कई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल श्रोघके समान है यह स्पष्ट ही है। इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध एक समयके अन्तरसे होता है इसलिए यह अन्तर एक समय कहा है। तथा तिर्यक्रोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है श्रीर इतने काल तक स्त्यानगृद्धि श्रादिका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य कहा है। संयतासंयत सर्वविशुद्ध पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्च पञ्चोन्द्रयजाति त्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करता है। यह एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है श्रीर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे भी सम्भव है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त होनेसे वह श्रोघके समान कहा है। श्रसातावेदनीय श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम हुर्त श्रोघके समान यहाँ भी बन जाता है, श्रतः वह श्रोघके समान कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार आदिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका श्रोप के समान जघन्य श्चन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है यह स्पष्ट ही है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है और कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि तियञ्जके इनका बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रनुत्रृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तिर्यक्रोंमें तीन आयुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध त्रिभागके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें सम्भव है तथा कमसे कम एक समयके श्रन्तरसे भी हो सकता है, अतः इनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागश्माण कहा है। तिर्यक्रायके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट जो अन्तर श्रीयसे घटित करके बतला श्राय है वह यहाँ भी बन जाता है अतः वह स्रोघके समान कहा है। तथा इसके अनुस्कृष्ट अनुभागका कमसे कम एक समयके अन्तर बन्ध सम्भव है श्रीर पिछले भवमें पूर्वकोटिके त्रिभागमें एक पूर्वकोटि प्रमाण तिर्यक्कायका बन्ध करके वर्तमान पर्यायमें अन्तम् हते शेष रहने पर तिर्यक्कायका बन्ध करे तो साधिक एक पूर्वकोटिके अन्तरसे भी तिर्यक्रायुका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि कहा है। नरकगित खोर नरकगत्यानुपूर्वीका खोघ से जो दोनों प्रकारका खन्तर बतलाया है वह तिर्यक्की की मुख्यतासे ही बतलाया है, अतः यह श्रांघकं समान कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुसागबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और अधिकसे अधिक अनन्त कालके अन्तरसे होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्तकाल कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है और जो अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके प्रारम्भ श्रीर श्रन्तमें संयतासंयत हो इनका उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्ध करता है उसके अधिकसे अधिक इतने कालके अन्तरसे इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। इसीसे इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमास कहा है। इसी प्रकार उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य

४५८. पंचिदियतिरिक्तव०३ पंचणा०-छदंसणा-अद्दक०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०उप०-णिमि०-पंचंत० उ० जह० एग०, उ० पुव्वकोिडपुधत्तं । अणु० ज० एग०, उक्क० बेसम० । सादासाद०--पंचणोक०-देवगदि०४-पंचिदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०--तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग--सुस्सर--आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० णाणा०भंगो । अणु० तिरिक्त्वोघं । अपचक्ताणा०४-णवुंस०-तिण्णिगदि--चदुजादि-ओरालि०--पंचसंठा०-ओरालि०ऋंगो०-छस्संघ०-तिण्णि-आणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०--थावरादि०४-दूभग-दुस्सर--अणादे०-णीचा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी देसू०। चदुआयु० तिरिक्त्वोघं । णविर तिरिक्त्वायुग० उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं ।

श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर घटित कर लेना चाहिए। तथा इन पाँचों प्रकृतियों श्रं श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका श्रन्तर काल श्रोचके समान हैं यह स्पष्ट ही है। तै जसशरीर श्रादि का उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्ध संयतासंयतके होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रधंपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय कहा है।

५५८. पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, त्राठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, देवगतिचतुष्क, पञ्चो न्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रास्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेये, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावरण के उत्कृष्टके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार श्रौर स्नीवेदके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरएको समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका भङ्ग सामान्य तिर्येक्चोंके समान है। श्रप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, श्रीदारिक-शरीर, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। चार श्रायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है।

विशेषार्थ—श्रवतक जो श्रान्तरकालका स्पष्टीकरण किया है उससे यहाँसे लेकर श्रागेके श्रान्तरकालके समभानेमें बहुत कुछ सहायता मिलती है श्रातः सर्वत्र जो विशेषता होगी उसका ही निर्देश करेंगे। पञ्चीन्द्रयातर्यञ्चित्रककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिप्रथक्त्व श्राधिक तीन पत्य प्रमाण है। श्रातः किसी उत्त तिर्यञ्चके श्राप्ती कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर भोगभूमिमें उत्पन्न होनेके

४५६. पंचिदि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-ओराल्ठि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० श्रंतो० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । सेसाणं उ० अणु० जै० एग०, उ० श्रंतो० । एवं सन्वअपज्जताणं तसाणं थावराणं चै सुहुमपज्जताणं ।

५६०. मणुस०३ पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० पुन्वकोडिपुघ०। अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-

पूर्व प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेपर उसका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। भोगभूमिमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव न होनेसे उसकी स्थितिका यहाँ प्रहण नहीं किया। इसी प्रकार सातावेदनीयदण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक और अप्रत्याख्यानावरण चार दण्डकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर घटित कर लेना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण चारका संयतासंयतके और इस दण्डकमें कही गई शेष प्रकृतियोंका सन्यग्टिके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि कहा है। यहाँ पर्यायके प्रारम्भमें और अन्तमें अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराके यह अन्तर लाना चाहिए। सब आयुओंके अनुभागवन्धका अन्तर काल सामान्य तिर्यक्चोंके समान बन जाता है। मात्र तिर्यक्चायुमें विशेषता है। भोगभूमिको छोड़कर तिर्यक्चोंकी कायस्थित पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। यह सम्भव है कि कोई तिर्यक्च इसके प्रारम्भ और अन्तमें तिर्यक्चायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करे और मध्यमें न करे, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है।

५५६. पक्च न्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुत्सा, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अपुरुलवु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर क्रिन्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्त और सूदम पर्याप्तकोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, स्रतः इनके उत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय स्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर स्रन्तमुं हूर्त तथा स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय स्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर दो समय कहा है। तथा शेष सब स्रध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ है, स्रतः उनके उत्कृष्ट स्रोर स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय स्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर स्रन्तम् हूर्त बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। स्थावर स्रोर त्रस सब स्रपर्याप्त तथा सूदम पर्याप्तकोंका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल पद्मेन्द्रिय तिर्यक्र स्रपर्याप्तकोंके समान है स्रोर स्वामित्वकी स्रपेक्षा भी कोई स्रन्तर नहीं है, स्रतः उनका कथन पद्मेन्द्रिय तिर्यक्र स्रपर्याप्तकोंके समान है यह कहा है।

५६०. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह 'दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तव प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर

१. भ्रा॰ प्रतौ उ॰ ज॰ इति पाठ:। २. ता॰ प्रतौ तसाय च इति पाठ:।

अणंताणुबं०४-इत्थि० पंचिदियतिरिक्त्वभंगो । सादा०-देक्ग०-पंचिदि०-वेडिव्व०-सम-चढु०-वेडिव्व० अंगो०-देवाणु०-पर०- उस्सा०-पसत्थवि०-तस०४ —थिरादिछ०-[उच्चा०] उ० णित्थ अंतरं । अणु० ओघं । असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णाणा०भंगो । अणु० सादभंगा । अहक०-णवंस-तिण्णिगिद-चढुजादि-ओरालि०-पंच-संठा०-ओरालि० अंगो०- अस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४—दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० अणु० जोणिणिभंगो । तिण्णिआयु० उ० अणु० ज० एगं०, उ० पुव्वकोडि-पुभन । मणुसायु० उ० ज० एगं०, उ० पुव्वकोडि-पुभ० । अणु० ज० एगं०, उ० पुव्वकोडिपुभनं । तेजा०-क०-पसत्थव०४ -अगु०-णिमि०-तित्थ० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० प्रत्ये । अणु० ज० अर्वे०-णिमि०-तित्थ० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० उक्व० अंतो० ।

श्रोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार श्रीर स्त्रीवेदका भङ्ग पञ्चे-न्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चोन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक त्राङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर त्रादि छह त्रोर उच्चगात्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल स्रोघके समान है। असातावेदनीय, पाँच नोकपाय, अस्थिर, अशुभ श्रीर श्रयशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्चन्तर सातावेदनीयके समान है। आठ कषाय, नपुंसकवेद, तीन गति, चार चाति, औदारिक-शरीर, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गापाङ्ग, छह संहनन, तीन श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट अनुभागवन्यका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनीके समान है। तीन त्रायुके उत्कृष्ट त्रीर त्रानुकृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिके कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि-पृथक्तवप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। त्राहारकद्विकके उत्कृष्ट त्र्यनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, निर्माण श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल जिस प्रकार पक्च न्द्रिय तिर्यक्चके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मनुष्योंमें उपशामश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुगाबन्धका अन्तर श्रोघके समान बन जानेसे वह वैसा कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर पक्चे न्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यहाँ क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। पक्चे न्द्रिय तिर्यक्चके आठ कषाय आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यह पक्चे न्द्रिय तिर्यक्चोंके समान कहा है। तीन आयु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट

[ा] भा० प्रती उ० ज० एग० इति पाठः । २. ता० भा• प्रस्थोः पसस्थवि०४ श्रगु० इति पाठः ।

प्रहर. देवेसु पंचणा०--छदंसणा०--बारसक०-भय--दु०--अप्पसत्थ०४-उपै०पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अद्वारस० सादि० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० ।
थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० एकत्तीसं०
देसु० । सादा०-पणुस०--पंचिंदि०-समचदु०--ओरालि० झंगो०--वज्जरि०-मणुसाणु०पसत्थ०-तस०-थिरादिछँ०-उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । अणु० ज०
एग०, उ० झंतो० । असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णाणा०भंगो ।
अणु० सादभंगो । दोआयु० णिरयभंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ० अणु०
ज० एग०, उ० अद्वारस० सादि० । एइंदि०-आदाव-थावर० उ० अणु० ज० एग०,

अनुभागबन्धका अन्तर भी उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र तिर्यञ्चोंके तीन आयुओं में तिर्यञ्चायु सिम्मिलित न थी सो यहाँ तीन आयुओं से मनुष्यायु अलग करनी चाहिए। आहारकद्विक और तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्ष्मिकश्रे िएमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा आहारकद्विकका बन्ध न हांकर पुनः बन्ध कमसे कम अन्तर्मु हूर्तके बाद और अधिकसे अधिक पूर्वकाटिष्टथक्त कालके बाद ही सम्भव है, क्यों कि सातवें से छठेमें आनेपर पुनः सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति अन्तर्मु हूर्तके बाद होती है तथा पूर्वकोटिष्टथक्त कालके प्रारम्भ और अन्तमें सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति हांकर इनका बन्ध हो और मध्यमें न हां यह भी सम्भव है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर मुंहर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिष्टथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा तेजसशरीर आदिकी उपशम अणिमें बन्धव्युच्छिति होकर पुनः उतरनेपर यदि इनका बन्ध हो तो अधिकसे अधिक अन्तर मुंहर्तकालका अन्तर पड़ता है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुंहर्तकालका अन्तर पड़ता है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुंहर्तकालका अन्तर पड़ता है, अतः यहाँ इनके अनुतकृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर मुंहर्तक कहा है।

पृद्श. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात त्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, क्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, मनुष्यगत्त, पुर्वी, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर ऋछ अन्तर अन्तर ई और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर्म कुद्र है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अञ्चन और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर हो। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अप्तर सातावेदनीयके समान है। दो आयुओंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुनार सातावेदनीयके समान है। दो आयुओंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर

१, बा॰ प्रतौ श्रप्पसत्थ॰ उप॰ इति पाठः । २. ता॰ बा॰ प्रत्योः तस॰४ थिरादिकु॰ इति पाठः ।

उक्क० बेसाग० सादि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादस्-पज्जत-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० उ० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देस्र० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । एवं सञ्बदेवाणं अप्पप्पणो झंतरं णेदव्वं याव सञ्बद्घ त्ति ।

४६२. एइंदिएसु धुविगाणं उ० ज० एग०, उ० असंखेज्जा लोगा। बादर-श्रंगुल० असंखे०। पज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सुहुमे असंखेज्जा लोगा।

के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थक्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धितकके सब देवोंके अपना अपना अन्तर ले आना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका स्रोघ उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक होता है श्रागे नहीं, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक त्राठारह सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि त्रादि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट ऋनुभागबन्धके विषयमें यही बात है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका **उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकतीस सागर** कहा है। यहाँ नौवें प्रैवेयकके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध करा के श्रीर मध्यमें उस जीवको सम्यन्दृष्टि रखकर यह अन्तर काल ले श्राना चाहिए । देवों में सातावेदनीय त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यग्हिष्ट सर्वविशुद्ध देवके होता है। सर्वार्थीसिद्धिमें भी यह सम्भव है। अतः सर्वार्थसिद्धिमें प्रारम्भमें और अन्तमें इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करानेसे यह कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है, त्र्यतः यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा ये सब सप्रतिपन्न प्रकृतियाँ है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर श्चन्तम हर्त कहा है। श्रसातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सहस्रार करूप तक ही होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है। दो आयुओंका भङ्ग नारिकयोंके समान है यह स्पष्ट ही है। तिर्यक्र्यगतित्रिक का बन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रीर त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। मात्र उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह अन्तर प्रारम्भमें और श्रन्तमें उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध कराके तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर प्रारम्भ श्रीर श्रन्तमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके और मध्यमें अन्तरकाल तक सम्यग्दृष्टि रखकर यह अन्तर ले आना चाहिए । इसी प्रकार एकेन्द्रियजाति त्रादिके उत्कृष्ट त्र्यौर अनुत्कृष्ट त्र्यनुभागबन्धका उत्कृष्ट त्र्यन्तर ले आना चाहिए। मात्र इनका बन्ध ऐशान करुप तक होता है, इसलिए यह साधिक दो सागर कहना चाहिए। श्रोदारिकशरीर श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर सातावेदनीय श्रादि की तरह घटित कर लेना चाहिए। इसी प्रकार सब देवोंके अपनी अपनी स्थिति आदिको जानकर श्रन्तर काल प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए वह श्रलगसे नहीं कहा।

५६२. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। बादरोंमें श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें माग प्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है श्रीर सूद्त्मोंमें श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। अणु० ज० एग०, उ० बेसम० | तिरिक्लायु० उक्क॰ ओघं | अणु० ज० एग०, उ० बावीसं वाससहस्साणि सादि० | सुहुमाणं श्रंतो० | मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उक्क० सत्तवाससहस्साणि सादि० | सुहुमाणं श्रंतो० | मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उ० अणु० ज० एगँ० उ० असंखेज्ञा लोगा | बादरे० श्रंगुल० असं० | अणु० ज० एग०, उक्क० कम्मिट्टदी० | पज्जते उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० संखेज्ञाणं वाससहस्साणि | सुहुमे असंखेज्ञा लोगा | उज्जो० उ० ज० एग०, उ० अणंतका० | बादरे श्रंगुल० असं० | पज्जते संखेज्ञाणि वाससहस्सा० | सुहुमे असंखेज्ञा लोगा | सेसाणं उ० णाणा०भंगो | अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो० |

तथा इन सबमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यक्कायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। मात्र सूदमोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। सूदमोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। वादरोंमें अङ्गुलके असंख्यात वें भाग प्रमाण है। तथा बादरोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। सूदमोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। उचोतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञान के समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानतर्णके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्तर अन्तर के।

विशेषार्थ — एकेन्द्रियोंमें बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं और एकेन्द्रियोंमें वादर एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंकी संख्यात हजार वर्ष है और सूद्रमोंकी असंख्यात लोकप्रमाण है। अतः यहाँ यह अन्तर कुछ कम अपनी अपनी कायस्थितिक प्रारम्भ में और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराके उत्कृष्ट अन्तरकाल लाना चाहिए। यहाँ यह शंका होती है कि जिस प्रकार इन बादर एकेन्द्रिय आदिमें यह अन्तर काल प्राप्त किया गया है उसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें यह अन्तरकाल अनन्तकाल क्यों नहीं कहा, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय आदिके समान एकेन्द्रियोंकी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराके उत्कृष्ट अन्तर आनत्व काल लानेमें कोई बाधा नहीं आती। प्रश्न ठीक है पर अनुभागवन्ध के योग्य परिणाम असंख्यात लोकसे अधिक नहीं हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट अन्तर बहुत ही अधिक हो तो वह असंख्यात आसंख्यात लोकसे अधिक नहीं हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट अन्तर बहुत ही अधिक हो तो वह असंख्यात

ता॰ प्रतौ -सहस्साखि । सादादि॰ सुहुमाखं, छा॰ प्रतौ -सहस्साखि । सादा॰ सुहुमाखं इति
 पाठः । २. छा॰ प्रतौ ऋखु॰ एग॰ इति पाठः । ३. ता॰ प्रतौ द॰ संखेजाखि, छा॰ प्रतौ रक्ष॰ झसंखे-जाखि इति पाठः ।

४६३. विगलिंदि०-विगलिंदियपज्जत्ते धुविगाणं उ० ज० एग०, उ० संखे-ज्जाणि वाससहस्साणि । अणु० ज० एग०, उ० वेसम० । तिरिक्त्वायु० उ० णाणी-भंगो । ऋणु० ज० एग०, उ० पगादिऋंतरं । मणुसायु० उ० अणु० ज० ए०, उ०

लोकप्रमाण हाता है। यही कारण है कि एकन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लांकप्रमाण कहा है। इन सबके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनु-त्कुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है यह स्पष्ट ही है। तिर्येक्क्यायुक्ते उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल आंघके समान कहा है यह स्पष्ट ही है। इसके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष कहनेका कारण यह है कि बाईस हजार वर्पकी त्रायुवाले किसी पृथिवीकायिकने प्रथम त्रिभागमें तिर्यक्कायुका त्रानुत्कृष्ट बन्ध किया। उसके बाद वह बाईस हजार वर्षकी त्रायुवाला पुनः पृथिवीकायिक हुन्ना त्रीर जब जीवनमें अन्तमु हूर्त काल शेप रहा तब तिर्यञ्चायुका अनुत्कृष्ट बन्ध किया तो इस प्रकार तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष आ जाता है। किन्तु मनुष्यायुके उत्क्रिप्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रन्भागवन्धका श्रन्तर एक ही भवमें लाना होगा, श्रतः बाईस हजार वर्षके त्रिभागको ध्यानमें रखकर वह दानों प्रकारका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। मात्र सूदमोंकी दो भवकी त्रायु मिलाकर त्रीर एक भवकी त्रायु त्रान्मु हुर्त ही होती है, त्रातः इनमें तिर्यक्रायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त कहा है। मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट श्रौर त्रनुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर यह दोनों ही त्र्रासंख्यात लोक-प्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि इनका ऋग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें बन्ध नहीं होता त्र्यौर इनकी कायस्थिति त्र्यसंख्यात लोकश्माण है। मात्र इनके उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रान्तर ध्र वबन्धवाली प्रकृतियोंके समान भी लाया जा सकता है। बादरोंकी कायस्थिति श्राङ्गलके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इनमें इनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर तो उक्त प्रमाण घटित हो जाता है पर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण ही प्राप्त होता है. क्योंकि बादर एकेन्द्रियोंमें अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति कर्मस्थिति प्रमाण होनेसे इतने अन्तरके बाद इनका नियमसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तो होने ही लगता है। इनके पर्याप्तकों में इसी प्रकार उत्कृष्ट श्रीर त्रमुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट त्र्यन्तर काल संख्यात हजारवर्ष ले स्राना चाहिए। स्रर्थात् संख्यात हजार वर्षप्रमाण कायस्थितिके प्रारम्भमें स्रौर स्रन्तमें उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध कराके इसका उत्कृष्ट श्रन्तर ले श्राना चाहिए श्रीर बीचमें संख्यात हजार वर्षतक श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंमें परिश्रमण कराके इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्धका उत्क्रष्ट श्चन्तर संख्यात हजार वर्ष ले आना चाहिए। सूच्मोंमें भी इसी प्रकार इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रम्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाए ले श्राना चाहिए। उद्योत श्रध्न वबन्धिनी प्रकृति होनेसे इसके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर एकेन्द्रियोंमें अनन्तकाल बन जानेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

५६३. विकलेन्द्रिय श्रौर विकलेन्द्रिय पर्याप्त जोवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर संख्यात हजार वर्ष है। त्रानुत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरएके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट

५. भ्रा॰ प्रती श्रंतो । विगर्खिद्यपज्जते इति पाठः । २. म्रा॰ प्रतौ तिरिक्खायु॰ गागा॰ इति पाठः ।

पगदित्रांतरं । सेसाणं० उ० णाणार्वभंगो । अणु० ज० एग०, उ० त्रांतो० ।

५६४. पंचिदि०-तस०२ पंचणा०-छदंसणा०-असाद०-चदुसंज०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० कायिद्वि०।
अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४-इत्थि० उ०
णाणा०भंगो। अणु० ओघं। सादा०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३पसत्थिव०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ० उक्क० णित्थ ग्रंतरं। अणु० ओघं।
अद्वक्क० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। णग्रंसग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। तिण्णिआगु० उ०
णाणा०भंगो। अणु० ज० एग०, उ० सागरोवमसदपुष०। मणुसागु० उ० अणु०
ज० एग०, उ० णाणा०भंगो। पज्जत्ते चदुआगु० उ० अणु० ज० एग०, उ० सागरो-

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं श्रीर उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तर के समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुत्ते है।

विशेषार्थ—विकलेन्द्रियोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इतमें मनुष्यायुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मात्र कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर ले आना चाहिए। तथा तिर्यक्षायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अगर मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान है सो प्रकृतिवन्धमें यहाँ इन प्रकृतियोंके अन्तरको देखकर यह खुलासा कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

५६४. पञ्च न्द्रियद्विक त्रौर त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दुर्शनावरण, श्रसाता-वेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर, श्रश्लभ, श्रयशः-कीर्ति श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट त्र्यन्तर कायस्थिति प्रमाण है। **अ**नुत्कृष्ट अनुगागवन्धका जघन्य ऋन्त एक समय है ऋौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन,भिध्यात्व, श्रमन्तानुबन्धी चार श्रीर स्त्रीवेदके उत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका अन्तर ज्ञानावरएके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। सातावेदनीय, पक्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विद्वायागित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर स्रोघके समान है। ब्राठ कपायोंके उत्कृष्ट ब्रानुभागवन्यका ब्रान्तर ज्ञातावरणके समान है। तथा ब्रानुत्कृष्ट ब्रानु-भागबन्धका अन्तर स्रोघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, स्रप्रशस्त विहायो-गति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय अौर नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर स्त्रोघके समान है। तीन आयुत्रोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर ज्ञानावरणके समान है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर सी सागर पृथवत्वप्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट त्रनुभागवन्धका जघन्य त्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। पर्याप्तकोंमें

श्रा० प्रतो भंगो । श्रग्रु० ज० एग०, उ० पगिदश्चंतरं । सेसाग्रं इति पाठः ।

वमसदपुषः । णविर तसपज्जने तिण्णिआयु० उक्क० सागरोवमसदपुष० । मणुसायु० विक्कस्समणुक्कस्सं सगिंददी० । णिरय०-चढुजादि-णिरयाणु०-आदा०-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एय०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं । तिरिक्खं०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । मणुस०-मणुसाणु० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० तेतीसं० सादि० । देवगदि०४—उच्चा० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० तेतीसं० सादि० । ओरालि०-ओरालि० अंगो०-वज्जरि० उ० णाणा०-भंगो । अणु० ओघं । आहारदुग० उक्क० णित्थ अंतरं । अणु० ज० अंतो०, उक्क० कायिददी० ।

चार आयुआंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सी सागरपृथक्त्वप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि त्रस पर्याप्तकोंमें तीन आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सी सागरपृथक्त्वप्रमाण है। तथा मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञान्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तिर्यक्रगति, तियक्रगत्यानुपूर्वी और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। सनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर आपके समान है। सनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञान्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञान अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्क और उज्ज्ञानके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्क और उज्ज्ञानके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गापाङ्क, और वर्ज्ञ्यभनाराचस्थको उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर आयावके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर अनुभागवन्धका ज्ञानर अन्तर कावन्य अन्तर अन्तर अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावन्य अन्तर अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावन्य अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावन्य अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावन्य अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावन्य अन्तर अनुभागवन्धका अन्तर कावनर अनुभागवन्धका ज्ञानर कावनर अनुभागवन्धका अन्तर कावनर कावनर अनुभागवन्धका अन्तर कावनर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर कावनर अनुभागवन्धका अन्तर कावनर कावनर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर कावनर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यक्य अनुतर कावनर कावनर अनुतर कावनर अनुतर कावनर कावनर कावनर विवादक क

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायिस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है, क्यों कि अपनी अपनी कायिस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यदि इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो तो यही अन्तर उपलब्ध होता है। तथा इनकी एक बार बन्धव्युच्छित्ति होने पर पुनः इनका बन्ध हो तो अन्तर्मु हूर्त काल अवश्य लगता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि तथा आगे और जितनी प्रकृतियों उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। अर्थान् अपनी अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें अन्तमें उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर ले आना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर ले आना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर आंघके समान है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका आंघसे जो उत्कृष्ट अन्तर वतलाया है वह यहीं पर घटित होता है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चपकअणिमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल आंघके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि

ता॰ म्रा॰ प्रत्योः उक्क० बेसागरोवमसहस्सा० । मणुसायु॰ इति पाठः । २. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः म्राणु॰ ज॰ एयट्टिशे तिरिक्ख॰ इति पाठः ।

४६४. पुढवि०-आड० धुविगाणं ड० ज० एगः, उक्क० अप्पप्पणो कायद्विदी कादच्वा । अणु० ज० एग०, ड० वेसम० । तिरिक्खायु० ड० णाणा०भंगो । अणु०

श्रध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त सर्वत्र बन जाता है। देशसंयतके श्रप्रत्याख्यानावरण चारका श्रीर संयत के श्रप्रत्याख्यानावरण चार त्रौर प्रत्याख्यानावरण चार इन त्राठोंका बन्ध नहीं होता त्रौर संयमा-संयम व संयम इन दोनोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, त्र्यतः इनके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभाग-बन्धका अन्तर श्रोघके समान घटित हो जानेसे वह श्रोघके समान कहा है। नपुंसकवेद श्रादिके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर भी श्रोघके समान बन जाता है, क्योंकि वह इन मार्गणाश्रोंमें श्रविकलरूपसे घटित होता है, इसलिए वह भी श्रोचके समान कहा है। जीव त्रस श्रीर पञ्च न्द्रिय रहते हुए यदि नारक, तिर्येक्च या देव नहीं होता तो सौ सागर पृथक्त्व काल तक नहीं होता। इतने कालके बाद उसे यह पर्याय अवश्य ही धारण करना पड़ती है, परन्तु मनुष्यपर्यायके विषयमें यह बात नहीं है, इसलिए यहां तीन त्रायुत्रोंके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर सौ सागर पृथक्तवप्रमाण कहा है स्त्रीर मनुष्यायुके स्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट स्नन्तर स्नपने उत्कृष्ट स्ननुभागवन्धके उत्कृष्ट श्रन्तरके समान श्रपनी श्रपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। मात्र यह श्रन्तर सामान्य त्रस श्रीर सामान्य पञ्चे न्द्रियोंमें सम्भव है। इनके जो पर्याप्त हैं उनमेंसे पञ्चे न्द्रिय पर्याप्तकोंमें तो चारों त्रायुत्रोंके त्रनुत्कृष्ट त्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण ही है। इसका त्रभिप्राय यह है कि यदि कोई निरन्तर पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त बना रहे तो सौ सागर प्रथक्त्व कालके बाद उसे नारकादि विवक्षित पर्याय श्रवश्य ही धारण करनी पड़ेगी। पर त्रस पर्याप्तकोंमें तो तीन श्रायुत्रोंके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर यही रहेगा। मात्र मनुष्यायुके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रपने उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धके उत्कृष्ट श्रन्तरके समान श्रपनी कायस्थितिप्रमाण होगा। नरकगति त्रादिके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर त्रोवसे जो एकसौ पचासी सागर बनलाय। है वह इन मार्गणात्रोंमें ही सम्भव है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगति त्रादिके ऋनु-त्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रोधमें इन्हीं मार्गणाश्रोंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिए वह श्रोघके समान कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टि नारकीके व उसके वाद अन्तमु हुर्त काल तक मनुष्यद्विकका बन्ध नहीं होता, श्रयः इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रम्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क श्रीर उच्चगात्रका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें हाता है, इसलिए इसका अन्तर सम्भव न होनेसे उसका निपंध किया है। तथा सातवें नरकके मिथ्यादृष्टि नारकी के श्रीर वहाँसे निकलने पर श्रान्तमु हुर्त काल तक इनका वन्ध नहीं होता, श्रातः इनके श्रानुत्कृष्ट श्रानु-भागबन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रीदारिकशरीर श्रादिके त्रानुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रोघसे साधिक तीन परुय बतलाया है वह यहाँ घटित हो जाता है, अतः यह त्रोघके समान कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, श्रतः इसके श्रन्तरकालका निपंध किया है। तथा इनकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर इन मार्ग-णाश्रोंमें पुनः बन्ध कमसे कम श्रन्तर्मुहुर्तमें श्रीर श्रधिकसे श्रधिक श्रपनी श्रपनी कायस्थितिका श्रन्तर देकर सम्भव है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तमु हुते श्रीर उत्कृष्ट श्रपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है।

५६५. पृथिवीकायिक श्रीर जलकायिक जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रपनी श्रपनी कायस्थितिप्रमाण करना चाहिए। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दं। समय है। तिर्युद्धायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट जि० एग॰, उ० पगिदिश्चंतरं। मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उ० पगिदिश्चंतरं। सेसाणं उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० एयसमयं, उ० श्चंतो०। एवं तेउ०-वाउ०। णविर मणुसगिदि०४ णित्थ। तिरिक्खगिदि०४ धुवभंगो। वणप्फिदिका० एइंदियभंगो। णविर तिरिक्खायु० अणु० ज० एग०, उ० दसवस्ससहस्साणि सादि०। मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिवाससहस्साणि सादि०। मणुसगिदितिगं सादभंगो। वादरवणप्फिदिपत्ते० पुढिविभंगो। णियोद० वणप्फिदिभंगो। णविर अप्पप्पणो हिदी भाणिद्वा।

श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। इसी प्रकार श्रानिक।यिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेष्ता है कि इनके मनुष्यगतिचतुष्कका वन्ध नहीं होता। तथा तिर्यक्रगतिचतुष्कका भङ्ग प्रवुव-प्रकृतियोंके समान है। वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्रायुके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर साधिक दस हजार वर्ष है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन हजार वर्ष है। मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग साता-वेदनीयके समान है। बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशारीर जीवोंका भङ्ग प्रथिवीकायिक जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रमनी श्रमनी स्थित कहनी चाहिए।

विशेपार्थ-कायस्थितिके प्रारम्भमें त्रौर अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो त्रौर मध्यमें न हो तो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण आता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार अन्य जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है उसे घटित कर लेना चाहिए। तिर्यख्रायुक उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका त्रौर मनुष्यायुके उत्कृष्ट व त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागवन्धका उत्कृष्ट त्रमन्तर इनके प्रकृति बन्धके अन्तरके समान कहा है सो उसका यही अभिप्राय है कि प्रकृतिबन्धके समय इनका जो श्रन्तर बतलाया है वह यहाँ उक्त अन्तर जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंक श्रीर सब श्रन्तरकाल इसी प्रकार वन जाता है। मात्र इनके मनुष्यगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होनेसे तिर्यक्रगतिचतुष्क भ्रवप्रकृतियाँ हो जाती हैं। त्रर्थात् त्रायुवन्धके समय इनके तिर्यक्रायुका ही बन्ध होता है ऋौर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ऋौर उच्चगोत्रका वन्ध न होकर निरन्तर तिर्यक्क-गति, तिर्यञ्चानुगत्यानुपूर्वी ऋौर नीचगात्रका ही बन्ध होता है। इसलिए यहाँ इन तीन प्रकृतियोंक **अन्तरकालको प्ररूपणा ध्रु वबन्धवाली प्रकृतियोंके समान करनी चाहिए और मनुष्यायुका अन्तर-**काल न कहकर एकमात्र तिर्यञ्जायुका अन्तरकाल कहना चाहिए। वनस्पतिकायिक जीवोंकी काय-स्थिति एकेन्द्रियोंके समान है, इसलिए इनका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान कहा है। मात्र इनकी भवस्थिति दस हजार वर्ष हैं, इसलिए इनमें तिर्यक्रायुके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय त्रौर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दस हजार वर्ष तथा मनुष्यायुके उत्कृष्ट त्रौर त्रमनुष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन हजार वर्ष कहा है। तथा इनके तिर्यञ्चगतित्रिकके प्रतिपक्षरूपसे मनुष्यगतित्रिकका भी बन्ध होता रहता है, श्रतः इनका प्रद्दः पंचमण ०--पंचवचि पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०भय-दु०--चदुआयु०--अप्पसत्थ०४-उप०--पंचंत० उ० ज० एग०, उ० श्रंतो० ।
अणु० ज० एग०, उ० बेसमे० । [सादा०-] देवगदि०४-पंचिदि०-समचदु०-पर०उस्सा०-उक्को ०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-उच्चा० उ० णत्थि श्रंतरं । अणु० ज०
एग०, उ० श्रंतो० । असादा०-सत्तणोक०-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०ओरालि०श्रंगां०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०--आदाव०--अप्पसत्थ०--थावरादि०४-अथिरादिछ०-णीचा० उ० अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो० । आहारै०-तेजा०-क०-आहार०श्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि०-तित्थ० उ० अणु० णत्थि श्रंतरं ।

भङ्ग सातावेदनीयके समान जानना चिहए। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंकी काय-स्थिति व सब प्रकृतियोंका वन्ध वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है और निगोद जीवोंकी कायस्थिति व सब प्रकृतियोंका बन्ध वनस्पतिकायिक जीवोंके समान है इसलिए यह कथन इनकं समान किया है।

पृद्द् पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुण्सा, चार आयु, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, देवगति चार, पञ्चोन्द्रयजाति, समचतुरक्ष संस्थान, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, और उद्योगिक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर क्रांत है। असातावेदनीय, सात नोकपाय, तीन गित, चार जाति, औदारिकशारीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगात्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर प्रक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर हि। आहारकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणक्षा अन्तर एक समय हे और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है।

विशेषार्थ—इन योगोंका उत्हृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं, अतः यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका उत्हृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्हृष्ट अनुभागवन्ध सपकश्रेणिमं होता है। तथा उद्योतका उत्हृष्ट अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है, अतः यहाँ इनके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। तथा ये सब अधुववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका ज्ञचन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदि भी अधुववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है। तथा उसी योगके रहते हुए अन्तर्मुहूर्त वाद पुनः इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है और यदि वीचमें प्रतिपक्ष प्रकृतिका वन्ध होने लगे तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है और यदि वीचमें प्रतिपक्ष प्रकृतिका वन्ध होने लगे तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है और यदि वीचमें प्रतिपक्ष प्रकृतिका वन्ध होने लगे तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है और यदि वीचमें प्रतिपक्ष प्रकृतिका वन्ध होने लगे तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सो अन्तर्मुहूर्तका अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनु-

वेसम० इति स्थाने ता० प्रतो बेस० सादि०, त्रा० प्रतो बेसाग० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पर० उच्चो० इति पाठः । ३. ता० ग्रा० प्रस्थोः श्राहारे० इति पाठः ।

५६७. कायजोगीसु पंचणा०-छदंसणा०--असादा०--चदुसंज०-णवणोक०दोगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसठा०--ओरालि० ग्रंगो०-छस्संघ०--अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०-आदाव०-अप्पसत्थिव०-थावरादि०४-अथिरादिर्छ०-णीचा०-पंचंत० उ०
अणुँ० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-वारसक०-णिरय-देवायु०
उ० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । अणु० ज० एग०, उ० वेसम० । सादा०-देवगदि ४पंचिदि० -तेजा०--क०--समचदु०--पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०--पसत्थवि०--तस०४थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय० उ० णित्थ ग्रंतरं । अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो० ।
तिरिक्तायु० उ० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । अणु० ज० एग०, उ० वावीसं वाससहस्सा० सादि० । मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । अणु० ओघं । मणुस०मणुसाणु० उ० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । अणु० ओघं । आहारदुग० उ० अणु०
णित्थ ग्रंतरं । उचा० उ० णित्थ ग्रंतरं । अणु० ओघं ।

त्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। आहारक शारीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तर कालका निर्मेध किया है। तथा इनकी वन्धव्युच्छित्तिके बाद उसी योगके रहते हुए पुनः इनका बन्ध सम्भव नहीं है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निर्मेध किया है।

५६७. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, त्र्यसातावदनीय, चार संज्वलन, नो नोकपाय, दो गति, चार जाति, श्रीदारिकशरीर, पाँच संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गापाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर त्रादि चार, श्रस्थिर त्रादि छह, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रौर त्रानुत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त है। स्त्वानगृद्धि तीन मिश्यात्व, बारह कपाय, नरकाय और देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर दो समय है। सातावेदनीय, देवगतिचतुष्क, पश्चोन्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगनि, त्रसचतुष्क, स्थिर त्रादि छह, निर्माण श्रीर तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवस्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुं हूर्त है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर स्रोघके समान है। मनुष्यगति स्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्गुहूर्त है। अनु-त्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। आहारकद्विक्के उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है। उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अनु-त्क्रष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल श्रोघके समान है।

विशेषार्थ—काययोगमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध संज्ञी पञ्चोन्द्रिय पर्याप्त-जीवके होता है श्रोर इनके काययोगका उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है, इसलिए तो इसमें इन प्रकृतियोंके

१. ता० ग्रा० प्रत्योः थिरादिछ० इति पाटः । २. ता० प्रती० उ० उ० श्रयु० इति पाटः ।

४६८. ओरालियका० पंचणाणावरणादि० मणजोगिभंगो । णवरि तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० ऋंतो० । अणु० ज० एग०, उ० सत्तवाससह० सादि०। ४६९. ओरालियमि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छत्त--सोलसक०--भय-दु०-

उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर त्रान्तमु हूर्त कहा है। तथा उपशमश्रेणिमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका एक समयके लिए ऋौर अन्तमु हूर्तके लिए अवन्धक होकर मर कर देव होने पर एक समय या अन्तर्मु हूर्तके अन्तरसे इनका पुनः बन्ध सम्भव है इसलिए ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके त्रानुत्कृष्ट स्रानुभागबन्धका जघन्य स्रान्तर एक समय स्रीर उत्कृष्ट स्रान्तर स्रान्तमु हुर्त कहा है। तथा अध्र वबन्धिनी प्रकृतियोंके बन्धके बाद एक समय तक या अन्तर्म हुत तक इनकी प्रतिपक्ष प्रकृ-तियोंका बन्ध सम्भव है, इस लिए अधु ववन्धिनी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल तो ज्ञानावरणादिके समान ही घटित करना चाहिए। मात्र इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। यहाँ अन्य प्रकारसे अन्तर सम्भव नहीं है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रे णिमें होता है, तथा उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख सातवें नरकके नारकीके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभाग-वन्धके अन्तरका निपेध किया है। तथा इनमें कुछ तो अधु ववन्धिनी प्रकृतियाँ है और कुछका उपशम-श्रेणिकी अपेका अन्तर सम्भव है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त कहा है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चोन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भाहर्तं कहा है। तथा तिर्यञ्चायुका काययोगके रहते हुए एकेन्द्रियोंमें साधिक बाईस हजार वर्षके अन्तरसे बन्ध सम्भव होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक वाईस हजार वर्ष कहा है त्र्योर मनुष्यायुका त्र्याचके समान साधिक सात हजार वर्षके त्र्यन्तरसे त्रनुभागवन्ध सम्भव है इसलिए इसके अनुःकृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर त्रोघके समान कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनु-भागबन्ध पख्चे न्द्रियपर्याप्रके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्त-मुर्हर्त कहा है। ऋौर एकेन्द्रियोंमें इनका श्रोघके समान श्रसंख्यात लोकका श्रन्तर देकर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर योघके समान कहा है। आहारकद्विक का उत्कृष्ट ऋनुभागवन्ध अपकश्रेणिमें होता है तथा इनका एक बार बन्ध होनेके वाद पुनः बन्ध होनेके काल तक योग वदल जाता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्रोर स्रनुत्कृष्ट स्रनुमागबन्धके **ऋन्तरकालका निपेध किया है।**

५६८. श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रायु श्रौर मनुष्यायुके उत्क्रष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्क्रष्ट श्रन्तर श्रक्तर एक समय है और उत्क्रष्ट श्रन्तर सात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर काल जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके घटित करके बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। मात्र श्रोदारिककाय-योगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष होनेसे यहाँ तिर्यक्षायु श्रोर मनुष्यायुके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम सात हजार वर्ष प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है।

५६६. श्रोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व,

देवगदि०४—[तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४—] अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० उ० अणु० णित्थ ग्रंतरं । आयु० अपज्जत्तभंगो । सेसाणं उ० णित्थ ग्रंतरं । अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० । णविर अप्पप्पणो पगदीओ भाणिद्व्वाओ । आहारमि० देवायु० उ० णित्थ ग्रंतरं । वेउव्वियका०-आहारको० मणजोगिभंगो । कम्मइ० सव्वाणं उ० अणु० णित्थ ग्रंतरं । णविरं सादासाद०-चढुणोक०-आदाउज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उ० णित्थ ग्रंतरं । अणु० एग० । एवं अणाहार० ।

सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगितचतुष्क, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुक्रमंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और अन्तर अनुत्कृष्ट अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ कहलवाना चाहिए। तथा आहारकिमिश्रकाययोगों देवायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्तर और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्तर और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्तर और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्तर एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेपार्थ-- त्रौदारिकमिश्रकाययोगका काल बहुत थोड़ा है। इसमें प्रथम दण्डकमें कही गई व अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिग्णामवाले, सर्वविशुद्ध व तत्त्रायोग्य विशुद्ध जीवके होता है, ऋतः दो ऋायुऋोंको छोड़कर सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है, क्योंकि ऐसे परिणाम पर्याप्त योगके सन्मुख हुए जीवके त्र्यन्तिम समयमें ही सम्भव हैं। तथा प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। यद्यपि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमें देवगतिचतुष्क भी है पर ऋौदारिक-मिश्रकाययोगी सम्यग्दृष्टिके ये घ्रुवबन्धिनी ही हैं। इसी प्रकार जिसके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है उसके वह भी ध्रुवबन्धिनी है, ऋतः इनके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागबन्धके ऋन्तरकालका भी निपेध किया है। त्रीदारिकमिश्रकाययोगमें त्रपर्याप्तकों के ही दो त्रायुत्रों का बन्ध होता है, त्रात: इनका कथन अपर्याप्तकोंके समान किया है। अब शेप रही परावर्तमान प्रकृतियाँ सो इनके अनु-त्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है यह स्पष्ट ही है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग त्र्यौर त्र्राहारकमिश्रकायोगमें यह अन्तर इसी प्रकार है सो इसका यह ऋभिप्राय है कि इन दोनों योगोंमें जो धुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं उनके उत्कृष्ट ऋौर अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका तो श्रन्तर है नहीं। हाँ जो परावर्तमान प्रकृतियां हैं उनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर न होकर मात्र श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूत है। पर इस प्रकार देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर प्राप्त होता है, इसलिए

१. ता । म्रा० प्रत्यो: म्रंतरं । एवं म्रगाहार । ग्विर इति पाटः ।

५७०. इत्थिवं ० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-अप्पसत्य०४-छप०-पंचंत० उ० ज० एगँ०, उ० कायिद्वदी० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । थीण-गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४-इत्थि०-णवुंस०--तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंच-संघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभगँ-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० कायिद्वदी० । अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं पत्ति० देसू० । सादा०-पंचिदि०-समचद्द०-पर०-उस्सा०-पसत्थ-तस०४-थिरादिछ०-उच्चा० उ० पत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । आसादा०-पंचणोक०-अथिरादि० उ ० ज० एग०, उ० कायिद्दि० । अणु० सादभंगो । अद्दक० उ० ज० ए०, उ० कायिद्वि० । अणु०

उसका निषेध किया है। वैक्रियिककाययोग श्रोर श्राहारककाययोगका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है तथा स्वामित्व सम्बन्धी परिणामों की समता भी देखी जाती है, श्रतः इनमें सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धकी प्ररूपणा मनोयोगी जीवों के समान बन जानेसे वह उनके समान कही है। कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे यहाँ सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर काल नहीं बनता यह स्पष्ट ही है। मात्र सातावेदनीय श्रादि कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका यहाँ पर भी परिवर्तन सम्भव है, इसिलए इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय कहा है। यहाँ शेप परावर्तमान प्रकृतियाँ बन्धकी विशेपताके कारण परावर्तमान नहीं होती, ऐसा यहाँ श्रभिप्राय समभना चाहिए। उदाहरणार्थ यहाँ जिसके श्रससम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध होता होगा उसके एक साथ बादर स्थावर सम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा। कार्मणकाययोगी श्रनाहारक ही होते हैं, श्रतः इनका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान कहा है।

प्००. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यक्रगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्यात, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचनुरक्ष संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। आठ कपायोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीयके

१. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः एग॰ इत्थिवेद॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती उ॰ ए॰ इति पाठः । ३. ता॰ म्रा॰ प्रती ज॰ ए॰ प्राप्यां इति पाठः । ४. ता॰ प्रती ज॰ ए॰ प्राप्यां इति पाठः । ४. ता॰ म्रती ज॰ ए॰ प्राप्यां इति पाठः । ४. ता॰ म्रती ज॰ ए॰ प्राप्यां इति पाठः । ४. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः म्रथिरादिछ्॰ उ० इति पाठः ।

बोघं। णिरयायु० उ० अणु० तिरिक्तव०भंगों। दोआयु० उ० अणु० ज० एग०, उ० पिलदोवमसदपुध०। देवायु० उ० ज० एग०, उ० कायिहदी। अणु० ज० एग०, उ० अद्वावण्णं पिलठ पुन्वकोडिपुधत्तेणव्भिहयाणि। [णिरयग०-तिण्णिजादि-णिरयाणु०-सुहुम०-अपज्जत्त-साधार० उ० ज० एग०, उक्क० कायिहदी०। अणु० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पिलदो० सादि०।] मणुसगदिपंच० उ० ज० एग०, उ० कायिहदी०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपिलदो० देस्०। देवगदि०४ उ० णित्थ अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० पणवण्णं पिलदो० सादि०। आहारहुग० उ० णित्थ अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० कायिहदी। तेजा० क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि०-तित्थ० उक्क० अणु० णित्थ अंतरं।

कायस्थितिप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका अन्तर श्रोघके समान है। नरकायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर तिर्यञ्चोंकं समान है। दो श्रायुत्रोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्तवप्रमाण है। देवायुको उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव श्रधिक अद्वावन पत्य है। नरकगित, तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूदम, श्रपर्याप्त श्रीर साधारणके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर काय-स्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पत्य है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका जघन्य त्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पर्वय है। त्राहारकद्विकके उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका त्रान्तरकाल नहीं है। त्रानत्कृष्ट त्रानु-त्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महुर्ते है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायिस्थिति प्रमाण् कहा है उनका कायिस्थितिके प्रारम्भ और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराके यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। जो देवी सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम पचवन पल्य तक रहती है उसके स्त्यानगृद्धि तीन आदिका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निष्ध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निष्ध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुंहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदि भी परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीय आदि भी परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। आठ कपायों के अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुन्तर अोधसे कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, अतः यह ओधके समान कहा है। तिर्यक्रों के नरकायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जो अन्तर कह आये हैं वह यहां बन जाता है, अतः यह अन्तर उनके समान कहा है। तिर्यक्रां और मनुष्यायुका किसीने काय-

६. ता० भ्रा• प्रत्योः तिरिक्खगदिभंगो इति पाठः।

५७१. पुरिस० पंचणा०-चहुदंसणा०-चहुसंजै० पंचंत० उ० ज० एग०, उ० कायिहदी० । अणु० ज० एग०, उ० बेस० । थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० ज० एग०, उ० कायिहदी० । अणु० ओघं । णिद्दा-पचला०-असादा०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० उ० ज० एग०, उ० काय-हिदी० । अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो० । सादा०-पंचिदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-उच्चा० उ० णित्थ ग्रंतरं । अणु० ज० एग०, उ० ग्रंतो०।

स्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध किया और मध्यमें अन्य आयुत्रोंका बन्ध किया । अर्थात् तिर्यञ्चायुका बन्ध करनेवालेने मनुष्यायु श्रीर देवायुका मध्यमें बन्ध किया श्रीर मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले ने मध्यमें तिर्यञ्चाय और देवायुका बन्ध किया यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। कोई देवायका बन्ध करके पचवन पल्यकी आयुवाली देवी हुई। पुनः वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटि पृथक्त काल तक मनुष्यनी और तिर्यञ्जयोनिनी होकर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्पन्न हुई। श्रीर वहां श्रन्तमें देवायुका बन्ध किया तो इस प्रकार पूर्वकोटिपृथक्त्व श्रिधिक पचवन पत्य देवायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। नरकगित आदिका देवीपर्यायमें बन्ध नहीं होता और इसमें अन्तमु हूर्त काल मिलाने पर इन प्रकृतियोंके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिपञ्चकका उत्तम भागभूमिके पर्याप्त जीवोंके वन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुय कहा है। देवगतिचतुष्क आहारकद्विक श्रौर तैजसशरीर श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा देवी पर्यायमें और वहाँसे आकर अन्तमु हूर्त काल तक देवगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य कहा है। कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें श्राहारकद्विकका बन्ध हो श्रीर मध्यमें न हो यह सम्भव है, ऋतः इनके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका उत्कृष्ट ऋन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। तैजसरारीर त्रादि ध्रुववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं त्रीर इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल सम्भव न होनेसे इसका भी निषेध किया है।

५७१. पुरुषवेदी जीवोमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अवन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशाःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर क्रियिमाण है। सातावेदनीय, पञ्चे न्द्रियजाति, समचतुरक्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतौ पंचगा॰ चदुसंज॰ इति पाठः।

अहकः पंचिदियभंगो। णिरणायुः पणुसिः भंगो। तिरिक्तः - मणुसायुः उ० अणुः पंचिदियपज्जत्तभंगो। देवायुः उ० ज० एगः, उ० कायिहदीः। अणुः ज० एगः, उ० तेतीसं । सादिः। णिरयः - तिरिक्तः - चढुः जादि-दोआणुः - आदावुः जोः - थावरादिः । उणुः ज० एगः, उ० तेविहिसागरोवमसदः। पणुसगदिपंचगः उ० ज० एगः, उ० कायिहदीः। अणुः ज० एगः, उ० तिण्णि पितः सादिः। देवगदिः । उणः ज० णित्थ अतरं। अणुः ज० एगः, उ० तेतीसं । सादिः। णवुंसगः - पंचसं ठाः - पंचसं ठः - अप्पस्थः - दूभगः दुस्सर-अणादेः - णीचाः उ० ज० एगः, उ० कायिहदीः। अणुः ओषः। आहारदुः उ० णित्थ अतरं। अणुः ज० कायिहदीः। तेजाः - क०-पसः थ० - अगुः - णिमिः - तित्थः उ० णित्थ अतरं। अणुः ज० एगः, उ० कायिहदीः। तेजाः - क०-पसः थ० - अगुः - णिमिः - तित्थः उ० णित्थ अतरं। अणुः ज० एगः, उ० आयोहदीः। तेजाः - क०-पसः विश्वः - अगुः - णिमिः - तित्थः उ० णित्थ अतरं। अणुः ज० एगः, उ० अते।

श्रन्तर अन्तमु[']हूर्त है । आठ कपायोंका भङ्ग पञ्च न्द्रियोंके समान है। नरकायुका मनुष्यिनीके समान भङ्ग है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका भङ्ग पञ्चोन्द्रियपर्याप्त जीवोंके समान है। देवायुक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है स्रोर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण् है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है स्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, तियञ्चगति, चार जाति, दो त्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत और स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्धका जघन्य त्र्यन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितियमाण् है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर एकसो त्रेसठ सागर है। मजुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पर्य है। देवगतिचतुष्कर्के उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्रृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगात्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माए और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है।

विशेपार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितित्रमाण कहा है उनका कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें उत्कृष्ट या श्रनुत्कृष्ट बन्ध कराके वह श्रन्तर ले श्राना चाहिए। स्यानगृद्धि तीन श्रादिके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जो उत्कृष्ट श्रन्तर काल श्रोधसे कुछ कम दो छ्यासठ सागर बतलाया है वह पुरुषवेदीके ही सम्भव है, श्रतः यह श्रोधके समान कहा है। उपशमश्रेणिमें निद्रा श्रीर प्रचलाकी बन्धव्युच्छिति होने पर मरण द्वारा कमके कम एक समयके श्रन्तरसे श्रीर श्रिधिकसे श्रिधक श्रन्तमु हूत्वके श्रन्तरसे पुरुपवेदीके इनका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर

१. भा० प्रतौ मणुसि०भंगो देवायु० इति पाठः।

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त कहा है। तथा असाता आदि शेप परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके भी अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कहा है। श्रसातावेदनीयकं समान सातावेदनीय श्रादिके श्रनुख्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके श्चन्तर कालका निवंध किया है। पञ्च निद्रयों के आठ कवायों के उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध का जो अन्तर काल कहा है वह पुरुपवेदीके बन जाता है, अतः यह पख्चे न्द्रियोंके समान कहा है। पहले मनुष्यिनियोंके नरकायुके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकाटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण घटित करके वतला आये हैं। यहाँ परुपवेदियोंके भी यह इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि नारकी पुरुपवेदी न होनेसे एक पर्यायमें त्रिभागकी ऋपेक्षा ही यह घटित करना पड़ता है, ऋतः यह मनुष्यिनियोंके समान कहा है। पञ्चे-न्द्रिय पर्याप्त जीवके तिर्येख्वाय श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्तवप्रमाण वतला आये हैं। पुरुषवेदियोंके यह अन्तर बन जाता है, क्योंकि पुरुषवेदियोंकी जो कायस्थित है उसके प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें दो आयुओंका उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो श्रीर मध्यमें न हो यह सम्भव है, श्रतः यह श्चन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मात्र देवायुके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरसे ऋधिक नहीं बनता, क्योंकि पूर्वकोटिकी ऋ।युवाले किसी मनुष्यने ऋपने प्रथम त्रिभागमें देवायका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया। पुनः वह तेतीस सागर काल तक विजयादि देवपर्यायमें रहा चौर वहांसे आकर पुनः पूर्वकोटिकी चायुवाला मनुष्य हुआ। तथा चायुके चन्तमें देवायुका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध किया तो यह साधिक तेतीस सागर ही होता है, अत: यह एक प्रमाण कहा है। पुरुषवेदी रहते हुए नरकगति आदिका एकसी त्रेसठ सागर काल तक बन्ध नहीं होता, श्रत: इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एकसी त्रेसठ सागर प्रमाण कहा है। जो मनुष्य प्रथम त्रिभागमें त्रायुवन्धके बाद क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करता है त्रीर मरकर तीन पत्य की आयुके साथ मनुष्य होता है, उसके इतने काल तक मनुष्यगतिपञ्चकका वन्ध नहीं होता. अतः इनके अनुत्रृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्कका उत्कृष्ट अनु-भागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, त्रातः इसके अन्तरकालका निषध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें बन्धन्यचिछत्तिके अन्तम् हूर्त बाद मर कर जो तेतीस सागरकी आयुके साथ देवपर्यायमें जन्म लेता है उसके साधिक तेतीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर वहा है। नपुंसकवेद आदिका कुछ कम दं। छ्यासठ सागर ऋौर कुछ कम तीन परुय काल तक बन्ध नहीं होता यह श्रोघमें घटित करके बतला श्राये हैं। इनका यह अन्तर यहाँ भी घटित हो जाता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोधकं समान कहा है। त्राहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्य चपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तर कालका निपंध किया है। इनका कमसे कम अन्तर्मुहर्तके अन्तरसे बन्ध होता है श्रीर यदि काय-स्थितिके प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान हो तो कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे बन्ध सम्भव है, ऋतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तैजसशरीर श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है. श्रतः इसके श्रन्तरका निपेध किया है। तथा उपशमश्रीणमें बन्धव्युच्छित्तिके वाद एक समयके श्रन्तरसे या श्रन्तमु हूर्तके श्रन्तरसे मरण होकर देवपर्यायमें इनका बन्ध होने लगता है, श्रत: इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है।

५७२. णवुंस० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०--अप्पसत्थ०४-उप०पंचंत० उ० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० बेसमं० । थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४-इत्थि-णवुंस०-तिरिक्सव०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्स्वाणु०--अप्पसत्थिव०दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० तेतीसं देस्० ।
सादा०-पंचिदि० -समचहु०--पर०--उस्सा०--पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ० उ० णित्थि
अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस०
उ० अणु० ओघं । अहक०--तिण्णिआयु०--वेउन्वियछ०--मणुस०--मणुसाणु०--उच्चा०
[उक्क०] अणुँ० ओघं । देवायु० मणुसभंगों । चदुजा०-आदाव-थावरादि०४ उक्क०
ओघं । अणु० ज० एग०, उ० तेतीसं० सादि० । ओरालि०-ओरांलि० अंगो०-वज्जिर०
उ० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० तेतीसं० सादि० । आहारदुगं उ० अणु० ओघं ।
[तेजा०-क०-पसत्थवण्ण४-अगु०-णिमि० उक्क० अणुक० णित्थ अंतरं । अणु० ज० उ० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्० । तित्थ० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० उ० अंतो० ।

५७२. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यक्रगति, पाँच संस्थान. पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगात्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर स्रोघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्त्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क श्रौर स्थिर त्रादि छहके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है स्रोर उत्कृष्ट अन्तर स्रन्तर्मु हुर्त है। स्रसातावेदनीय, पाँच नोकपाय, स्रस्थिर, स्रशुभ स्रोर स्रयशः-कीर्ति के उत्क्रप्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कपाय, तीन श्रागु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रीर उचगात्रके उत्दृष्ट श्रीर श्रनुत्दृष्ट श्रनुमागवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। देवायुका भङ्ग मनुष्यके समान है। चार जाति, श्रातप, त्रौर स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका त्र्यन्तर त्रोघके समान है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभाग-बन्धका जवन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, खौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वज्रर्पभनाराचसंहननके उत्कृष्ट त्रमुभागवन्यका त्रान्तर त्रांघके समान है। अनुत्रुष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्राहादकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर आधके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

१. ता॰ प्रती ए० देसम० इति पाठः । २. ता० द्या० प्रत्योः उच्चा० श्रयु० इति पाठः । ३. ता० स्ना० प्रत्योः मसुसादिभंगो इति पाठः ।

तेतीस सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका श्रम्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त है।

विशेषार्थ—त्रोघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल कहा है। यह श्रन्तर नपुंसकवेदीके वन जाता है श्रीर नपुंसकवेदकी कायस्थिति अनन्त काल है, अतः यह अन्तर स्रोधके समान कहा है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोधके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा जो नारकी कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दृष्टि रहता है उसके इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ सातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चपकश्रोणिमें होता है, अतः इसके अन्तरका निपेध किया है। इसी प्रकार आगे जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अन्तरका निपेध किया है उसका यही कारण जानना चाहिए। तथा इनके परावर्तभान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तम हर्त कहा है। असातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रीघके समान है। कारण कि इनका एक समयके श्रन्तरसे और कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करानेसे उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका श्चन्तर श्रोघके समान बन जाता है श्रीर परावर्तमान प्रकृतियां होनेसे अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान बन जाता है। श्राठ कपाय श्रादिके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका अन्तर अलग अलग जैसा ओघसे कहा है उसके अविकलरूपसे यहाँ प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं त्राती, त्रतः यह भी त्रोघके समान कहा है। यद्यपि नपुंसकवेदकी कायस्थिति त्रानन्तकाल है पर देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत जीवके होता है और देवायुका पूर्वकोटिके त्रिभागके प्रारम्भमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध हानेपर और फिर अन्तमें बन्ध हानेपर मनुष्योंके समान कुञ्ज कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर घटित हो जाता है। इसलिए यहाँ देवायुके अनुभागवन्धका अन्तर मनुष्योंके समान कहा है। चार जाति आदिके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय अोर उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल आघसे वतलाया है। वह यहाँ बन जाता है, अतः यह त्रोवके समान कहा है। तथा नारकीके त्रोर नरकमें जानके पूर्व त्रोर बादमें अन्तर्म हूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः अनुत्कृष्ट अनभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रोदारिकशरीर श्रादिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय ऋौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण आघसे बतलाया है, वह यहाँ भी बन जाता है। कारण कि इनका उत्कृष्ट अनुभागनन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव नारकीके होता है, अतः यह श्रोयके समान कहा है। तथा सम्यग्दष्टि तिर्यक्रके इनका बन्ध नहीं होता। पर यहाँ अन्तर लाना है अतः पूर्वकोटिके आयुवाले तिर्यक्रको मिण्यादृष्टि रख कर प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध करावे त्रौर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक सम्यग्दृष्टि रखकर अवन्धक रखे तो इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट आर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तरकाल आघसे कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, अतः श्रोघके समान कहा है। तैजसशरीर श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्ध चपकश्रे शिमें होता है और नपुंसकवेदमें इनके अनत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं है। कारण कि जो नपुंसकवेदी उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति करता है वह यदि लौटकर इनका बन्ध करता है तो बीचमें अपगतवेदी होकर फिर नपुंसकवेदी होनेके पूर्व मरकर देव होता है तो नपंसकवेदी नहीं रहता, श्रतः यहाँ इनके दोनों प्रकारके श्रन्तरका निषेध किया है। जो तीर्थंद्वर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला नपुंसकवेदी मनुष्य मरकर दूसरे तीसरे नरकमें उत्पन्न होता है

५७३. अवगद्वे० सव्वपगदीणं उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० उक्क० अंतो०। ५७४. कोधे पंचणा०-सत्तदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--चदुआयु०--पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अंतो०। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। णिद्दा-पचला-असादा०-णवणोक०--तिगदि--चदुजादि--ओरालि०--पंचसंठा०--ओरालि० अंगो०--छस्संघ०--अप्पसत्थ०४--तिण्णिआणु०--उप०--आदाव०--अप्पसत्थिव०--थावरादि०४--अथिरादिछ०--णीचा० उ० अणु० ज० एग०, उ० अंतो ०। सादा०-देवगदि०४--पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु० - पसत्थ०४--अगु०३--उज्जो० - पसत्थ० - तस०४--थिरादिछ० - णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। आहारदुग० उ० अणु० णित्थ अंतरं ।

उसके श्रान्तर्मु हूर्त काल तक इसका बन्ध नहीं होता, श्रतः इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रन्तर्मु हुर्त कहा है।

५७३. श्रपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमुं हूर्त है।

विशेषार्थं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रीणिसे उतरनेवाले अपगतवेदीक अन्तिम समयमें सम्भव है और शेप तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चपकश्रेणिमें सम्भव है, अतः सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तर का निषेध किया है। तथा उपशान्तमोहमें इनका बन्ध नहीं होता और इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्भ हूर्त है, अतः यहां इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुर्त कहा है।

५७४. क्रोधकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, चार आयु और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर भ्रम्य है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर भ्रम्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। निद्रा, अचला, असातावेदनीय, नौ नोकपाय, तीन गति, चार चाति, औदारिक-शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गापाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, उपघात, आतप, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगात्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त है। सातावेदनीय, देवगितचतुष्क, पञ्च निद्रयजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थक्कर और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महूर्त है। आहारकद्विक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। आहारकद्विक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। आहारकद्विक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ-यहाँ प्रथम और द्वितीय दण्डकमें अन्तर्मु हूर्तके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागवन्ध

^{1.} ता० प्रती याथि । श्रंत० श्रगु० ज० उ० श्रंतो० । अ श्रवगद० सम्वपगदीगां० उ० गाथि श्रंत० श्रगु० उ० ज० श्रंतो० अ [अप्तिश्वह्वान्तर्गतः पाठोऽधिकः] कोधे, श्रा० प्रती गाथि श्रंतरं । श्रगु० ज० प्रा०, उ० श्रंतो०, ज० उक्क० श्रंतो०, कोधे इति पाठः । २. ता० प्रती गाचा० उ० श्रगु० ज० प्० उ० । श्रगु० ज० उ० (?) श्रंतो० इति पाठः । ३. श्रा० प्रती० उ० गाथि इति पाठः ।

५७५. माणे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-पण्णारसक०-पंचंत० [कोध०भंगो।] णविर कोधसंजल० अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो०। मायाए पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-चोइसक०-पंचंत० [कोध०भंगो।] णविर कोध-माणसंज० अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो०। लोभे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-वारसक०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० श्रंतो०। अणु० ज० एग०, उ० वेसम०। णविर चत्तारिसंज० अणु० ज० एग०, उ० श्रंतो०। सेसाणं कोधभंगो।

कराके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रान्तमु हूर्त प्रमाण उत्कृष्ट श्रान्तरकाल ले श्राना चाहिए। प्रथम दण्डकमें अन्य सब प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। मात्र चार आयुका अन्तम् हर्त कालतक ही बन्ध होता है, फिर भी इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई अन्य सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, अतः इनके अनु-त्कृष्ट ऋनुभागबन्धक। जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त कहा है। रहीं निद्रा श्रौर प्रचला दो प्रकृतियाँ सो कोध कपायसे उपशमश्रे शिपर चढ़े हुए जीवके इनकी बन्धव्युच्छित्ति कराकर कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक अन्तर्मु हूर्त कालतक उपशमश्रे शिमं रख-कर मरण करात्रे तथा क्रोधकपायके साथ ही देवपर्यायमें उत्पन्न कराकर इनका बन्ध करावे। इस प्रकार यहाँ निद्रा श्रीर प्रचलाकं श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय स्त्रादि तथा आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रीणिमें होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा सातावेदनीय त्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके त्रनुत्कृष्ट त्रानुभागवन्थका जघन्य त्रान्तर एक समय और उक्कष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है और आहारकद्विकका बन्ध करनेवाला अप्रमत्त-संयत प्रमत्तसंयत होकर पुन: जवतक अप्रमत्तसंयत होकर आहारकद्विकका वन्ध करता है तबतक क्रोधकपाय वदल जाता है, अतः यहाँ आहारकद्विकके अनुत्कृष्ट्रअनुभागवन्धके अन्तरकालका भी निपेध किया है।

प्रज्या. मानकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिश्यात्व, पन्द्रह कपाय और पाँच अन्तरायका भङ्ग कोधकपायके समान है। इतनी विशेषता है कि कोधसंज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। मायाकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिश्यात्व, चौदह कपाय और पाँच अन्तरायका भङ्ग कोधकपायके समान है। इतनी विशेषता है कि कोध और मानसंज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। लोककपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिश्यात्व, वारह कपाय और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म के समन है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग कोधके समान है।

विशेषार्थ—मानकषायमें क्रोधसंज्वलनकी, मायाकषायमें क्रोध श्रीर मान संज्वलनकी तथा लोभकषायमें चारों संज्वलनोंकी बन्धव्युच्छित्ति होकर इन कपायोंका सद्भाव बना रहता है, श्रतः कोई जीव इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद एक समयतक उपशमश्रेणिमें रहकर दूसरे समयमें विविश्वित कषायके साथ मरकर देव हो जावे या श्रन्तमुई हूर्तकालतक उपशमश्रेणिमें रहकर ५७६. मिद-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०--भय०-दु०-अप्प-सत्थ०४—उप०-पचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। सादौ०-पंचिदि०-समचदु०--पर०-उस्सा०-पसत्थिव०-तस०४-थिरादिछ० उ० णित्थ अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। असादा०-छण्णोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० अणु० ओघं। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्सर--अणादे०--णीचा० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपिलि० देस्०। तिण्णिआयु०-णिरयगदि-णिर-याणु० उक्क० अणु० ज० एग०, उ० अणंतका०। तिरिक्खायु० ओघं। तिरिक्ख-गदि-तिरिक्खाणु० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० एकत्तीसं० सादि०। मणुस-गदि०३ उ० णित्थ अंतरं। अणु० ओघं। देवगदि०४ उ० णित्थ अंतरं। अणु० ओघं। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ [उक्क०] आंघं। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। ओरालि०--ओरालि०अंगो०--चज्जरि० उ० णित्थ अंतरं। अणु० तेत्तीसं० सादि०। ओरालि०--ओरालि०अंगो०--चज्जरि० उ० णित्थ अंतरं। अणु०

विविच्चित कपायके साथ मर कर देव हो जावे तो विविच्चित कपायमें उन उन प्रकृतियों के अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्न प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। शेप कथन कोधकपायके समान है यह स्पष्ट ही है।

५७६. मत्यज्ञानी त्र्यौर श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायक उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका भङ्ग त्रोधके समान है। अनुष्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय हैं। सातावेदनीय, पञ्चोन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायागित, त्रसचतुष्क अौर स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर त्रान्तमु हूर्त है। श्रासातावेदनीय, छह नोकपाय, अस्थिर, श्रशुभ श्रोर अयशाःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रक उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम तीन पत्य है। तीन आयु, नरकर्गात और नरकरात्यानुपूर्वीक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यक्रायुका भङ्ग त्रोघके समान हैं। तिर्यञ्चगति त्रौर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग श्राघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। मनुष्यगतित्रिककं उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग त्राघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग श्रोघकं समान ह। चार जाति, श्रातप श्रौर स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट त्रनुभागबन्धका भङ्ग त्रोचके समान है। त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। ऋौदारिकशरीर, ऋौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वत्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतो बेस॰ सादि॰। पंचिं॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ देवगदि॰४ ग्रात्थि इति पाठः। ३. ता॰ भा॰ प्रत्योः थावरादि४ भोघं इति पाठः।

ज॰ एग॰, उ॰ तिण्णिपलि॰ देम्र० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि॰ उ॰ अणु० णित्थे श्रंतरं । उज्जो० उ० णित्थ श्रंतरं । अणु० ज० एग०, उ० एकत्तीसं० सादि० ।

अनुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम तीन परुय है। तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रीर त्रानुत्कृष्ट त्रानु-भागवन्थका अन्तरकाल नहीं है। उद्योतके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्थका श्रान्तरकाल नहीं है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्थका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर साधिक इकतीस सागर है।

विशेषार्थ-श्रोघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय कहा है। वह इन दोनों श्रज्ञानोंमें वन जाता है, श्रतः यह श्रोघके समान कहा है। यहाँ सातांबदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, स्रतः इनके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्धके स्रन्तरकालका निपेध किया है। किन्त ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका जघन्य ऋन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहर्त कहा है। असातावेदनीय आदिका एक समयके अन्तरसे अर कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध हो यह सम्भव है, खोघसे भी यह अन्तर इतना ही उपलब्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ऋोघके समान कहा है । परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके ऋतुकृष्ट ऋतुभाग-बन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुतं स्रांघसे कहा है। यहाँ भी यह बन जाता है, श्रतः यह भा श्रोघके समान कहा है। नपुसकवेद श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल ओघसे कहा है। वह यहाँ भी बन जाता है. अतः यह भी अोवके समान कहा है। तथा पर्याप्त भोगभूमियांके इनका बन्ध नहीं होता श्रीर यह काल कुछ कम तीन पर्य है, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। अनन्त काल तक तिर्यञ्ज पर्यायमें रहते हुए तीन ऋायु ऋादिका वन्ध प्रारम्भ न भी हो, क्योंकि तिर्यक्कोंमें एवेन्द्रियोंकी मुख्यता है ऋौर ये एक मात्र तिर्यञ्जायका ही बन्ध करें। तथा कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इन प्रकृतियोका उत्कृष्ट अनुभागवन्य हां श्रीर मध्यमें न हो यह सम्भव है श्रतः यहां इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। इसी प्रकार तिर्यञ्जायके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका अन्तरकाल अनन्त काल घटित करना चाहिए। तथा इसके अनुत्कृष्ट अनुभाग-वन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौं सागरपृथक्त्वसे अधिक नहीं प्राप्त होता। कारण कि तिर्येख्न पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है। स्रोघसे भी तिर्यक्रायुक्त उत्कृष्ट स्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर इतना ही है, अतः यह प्ररूपणा श्रोघके समान की है। तिर्यक्रगतिद्विकके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धका श्रोघसे जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्तकाल कहा है। वह यहाँ बन जाता है, अतः यह अांघके समान कहा है। तथा नौवें प्रैवेयकमें इकतीस सागर काल तक और वहाँ जानेके पूर्व श्रौर बादमें श्रन्तमु हूर्त कालतक इनका बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। मनुष्यगति श्रादिका उत्कृष्ट श्रन्-भागवन्य सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके श्चन्तरकालका निपंध किया हैं। श्रोघसे इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर त्रसंख्यात लोकप्रमाण घटित करके बतला श्राये हैं । यहाँ भी वह बन जाता है, अतः यह त्रोघके समान कहा है। संयमके अभिमुख हुए जीवके देवगति चारका उत्कृष्ट अनु-

१. मा॰ प्रतौ उ॰ ग्रस्थि इति पाठः।

४७७. विभंगे पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०--भय--दु०--अप्पसत्थ०४-जप०-पंचंत०- उ० ज० एग०, उ० तेत्तीसं ० देसू० । अणु० ज० एग०, उ०
वेस० । सादा०--दुगिद -पंचिदि०-दोसरीर०-समचदु०-दोत्रंगो०--वज्जरि०-दोआणु०पर०-जस्सा०-जज्जो०--अप्पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ०--जचा० उ० णित्थ झंतरं ।
अणु० ज० एग०, उ० झंतो० । असादा०-सत्तणोक०-अथिरादि०३ उँ० ज० एग०, उ०
तेत्तीसं० देसू० । अणु० ज० एग०, उ० झंतो० । णिरय-देवायु० मणजोगिभंगो।
तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० झंतो० । अणु० ज० ए०, उ० झम्मासं
देसू० । णिरयगदि--तिण्णिजादि--णिरयाणु०-सुहुम-अपज्जत्त-साधा० उ० अणु० ज०

भागवन्ध होता है, श्रतः इसके अन्तरकालका निर्णेध किया है। तथा श्रांघसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। वह यहाँ बन जानेसे श्रोघके समान कहा है। श्रोघसे चार जाति आदिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जो अन्तर कहा है, वह यहां भी वन जाता है, अतः यह भी श्रोघके समान कहा है। तथा नरकमें और नरकमें जानेके पूर्व और निकलनेके वाद अन्तर्म हूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। श्रोदारिकशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकं अन्तरका निर्णेध किया है। तथा पर्याप्त अवस्थामें भोगभूमिमें इनका वन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निर्णेध किया है। संयमके अभिमुख हुए जीवके तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निर्णेध किया है। स्थातका उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निर्णेध किया है। स्थातका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध को अनिमुख हुए नारकीके होता है, अतः इसके अन्तरका निर्णेध किया है। तथा इसका नीवें प्रवेयकमें और वहाँ जानसे पूव और वादमें अन्तरका निर्णेध किया है। तथा इसका नीवें प्रवेयकमें और वहाँ जानसे पूव और वादमें अन्तरका तका तक वन्ध नहीं होता, अतः इसके अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है।

पूछ्छ. विभङ्गज्ञानमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, दो गित, पक्के न्द्रिय जाित, दो शािर, समचतुरक्तसंस्थान, दो आङ्गोशङ्ग, वऋपभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विद्यायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उद्योत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। तिर्यक्कायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। तिर्यक्कायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कुछ उपनार अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर हुई है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर हुई है। नरकगित,

१. ता॰ प्रतो पंचंत॰ उ॰ तेत्तीसं इति पाठः । २ ता॰ प्रतो उ॰ बेस॰ सादि॰ । दुर्गाद इति पाठः । ३. मा प्रतो म्रथिरादिछ्॰ उ॰ इति पाठः ।

ए०, ७० त्रंतो० । तिरिक्खग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०--अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० असाद०भंगो । एइंदि०-आदाव-थावर० ७० ज० एग०, ७० बेसा० सादि० । अणु० ज० ए०, ७० श्रंतो०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ७० अणु[°]० णित्थ श्रंतरं ।

५७⊏़ आभि०-सुद्०--ओधि० पंचणा०--छदंसणा०--सादासाद०-चढुसंज०-

तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूद्रम, अपर्याप्त श्रीर साधारणके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग-वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। तियञ्जगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगिति, दुभग, दुःस्वर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रका भङ्ग श्रसातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, श्रातप श्रीर स्थावरके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। तैजसशरीर, कामणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध-का श्रन्तरकाल नहीं है।

विशेपार्थ—विभङ्गज्ञानक। उत्कृष्टकाल युद्ध कम तेतीस सागर है। इसके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें पाँच ज्ञानावरण त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करानेपर इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है यह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका निपंध किया है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर न कहनेका कारण जानना चाहिए। मात्र सातादण्डकमें मनुष्यगति स्त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्तवके अभिमुख हुए देव नारकीके जानना चाहिए। य सब प्रकृतियाँ श्रीर श्रसाता श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्तं कहा है। नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्रमसे तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त तिर्यक्च और मनुष्यके तथा मर्विवशुद्ध मनुष्यके होता है और ऐसे जीवोंके विभङ्ग-ज्ञानका काल अन्तम् हूर्त है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल मनोयोगी जीवोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। तियञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध तिर्यक्तों और मनुष्योंके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव त्रौर नारकियोंके भी सम्भव है, त्रातः इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका जघन्य अन्बर एक समय त्र्यौर उत्कृष्ट त्र्यन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। नरकगति त्र्यादि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके उत्कृष्ट त्र्यौर त्र्यनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य त्र्यन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त कहा है। तिर्यक्रगति श्रादिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रसातावेदनीयके समान वन जानेसे वह उसके समान कहा है। एशान कल्प तक एकेन्द्रियजाति श्रादिका बन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त कहा है।

५७८. त्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अविधज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह

१. ता॰ प्रती गिमि॰ घ्रसु॰ इति पाठः।

पुरिस०-अरदि-सोग-भय--दु०--पंचिदि०--तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थापसत्थ०४अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर--सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ञ०-जस०-अजस०णिमि०--तित्थ०--उच्चा०--पंचंत० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० ए०, उ० अंतो०।
अहक० उ० णित्थ अंतरं । अणु० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे० । हस्स-रिद० उ० ज० ए०, उ० ब्राविटि सादि०। [अणुक०] ओघं। मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० ब्राविटि सादि०। अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं सादि०। देवायु० उ० ज० ए०, उ० ब्राविटि देसू०। अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं सादि०। मणुसगदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० ब्राविट सादि०। अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी सादि० दोहि समएहि०। देवगदि०४-आहारदु० णित्थ अंतरं०। अणु० ज० अंतो०, उ० तेतीसं० सादि०।

दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुपवेद, श्ररति, शोक, भय जुगुप्सा, पञ्चो न्द्रियजाति, तेजसञ्जरीर, कार्मणञ्जरीर, समचतुरस्रसंथान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, ऋस्थिर, शुभ, ऋशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशाकीति, अयशाकीति, निर्माण, तीर्थङ्कर, ब्चगोत्र और पाँच अन्त-रायके उत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका त्रान्तरकाल नहीं है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट त्रान्तर त्रान्तर्मु हुर्न है। त्राठ कपायों हे उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। अनत्कृष्ट अनभागवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्महर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। हास्य श्रीर रितके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्चन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवायुके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर दो समय श्राधिक एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्क स्रोर आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका मिध्यात्वके अभिमुख हुए जीवके और साता आदिका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकाल निषेध किया है। तथा इनमें जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं उनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त है यह तो स्पष्ट ही है। शेप रहीं यहाँ ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ सो उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होनेके बाद एक समय या अन्तर्भ हूर्त काल तक इन्हें उपशमश्रेणिमें रख कर एक समयवालेका मरण

१. ता॰ प्रती ए० छावट्टि॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती उ॰ ज॰ ए॰ छावट्टि, স্থা॰ प्रती उ॰ ए॰, उ॰ छावट्टि॰ इति प।

५७६. मणपज्ज० पंचणा०--छदंसणा०-चहुसंज०--पुरिस०-भय-हु०-देवगदि-पंचिदि०-चहुसरीर-समचहु०-दोश्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४ -सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० णित्थि श्रंतरं । अणु०

कराके श्रीर श्रन्तमु हूर्तवालेको नीचे उतार कर श्रीर उनका बन्ध कराके इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त ले श्राना चाहिए । श्राठ कषायोंका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिध्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निर्पेध किया है। तथा संयतासंयत अौर संयतका जघन्य काल अन्तर्म हर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महूर्त और उत्क्रष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। इन ज्ञानोंकी काय-स्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हास्य श्रीर रितका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध हो यह सम्भव है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर कहा है। श्रन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर हो वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका श्रोघके समान जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हर्त बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। देवके मनुष्यायुका अनुऋष्ट अनुभाग-बन्ध करके. पूर्वकोटिके श्रायुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर श्रानन्तर तेतीस सागरकी श्रायुवाल। देव होकर श्रायके श्रन्तमें पुनः मनुष्यायुका बन्ध करने पर मनुष्यायुके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग बन्धका उत्क्रष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। देवायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है सा इसका कारण यह है कि सम्यक्तवकी छ्यासठ सागरसे श्रिधिक जो कायस्थिति बतलाई है उससे कुछ पूर्वकोटियाँ ही ली गई हैं और ऐसा जीव नियमसे चायिकसम्यग्दृष्टि होता है, अतः उसका अन्तिम भव देव न होकर मनुष्य ही होगा। किन्तु इस भवमें त्रायवन्ध सम्भव नहीं है, त्रात: इससे देव भवका अन्तर देकर पिछले मनुष्यभवमें देवायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कराना होगा। विचार कर देखने पर यह काल छ्यासठ सागरसे कम होता है, अतः यहाँ देवायुके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर माधिक तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। कारण कि प्रथम श्रीर तीसरे मनुष्य भवमें देवायका ब्रानुटकृष्ट ब्रानुभागवन्ध करानेसे ब्रीर बीचमें तेतीस सागर काल तक देव पर्यायमें रखनेसे यह श्चन्तरकाल त्रा जाता है। एक पूर्वकोटि मनुष्य भवका श्रीर दो समय उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धके इस प्रकार मनुष्यगतिपञ्चकके श्रनुत्रृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय श्रधिक एक पूर्व-कोटि कहा है। देवगति त्रादिका उत्कृष्ट त्रानुभागवन्य क्षपकश्रीणमें होनेसे इसके त्रान्तरका निषेध किया है। तथा उपरामश्रे शिमें इनकी बन्धव्य च्छित्ति हो जाने पर उतरते समय पुनः इनका बन्ध अन्तमु हूर्तके अन्तरसे होता है और यदि इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद जीव मर कर तेतीस सागरकी श्रायुवाला श्रद्दमिन्द्र हो जावे तो वहांसे श्राने पर देवगतिचतुष्कका श्रीर संयम प्रहण करने पर श्राह।रकद्विकका बन्ध सम्भव है, मध्यमें नहीं, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

५७६. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पक्कोन्द्रियजाित, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-

जि॰ उ॰ श्रंता १०। सादासाद०--अरिद-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०--अजस०
णित्थ उ॰ श्रंतरं । अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ श्रंतो॰ । इस्स-रिद॰ उ॰ ज॰ ए॰, उ॰
पुन्वकोडी देसू॰। अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ श्रंतो॰ । देवायु॰ उ॰ अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰
पगिदि॰श्रंतरं । एवं संजदा॰।

५८०. सामाइ०-छेदो० धुविगाणं उ० अणु० णितथ श्रंतरं । सेसाणं मणपज्जव-भंगो । परिहार० सामाइगच्छेदा० भंगो । सुहुमसंप० सव्वाणं उ० अणु० णितथ श्रंतरं । संजदासंजदे परिहार०भंगो । णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ ।

मुंहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रितिक उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकारि है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुहूर्त है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। इसी प्रकर संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेपार्थ-यहाँ प्रथम दण्डकमं कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध श्रसंयमके श्रभिमुख हुए जीवके श्रीर सातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध चपकश्रीणमें होता है, ऋतः इसके ऋन्तरकालका निषंध किया है। तथा इनका अपशमश्रेणिसे उतरते समय ऋन्त-मुंहूर्तके अन्तरसे बन्ध कराने पर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तम् इतं प्राप्त होता है, श्रतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सात।वेदनाय श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमं होता है और असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख जीवके होता है. अतः इनके भी उत्कृष्ट अनुभागबन्धके श्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हूर्त कहा है। कुछ कम पूर्वकाटिके प्रारम्भमें त्रीर त्र्यन्तमें हास्य त्रीर रितका उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्य सम्भव होनेसे इसका उत्कृष्ट त्र्यन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा ये भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, ख्रतः ख्रनुत्कृष्ट खनुभागवन्यका जवन्य त्रान्तर एक समय और उत्कृष्ट त्रान्तर श्रान्तमु हूर्त कहा है। यहाँ देवायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रानुत्कृष्ट श्चनुभागवस्थका श्रन्तर एक भवकी श्रपेक्षा ही घटित किया जा सकता है श्रीर प्रकृतिबन्धमें इसका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण बतलाया है। वही यहाँ दोनों बन्धोंका बन जाता है, अतः यह प्रकृतिबन्धक अन्तरके समान कहा है। संयत जीवोंमें मनःपर्ययज्ञानी जीवोंसे इस ऋन्तर प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है, इसालए वह उनके समान कही है।

पत्न सामायिक श्रीर छेदं।पस्थापनासंयन जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेव प्रकृतियोंकः भङ्ग मनःप्रययज्ञानके समान है। परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक श्रीर छेदं।पस्थान।संयत जीवोंके समान भङ्ग है। सूद्भ-साम्गरायिकसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

१. ता॰ मा॰ प्रत्योः ज॰ ए॰, उ॰ ग्रंतो॰ इति पाठः । २. मा॰ प्रतौ ग्रिथ ग्रंतरं इति पाठः । ४४

५८१. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०--अप्पसत्य०४--छप०पंचंत० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-- मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थिदंडओ णवुंसगभंगो। सादा०-पंचिदि०-समचदु०-पर०- उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ० उ० णित्थ झंतरं। अणु० ओघं। असादा०-पंचणोक०-अथिर--अधुभअजस० उ० अणु० ओघं। तिण्णिआयु०-बेडिव्वयछ०-मणुसगिद्पंचग० उ० अणु०
ओघं। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० अणंतका०। चदुजादि-आदाव-थावरादि४
उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। तेजा०-क०--पसत्थव०४-अगु०-णिमि० उ० अणु० णित्थ झंतरं। उज्जो० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं०
देस्र०। [तित्थय० उ० ओघं। अणु० ज० उ० झंतो०।] उच्चा० उ० अणु० ओघं।

विशेपार्थ—जो सामायिक श्रार छेदोपस्थानासंयमक साथ उपशमश्रोणि पर चढ़ता है उसके नौंबेके श्रागे संयम बदल जाता है, श्रतः यहाँ घु वयन्धवाली प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध अन्तरका निपेध किया है। इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अपकश्रोणिमें होता है, श्रतः इसका श्रन्तर काल सम्भव नहीं यह स्पष्ट ही है। शेप प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जो भङ्ग मनःपर्ययज्ञानिक कहा है वह यहाँ सम्भव है, अतः यह मनःपर्ययज्ञानक समान कहा है। सूदम-साम्परायसंयममें प्रशस्त प्रकृतियों का अपकश्रोणिमें श्रौर अप्रशस्त प्रकृतियों का उत्तरते समय श्रान्तम समयमें उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध होता है, श्रतः यहां सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर सम्भव न होनेसे उसका निपेध किया है। परिहारिक्शुद्धिसंयतों के सामायिक छेदोपस्थापना संयतों के समान श्रोर संयत।संयतों के परिहारिक्शुद्धिसंयतों के समान श्रपने श्रपने स्वामित्वके श्रनुसार सब व्यवस्था बन जाती है, श्रतः यह कथन उनके समान कहा है। मात्र जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उसे ध्यानमें लेकर यह व्यवस्था बनानी चाहिए।

पूदश. असंयतोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रांघके समान है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर दो समय है। स्त्यान-गृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार श्रौर स्त्रीवेददण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। साताबेदनीय, पञ्चोन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति. त्रसचतुष्क और स्थिर त्रादि छहके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रसातावेदनीय, पांच नोकषाय, श्रस्थिर, श्रशुभ और श्रयशः कीतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। तीन श्राय, वैक्रि-यिक छह और मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्त काल है। चार जाति, त्रातप त्रीर स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका त्रान्तर श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनभागबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है । तैजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रीर निर्माण के उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। उद्योतके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्चन्तर श्रोघके समान है। श्चनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोधके समान

१. ता॰ प्रती मणुसगदि० (१) ड॰ इति पाठः। २. ता॰ ग्रा० प्रस्योः चदुसंघ० इति पाठः।

५⊏२. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु० ओघं । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

हैं। तथा श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट श्रान्तर अन्तर्मु हूर्त हैं। उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है।

बिशेषार्थ--- स्रोघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट स्रतुभागवन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल कहा है। श्रसंयतोंकी कायस्थिति श्रनन्त काल होनेसे उनके यह श्रन्तर बन जाता है, श्रतः यह श्रोघके समान कहा है। परन्तु श्रसंयतींके इनका निरन्तर बन्ध होते रहनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। यहाँ स्त्रीवेद्दण्डकसे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संइनन, तिर्येख्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशन्त विहार्थागति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगात्र ये १६ प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनके तथा स्त्यानगृद्धि तीन आदिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रोयके समान श्रोर अनुन्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर नपुंसकवेदी जीवोंके समान यहां भी बन जाता है, अतः यह उनके समान कहा है। सातावेदनीय त्रादिका उत्कृष्ट त्रानुभागबन्ध यहाँ संयमके त्राभिमुख हुए जीवके हाता है, त्रातः यहां इसके अन्तर कालका निर्पेध किया है। तथा ये सब परावतमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके श्चनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रोधके समान जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् इर्त बन जानेसे वह श्रोधके समान कहा है। ओघसे श्रसातावेदनीय श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। यह यहाँ भी सम्भव है, अतः यह श्रोघके समान कहा है। इसी प्रकार श्रागे जिन प्रवृतियोंके उत्कृष्ट या त्रानुत्कृष्ट या दोनोंका श्रन्तर श्रोघके समान कहा है वह देखकर घटित कर लेना चाहिए। देवायुका श्रसंयतोंक एक समयके श्रन्तरसे त्रौर श्रनन्त कालके त्रान्तरसे उत्कृष्ट और त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्ध सम्भव है, श्रतः इसके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्वका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। असंयतोंमें तेतीस सागर काल तक नारक पर्यायमें रहते हुए और वहांसे आकर तथा जानेके पूर्व अन्तम् हुर्त काल तक चार जाति आदिका बन्ध नहीं हाता, अत: इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तैजस-शारीर आदि ध्रवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं श्रीर इनका उत्कृष्ट श्रतुभागवन्ध संयमके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुमागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। नारक सम्यग्दृष्टिके कुछ कम तेतीस सागर काल तक उद्यांतका वन्ध नहीं होता, श्रतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। संयमके अभिमुख हुए जीवके तीर्थ-ङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध होता है, श्रतः श्रोचके समान इसके श्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा द्वितीय श्रीर तृतीय नरकमें जानेवाला जीव मिध्यादृष्टि होकर इसका अन्तर्मुहर्त काल तक बन्ध नहीं करता, श्रतः इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमु हुर्त कहा है।

५८२. चतुरर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचतुर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है और अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—त्रसपर्याप्त प्रायः चलुदर्शनी होते हैं। मात्र द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीव चलुक दर्शनी नहीं होते। अचलुदर्शन व्यापक मार्गणा है। इसमें एकेन्द्रियादि सभी जीव सम्मिलित हैं और अवधिदर्शन अवधिज्ञानका सहचर है, अतः चलुदर्शनी जीवोंका असपर्याप्तकोंके समान, अचलुदर्शनी जीवोंका ओघके समान और अवधिदर्शनी जीवोंका अवधिज्ञानी जीवोंके समान

प्र= ३. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा० बारसक०-भय-दु० अप्पसत्थ०४—उप०पंचंत० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अणु० ज० ए०, उ० बेसम० । थीणगिद्धि०३—मिच्छ०---अणंताणुवं०४—णवुंस०---हुंडसंठा०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०, श्रंतोग्रुहुत्तं लभदि पविसंतस्स । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं देस्० । सादा०--पुरिस०--हस्स-रदि--पंचि०ओरालि०--समचदु०--ओरालि०श्रंगो० --वज्जरि०--पर०--उस्सा०--पसत्थ०--तस०४ —
थिरादिछ० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस्० । अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० ।
असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ०-अजस० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०।अणु०
सादभंगो० । इत्थि०--तिरिक्ख-मणुस०-चदुसंठा०-पंचसंघं०-दोआणु०-उच्चा० उ० अणु०
ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस्० । णिरय-देवायु० उ० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अणु०
ज० ए०, उ० बेस० । तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अणु० ज०
ए०, उ० बस्मासं देस्० । णिरयग०-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि४

भङ्ग है यह स्पष्ट ही है।

५५३. कृष्यलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, ऋप्र-शस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है त्र्योर उत्कृष्ट त्रान्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार, नपुं-सकवेद, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय श्रोर नीचगेत्रके उत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है, क्योंकि प्रवेश करनेवालेके अन्तमु हुर्त प्राप्त होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, पुरुपवेद, हास्य, रति, पक्चोन्द्रिय जाति, त्रौदारिकशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, त्रौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, वत्रपेभनाराच संहनन परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुष्क स्रौर स्थिर स्रादि छहके उत्कृष्ट स्रनुभागवन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त है। श्रसातांवदनीय, श्ररति, शोक, श्रस्थिर, श्रशुभ श्रीर श्रयशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रनार एक समय है श्रीर ब्त्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, तियञ्च-गति, मनुष्यगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दा आनुपूर्वी और रचगात्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय हें और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर ह । नरकायु श्रीर देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त हैं। श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। तियस्त्रायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट त्रनुभागबन्धका जयन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तम् हुत् है। अनुत्रृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना हैं। नरकगति, देवगति, चार जाति, दो त्रानुपूर्वी, स्नातप श्रीर स्थावर स्नादि चारके उत्कृष्ट श्रीर

१. ता० था० प्रत्योः चहुसँब० इति पाठः ।

ड॰ अणु॰ ज॰ ए॰, ड॰ श्रंतो॰। वेडिव्वि॰-वेडिव्विश्रंगो॰ ड॰ ज॰ ए॰, ड॰ श्रंतो॰। अणु॰ ज॰ ए॰, ड॰ वावीसं साग॰। [तेजा॰-क॰-पसत्थवण्ण ४–अगु॰-णिमि॰ ड॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ तेत्तीस देस्व॰। अणु॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ बेसम॰।] उज्जो॰ ड॰ ज॰ श्रंतो॰, ड॰ तेत्तीसं देस्व॰। अणु॰ ज॰ एग॰, ड॰ तेत्तीसं देस्व॰। तित्थय॰ णिरयायुभंगों।

अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। वैकिन्यिकशारीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर आन्तमुं हूत है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर है। तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर अन्तर है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग नरकायुके समान है।

विशेषार्थ-कृष्णलश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, अतः यहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट ऋनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं उनके उत्कृष्ट ऋनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। कारण कि कृष्णालेश्याके प्रारम्भमें श्रौर श्रन्तमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध कराके इतना अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका अविरत सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता है। अब किसी कृष्णलेश्यावालेने इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्तर्म हर्तमें पुनः मिध्यादृष्टि होकर इनका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध किया तो इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ प्रवेश करनेवालेके अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है यह वचन कहा है। कृष्णलेश्यामें सम्यक्त्वका काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः यहां स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिके श्रनुत्रृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्रृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। सातावेद-नीय श्रादिके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहनेका यही कारण है। मात्र यहाँ सम्यरदृष्टिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें ही इनका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध कराके यह श्रान्तरकाल लाना चाहिए। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त कहा है। श्रीर इसा कारण असातांत्रदनीय आदिके अनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त होनेसे वह सातावेदनीयके समान कहा है। स्त्रीवद श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध श्रपने स्वामित्वके श्रनुसार नरकमें ही होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रान्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यद्यपि स्त्रीवेद, चार सस्थान श्रीर पाँच संहननका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध तीन गतिके जीव करते हैं पर नरकके सन्मुख कृष्ण-लेश्यावालेके इनका बन्ध नहीं होता. अतः यह कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके मनुष्यद्विक स्रोर उच्चगोत्रका स्रोर सम्यग्दृष्टिके रोषका बन्ध न होनेसे इनके स्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर भी कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तिर्यञ्जों श्रीर मनुष्योंमें कुष्ण-लेश्याका काल श्रन्तमुं हूर्त है, श्रतः यहाँ नरकायु श्रीर देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त कहा है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका भी उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध तियञ्च श्रीर

१. ता॰ प्रतौ खिरयभंगो इति पाठः ।

५८४. णील-काऊणं पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्था-पसत्थ०४-अगु०-उप०णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० बेस०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थिवे०-णवुंस०-तिरिक्ख०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०--उज्जो०--अप्पसत्थ०--दूभग०--दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० अणु० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। सादासाद०-पंचणोक०-मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-समचदु०-ओरालि० अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पर०-उस्सा०--पसत्थवि०--तस०४-थिराथिर-सुभासुभ--सुभग--सुस्सर--आदे०-जस०-

मनुष्यके ही होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हर्त कहा है। मात्र इनका अनुतकृष्ट अनुभागवन्ध नरकमें भी होता है, अतः इनके अनुतकृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। नरकगति आदिका उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध तियक्क और मनुष्यके होता है, तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं. अतः इनके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त कहा है। इसी प्रकार वैक्रियिकद्विकके उत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त घटित कर लेना चाहिए। जो जीव सातवें नरकसे निकलेगा वह नियमसे मिध्यादृष्टि तिर्यक्त होता है अतः यह पहिले अन्तर्म हर्तमें वैक्षियिकद्विकका बन्ध नहीं कर सकता है श्रीर उसके बाद उमके लेश्या बदल जायेगी। किन्तु छठें नरकसे सम्यक्त सिंहत भी निकल सकता है श्रीर सम्पक्त्य सिंहत मनुष्य श्रपर्याप्त कालमें भी वैक्रियिकद्विकका बन्ध करेगा. अतः अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर वाईस सागर कहा है। तैजसशरीर आदिका सम्यग्दृष्टि नारकीक उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है श्रीर ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है और इनक उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर दो समय कहा है। सातचें नरकमें सम्यक्तवके अभिमुख हुए जीवके उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है. अतः इसके उत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूतं कहा है। तथा सम्यग्दृष्टिके इसका बन्ध नहीं होता. श्रतः इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। कृत्णलेश्यामें तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्योंके ही होता है, अतः इसके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका अन्तर नरकायके सनान घटित हो जानेसे वह उसके समान कहा है।

धूद्ध. नील श्रीर कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम सत्रह सागर श्रीर कुछ कम सात सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, क्विंबद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग- वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम सत्रह सागर श्रीर कुछ कम सात सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, पाँच नोकपाय, मनुष्यगति, पञ्च निद्रयजाति, श्रीदारिकशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्यभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रञ्जभ, सुभग,

अजस०-उच्चा० ड० णाणा०भंगो। अणु० ज० ए०, ड० श्रंतो०। चदुआयु०-वेडिवय-छ०-चदुजादि--आदाव--थावरादि०४-तित्थ० किण्णभंगो । णवरि काड० तित्थ० णिरयोघं।

४८५. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ७० ज० ए०, ७० वे साग० सादि० । अणु० ज० ए०, ७० वेसम० । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणुवं०४-इत्थि०-णवुस-तिरिक्ख-एइंदि०--पंचसंठा०-पंच-संघ०-तिरिक्खाणु०-आदावुज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० ७० अणु० ज० एग०, ७० वे साग० सादि० । सादा०-पंचिदि०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-थिरादिछ०-उच्चा० ७० णित्थ अंतरं । अणु० ज० ए०, ७० श्रंतो० । असादा०पंच-

सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रोर उचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्ते है। चार श्रायु, वैक्रियिक छह, चार जाति, श्रातप, स्थावर श्रादि चार श्रीर तीथङ्कर प्रकृतिका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि कापातलेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग सामान्य नारकियों के समान है।

विशेषार्थं—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध नारकी के होता है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर कहा है। तथा दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का सम्यन्धिके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुरुष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी इतना ही कहा है। यद्यपि उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध तीन गतिके जीवके होता है पर नरक के सन्मुख जीवके नहीं होता। अतः इसे भी दूसरे दण्डक में परिगण्ति किया है। साता आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध नारकी के ही होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावरण के समान कहा है और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। चार आयु आदिका कृष्ण्यलेश्यामें जैसा स्पष्टीकरण किया है उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। उससे यहाँ कोई विशेषता नहीं हैं, अतः यह कृष्ण्यलेश्याके समान कहा है। मात्र सामान्य नारिकयों में तीर्थ इर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जो अन्तर कहा है वह कापोतलेश्यामें ही घटित होता है, अतः कापोतलेश्यामें तीर्थ इर प्रकृतिका भङ्ग सामान्य नारिकयों के समान कहा है।

५८५. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशारीर, श्रप्रशस्त वर्ण चार, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार,
स्त्रीवेद, नपुंसक्रवेद, तिर्यञ्चगिति, एकंन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तियञ्चगत्यानुपूर्वी,
श्रातप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट
और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर
है। सातावेदनीय, पञ्चोन्द्रयजाति, समचतुरस्त संस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस, स्थिर आदि
छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका
जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाम,

णोक-मणुस०-ओरालि० श्रंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-अथिर-असुभ-अजस० उ० ज० ए०, उ० वे साग० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो०। तिरिक्त-मणुसायु० देवभंगा। देवायु० उ० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अणु० ज० ए०, उ० वेसम०। देवगदि०४ उ० णित्य श्रंतरं। अणु० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि०। तेजा०-कै०-आहार०दुग-पसत्थ०४-अगु०३-बादर--पज्जत--पत्ते०--णिमि०--तित्थ० उ० णित्थ श्रंतरं। अणु० एग०। पम्माए पदमदंहए ओरालियश्रंगोवंगो भाणिद्व्यो। पंचिद्दि०-तस० वेउव्वि० भंगो । सेसं तेउ०भंगो।

मनुष्यगित, श्रीदारि शारीर श्राङ्गापाङ्ग, वल्रष्यभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रस्थिर, श्रशुम श्रीर श्रयशःकार्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धक। जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धक। जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूते है। तिर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका भङ्ग देवोंक समान है। देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर काल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। तैजसशरीर, कामणशरीर, श्राहारकद्विक, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघृत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रीर तीर्थङ्करके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रनुनागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर काल एक समय है। पद्मलेश्यामें प्रथम दण्डकमें श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग कहलाना चाहिए। पञ्च निद्रय जाति श्रीर त्रसका भङ्ग वैक्रियिकशरीरके समान है। तथा शेष मङ्ग पीतलेश्याके समान है।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डक श्रीर दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध पीतलेश्याके प्रारम्भमें और अन्तमें हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर कहा है, तथा स्त्यानगृद्धि त्र्यादिका बन्ध सम्यग्द्रष्टिके नहीं होता, अतः आदिमें श्रीर अन्तमें मिध्यादृष्टि रखकर इनका बन्ध करानेसे इनके अनुस्कृष्ट श्रनुभागबन्धका भी उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर वन जाता है। सातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध ऐसे श्रप्रमत्तसंयतके होता है जो अ।गे वढ़ रहा है, श्रतः इसके उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्धके श्रन्तरका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, श्रतः इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूत कहा है। इसी प्रकार श्रसाता-वेदनीय आदिके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर काल घाटत कर लेना चाहिए। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर ज्ञानावरएके समान घटित कर लेना चाहिए। देवोंके तिर्यक्रायु श्रीर मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट त्र्यन्तर कुळ कम छह महीना घटित करके बतला श्राये हैं। वह यहाँ भी बन जाता है, त्र्यतः देवोंके समान कहा है । देवायुका उत्कृष्ट त्र्यनुभागवन्ध त्रप्रमत्तसंयतके होता है, स्त्रीर यहां पीतलेश्याका काल ऋन्तमुंहूत हे, ऋतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त कह। है। देवगतिचारक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्वामा सातावेदनीयके समान है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका निषध किया है। तथा सम्धरदृष्टि मनुष्यके साधिक

१. आ॰ प्रती ड॰ बेस॰ साग॰ तेजाक॰ इति पाठः। २. आ॰ प्रती पढमदंडओ इति पाठः। ३. ता॰ प्रती तेजभंगो इति पाठः।

४८६. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४उप०--अथिर--असुभ--अजस०--पंचंत० उ० ज० ए०, उ० अद्वारससा० सादि०।
अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो०। थीणगिद्धि०३—मिच्छ०-अणंताणु०४—इत्थि०-णवुंस०पंचसंठा०-पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दृभग--दुस्सर--अणादे०--णीचा० उ० ज० ए०, उ०
अद्वारससा० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० देस्०। सादा०--पंचिदि०तेजा०--क०--समचदु०--पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थवि०--तस०४—थिरादिछ०-णिमि०तित्थ०-उच्चा० उ० णिथ श्रंतरं। श्रणु० ज० ए०, उ० श्रंतो०। मणुमायु० उ० अणु०
ज० ए०, उ० झम्मासं देस्०। देवायु० उ० ज० ए०, उक्क० श्रंतो०। अणु० ज० ए०,
उ० बेसम०। मणुस०-ओरालि०-ओरालि०श्रंगो०-मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं
देस्०। अणु० ज० ए०, उ० वेस०। देवगदि०४ उ० णित्थ श्रंतरं। श्रणु० ज० श्रंतो०,

दो सागरके अन्तरसे इनका बन्ध सम्भव हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। देवगतिके समान तैजसशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है, अतः इनके भी उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका निष्ध किया है। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्धका यह काल एक समय है अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। पद्मलेश्यामें ओदारिकशरीरके साथ ओदारिक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध होता है, क्योंकि इसके एकेन्द्रियजाति और स्थावरका बन्ध नहीं होता, अतः यहां औदारिक आङ्गोपाङ्गका प्रथम दण्डकमें परिगणित करनेको कहा है। तथा पञ्चोन्द्रयजाति और त्रसका भी नियमसे बन्ध होता है, अतः इनका अन्तर वैकियिकशरीरके समान प्राप्त होनेसे उसके साथ इनकी परिगणना की है। शेप स्पष्ट ही है।

५ू⊏६. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, वारह कपाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अञ्चम, अयशाकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगात्रके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुझ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, पञ्चोद्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। मनुष्यगति श्रोदारिकशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका

१. श्रा॰ प्रतौ॰ ए॰ श्रंतो॰ इति पाठः।

ड॰ तेतीसं॰ सादि॰ । आहारदुग॰ उ॰ णत्थि श्चंतरं । अणु॰ ज॰ उ॰ श्चंतों॰ । वज्जरि॰ उ॰ ज॰ ए॰, उ॰ तेत्तीसं [देसू॰]।[अणु॰] ज॰ ए॰, उ॰ श्चंतो॰ ।

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय हैं। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। वज्जर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अन्त-र्मु हुर्त है।

विशेषार्थ-शक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादिका व स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सहस्रार करूप तक होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। तथा प्रथम दण्डकोक्त पाँच ज्ञानावरणादिका उपशमश्री णिकी श्रपेका श्रीर श्रसातावेदनीय श्रादि प्रष्टतियोंके परावर्तमान होनेके कारण इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त कहा है। तथा दूसरे वण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अन्तिम मैवेयक तक ही वन्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। यहाँ प्रारम्भमें श्रौर अन्तमें बन्ध कराके और मध्यमें अवन्यक रखकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। सानावेदनीय आदिका चपक श्रीणमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः इसके अन्तरका निपेध किया है। तथा इन सब प्रकृतियोंका उपशमश्रे णिमें अपना वन्धव्युच्छित्तिके वाद मरणकी अपेक्षा एक समय और वैसे अन्तर्मु हूर्त अन्तरकाल उपलब्ध होना सम्भव होनेसे इनकं अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध देवोंकं होता है श्रीर वहाँ त्रायुवन्धका ब्त्कुप्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है त्रात: यहाँ मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जवन्य स्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। देवायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मनुष्योंके होता है, त्रात: इसके उत्कृष्ट ऋनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहृतं कहा है। सर्वार्थसिद्धिके देवके मनुष्यगति त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध आयुके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवम्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क श्रीर श्राहारकद्विकका क्षपकश्रीणमें उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध होता है, श्रत: इसके श्रन्तरकालका निषेध किया है। तथा यहाँ मनुष्योंमें कमसे कम अन्तर्मु हुर्तके अन्तरसे ख्रीर अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे इनका वन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। किन्तु यहाँ आहारकद्विकका अन्तमु हूर्तके बाद ही पुनः बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और **उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हूर्त कहा है। मनुष्यगतिके समान वज्रर्पभनाराच संहननके उत्कृष्ट अनु**-भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिए। तथा वर्ऋ्र्यभनाराच-संहतन सप्रतिपत्त प्रकृति है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हर्त कहा है।

१. आ॰ प्रती ज॰ ए॰ उ॰ श्रंतो॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती तेत्तीसं । दोश्र (आ) गु॰ ज॰ ए॰ उ॰ श्रंतो॰, श्रा॰ प्रती तेत्तीसं दोश्रागु॰ उ॰ ज॰ ए॰ श्रंतो॰ इति पाठः ।

५८७. भवसिद्धि० ओघं० । अब्भवसि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०सोलसक०--भय-दु०--तेजा० क०--पसत्थापसत्थ०४—अगु०-उप०-णिमि०--पंचंत० उ०
ज० ए०, उ० अणंतका० । अणु० ज० ए०, उ० वेसम० । सादासाद०-छण्णोर्कं०पंचिदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४—थिराथिर-सुभासुभ--सुभग-सुस्सरआदे०-जस०-अजस० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० खंतो० । णवुंस०ओरालि०--पंचसंठा०--ओरालि० खंगो०--छस्संघ०-अप्पस०--दूभग--दुस्सर--अणादे०-णीचा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे० । तिण्णिआयु०वेउव्वियछ० उक्क० अणु० ज० ए०, उ० अणंतका० । तिरिक्खायु० उ० अणु० ओघं।
तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ०
असंखेजा लोगा । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो । अणु० ज०
ए०, उ० तेतीसं० सादि० ।

५८७. भव्योंमें खोचके समान भङ्ग हैं। स्त्रभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकपाय, पञ्चो न्द्रियजाति, ससचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, त्रश्रुभ, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, यशःकीति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर त्र्यन्तर्मु हुर्त है। नपुंसकवंद, ब्रोंदारिकशरीर, पाँच संस्थान, ब्रोदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगात्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तीन श्राय और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका अन्तर श्रोधके समान है। तिर्यञ्चगति,तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाए है। चार जाति, त्रातप और स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट त्रम्तर **ज्ञानावर**णके समान हैं। त्रमुत्कृष्ट् अनुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्र्यौर उत्कृष्ट त्रान्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेपार्थ—भव्योंमें श्रोधके समान व्यवस्था बन जाती है, श्रतः यह श्रोधके समान कहा है। श्रभव्योंमें श्रोधके समान श्रमन्त कालके श्रन्तरसे ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट श्रमुभागबन्ध

१. ता॰ भ्रा॰ प्रत्यो: सत्तगोक • इ ति पाठः ।

४८८. खइग० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्प-सत्थ०४-उप०-ऋथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। ऋणु० ज० ए०, उ० ऋंतो०। सादादिदंडओ ऋोघो। ऋहक० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघो। मणुसायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देस्र०। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० उपमासं देस्र०। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० पुठ्वकोडितिभागा देस्र०। मणुसर्गाद्पंचग० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। देवगदि०४-आहारदु० उ० णित्थ ऋंतरं। ऋणु० ज० ऋंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०।

सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। एक तिर्य-ख्रायुको छोड़कर खन्य सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह खन्तर प्राप्त होता है, खतः वह ज्ञानावरणके समान कहा है। सातावेदनीय त्र्यादि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ है, त्रातः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमहर्त कहा है। नप्-सक्वेद ऋादिका भोगभूमिमें पर्याप्त ऋवस्थामें बन्ध नहीं होता, ऋतः इनके ऋनुत्ऋष्ट ऋनुभागबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुय वहा है। एकेन्द्रिय अवस्थामें अनन्तकाल तक तीन आयु श्रीर वैक्रियिक छहका वन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तिर्यञ्जायके उत्कृष्ट श्रानुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रान्तर अनन्तकाल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण श्रोघसे कह आये हैं। वह यहाँ सम्भव होनेसे श्रोघके समान कहा है। नौवें मैंवेयकमें और अन्तर्मु हुर्त काल तक आगे पीछे तिर्यख्रगतित्रिकका वन्ध नहीं होता, श्रतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागगन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। अग्निकायिक और वायु-कार्यिक जीवोंके मनुष्यगतित्रिकका बन्ध कहीं होता त्र्यौर इनकी उन्क्रप्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार जाति त्रादिका नरकमें त्रीर त्रन्तमु हूर्त तक त्रागे पीछे वन्ध नहीं होता, स्रतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

प्रदार चायिकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर, श्रश्चभ, श्रयशःकीर्ति श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान हे श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है। देवायुके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ श्रन्तर दो समय है। देवगित चतुष्क श्रौर श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रन्तर कालिस सागर है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ--क्षायिकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इसके प्रारम्भमें

५८६. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०--पुरिस०--भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० अणु० णित्थ त्रांतरं । सादा०-थिर-सुभ-जस० उ० ज० ए०, उ० छाविह ० देसू० सत्थाणे । अथवा णित्थ **ऋंतरं । यदि दंसणमोहक्खवगस्स** उकस्स-सामित्ते णत्यि अंतरं । अधापवत्तसंजदस्स कीरदि तदो छाविह सा० देसू० । अणु० जि ए०, उ० स्रंता० । असादा०-अरदि०-साग०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णत्थि त्रांतरं । अणु० सादभंगो । अद्वक् ० उ० णित्थ त्रांतरं । अणु० ओघं । णत्ररि ज० श्रीर श्रन्तमें यथा सम्भव पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो स्रीर वीचमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। अपन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र देवगति त्रादिके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका यह त्रान्तर लाते समय बीचमें उनका वन्ध न करावे । उसमें भी देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकको उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्ति करावे श्रौर श्रन्तर्मुहूर्तकालतक वहाँ रखकर इनका बन्ध होनेके पहले मरण करावे। तथा तेतीस सागर त्रायु तक देवपर्यायमें रखकर देवगतिचतुष्कका ता मनुष्य हानेके प्रथम समयसे बन्ध करावे श्रीर श्राहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत होनेपर बन्ध करावे। यहाँ भी श्रधिकसे अधिक काल बाद संयम धारण करावे। पाँच ज्ञानावरणादिका उपशमश्रेणिमें कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहर्ततक बन्ध न होनेसे तथा असातावेदनीय आदिका इसके पूर्व बन्ध न होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-मुँहर्त कहा है। किन्तु जिसने असातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियोंकी छठे गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति की हैं उसे अप्रमत्तसंयत होनेके बाद उपशमश्रेणिमें ले जाकर पुनः उतारकर इनका बन्ध करावे और जघन्य अन्तर एक समय परावर्तन द्वारा प्राप्त करे। साताद्र इकमें साता-वेदनीय, पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विद्वायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थद्वर ये प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनका अग्रेयसे जो अन्तर कहा है वह यहाँ बन जानेसे यह अग्रेयके समान कहा है। त्राठ कपायोंके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका त्रांघसे जघन्य त्रान्तर एक समय त्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। वह यहाँ भी घटित होता है, अतः यह ओघके समान कहा है। यहां मनुष्यायुका देवोंके और देवायुका मनुष्योंके बन्य होता है। अतः मूलमें जो अन्तर कहा है उसकी स्वामित्वके अनुसार संगति बिठा लेनी चाहिए । सर्वार्थसिद्धिमें प्रारम्भमें ऋौर श्रन्तमें मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट श्रनभागवन्ध हो श्रोर मध्यमें न हो यह सम्भव है, श्रतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है।

५८६. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचार, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर स्वस्थानमें कुछ कम छ्यासठ सागर है। अथवा अन्तर काल नहीं है। यदि दर्शनमोहनीयके चपकके उत्कृष्ट स्वामित्व करते हैं तो अन्तरकाल नहीं है। और अधःप्रवृत्तके करते हैं तो कुछ कम छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरित, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध का भक्त सातावेदनीयके समान है। आठ कषायों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है।

१. ता॰ प्रती उद्धर संसामित्तं इति पाठः।

श्रंतो । हस्स-रिद उ० ज० ए०, उ० झाविह दे० । अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो ० । दोआयु० उ० ज० ए०, उ० झाविह दे० । अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० । मणुसगिदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० झाविह दे० । अणु० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी सादि० । देवगिद ०४—आहार दु० उ० मणुसगिद भंगो । अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं सा० । णविर आहार दुगं तेतीसं सादि० । पंचिदि०-तेजा०-क०-समच दु०-पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थ०-तस०४—सुभग—सुस्सर--आदे०--णिमि०--तित्थ०--उच्चा० उ० णित्थ श्रंतरं । अथवा तेतीसं० सादि०, झाविह० देसू० । अणु० ए० । अथवा ज० ए०, उ० वेसम० ।

श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है । इतनी विशेषता है कि जघन्य श्रन्तर अन्त-मुं हुते हैं। हास्य श्रीर रतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय हे श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छ्यासट सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। दो आयुओं के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ हम छ्यासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है । देवगतिचतुष्क श्रौर आहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रनुमागवन्धका भङ्ग मतुष्यगतिके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्च न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वणचतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायो-गति, त्रक्षचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगात्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं हैं । अथवा साधिक तेतीस सागर और कुछ कम छच।सठ सागर है। त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका जवन्य त्र्यौर उत्कृष्ट त्रान्तर एक समय है। त्राथवा जवन्य त्रान्तर एक समय है और इत्कुष्ट अन्तर दो समय है।

विशेपार्थ — वेदकलम्यक्त्वमं ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिण्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका निषेध किया है। वेदकलम्यक्त्वके प्रारम्भमं और अन्तमं सातादिकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है यह भी इसी प्रकार घटित करना चाहिए। किन्तु यह अन्तर स्वस्थान की अपेशा कहा है। अर्थात् स्वस्थान अधःप्रवृत्तसंयत यदि उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है तो ही जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर वनता है। और यदि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला उत्कृष्ट स्वामित्व करता है तो इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं हैं। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कहा है। असातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकाल कम्भव किथा है। तथा परानसम्बर्ध अन्तरकालका निषेध किथा है। तथा परानसम्बर्ध अनुभागवन्धके अनुत्कृष्ट किया है। तथा परानसम्बर्ध किया है। तथा परानस्थ किया है। तथा परानसम्बर्ध किया है। तथा विष्य किया है। तथा विष्

१. ता० भ्रा० प्रत्योः छावद्वि० दो श्राग्रु० ए० इति पाठः ।

४६०. उवसम० अहक०-देवगदि०४-आहारदु० उ० णितथ० श्रंतरं । [अणु० ज० उ० श्रंतो० । इस्स-रिद० उ०] अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० । मणुसगिद्पंचग० उ० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अणु० ज० ए०, उ० वेसम०। सेसाणं उ० णित्थ श्रंतरं । अणु० ज० ए०, उ० श्रंतो० ।

वर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरके निर्पेधका यही कारण है जो असातावेदनीयका कहा है। इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रोघके समान देखकर यह श्रांघके समान कहा है। मात्र यहाँ त्राठ कपायोंके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्यका जवन्य त्रान्तर एक समय सम्भव न होकर अन्तमु हूर्त है, अतः यह अलगसे कहा है। इसका कारण यह है कि ओवसे इनके उत्कृष्ट अनु-भागवन्धका अन्तर सम्भव होनेसे ध्रुववन्धिनी होने पर भी इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य ब्रान्तर एक समय बन गया था पर यहाँ उत्कृष्ट ब्रानुभागवन्धका ब्रान्तर सम्भव नहीं है, इसलिए संयतासंयत त्रीर संयत गुणस्थानका जघन्य काल ही यहाँ जघन्य त्र्यन्तर समफना चाहिए। हास्य त्र्यौर रति परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, त्रातः इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्त कहा है। देवायुका मनुष्योंके श्रीर मनुष्यायुका देवोंके बन्ध होता है और दोबार प्रत्येक आयुके बन्धमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है, त्रतः दोनों त्रायुत्रोंके त्रानुत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट त्रान्तर साधिक तेनीस सागर कहा है। मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट अनुमागवन्यके उत्कृष्ट अन्तरका स्पष्टीकरण हम जाभिनिवाधिक मार्गणामं कर त्राये हैं उसी प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार साधिक पूर्वकोटि अन्तरकाल घटित हो वैसा करना चाहिए। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकका देवोंके बन्ध नहीं होता, त्रातः इनके त्रानुःकृष्ट त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर तेनीस सागर कहा है। परन्तु आहारकद्विकका संयम की प्राप्तिके पूर्व मनुष्योंके भी बन्ध नहीं होता, अतः यह साधिक तेतीस सागर कहा है। दर्शनमाहनीयकी चपणाके अभिमुख हुए जीवके पश्च न्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक अन्तरकालका निपंध किया है। श्रीर यदि स्वस्थानमें इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मानते हैं तो उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर पञ्चेद्रियजाति आदिका कुछ कम छ्यासठ सागर और तीर्थेङ्कर प्रकृतिका साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल एक समय मानने पर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर एक समय प्राप्त होता है श्रीर जघन्य काल एक समय और उत्हृष्ट काल दो समय मानने पर जघन्य श्रन्तर एक समय उत्क्रष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है सो विचार कर आगमके अनुसार व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

पू९०. उपशामसम्यक्त्वमें आठ कपाय, देवगतिचतुष्क और आहारकि हिकके उत्हष्ट अतु-भागवन्धका अन्तरकाल नहीं हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त हैं। हास्य व रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त हैं। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्कृष्ट अन्तर दो समय हैं। शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुर्त हैं।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वमं मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वविशुद्ध देव नारकीके उत्क्रष्ट अनुभाग-बन्ध होता है, अतः इसका जयन्य अन्तर एक समय श्रोर उक्रष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त बन जाता है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं बनता। कारण स्वामित्वको देखकर ५६१. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०--सोलसक०-भय-दु०-तिगदि--पंचिंदि०-चिदुसरीर०--समदु०--दोग्रंगो०--वज्जरि०--पसत्थापसत्थ०४--तिण्णिआणु०--अगु०४--पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-णीचुचा०-पंचंत० उ० अणु० णत्थि ग्रंतरं। तिण्णिआउ० उ० ज० ए०, [उ० ग्रंतो०। अणु० ज० ए०] उ० बेसम०। इस्स-रिद० उ० अणु० ज० ए०, उ० ग्रंतो०। सेसाणं उ० णिथ ग्रंतरं। अणु० ज० ए०, उ० ग्रंतो०। अथवा सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दु०-तिण्णि-आउ०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० ग्रंतो०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। संसाणं उ० अणु० ज० ए०, उ० ग्रंतो०।

५६२. सम्मामि० धुविगाणं ७० अणु० णत्थि ऋंतरं । सेसाणं सासण०भंगो ।

जान लेना चाहिए। तथा प्रथम दण्डक व मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर शेप सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त अलग अलग कारणसे बन जाता है। कारणका खुलासा प्रकृतिको देखकर कर लेना चाहिए।

पृहर. सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तीन गित, पञ्च न्द्रियजाित, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो त्राङ्गोपाङ्ग, वल्रपंभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन त्रानुपृत्री, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, मुस्वर, त्रादेय, निर्माण, नीचगोत्र, व्चगोत्र त्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहृतं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। हास्य और रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहृतं है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्माण्यारेर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर देश समय है। शेप प्रकृतियोंक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर्म कृत्व है।

विशेपार्थ —यहाँ सासादनमें पहले तीन श्रायु और हास्य-रितको छोड़कर शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध ऐसे परिणामोंसे श्रीर ऐसे समयमें मानकर अन्तरका निर्देश किया है जिससे उनके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर ही सम्भव नहीं। ऐसी श्रवस्थामें जो ध्रुवबन्धिनी हैं उनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका तो श्रन्तर बनता ही नहीं। हाँ जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं उनके अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका इस कारणसे श्रवश्य ही श्रन्तर बन जाता है श्रतः वह जधन्य एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तमुं हूर्त होनेसे उक्त प्रमाण बतलाया है। इसके बाद विकल्परूपसे सब प्रकृतियोंका जो श्रन्तर कहा है वह पहले निर्दिष्ट स्वामित्वको ध्यानमें रख कर कहा है। श्रेष स्पष्ट ही है।

५६२. सम्यग्मिभ्यात्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। मिभ्यादृष्टि मिच्छादिही० मदिभंगो । सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णी० धुविगाणं उ० ज० ए०, उ० अणंतका०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। चदुआउ०--वेउव्वियछ०-मणुस०३ तिरिक्खोघो। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० ग्रणंतका०। अणु० ज० ए०, उ० ग्रंतो०।

४६३. त्राहारगे पंचणा०-छदंसणा०--असादा०--चदुसंज०--सत्तणोक०-ऋप्प-सत्थ०४--उप०-ऋथिर-असुभ-ऋजस०--पंचंत० उ० ज० ए०, उ० ऋंगुल् असंखे०। अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३--मिच्छ०---अणंताणुवं०४-इत्थि० उ० णाणा०भंगो। ऋणु० ऋोघं। सादादिदंड्यो ओघो। ऋहकसा० उ० णाणा०भंगो। ऋणुकस्सं ऋोघं। णवुंसगदंड्यो उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। तिण्णिआयुं०-णिरय-मणुस०-

जीवोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंक समान है। संज्ञी जीवोंका पछ्छेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। श्रसंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। चार श्रायु, वैक्रियिक छह श्रोर मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तकाल है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तकाल है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर र्यु हुर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ अप्रशस्त धुववन्धवाली प्रकृतियोंका मिण्यात्वके अभिमुख हुए जीवके और प्रशस्त धुववन्धवाली प्रकृतियोंका सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंका जैसा सासादनमें अन्तरकाल कहा है वैसा यहाँ भी बन जाता है, अतः यह उसके समान कहा है। मत्यज्ञानी मुख्यरूपसे मिण्यादृष्टि ही होते हैं, अतः मिण्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान वन जानेसे उनके समान कहा है। संज्ञियोंमें प्रज्ञेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी मुख्यता है, अतः संज्ञियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग प्रक्रोन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान कहा है। असंज्ञियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। मात्र चार आयु आदिके भङ्गको सामान्य तिर्यक्रोंके समान कहानेका कार्ण भिन्न है सो जान कर समभ लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

प्रश्चे श्राहारकोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर, श्रग्नुभ, श्रयशःकीर्ति श्रीर पाँच श्रन्त-रायके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गुलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुवन्धी चार श्रीर स्त्रीवेदके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। श्राठ कषायोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। तीन श्रायु, नरकगित, मनुष्यगित श्रीर दो

ता॰ प्रतौ सेसाग्रं मिच्छादिट्टिमदिभंगो इति पाठः ।
 ता॰ प्रतौ भंगो तिगिग्राचायु॰
 इति पाठः ।

दोआणु० उ० अणु० ज० ए०, उ० श्रंगुल० असंखे० । तिरिक्खाउ० उ० णाणा०-भंगो । अणु० श्रोघं । देवगदि०४ उ० णित्थ श्रंतरं । श्रणु० ज० ए०, उ० श्रंगुल० श्रसंखे० । ओरालि०-श्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरि० उ० णाणा०भंगो । श्रणु० ओघं । चढुजादि-आदाव-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो। श्रणु० श्रोघं। उज्जो० उ० ज० श्रंतो०, उ० श्रंगुल० असं०। श्रणु० ओघं।

एवग्रुकस्समंतरं समतं।

त्रानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्थञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। देवगति चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अस्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग और वर्ज्ञष्मभागवन्धका अन्तर ओघके समान है। चार जाति, श्रातप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर आघके समान है। चार जाति, श्रातप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हि श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तर श्रम्तम् श्रीपके समान है।

विशेषार्थ—त्राहारकोंकी कायस्थिति अङ्गुलके त्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण है। इसके प्रारम्भमें त्रीर अन्तमें ज्ञानावरणादिका अकुष्ट अनुभागवन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट श्रतुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार स्त्रागे जिन प्रकृतियोंका यह स्त्रन्तर कहा है वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद आदिक श्रमुख्कृष्ट श्रमुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर यहाँ भी 'बन जाता है, श्रतः यह श्रोघके समान कहा है। सातादिदण्डक, आठ कपाय और नपुंसकवेददण्डकका भी जो अन्तर श्रोचके समान कहा है वह इसी प्रकार श्रोघके श्रनुसार घटित कर लेना चाहिए। तिर्यक्रायु का अनुत्रृष्ट अनुभागवन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक सौ सागर-पृथक्तवके अन्तरसे आहारकके अवश्य ही होता है। ओघसे यह अन्तर इतना ही है, अतः यह भी त्रांघके समान कहा है। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट त्रनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, त्रातः इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा आहारकके इनका बन्ध अङ्गुलके असंख्यातचें भाग काल तक न हो यह सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। आहारकके श्रौदारिकशरीर आदिका श्रोघके समान एत्कृष्टसे साधिक तीन पल्य तक ब ध नहीं होता, श्रतः इनके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवन्धका त्रान्तर त्र्योघके समान कहा है। इसी प्रकार यहाँ चार जाति आदिका श्रोघके समान अधिकसे अधिक एकसौ पचासी सागर तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्तर ओघके समान वहा है। उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, श्रतः इसके उत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका जघन्य श्चन्तर श्चन्तमु हूर्त कहा है श्रीर इसका उत्कृष्ट श्चन्तर श्रङ्गलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसका अधिकसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर तक बन्ध नहीं होता। श्रोघसे इसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर इतना ही है। श्रतः यह भी श्रोघके समान कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुआ।

ता प्रतौ वज्जिरि गागा इति पाठः ।

४६४. जह० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०पंचणोक०--अप्पसत्थ०४—उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अणुभागं० केवचि० १ णित्थ
श्रंतरं। अज० ज० एग०, णिद्दा-पचछा० ज० श्रंतो०, उ० श्रंतो०। थीणगिद्धि०३—
मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० श्रंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० श्रंतो०, उ०
वेद्यावि६० देस्०। सादासाद०-समचदु०-पसत्थ०-थिराथिर—सुभासुभ-सुभग-सुस्सरआदे०-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० असंखेज्ञा लोगा। अज० ज० ए०, उ०
श्रंतो०। अहक० ज० ज० श्रंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० श्रंतो०, उ०
पुन्वकोडी देस्०। इत्थिव० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ०
वेद्यावि६० देस्०। णवुंस० ज० इत्थि०भंगो। अज० अणु०भंगो। अरिद्-सोग० ज०
ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। तिण्णिआयु०-वेउव्वि०छ०
ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। तिण्णिआयु०-वेउव्वि०छ०
ज० अज० ज० ए०, उ० सागरोवमंसदपुथतं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणुँ० ज० ज०

५६४. जवन्वका प्रकरण है। उसकी अपेद्धा निर्देश दी प्रकारका है--श्रोघ और आदेश। आंवसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भाँच नाकवाय, अप्रशस्त वणचतुष्क. उपघात, तीर्थक्कर स्रोर पाँच अन्तरायके जवन्य स्रानुभागवन्यका कितना स्रन्तर है ? स्रन्तर नहीं हैं। अजयन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, निद्रा और प्रचलाका जघन्य अन्तर श्रान्तमु हूर्त है श्रोर सबका उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तमु हूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और श्रानन्ता-नुबन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्भू हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम श्रर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । श्रजघन्य श्रनुभागवन्यका जवन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, ऋस्थिर, शुभ, ऋशुभ, सुभग, सुस्वर, ऋादेय, यशःकीर्ति और ऋयशः-कीर्तिके जवन्य श्रानुभागबन्धका जवन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रासंख्यात लोक-प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हर्त है। ब्राठ कपायोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम अर्घपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। स्त्रीवेदके जघन्य श्रनुभागवन्थका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। नपुंसकवेदके जवन्य अनुभागबन्धका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। तीन त्रायु श्रीर वैक्रियिक छहके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। तिर्यक्रायुके जवन्य अनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य

ता॰ प्रतौ पंचंत॰ श्रागुभाग॰ इति पाठः ।
 ता॰ प्रतौ प्रथतः । तिरिक्खागु० इति पाठः ।

श्रंतो०, उ० अद्ध्योगगल०। अज० ज० ए०, उ० तेविद्धसागरोवमसदं। मणुसाण०-उच्चा० ज० अज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा। चढुजादि-थावरादि०४ ज० ज० ए ०, उ० असंखेज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं। पंचिदि०--तेजा०-क०--पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। ओराल०-ओराल०श्रंगो० ज० ज० ए०, उ० अणंतकाल०। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिंपल० सादि०। आहारदुग० ज० अज० ज० श्रंतो०, उ० अद्योगगल०। पंचसंटा०-पंचसंघ०-अप्पस०-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि०। आदाव० ज० ण०, उ० असंखेज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि०। आदाव० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० पंचासीदिसागरो-वमसदं ०। उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० तेविट-

अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहर्त है और उत्हृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी त्र्योर उच्चगोत्रके जघन्य ऋौर ऋजघन्य श्र**तुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है** श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति स्त्रौर स्थावर स्त्रादि चारके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य स्त्रन्तर एक समय है स्त्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तम् हुर्त हैं। श्रीदारिकशरीर श्रीर श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जधन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनु-भागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हैं और उत्क्रष्ट श्रन्तर साधिक तीन पत्य है। श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर अन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण हैं। पाँच संस्थान, पाँच सहनन, ऋप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रनादेयके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। अजधन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। वर्ऋषभनाराचसंहननके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य श्रतुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन पत्य है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसी पचासी सागर है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजधन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ

१. ता॰ प्रतौ थावराद्धिः ज॰ ए॰ इति पाठः । २. छा॰ प्रतौ ग्रंगो॰ ज॰ ज॰ ए, इ॰ तिरिख इति पाठः । ३. ता॰ ग्रा॰ प्रस्थोः साग॰ पंचसदं इति पाठः ।

सागरोवमसदं। णीचा ० ज० ज० झंतो ०, उ० अद्धपोग्गत्त०। अज० ज० ए०, उ० बेछाविह० सादि० तिण्णिपलिदो० देसू०।

सागर है। नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छ्यासठ सागर है।

विशेपार्थ-तीर्थङ्करके सिवा यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें अपनी अपनी बन्चव्यक्छित्तके अन्तिम समयमें और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख हुए उत्कृष्ट सक्लेशयुक्त मनुष्यके अन्तिम समयमें होता है, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागबन्धके श्रन्तरकालका निर्पेध किया है। तथा उपरामश्रेणिमें श्रपनी श्रपनी बन्धव्यच्छित्तिकं बाद एक समयके लिए इनका अवत्यक होकर मरकर देव होनेपर पुनः इनका बन्ध होने लगता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक सयय कहा है। मात्र निद्रा त्र्यौर प्रचलाकी उपशमश्रे णिमें बन्धव्युच्छित होने पर त्र्यन्तर्मुहर्तकालतक मरण नहीं होता, अतः इनके अज्ञवन्य अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्भु हुर्त कहा है। उपशम-श्रीणिकी श्रपेक्षा इन सबके अजयन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हर्त है यह स्पष्ट ही हैं। संयमके अभिमुख हुए मनुष्यके मिश्र्यात्व आदिका जवन्य अनुभागवन्ध होता है और संयमका जयन्य अन्तर अन्तर्भ हते हैं और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुरुगलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा मिध्यात्वका जघन्य अन्तर अन्तम् हुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है, अतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर उक्तप्रमाण कहा है। सातावेदनीय श्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान सध्यम परिणामीसे होता है और एसे परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक असंख्यात लांकप्रमाण कालके अन्तरसे होते हैं. अतः इनके जघन्य ऋनुसागबन्धका जघन्य ऋन्तर एक समय और उत्कृष्ट ऋन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं. श्रतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हर्त कहा है। आगे भी श्रीय श्रीर श्रादेशसे जहाँ जो प्रकृतियाँ हों उनके अजघन्य अनुभागबन्धदा अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए। क्योंकि परावर्तमान प्रकृतियोंका कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तमु हुर्तकालके अन्तरसे नियमसे बन्ध होता है। यद्यपि समचतुरस्त्रसंस्थान, सुभग, सुस्वर त्र्यौर त्रादेयका मिश्रगुण-स्थानसे त्रागे नियमसे बन्ध होता है त्रीर वहाँ ये परावर्तमान नहीं रहतीं, फिर भी उपशम-श्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर वहाँ भी मरणकी श्रपेत्ता एक समय श्रीर त्रारोहण-श्रवरोहणकी श्रपेक्षा श्रन्तमु हुर्त तक इनका बन्धाभाव देखा जाता है, इसलिए इस दृष्टिसे भी इनका यही अन्तर प्राप्त होता है। संयमके अभिमुख हुए जीवके अपनी अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें मध्यकी श्राठ कपायोंका जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है श्रीर संयमका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा संयमासंयम श्रौर संयमका जघन्य काल अन्तम् हूर्त श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम हर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। स्त्रीवेदका जघन्य श्रनुभागवन्ध संज्ञी पञ्चीन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है श्रीर इस पर्यायका

१. भ्रा० प्रतौ गीचा॰ ज॰ भ्रंतो॰ इति पाट:।

बर्कुष्ट श्रान्तर अनन्तकाल है, अतः स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। यहाँ जघन्य अनुभागबन्धके बाद एक समयतक अजघन्य अनु-भागबन्ध हो कर पुनः जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है इतना विशेष जानना चाहिए। तथा आगे भी जहां जिस प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय कहा है वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इसी प्रकार अजघन्य अनुभागवन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय ले आना चाहिए। मात्र जहां कुछ विशेषता होगी उसका हम स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे। जहाँ विशेषता न होगी उसे स्पष्टीकरण किये बिना छोड़ते जावेंगे । स्त्रीवेरके अजघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालका खुलासा स्त्यानगृद्धि तीनके समान है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी स्वीवेदके समान है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धको अन्तर स्त्रीवेदके समान कहा है। तथा नपुंसकवेदका अधिक**से** अधिक बन्ध तीन पत्य अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक नहीं होता, अतः इसके अनुस्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण बतला आये हैं। यह अन्तर यहाँ भी बन जाता है, अतः यह अनुत्कृष्टके समान कहा है। अरित और शोकका जघन्य अनु-भागबन्ध प्रमत्तसंयत जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रभाण कहा है। एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्त है। इतने काल तक इस जीवके तीन आयु और वैक्रियिकपटकका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य ऋौर त्राजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रान्तर श्रानन्तकाल कहा है। तिर्थस्त्रायुका ज्ञचन्य अनुभागवन्ध अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे नियमसे होता है, क्योंकि अनुभागवन्धके योग्य परिणाम ही इतने हैं, अतः इसके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है और तिर्यञ्चायका बन्ध अधिकसे अधिक सौ सागर पृथक्तव कालके अन्तरसे नियमसे होता है, क्योंकि यदि कोई जीव निरन्तर अन्य तीन गतियोंमें परिभ्रमण करता है तो वह उन गतियोंमें श्रधिकसे श्रधिक इतने काल तक ही रहता है उसके बाद वह नियम से तिर्यञ्ज होता है ऐसा नियम है, अतः तिर्यञ्जायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्जगतिद्धिकका जघन्य श्रनुभागवन्य सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुत्रा सातवीं पृथिवी का नारकी करता है, यत: पुनः इस अवस्थाके उत्पन्न होनेमें कमसे कम अन्तर्मु हूर्त काल लगता है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है और उस अवस्थाके पनः उत्पन्न होनेमें अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुदुगल परिवर्तन काल लगता है अतः इनके ज्ञघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा अधिकसे श्रिधिक एक सौ त्रेसठ सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रजघन्य श्रनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। मनुष्यगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं, श्रतः इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और असंख्यात लोकप्रमाण काल तक अग्नि श्रीर वायुकायिक जीवोंके इनका बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रमंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनके जवन्य श्रनुभागबन्धके उत्कृष्ट श्रन्तरका स्पष्टीकरण पाँच संस्थान श्रादिके अन्तरके स्पष्टीकरएके समय करेंगे। चार जाति श्रीर स्थावर श्रादि चारका जघन्य अनुभागवन्ध परिवतमान मध्यम परिणामोंसे होता है और ऐसे परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे होते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण् कहा है। तथा इनका बन्ध श्रिधिकसे श्रिधिक एकसौ पचासी सागर तक नहीं होता, अतः इनके श्रजघन्य श्रन्भागवन्थका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। पञ्च न्द्रियजाति श्रादिका जघन्य श्रन्-

भागबन्ध चारों गतिके जीव संक्लेश परिणामोंसे करते हैं। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं श्रीर श्रनन्त कालके अन्तरसे भी ही सकते हैं, श्रतः इन प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल कहा है। इसी प्रकार श्रीदारिक शरीरद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल जानना चाहिए। इन प्रकृतियोंका कमसे कम एक समय तक बन्ध नहीं होता श्रीर जो सन्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है इसके साधिक तीन पर्य तक इनका बन्ध नहीं होता. इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका जैवन्य श्रन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तरकाल साधिक तीन पत्य कहा है। श्राहारकद्विक का कमसे कम अन्तर्मु हर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनके अन्तरसे बन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर अन्तम् हृतंत्रमाण श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। पाँच संस्थान श्रादि प्रकृतियोंका कमसे कम एक समय तक श्रीर श्रधिकसे श्रधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जधन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यहाँ एक वात श्रवश्य ही विचारणीय है कि पाँच संस्थान श्रदिका जघन्य अनुभागवन्थ चारों गतिका संज्ञी पञ्चोन्द्रिय जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करता है ऐसा स्वामित्व प्ररूपणासे ज्ञात होता है श्रोर पञ्चोन्द्रय पर्यायका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल श्रर्थान श्रसंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण क्यों नहीं कहा है ? जो प्रश्न इन प्रकृतियोंके इस अन्तरके विषयमें उठता है वही प्रश्न मनुष्यगतिद्विक, वर्ऋ्यभनाराच संहनन श्रौर उचगोत्रके विषयमें भी उठता है। साधारणतः यह समाधान किया जा सकता है कि श्रनुभागवन्धके योग्य कुल परिएाम श्रसंख्यात लोकप्रमाए हैं. इसलिए यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु यह उत्तर तो तब सम्भव था जब इस अन्तरमें पर्यायकी मुख्यता न होती श्रीर परिणामोंको मुख्यता होती। ऐसा विदित होता है कि इन प्रकृत तियोंके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वके निर्देशमें या तो कुछ गड़बड़ हैं या फिर इस विषयमें दो सम्प्रदाय रहे हैं, अतएव एक सम्प्रदायका संग्रह स्वामित्व अनुयोगद्वारमें किया है अोर दूसरा यहाँ अन्तर प्रकरणमें उद्घिखित किया है। आगे इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका परि-माण श्रनन्त बतलाया है। यह तभी सम्भव है जब एकेन्द्रियोंको भी इनके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामी माना जावे। इससे भी हमारे कथनकी पृष्टि होती है। इनके अजधन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल अनुत्कृष्ट हे समान है यह स्पष्ट ही है। वज्रर्पभनाराचसंहननके जघन्य अनुभागबन्ध का अन्तर पाँच संस्थान आदिके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा इसके त्राज्ञचन्य त्रानुभागबन्धका त्रान्तर जिस प्रकार त्रीदारिकशरीरके त्राज्ञचन्य त्रानुभागवन्य का अन्तर घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। आनपका जघन्य अनु-भागवन्ध देव श्रीर उद्योतका जघन्य श्रमुभागवन्ध देव श्रीर नारकी करते हैं। इनका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अनन्त काल कहा है। तथा आतपका १५५ सागर तक और उद्योतका १६३ सागर तक बन्ध न हो यह सन्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे १८५ श्रीर १६३ सागर कहा है। नीचगोत्रका जघन्य श्रनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभि-मुख हुआ सातवें नरकका नारकी करता है। यह अवस्था कमसे कम अन्तमु हूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके अन्तरसे प्राप्त होती है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महुर्त श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा जो उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुन्ना है उसके वहाँ कुछ कम तीन पर्य तक त्रौर दो छ्यासठ

५६५. णिरएसु धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० द्यंतो ०, उ० तेत्तीसं० देस्०। सादासाद०-पंचणोक०-समचढु०-वज्जरि०-पसत्थवि०-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस० [ज०] ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस्०। अज० ज० ए०, उ० द्यंतो०। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस्०। दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० हम्मासं देस्०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ज० द्यंतो०, उ० तेत्तीसं० देस्०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं देस०। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० वावीसं सा० देस्०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस०। ए०, उ० तेत्तीसं० देस०। एवं सत्तमाए पुढवीए। णविर थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-दोगदि०-दोआणु०-दोगोद० ज० अज० ज० द्यंतो०, उ० तेतीसं [देस०]। छसु उवरिमासु णिरयोघं।

सागर काल तक मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्व हांकर सम्यक्त्वके साथ रहने पर इतने काल तक नीचगात्रका बन्ध नहीं होता, स्रतः इसके स्रजधन्य स्रनुभागवन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय स्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है।

प्रुप्. नारिकयोंमं ध्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजवन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्क्रष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकपाय, समचतुरस्रसंस्थान, बजर्पभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय. यशःकीर्ति श्रीर श्रयशःकीर्तिकं जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो अ।युत्रोंके जघन्य और अजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। तिर्यक्क्याति. तिर्येक्ष्यगत्यानुपूर्वी ऋौर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है। अज-घन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, दोगति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य

१. आ॰ प्रतौ ज॰ शज़॰ शंतो॰ इति पाठः।

णवरि तिरिक्लग०३ णवुंसगभंगो । मणुसग०३ पुरिसभंगो ।

५६६. तिरिक्खेसु पंचणा०-छटंसणा०--अहक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० श्रद्धपोग्गल०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०।थीण-गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ओघं। अज० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णिपलि० दे०।साददंडओ ओघो। अप्पचक्खा०४ ओघं। इत्थि० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० दे०। णयुंस०-तिरिक्खग०-श्रोरालि०-श्रोरालि० श्रंगो०-तिरि-

अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त हैं और उक्तृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पहलेकी छह पृथिवियोंमें सामान्य नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है तिर्येख्वगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेद प्रकृतिके समान है और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग पुरुषवेद प्रकृतिके समान है।

विशेपार्थ-यहाँ अन्य सब खुलासा स्वामित्वको देखकर जान लेना चाहिए। जो विशेपताएँ कही हैं उनका स्पष्टीकरण करतेहैं। सातवें नरकमें मनुष्यगतिद्विक श्रीर उचगोत्रका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए नारकीके होता है, इसलिए इनके जवन्य और अजधन्य अनुभाग-वन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्महर्त और उत्कृत अन्तर कुछ कम तेतीस सागर बन जाता है। सामान्य नारिकयोंमें यही अन्तर स्त्यानगृद्धि आदि व तिर्यञ्जगित आदि कुल ग्यारह प्रकृतियोंका कहा है। यहाँ यह सब अन्तर एक समान होनेसे इसको एक साथ कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि श्रादि ११ का मिथ्यात्वमें वन्ध कराते हुए श्रीर मनुष्यगति श्रादि तीनका सम्यक्त्वमें बन्ध कराते हुए क्रमशः सम्यक्तव श्रीर मिश्यात्वमं जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल तक रखकर यह श्रन्तर लाना चाहिए। तथा प्रारम्म की छह पृथिवियोंमें तियञ्चगतित्रिकका मिध्यात्व श्रौर सासादनमें तथा मनुष्यगतित्रिकका चतुर्थ गुण्स्थान तक वन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंका सामान्य नारिकयोंके जो अन्तर कहा है उसमें कुछ विशेषता आ जाती है, क्योंकि वहाँ वह सातवें नरककी मुख्यताप्ते कहा गया है। विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है। बात यह है कि सम्यक्त्वके होने पर मनुष्यगतित्रिकका ही बन्ध होता है, ऋतः पुरुपवंदके समान इनके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रापने श्रपने नरककी कुछ कम त्रायुप्रमाण श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-मुंहर्त बन जाता है। तथा तिर्येख्नगतित्रिकका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता। यही हाल न्पंसक-वेदका है, स्रतः इनका नपु सकवेदके समान स्रन्तर कहा है। प्रत्येक पृथिवीमें स्रन्तरकाल कहते समय जहाँ ऋछ कम तेतीस सागर कहा है वहाँ कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिए यहाँ इतनी स्त्रीर विशेषता जाननी चाहिए।

्६६. तिर्यक्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रधंपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रोर श्रन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रम्तका जघन्य श्रन्तर श्रम्तका जघन्य श्रन्तर श्रम्तका सङ्ग श्रोधके समान है। सातादण्डकका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रावदिक जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रम्तरकाल श्रोधके समान है। श्रावदिक जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रम्तरकाल श्रोधके समान है। श्रावदिक जघन्य श्रम्भागवन्धका श्रम्तरकाल श्रोधके समान है। श्रावदिक जघन्य श्रम्भागवन्धका श्रम्तरकाल श्रोधके समान है। स्त्रावदिक जघन्य श्रम्भागवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रम्तर कुछ कम तीन पत्य है। न्यंसकवेद, तिर्यञ्चगित, श्रोदारिकशरीर, श्रोदारिक

१. भ्रा॰ प्रती॰ मणुस॰ पुरिसमंगो इति पाट:।

क्खाणु०-ञ्चादावुज्जो०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतकी०। अज० ज० ए०, उ० पुन्ककोडी दे०। पंचणोक० ज० ज० ए०, उ० श्रद्धपोग्गला०। ग्रज० साद-भंगो। तिण्णिआउ० ज० श्रज० उक्कस्सभंगो। तिरिक्खाउ० ज० ओघं। श्रज० ज० ए०,उ० पुन्ककोडी सादि०। वेउन्त्रियञ्च०-मणुस०३ ज० त्रज० ओघं। चढुजादि-पंचसंद्य०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० पुन्ककोडी दे०। पंचिदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ओघं। अज० सादभंगो। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० ओघं। श्रज० ज० ए०, उ० वेसम०।

श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत श्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रमन्तकाल है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पाँच नोकपायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रधंपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान है। तीन श्रायुके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर काल उत्कृष्ट प्रकृपणाके समान है। तिर्यक्रायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। वैकियिक छह श्रोर मनुष्यगतित्रिकके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका भङ्ग श्रोघके समान है। चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विद्दायोगिति, स्थावर श्रादि चार, दुर्भग, दुःस्वर श्रोर श्रनादेयके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। तैजसशरीर, कामणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुक्तघु श्रोर निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रजन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। समय है। श्रजन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है।

विशेपार्थ—तिर्यक्चोंमं पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्ध संयतासंयतके होता है। श्रोर संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण हें, अतः यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक्तप्रमाण कहा है। तथा एक समयके अन्तरसे इनका जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव हें, इसलिए वह एक समय कहा है। इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। आगे सर्वत्र चौदह मार्गणाओं और उनके अवान्तर भेदोंमं जहाँ जिन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध का जघन्य अन्तर एक समय कहा हो और अजघन्य अनुभागवन्ध का जघन्य अन्तर एक समय कहा हो और अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा हो वहाँ कालका विचार कर यह अन्तर ले आना चाहिए। यदि कहीं इससे भिन्न कोई विशेषता होगी तो हम उसका अलगसे निर्देश करेंगे। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता और तिर्यक्चोंमं वेदकसम्यक्तका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य है, अतः यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य है। मात्र यहाँ तिर्यक्च

१. ता॰ प्रतौ ज॰ ज॰ ए॰ श्रग्यंतका॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ पुब्वकोडिदे॰ इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः ज॰ ज॰ ग्रोघं इति पाठः ।

४६७. पर्चि०तिरि०३ थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडिपुधत्तं०। अज० तिरिक्खोघं। सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० ज० ज० ए०, उ० तिण्गि० पित्र० पुन्वकोडिपुधत्तं०। अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अपचक्त्वाणा०४ ज० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडिपुधत्तं०। अज० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडी देसू०। इत्थि० ज० सादभंगो। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पित्र० देसू०। सेसं उक्त०भंगो।

पर्यायमें ही सम्यक्त्वसे मिथ्वात्वमें ले जाकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए। इसी प्रकार स्त्रीवेदके अजवन्य अनुभागवन्धके उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुथका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तिर्यञ्जोंकी कायस्थिति अनन्त काल होनेसे यहाँ नपुंसकवेद आदिकं जवन्य अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । मात्र कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभाग-बन्ध करा कर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। तथा कर्मभूमिमें तिर्यञ्चके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है और एसे तिर्यञ्चके नपुंसकवंद आदिका वन्ध नहीं होता, अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तिर्येख्न अर्धपुदुगल परिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें संयत।संयत होकर पाँच नोकपायोंका जवन्य अनुभागवन्य करे यह सम्भव है त्रात: इनके जवन्य त्रानुमागवन्यका उत्कृष्ट त्रान्तर उक्त प्रमाण कहा है । इनके त्राज-घन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावदनीयक समान है यह स्पष्ट ही है । उत्कृष्ट प्रहृपणाके समय नर-कायु, मनुष्यायु श्रीर देवायुकं उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका जो श्रन्तर बतला आयं हैं वही यहाँ कमसे जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर प्राप्त होता है, अतः यह प्रह्मपणा उत्कृष्ट के समान कही है। स्रोयसे तिर्यक्रायुके जयन्य स्रतुभागबन्धका स्रन्तर तिर्यक्रोंकी मुख्यतासे ही कहा है, अतः इसे जिस प्रकार वहाँ घटित करके वतला आये हैं उसप्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। जो निर्यञ्च पूर्वकोटिक त्रिभागमें निर्यञ्चायका बन्ध करके मरता है श्रीर पुनः निर्यञ्च होकर पूर्वकोटिमें अन्तमुं हूर्त होप रहने पर तिर्यक्रायुका बन्ध करता है उसके साधिक एक पूर्वकोटि काल तक तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता यह स्पष्ट हैं। यह देख कर यहाँ तिर्यञ्चायुके अजधन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। सम्यग्दृष्टि तियञ्जके चार जाति आदिका बन्ध नहीं होने से इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि स्रोघ प्ररूपणामें उसका स्पष्टीकरण कर स्राये हैं। इस लिए वहाँ देख कर यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

५६७. पस्त्र निद्रय तिर्यस्त्रित्रममें स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व स्त्रौर स्नन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है स्त्रौर उत्कृष्ट स्नन्तर पूर्वकोटि पृथक्तवप्रमाण है। स्रजघन्य स्रनुभागबन्धका स्नन्तर सामान्य तिर्यस्त्रोंके समान है। सातावेदनीय, स्रसातावेदनीय स्त्रौर स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य स्रनुभागबन्धका जघन्य स्नन्तर एक समय है स्त्रौर उत्कृष्ट स्नन्तर पूर्वकोटिपृथक्तव स्त्रधिक तीन पल्य है। स्रजघन्य स्तुभागबन्धका जघन्य स्नन्तर एक समय है स्त्रौर उत्कृष्ट स्तर्ना स्त्रु हूर्त है। स्त्रप्तर्याख्यानावरण चारके जघन्य स्ननुभागबन्धका जघन्य स्तर्माण है। स्त्रजघन्य स्ननुभागबन्धका जघन्य स्तर्माण है। स्त्रजघन्य स्त्रनुभागबन्धका जघन्य स्तर्माण स्त्रमाण स्

विशेषार्थ—तिर्यख्नोंमें संयमासंयमके श्रमिमुख तिर्यक्रके ही स्त्यानगृद्धि श्रादिका जघन्य

४६८. पंचि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोल्लसक०-भय-दु०-ओराल्ठि०-तेजा०-क०-धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० वेसम०। संसाणं ज० अज० ज० ए०, उक्क० श्रंतो०। एवं सन्वअपज्जताणं।

श्चनुभागवन्ध होता है, श्रतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व-प्रमाण कहा है। तथा सामान्य तिर्यक्रोंमें इनके अजवन्य अनुभागवन्यका अन्तर पक्के न्द्रिय तिर्यक्र-त्रिककी मुख्यतासे ही प्राप्त होता है, अतः यह सामान्य तिर्यक्रोंके समान कहा है। पक्रोन्द्रिय तिर्यक्रित्रिककी कायस्थितिको देखकर इनमें सातावेदनीय त्रादिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तव अधिक तीन पत्य कहा है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है श्रीर कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें यह बन्ध हो यह सम्भव है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुं हूर्त कहा है। जिस तिर्यञ्चने संयमासंयमके अभिमुख होकर स्प्रप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका जघन्य अनुभागवन्ध किया है और अन्तर्मु हुर्तक बाद पुनः नीचे श्राकर श्रति शीघ्र संयमासंयमको प्रहण करनेके पूर्व पुनः जघन्य श्रनुभागवन्ध किया है उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर उपलब्ध होता है और जो कायस्थितिके प्रारम्भ में श्रीर श्रन्तमें संयम।संयमको प्रहण करते हुए जघन्य श्रनुभागवन्ध करता है उसके इन प्रकृतियों के जवन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध होता है, अतः यहां इनके जवन्य अनुभागबन्ध का जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त अौर उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथवत्व प्रमाण कहा है। तथा संयमा-संयमका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। स्रावेदका जघन्य श्रानुभागवन्ध श्रापनी कायस्थितिके प्रारम्भमं श्रीर श्रान्तमं हो यह सम्भव है। सातावेदनीयका भी यह जघन्य अनुभागवन्य इसी प्रकार सम्भव है, इसलिए स्नीवेदके जघन्य श्रमुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। तथा उत्तम भोगभूमिमें प्रारम्भमें श्रीर श्रन्त में जो मिध्यादृष्टि है श्रीर मध्यमें कुछ कम तीन पत्य तक जो सम्यग्दृष्टि है उसके इतने काल तक स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पर्य कहा है। यहाँ जिन प्रकृतियोंके जघन्य और श्रजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर कहा है उनके सिवा जो शेष प्रकृतियाँ बचती हैं उनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धके श्रन्तरमें उत्कृष्ट प्ररूपणा के उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धके श्रन्तरसे कोई विशेषता नहीं है, श्रतः यह उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान कहा है।

५६८. पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्षाय, भय, जुगुष्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कामणशरीर आदि ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुं हूर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अक्तियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्य ई हि। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकों के जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सन ऋषयांप्रकोंकी कायस्थिति ऋन्तर्मु हूर्त हैं, ऋतः यहां ध्रुष प्रकृतियोंके ऋजघन्य ऋनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरको छोड़कर शेष सन उत्कृष्ट ऋन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। मात्र ध्रुव प्रकृतियोंके जवन्य ऋनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय है, ऋतः यहां ऋजघन्य अनु-

१. ता० आ॰ प्रस्थोः उ० अंतो॰ । दोएखं आउगास । एवं इति पाठः ।

४६६. मणुस०३ खिवगोणं ज० णित्य श्रंतरं । अज० पगिदश्रंतरं । आहार-दु० ज० अज० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडिपुघ०। तित्थय० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० उ० श्रंतो०। सेसाणं पंचिदियितिरिक्तियंगो। णवरि तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०-णिमि० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०।

६००. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थः४-उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देस्०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणागिद्धि०३-

भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। शेप कथन सुगम है।

५६६. मनुष्यित्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अजधन्य अनुभागवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके समान है। आहारकिष्ठिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिष्ट्रथक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चोन्द्रय तिर्थक्कोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तैजसरारीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ-मनुष्यत्रिकमें जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है वे चपक प्रकृतियाँ हैं। उनके जघन्य अनुमागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं यह स्पष्ट ही है। तथा प्रकृतिबन्धमें इनके बन्धका जो जधन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वही यहाँ इनके श्रजधन्य श्रमुभागबन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तरकाल जानना चाहिए । इसलिए यह श्रान्तर प्रकृतिबन्धके श्चन्तरके समान कहा है। क्ष्यक प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्ररास्त वर्णचतुष्क और उपघात । इनमेंसे पुरुपवेद, हास्य अभीर रतिको छोड़कर शेष सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका उपशमश्रे णिमें अन्तम् हूत काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान अन्तमु हूर्त जानना चाहिए। तथा शेप तीन प्रकृतियोंके अजघन्य श्रनुभागवन्धका प्रकृतिबन्धके श्रन्तरके समान जयन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमु हूर्त जानना चाहिए। स्वामित्वका देखते हुए आहारकद्विकका कमसे कम अन्तमु हूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वके अन्तरसे जघन्य और अजवन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, श्रतः इनके जघन्य और श्रजवन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तमु हूर्त भौर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य श्रनुभागबन्ध मिथ्यात्वके श्रमिमुख हुए जीवके होता है और ऐसा जीव मनुष्यगतिमें पुनः सम्यक्त्वका सम्पादन नहीं करता. स्रत: इसके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशम-श्रीणिमें श्रान्तमु हूर्त काल तक इसका बन्ध नहीं होता, श्रतः इसके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। शेष प्रकृतियों का भङ्ग पक्र न्द्रिय तिर्यख्रों के समान है यह स्पष्ट ही है। मात्र तैजसशरीर त्रादिके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तरकालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिमें इन तैजसशरीर श्रादिका श्रन्तमु हूर्तकाल तक बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त प्राप्त होता है। पद्ध न्द्रिय तिर्यद्धोंसे यहाँ यही विशेषता है।

६००. देवोंमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके अचन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० देसू० । साद्।साद०पंचणोक०-थिरादितिण्णियुग० ज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०,
उ० श्रंतो० । इत्थि०--णवुंस०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--अप्पस०--दूभग-दुस्सर-अणादे०णीचा० ज० अज० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० देसू० । दोआयु० णिरयभंगो । तिरिन्त०तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० अहारस० सादि० । मणुस०-पंचिंदि०ओरालि०श्रंगो०-मणुसाणु०-तस० ज० ज० ए०, उ० अहारस० सादि० । अज०
सादभंगो । एइंदि०-आदाव-थावर० ज० अज० ज० ए०, उ० बेसागरो० सादि० ।
ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० ज० ज०
ए०, उ० अहारस० सादि० । अज० ज० ए०, उ० वेस० । समचदु०-वज्जरि०पसत्थ०--सुभग-सुस्सर-आदं०--उच्चा० ज० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० देसू० । अज०
सादभंगो । एवं सन्वदेवाणं अप्यूष्पणो पगदिश्रंतरं णेदन्वं ।

श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकपाय और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजयन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्चन्तर्मु हुर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्चप्रशस्त विहायोगिति, दुर्भग, ट:स्वर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो आयुत्रोंका भन्न नारिकयोंके समान है। तिर्येक्सगति, तिर्येक्सगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्यातके जघन्य श्रीर स्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर माधिक अठारह सागर है। मनुष्यगति, पञ्चे न्द्रियजाति, स्रोदारिक स्राङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी स्रोर त्रसके जघन्य स्रनुभागवन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका भङ्ग साता-वेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, स्रातप श्रीर स्थावरके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रीर तीर्थक्ररके जघन्य श्रमुभागवन्थका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। समचतुरस्रसंस्थान, वऋर्पभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय त्र्योर उचगोत्रके जघन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्र्योर उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार सब देवोंमें जिनके जिन प्रकृतियों का बन्ध होता है उनका अन्तरकाल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध सर्व विशुद्ध किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिका वन्ध श्रन्तिम मैवेयक तक ही होता है, इसलिए इनके बन्धकी चरमाविध ११ सागर है। उसमें भी सम्यग्दृष्टिके इनका वन्ध नहीं होता श्रीर नीचें मैवेयक ६०१. एइंदिएसु धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा। बादरे श्रंगुल० असंखे०। पज्जते संखेजाणि वाससह०। सुहुमे असंखेजा लोगा। अज० ज० ए०, उ० बेस०। तिरिक्खाउ० [ज०] णाणा०भंगो। अज० ज० एग०, [उक्क०] पगदिश्रंतरं। मणुसायु० ज० अज० उक्कस्सभंगो।

में सम्यक्तवका जघन्य काल श्रान्तर्मुहूर्त श्रौर उत्कृष्ट काल ३१ सागर है। उसमें भी यहाँ कुछ कम ३१ सागर विविद्यात है, क्योंकि प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें मिध्यादृष्टि रख कर इन प्रकृतियोंका बन्ध कराना है। इसलिए इनके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हर्त श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। मात्र इनका जवन्य अनुभागवन्य सम्यक्त्वके श्रभिमुख जीवके होता है, इतना समभ कर श्रन्तर काल लाना चाहिए। यह सम्भव है कि साता श्रादि प्रकृतियोंका जघन्य श्रानुभागवन्य भवके प्रारम्भमें श्रीर श्रान्तमें हो मध्यमें न हो, श्रातएव इनके जघन्य त्र्यनुभागबन्धका उत्कृष्ट त्र्यन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनका श्रधिकसे अधिक अन्तमुं हुर्त काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अज-घन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुत कहा है। स्त्रीवर श्रादिका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, श्रतः इनके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवत्यका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकर्तास सागर कहा है। यहाँ मध्यमें कुछ कम इकतीस सागर काल तक सम्यग्दृष्टि रख कर यह अन्तर लाना चाहिए । दो आयुत्रोंका भन्न नारिकयोके समान है यह स्पष्ट ही हैं । तिर्यक्रगतित्रिकका बन्ध सह-स्त्रार करुप तक ही होता है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर कहा है । मात्र श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर लाते समय मध्यके कालमें सम्यग्दृष्टि रखना चाहिए. त्रीर जयन्य त्रानुभागवन्यका त्रान्तर लाते समय मध्यमें जयन्य अनुभागबन्धके योग्य परिएाम नहीं कराने चाहिए। मनुष्यगति ऋादिका जघन्य ऋनुभागबन्ध सहस्रार करूप तक ही होता है, इमलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर कहा है **श्रौर परावर्तमान श्रकृतियाँ होनेसे** इनके श्रजघन्य श्रनुभागगन्धका उत्कृष्ट श्चन्तर सातावेदनीयके समान श्चन्तम् हुर्त कहा है। एकेन्द्रियजाति श्रादिका वन्ध एशान कल्प तक होता है, श्रतः इनके जघन्य ऋौर ऋजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्ऋष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर कहा है। मात्र जघन्य श्रनुभागवन्धकी दृष्टिसे इतने काल तक बीचमें जघन्य श्रनुभागवन्धके योग्य परि-णाम न करावे श्रौर श्रज्ञघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर लानेके लिए मध्यमें उसे सम्यग्दृष्टि रखे। श्रोदारिकशरीर श्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वसंक्लिष्ट परिणामोंसे होता है श्रीर ये परिणाम सहस्रार कल्प तकही सम्भव हैं, स्रातः इनके जवन्य स्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट स्रान्तर साधिक श्रठारह सागर कहा है। समचतुरस्त्रसंस्थान श्रादिका जघन्य श्रनुभागबन्ध मिध्यादृष्टिके होता है, अत: इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्ऋष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। यह श्चन्तर काल सामान्य देवोंकी श्रपेक्षा कहा है। भवनवासी त्रादि प्रत्येक देवनिकायमें श्रीर विमान-वासी देवोंके श्रवान्तर भेदोंमें कहाँ कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है श्रीर स्त्रामित्वसम्बन्धी क्या विशेषता है इसे जानकर अन्तरकाल साध लेना चाहिए।

६०१. एकेन्द्रियोंमें ध्रु वबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यात वें भागप्रमाण है। पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सूद्त्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यञ्जायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुतर एक समय है और

तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु o-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० सादभंगो। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० अज० ओघं। बादर० ज० णाणा०भंगो। अज० ज० ए०, उ० कम्मिट्टदी०। पज्जते ज० अज० ज० ए०, उ० संखेज्जाणि वास०। सुहुमें असंखेज्जा लोगा। एदेसि तिरिक्खगदितिगं मणुसगदिभंगो। णविर अज० साद-भंगो। सेसं ज० णाणा०भंगो। अज० सादभंगो। सन्वविगलिदिय-पज्जत० धुविगाणं ज० अज० उ०भंगो। सेसाणं पितं चेव।

उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगति, विर्यक्रगति और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका अम्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर आघके समान है। बादरोंमें जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञाचावरणके समान है। यादरोंमें जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञाचावरणके समान है। पर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण है। पर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। सुद्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके तिर्यक्रगितिकिका भङ्ग मनुष्यगतिके अन्तरके समान है। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागबन्धका ज्ञन्तर सातावेदनीयके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञाचावरणके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। सब विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्तकोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी उत्कृष्टके समान है।

विशेपार्थ-एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्जगतिद्विक और नीचगोत्रको छोडकर शेप प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव करते हैं श्रीर इनकी कायस्थिनिका अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है, श्रतः इनमें प्रायः सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यह जो विशेषता है उसका ऋलगसे स्पष्टीकरण किया है। शेष बादर एकेन्द्रिय आदिके उनकी कायस्थितिके अनुसार यह अन्तर कहा है। यहाँ तिर्यक्रायुका यदि बन्ध न हो तो साधिक बार्स हजार वर्ष तक नहीं होता, क्योंकि जिस एकेन्द्रियने पृथिवीकायिक होकर २२ हजार वर्षके प्रथम त्रिभागमें आयु बन्ध किया। वादमें मरकर वह पुनः २२ हजार वर्षकी श्रायुवाला पृथिवीकायिक हुआ श्रीर वहाँ आयुमें श्रान्तम् हुर्त शेप रहने पर उसने श्रागामी तिर्यक्रायुका बन्ध किया तो उसके साधिक वाईस हजार वर्ष तक तिर्यक्रायुका बन्ध नहीं होता. इसलिए यहाँ तिर्यक्रायुके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिवन्धके अन्तरके समान कहा है। मनुष्यायुके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर जिस प्रकार उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय स्पष्ट कर आये हैं उस प्रकार जान लेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। तिर्यक्कगतित्रिकका जघन्य त्र्यनुभागबन्ध त्र्यग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीव करते हैं श्रीर इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साता-वेदनीयके समान अन्तमु हुर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विक स्त्रीर उचगोत्रका बन्ध अग्निकायिक स्त्रीर वायुकायिक जीव नहीं करते, श्रतः इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर

१. ता० म्रा० प्रस्यो: तिरिक्खगदिभंगो तिरिक्खाग्रु० इति पाट: ।

६०२. पंचिदि० तेसि पज्ज० पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०-पंचणोक०-म्रप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ०-[पंचंत०] ज० णित्थ म्रंतरं । अज० ओघं । थीणिगिद्धि०३मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० ग्रंतो०, उ० कायिहदी० । अज० ओघं । सादासाद०अरिद-सोग०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थिव०-तस०४थिराथिर०-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि० ज० ज० ए०, उ०
कायिहदी० । अज० ओघं । अहक० ज० ज० म्रंतो०, उ० कायिहदी० । अज०
म्रोघं । इत्थि० ज० म्रज० उक्क०भंगो० । णग्रंस०-पंचसंघ०-म्रप्पसत्थ०दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० ज० अज० उक्क०भंगो । णविर णीचागो० ज० ज०
म्रंतो० । चदुआयु० ज० अज० उ०भंगो । णिर्यग०-चदुजादि-णिर्याणु०-आदावथावरादि०४ ज० म्रज० उ०भंगो । तिरिक्खगदितिगं ज० ज० म्रंतो०, उ० काय-

श्रोघके समान श्रसंख्यात लोक कहा है। मात्र वादर एकेन्द्रिय श्रादिमें यह अन्तर उनकी काय-स्थितिके श्रनुसार होनेसे तत्प्रमाण कहा है। इसी प्रकार इनके निर्यक्ष्रगतित्रिकके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए। मात्र तिर्यक्ष्रगतित्रिकका बन्ध सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका अन्तर सानाबंदनीयके समान कहा है। यहाँ अन्य जितनी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं उनके अजधन्य अनुभागबन्धका अन्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए। सब विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अन्तरका विचार जिस प्रकार उत्कृष्ट प्रकृपणामें कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसके अनुसार जानने मात्रकी सूचना की है।

६०२. पञ्चोन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजवन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल श्रोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर श्रन्तम् हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण् है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, श्ररति, शोक, पश्चे द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रशुम, सुमग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रौर निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्राठ कषायोंके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर श्रोधके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रोर श्रजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है। चार आयुओंके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप श्रीर स्थावर श्रादि चारके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। तिर्यक्रगतित्रिकके जमन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका हिदी । अज अोघं । मणुस०३-देवगदि०४ ज० ज० ए०, उ० कायहिदी०। अज ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। ओरालि०-ओरालि० स्रंगो०-वज्जरि० ज० अज ० उ०भंगो । आहारदुग० ज० अज ० ज० स्रंतो०, उ० कायहिदी०।

अन्तर श्रोघके समान है। मनुष्यगितित्रिक श्रौर देवगितिचतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिश्रमाण है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रौर व अर्थभनाराचसंहननके जघन्य श्रौर अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। श्राहारकद्विकके जघन्य श्रौर अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिश्रमाण है।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। मात्र तीर्थक्कर प्रकृतिका जघन्य श्रनुभागबन्ध मिण्यात्वके श्रभिमुख हुए सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता हैं, स्रतः यह सब स्रवस्था पुनः सम्भव नहीं हैं, स्रतः इनके जघन्य स्रनुभागबन्धके स्रान्तरकालका निषेध किया है। स्त्यानगृद्धि आदिका वन्ध सम्यग्द्दष्टिके नहीं होता। एक तो सम्यम्यक्त्वका जघन्य काल श्रन्तर्मु हुर्त है, दूसरे इसकी प्राप्ति कायस्थितिके प्रारम्भमें त्र्यौर त्र्यन्तमें होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भहर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण कहा है। सातावदुनीय आदिका जघन्य अनुभागवन्य कायस्थितिक प्रारम्भमें श्रीर अन्तमें हो यह सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। आठ कपायोंका जघन्य अनुभागवन्य संयमके सन्मुख हुए क्रमशः सम्यग्हृष्टि और संयत।संयतके होता है। यह अवस्था अन्तर्मुहूर्त और कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे प्राप्त हो सकती है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भाहर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। यद्यपि स्वामित्वको देखते हुए नपुंसकवेद स्रादिके जघन्य स्रीर श्रजघन्य स्रनुभागबन्धका स्रन्तर काल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान बन जाता है परन्त नीचगीत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होने के कारण यहाँ इसके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है, क्योंकि इतने अन्तरके विना पुनः उस अवस्थाकी प्राति सम्भव नहीं है । तिर्येख्वगतिद्विकका जघन्य श्रानुभागवन्ध सातवें नरकमें सम्यक्त्वके श्राभिमुख हुए नारकीके और उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध उत्क्रप्ट संक्लेश परिणामवाले देव नारकीके होता हैं। यह स्वामित्व कमसे कम श्रन्तर्मु हुर्तके श्रन्तरसे श्रीर श्रधिकसे श्रधिक कायस्थितिके श्रन्तर से प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। मनुष्यगति आदिका जवन्य अनुभागवन्ध परिवर्तमान मध्यम परि-णामोंसे होता है। ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और ऋधिकसे अधिक कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे हो सकते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थित प्रमाण कहा है। तथा सातवें नरकमें श्रीर वहाँ से निकलने और प्रवेश करनेके समय अन्तर्मुहर्त तक इनका बन्ध नहीं होता. अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकका बन्ध अन्तमु हुते और कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। शेष विवेचन जो श्रोघके समान हो उसे श्रोघ प्ररूपणा देखकर श्रीर जो उत्कृष्टके समान हो उसे उत्कृष्ट प्ररूपणा देखकर घटित कर लेना चाहिए।

६०३. पुढवि०-आउ० धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० सन्वेसि अप्पप्पणो कायिहदी० । अज० ज० ए०, उ० वेसम० । सेसाणं ज० णाणा०भंगा । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० पगिद्श्रंतरं । एवं तेउ०-वाउ० । णविर तिरिक्खगिद०३ धुवर्भगो । वणप्पदि० धुवियाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेज्ञा लोगा । अज० असंखेज्ञा लोगा । अज० ज० ए०, उ० वेसम० । सेसाणं ज० णाणाभंगो । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । तिरिक्खायु० ज० णाणा०भंगो । अज० पगिद्श्रंतरं । मणुसाउ० ज० अजै० उक्कस्स-भंगो । वादरपत्तेय० पुढवि०भंगो । णियोदं धुवियाणं सेसाणं पुढविभंगो । णविर दोआयु० ज० अज० अपज्जत्तभंगो ।

६०३. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें ध्रववन्धवाली प्रकृतियोंके जवन्य अनुभाग-वन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सबके अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। ऋजघन्य ऋतुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर दो समय है। क्षेप प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है और अजधन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्हृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। दो आयुओंके जघन्य और श्रजघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतियन्थके अन्तरके समान है । इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ध्रृव प्रकृतियोंक समान कहना चाहिए। बनस्पतिकायिक जीवोंमें ध्र वयन्धवाली प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर असंख्यात लोकप्रमाण् है। वादरोंमें अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण् है। वादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूच्योंमें असंख्यात लोकप्रगाण है। अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्दृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतिवींके जघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तर ज्ञानावरएके समान है। छाजवन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुं हूर्त है। तिर्यञ्चायुकं जघन्य अनुभागधन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रज्ञचन्य अनुभागवन्धका अन्तर प्रकृतिवन्धके श्रन्तरके समान है। मनुष्यायुके जवन्य और श्रजघार श्रनुभागवत्थका श्रन्तर उत्क्रष्ट प्रहृपणांक समान है। वादर प्रत्येकवनस्पतिकायक जीवों का भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। वादर निगोद जीवोंमें ध्रुववस्थवाली ऋौर शेप प्रकृ-तियोंका भक्त पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं। इतनी विशेषता है कि दो आयुत्रोंके जघन्य और श्रजघन्य अनुभागवन्यका अन्तर अपर्याप्त जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी और उनके अवान्तर भेदोंकी जो कायस्थित है उसके आदिमें और अन्तमें दो आयुको छोड़कर सब प्रकृतियोंका जवन्य अनुभाग-बन्ध हो यह सम्भव हैं, जतः यहाँ सब प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। ध्रुववँधनेवाली प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागबन्धका अन्तर जवन्य अनुभागबन्धके काल की अपन्ता कहा है और शेष प्रकृतियों परिवर्तमान होनेक कारण उनके अजधन्य अनुभागबन्धका अन्तर एक समय व अन्तर्मु हूर्त घटित हो जाता है। अग्निकायिक व बायुकायिक जीवोंमें भी यही भङ्ग अविकल रूपसे घटित हो जाता है। मात्र उनमें यह विशेषता है

१. ता॰ भ्रा० प्रत्योः मग्रुसाउ० एइंदिय० तिथियकायिययोदायां च ज० भ्रज० इति पाठः ।

६०४. तस-तसपज्जतः पंचिदियभंगो। णविर अप्पप्पणो कायिद्दि भाणिद्व्वा। ६०५. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-०दु०-अप्पसत्थ०४-ग्राह।रदुग०-उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अज० णित्थि० श्रंतरं। सादा-साद०-चदुणोक०-तिगदि--पंच जादि--दोसरीर--छस्संठा०--दोश्रंगो०--छस्संघ०-तिण्णिन्त्राणु०--पर०-उस्सा०-आदावुज्जो०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-उच्चा० ज० श्रज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। पुरिस०--हस्स-रदि--तिरिक्ख०३ ज० णित्थ श्रंतरं। अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। चदुआउ० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० वदसमयं। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण४-अगु०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० वर्षते०। अज० ज० ए०, उ० वर्षते०।

कि उनके मनुष्यगतिद्विक व ऊँचगोत्रका बन्ध नहीं होता हैं। इस कारण उनके तिर्यक्र्यगतिद्विक व नीचगोत्र ध्रुवबन्धिनी हैं। सामान्य वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग- बन्ध वादरोंके होता है और उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लांकप्रमाण है और शेप अवान्तर भेदोंमें अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण अन्तर उपराक्त रूपसे होता है अतः जवन्य अनुभाग- बन्धका अन्तर घटित हो जाता है। अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तरके सम्बन्ध जो पूर्वमें लिखा है वही यहाँ पर भी विचार कर लेना चाहिये। वनस्पतिकायिक जीवोंके पूर्वके कथनमें बादर प्रत्येक व बादर निगोदका भक्त नहीं आया था वह अविकल रूपसे पृथिवीकायिक जीवोंके समान घटित हो जाता है। जो विशेषता है वह मूल में खोल दी गई है।

६०४. त्रस त्रौर त्रसपर्याप्त जीवोंमें पक्चे न्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि त्रपनी त्रपनी कायस्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—पहले पख्चे निद्रय श्रोर पद्धे निद्रय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रान्तर काल कह श्राये हैं। यहाँ भी वह उसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र वहाँ जो श्रान्तर उनकी कायस्थिति प्रमाण् कहा हो उसे यहाँ इनकी कायस्थितिप्रमाण् जानना चाहिए।

६०५. पाँचों मनोयोगी त्रौर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, आहारकद्विक, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजवन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, तीन गित, पाँच जाित, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आत्प, उद्योत, दो विहायोगित, अस-स्थावर द्स युगल और उचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त है। पुरुपवेद, हास्य, रित और तिर्यञ्चगितित्रकके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म् हूर्त है। चार आयुओंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर क्षत्र है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य इन्तर अन्तर्म हुर्त है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य इन्तर क्षत्र है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य इन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

६०६. कायजोगीसु पंचणा०--छदंसणी०--चहुसंज०--पंचणोक०--तिरिक्त०ऋष्पसत्थ०४--तिरिक्त्वाणु०--उप०-तित्थ०--णीचा०-पंचंत० ज० णित्थ झंतरं । अज०
ज० ए०, उ० झंतो० । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--बारसकै०--आहारदुगं ज० अज०
णित्थ झंतरं । सादासाद०--चदुजादि--छस्संटा०--छस्संघ०--दोविहा०-थावरादि४-थिरादिछयुग० ज० ज० ए०, उ० असंखेज्ञा लोगा । अज० ज० ए०, उ० झंतो० ।
इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-णिरय--देवगदि-पंचिदि०--ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०दोझगो०--पसत्थ०४--दोआणु०---च्रगु०३--आदावुज्ञा०--तस४--णिमि० ज० अज०
ज० ए०, उ० झंतो० । णिरय-देवायु० ज० अज० मण०भंगो ।तिरिक्त्वाउ० ज० ज०
ए०, उ० असंखेज्ञा लोगा। अज० ज० ए०, उ० वावीसं वाससह० सादि०। मणुसायु०

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व देखनेसे विदित होता है कि यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ उसका निपेध किया है। सातावदनीय आदि एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और दूसरे इन योगोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेद, हास्य और रितका जघन्य अनुभागवन्ध क्षत्रकृषिमें तथा तियंक्रगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यक्त्वक सम्मुख हुए सात्वें नरकके जीवके होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निपंध किया है। इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। इन योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए दो त्रिभागोंकी यहाँ प्राप्ति सम्भव नहीं है, अतः यहाँ चारा आयुआक जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। तैजसशरीर आदिके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। तैजसशरीर आदिके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होनेका कारण इन योगोंका उत्कृष्ट काल ही है।

६०६. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, तिर्यक्रगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, तीर्यक्रर, नीचगोत्र और पाँच अन्तर रायके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कृति है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व, बारह कपाय और आहारक द्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावदनीय, असातावदनीय, चार जाति, छह संस्थान, छह सहनन, दा विहायांगिति स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। स्थिवद, नपुंसकवेद, अरित, शोक, नरकगित, देवगित, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, वैकि-यिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु-त्रिक, आतप, उद्योत, असचतुष्क और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। नरकायु और देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका अङ्गतर अन्तर्मु अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका अङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यक्रायुके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्य अनुभ

ता॰ भ्रा॰ प्रत्योः चदुदंसगा इति पाठः । २. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः बारसकसाय३ इति पाठः ।
 ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः ज॰ भ्रज॰ ए॰ इति पाठः ।

ज० अज० ज० ए०, उ० अणंतका०। मणुसग०-मणुसाणु०-उद्या० ज० अज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा।

६०७. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०-आहारदुग--अपप्पसत्थ०४-उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अज० णित्थ अंतरं । सादा-जघन्य अन्तर एक समय हं और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाइंस हजार वर्ष हैं। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्त्रका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगांत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेपार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई पांच ज्ञानावरणादि ३० प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभाग-बन्ध त्तपकश्रेणिमें होता है। तिर्यञ्चगतित्रिका सातवें नरकमें सम्यक्त्वके श्रमिमुख हुए जीवके होता है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका मतुष्यके मिध्यात्वके अभिमुख होनेपर होता है, इसलिए यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य श्रजुभागबन्धके अन्तरका निर्पेध किया है। यद्यपि तिर्यञ्चगतित्रिकका अन्त-म् हर्त कालके वाद पुनः जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है पर उस समय तक योग वदल जाता है। तथा जो उपशमश्रेणिमं काययोगके रहते हुए एक समय या ऋन्तर्मु हुर्तके लिए इनका अबन्धक होकर श्रीर मरकर देव होने पर इनका बन्ध करता है उनकी श्रपेत्ता इनके अजबन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुतं कहा है। मात्र तियंक्रगतित्रिकका यह अन्तर परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे प्राप्त होता है। तथा पुरुषवेद, हास्य और रितका भी यह अन्तर इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। काययोगके रहते हुए स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका दो बार जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवन्य उपलब्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रन्तरका निपंध किया है। यदापि काययोगकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है पर ख्रोघसे इनके जयन्य ख्रनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण ही वतलाया है। इसलिए इन प्रकृतियोंके स्वामित्वकी जानकर यह घटित कर लेना चाहिए। विशेषताका निर्देश हम श्रोघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, श्रतः इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त कहा है। स्त्रीवेद आदि सब परावर्तमान प्रकृतियां हैं, अतः इनके जवन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। जहाँ इनमें से कुछ प्रकृतियोंका दीर्घकाल तक निरन्तर बन्ध भी हाता है वहाँ काययोग अन्तमु हूर्तसे अधिक काल तक उपलब्ब नहीं होता, इसलिए भी यहाँ वही अन्तर प्राप्त होता है। नरकायु ख्रौर देवायुका पक्चोन्द्रियके वन्ध होता है ख्रीर वहाँ काय-योगका काल मनायांगक समान है, इसलिए इन दो आयुओंका भक्क मनायोगियोंके समान कहा है। श्रोघसे तिर्यञ्चायुके जघन्य श्रनुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक कह श्राये हैं। वहीं यहाँ जानना चाहिए । मात्र मनुष्यायुके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्रनन्तकाल इसलिए कहा है कि मनुष्यायुका जघन्य श्रनुभागवन्ध करके लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य हुआ फिर अनन्तकाल तक तिर्येक्च रहा श्रीर अन्तमें मनुष्यायुका जघन्य श्रनुभागबन्ध किया। इस प्रकार मनुष्यायुके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्तकाल प्राप्त हो जाता है। तिर्यक्कायुके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्क्रष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है यह स्पष्ट ही है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, अतः इनके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है।

६०७. त्रीदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह-कपाय, भय, जुगुप्सा, त्राहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थद्धर त्रीर पाँच अन्तरायके

१. ता० द्या॰ प्रत्यो: चदुसंघ॰ इति पाठः ।

साद०--मणुसगदि--चदुनादि-छस्संठा०--छस्संघै०-मणुसाणु०-दोविहा०--थावरादि०४-थिरादिछयुग०-उचा० ज० ज० ए०, उ० वावीसं वाससह० दे०। अन० ज० ए०, उ० खंतो०। इत्थि०-णवुंस०--अरदि--साग--णिरयगदि-देवगदि--पंचिदि०--ऋाराछि०-वेउव्वि०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्ञो०-तस४ ज० अन० न० ए०, उ० खंतो०। पुरिस०-हस्स-रदि० न० णित्थ खंतरं। अन० सादभंगो। णिरय-देवायु० मणनोगिभंगो। तिरिक्ख-मणुसायु० न० अन० न० ए०, उ० सत्तवाससह० सादि०। तिरिक्खग०--तिरिक्खाणु०--णीचा० न० न० ए०, उ० तिण्णिवाससह० दे०। अन० न० ए०, उ० खंतो०। तेना०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० न० न० ए०, उ० खंतो०। अन० न० ए०, उ० वेस०।

जघन्य ख्रीर अजधन्य श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्य-गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायागिति, स्थावर ऋादि चार, स्थिर श्रादि छह युगल और उच्चगोत्रके जयन्य अनुसागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुँँ कम वाईस हजार वर्ष है। अजयन्य अनुभागवन्यका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है । स्त्रीवेद, नपुसक्ष्वेद, अरित शांक, नरकर्गात, देवगति, पञ्च न्द्रियजानि, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रातप, उद्योत और त्रसचतुष्कके जयन्य और अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समेय हैं श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहुर्त है। पुरुपवेद, हास्य और रितके जवन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातांबदनीयके समान है। नरकायु और देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । तिर्यञ्चायु श्रोर मनुष्यायुके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्र-गत्यानुपूर्वी स्रोर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है स्रोर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हूर्त है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त है । श्रजघन्य श्चनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ओर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेपार्थ—श्रौदारिककाययोगमें पाँच ज्ञानावरणादि कुछ प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और जिनका श्रन्यत्र होता है उनका यदि पुनः जघन्य श्रनुभागवन्ध प्राप्त होता है तो तब तक योग वदल जाता है, श्रतः इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तर कालका निषेध किया है। औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाइस हजार वर्ष है। यह सम्भव है कि सातावेदनीय श्रादिका जघन्य श्रनुभागवन्ध इसके श्रादिमें श्रीर श्रन्तमें हो, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागवन्ध इसके श्रादिमें श्रीर श्रन्तमें हो, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर वर्ष कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, श्रतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त कहा है। स्नीवेद श्रादिके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त दो कारणसे कहा है। एक तो जहाँ इनका जघन्य श्रनुभागवन्ध होता है वहाँ श्रीदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। दूसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। पुरुषवेद, हास्य श्रीर रितका जघन्य श्रनुभागवन्ध

१. झा० प्रती झज्ज॰ ज॰ ड॰ इति पाठः !

६०८. ओरालियमि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-**दु०-** देवग०-त्रोरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०--वेउव्वि०त्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४ -देवाणुपु०- अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० अज० णित्थ श्रंतरं । पुरिस०-हस्स-रिद-तिरिक्ख०४-ओरालि०श्रंगो०-पर०-उस्सा० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० ।

चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजधन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातांवदनीयके समान कहा है। नरकायु और देवायुका स्पष्टीकरण जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके कर आये हैं उस प्रकार यहां भी कर लेना चाहिए। कुछ कम बाईस हजार वर्ष का त्रिभाग साधिक सात हजार वर्ष होता है, इसलिए तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु के जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। तात्पर्य यह है कि त्रिभागक प्रारम्भमें और आयुमें अन्तर्म हूर्त शेप रहने पर आयु वन्ध कराने पर यह अन्तर उपलब्ध होता है। औदारिककाययोगमें निर्यञ्चगतित्रिकका जधन्य अनुभागवन्ध अग्निकायिक और वायुक्तिक जीव करते हैं और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष है, अतः यहाँ इनके जधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त कहा है। तेजसशरीर आदि का जधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी जीव करते हैं और इनके औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त है, अतः यहाँ इनके जधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी जीव करते हैं और इनके औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त है, अतः यहाँ इनके जधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी जीव करते हैं और इनके औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुर्त है, अतः यहाँ इनके जधन्य अनुभागवन्ध अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म कुर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६०८. श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण. नो दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, देवनित, श्रौदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोयाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्यङ्कर श्रोर पाँच अन्तरायक जघन्य श्रोर अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। पुरुपवेद, हास्य, रित, तिर्यञ्चगतिचतुष्क, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात श्रोर उच्छवासके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर काल नहीं है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्छष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। शेप प्रश्नतियोंक जघन्य श्रोर अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्छष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है।

विशेपार्थ—स्वामित्वके अनुसार प्रथम दण्डकमें कही गई और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध औदारिकमिश्रकाययोगके रहते हुए अन्तर देकर दो बार सम्भव नहीं इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्ध के अन्तरका निषेध किया है। इसी प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागवन्ध भी अन्तर देकर दो बार सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्त पूर्ण कर अन्य योगवाला होगा उसके पहले समयमें होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तरका भी निषेध किया है। मात्र दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके औदारिकमिश्रयोग रहता है, अतः परावर्तमान होनेसे इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। तथा शेप प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हों और उनके जघन्य अनुभागवन्धके लिए शरीर पर्याप्ति प्राप्त होनेमें एक समय पूर्वका कोई नियम नहीं है, अतः उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय पूर्वका कोई नियम नहीं है, अतः उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त कहा है।

६०६. वेडिव्यका० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-ओराहि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवणण४-अगु०-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० वेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० अज० णित्थ श्रंतरं। पुरिस०-इस्स-रिद्० ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। तिरिक्ख०३ ज० णित्थ श्रंतरं। श्रज्ञ ० ज० ए०, उ० श्रंतो०। दोआउ० मणजोगि-भंगो। सेसाणं ज० श्रज्ञ० ज० ए०, उ० श्रंतो०।

६१०. वेडिव्यिमि० पंचणाणावरणादिधुवियाणं तित्थ० ज० अज० णित्थ ऋंतरं । पुरिस०-हस्स-रिद्-तिरिक्खगिद् ३-पंचिदि०-ओरालि०ऋंगा०-आदाउज्जोव-तस-णीचा० ज० णित्थ ऋंतरं । अज० ज० ए०, उ० ऋंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० ऋजै० ज० ए०, उ० ऋंतो०।

६०६. वैकियिककाययोगी जीवोमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कामेणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थक्कर श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रोर श्रन्तानुवन्धी चारके जघन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर नहीं है। पुरुपवेद, हस्य श्रोर रितके जघन्य श्रोर श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर नहीं है। श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। दो श्रायुश्रोंका भक्न मनो-योगी जीवोंके समान है। रोप प्रकृतियोंक जघन्य श्रोर अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है।

विशेपाप-वैक्तियिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूते हैं, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानाव-रणादिके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूते कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर तिर्यञ्चगतित्रिकका नारकीके सम्यक्त्वके आभिमुख होने पर जघन्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके अन्तरका निपंघ किया है। पुरुषवेद, हास्य और रितका यद्यपि सर्विशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव और नारकीके जघन्य अनुभागवन्य होता है पर इनका जघन्य अनुभागवन्य एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। दो आयुका स्पष्टीकरण मनो-योगियोंके समान कर लेना चाहिए। शेप प्रकृतियाँ अभुववन्धिनी हैं यह स्पष्ट ही है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अति अनुभागवन्धका जघन्य अनिवन्धिनी हैं यह स्पष्ट ही है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है।

६१०. वैकियिकमिश्रकायोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली श्रोर तीर्थंङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, हास्य, रित, तिये- ख्रगितित्रक, पञ्चोन्द्रयजाति, औदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत, त्रस श्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर कुर्त है। शेष सातावेदनीय श्रादिके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका

१. भा॰ प्रती सादादीयां भ्राज्ञ । इति पाठः ।

- ६११. आहारका० पंचणाणावरणादिधुवियाणं ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। सेसाणं मणजोगिभंगो। आहारमि० धुविगाणं देवायु०- तित्थय० ज० अज० णित्थ श्रंतरं। सेसाणं आहारकायजोगिभंगो। कम्मइगे सन्वाणं उक्कस्सभंगो।
- ६१२. इत्थिवेदेसु पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-भय-दु०--अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० अज० णितथ अंतरं । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० कायिद्दिशि । अज० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पत्ति० दे० । सादासाद०--अरदि-सोग-पंचिं०-समचदु०-पर०--उस्सा०--पसत्थ०--तस४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० कायिद्दिशि ।

जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है।

विशेषार्थ—ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृति इनका जघन्य अनुभागबन्ध वैक्रियिकमिश्र-काययोगके अन्तमें होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है और इसी कारण पुरुपवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका भी निषेध किया है। किन्तु ये पुरुपवेद आदि परावर्तमान और अध्यवदिधनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। और इसी कारण शेष सातादि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उक्त प्रकारसे अन्तर कहा है।

६११. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहृत हैं। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दां समय है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनायोगी जीवोंके समान है। आहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली, देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्ट के समान है।

विशेषार्थ—श्राहारककाययोगी जीवोंमें श्रुववत्यवाली प्रकृतियोंका बन्ध स्वामित्वको देखते हुए इस योगके कालमें दो बार बन्ध सम्भव हे श्रीर इस योगका उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है, श्रतः यहाँ इनके जधन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंकी सब विशेषताएँ मनोयोगके समान होनेसे उनका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। श्राहारकिमिश्र-काययोगमें श्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका, देवायु श्रोर तीर्थद्वरका श्रपने श्रपने परिणामोंके श्रनुसार जधन्य श्रनुभागवन्ध श्रिनिम समयमें होता है, श्रतः इनके जधन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभाग-बन्ध किया है। शेष कपन स्सष्ट ही है।

६१२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर खौर पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तरकाज नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पक्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विद्योगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, अभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अप्रत जि ए , उ अंतो । अहक जि जि अंतो , उ किया हिदी । अजि अोघं । इत्थि ० - णवुंस ० - तिरिक्ख ० - एइंदि ० - पंचसं ठा ० - पंचसं घ० - तिरिक्खाणु ० - आदा - वुज्ञो ० - अप्पसत्थ ० - थावर - दूस्मर - अणा दे ० - णीचां ० ज ० ज ० ए०, उ० काय हि ० । अजि ज ० ए०, उ० पणवण्णं पितदो ० देस् ० । पुरिस ० - हस्स - रिद ० ज ० णित्थ अंतरं । अजि साद मंगो । णिरयाणु ० मणुसि मंगो । तिरिक्ख ० - मणुसायु ० ज० अजि ज ० ए०, उ० काय हि दी ० । देवायु ० ज ० ज ० ए०, उ० काय हि ० । अजि ० ज ० ए०, उ० काय हि ० । अजि ० ज ० ए०, उ० अहा ० वण्णं पित ० पुट्यको डिपु ० । णिरय - देवगदि - तिण्णि जा दि - विचिव ० - विचिव ० अजि ज ० ए०, उ० पणवण्णं पित्र दो ० । मणुस गदि पंच ग ० ज ० ए०, उ० काय हि दी ० । अजि ज ० ए०, उ० तिण्णिपित ० देस् ० । आहार - दुग ० ज ० ज ० ए०, उ० काय हि दी ० । जिजा ० - क० - प्म त्थ चण्ण ४ - अगुरू ० । णिमि० ज ० ज ० एग ०, उक् ० काय हि दी । अजि ज ० ज ० एग ०, उक्क ० वेस म ० ।]

यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति श्रीर उचगीत्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्म हर्त हैं। श्राठ कपायोंके जवन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य अन्तर अन्त-मुहुर्त है और उत्दृष्ट अन्तर कायस्थितित्रमाण है । अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर आयके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसक्वेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, स्रातप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जबन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है। पुरुपवेद, हास्य श्रौर रितके जघन्य श्रानुभागवन्धका श्रम्तर नहीं है। श्राजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर सातावदनीयकं समान है। नरकायका भङ्ग मनुष्यिनियोंकं समान है। तिर्यक्रायु श्रीर मनुष्यायुके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायके जवन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अद्वावन पत्य है। नरकगति, देवगति, तीन जाति, वैकियिकशरीर, वैकियिक आङ्गांपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, सूद्दम, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रजवन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक पचवन परुय है । मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हे श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुसागबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर 🐯 कम तीन परुष है। श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जधन्य श्रन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वण-चतुष्क, अगुरुलघु श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कार्यास्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो सभय है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क. उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायका जघन्य श्रन्भागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है. तथा तीर्थक्र प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य त्रीर त्रजघन्य त्रानुभागबन्धके त्रान्तरका निषेध किया है। मिध्यात्व त्रीर त्रानन्ता-नुबन्धी चारका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। इस अवस्था का प्राप्ति कमसे कम अन्तर्मु हूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कायस्थितिके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण कहा है। तथा यहाँ सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तमु हूते और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पर्य है, अतः उक्त प्रकृतियोंके अज्ञघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त और उत्कृष्ट श्चन्तर कुछ कम पचवन पल्य कहा है। सानादिकका जिन परिणामोंसे जघन्य अनुभागवन्ध होता है वे एक समयके अन्तरसे श्रौर अधिकसे श्रधिक कायस्थितिके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं. इसलिए इनके ऋजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त कहा है। श्राठ कपायोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध संयमके श्रभिमुख हुए यथायोग्य जीवके होता है यह अवस्था अन्तमु हूर्तके अन्तरसे भी सम्भव है और कायस्थिति के अन्तरसे भी सम्भव हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्त-मुंहर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्यका श्रन्तर त्रोंचके समान है यह स्पष्ट ही हैं। स्त्रीवेद त्रादिके जघन्य त्रौर त्र्रजघन्य त्रानुभागवन्धके त्र्रन्तर का खुलासा सातादण्डकके समान कर लेना चाहिए। पुरुपवेद, हास्य श्रीर रतिका जघन्य श्रनु-भागबन्ध चपकश्र णिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त कहा है। नरकायुक जघन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभाग-बन्धके अन्तरका खुलासा जिस प्रकार मनुष्यिनियोंके कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। यह सम्भव है कि कोई स्त्रीवेदी जीव कायस्थितिके प्रारम्भमें त्रौर त्र्यन्तमें तिर्यक्काय या मनुष्यायुका बन्ध करे, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायु श्रौर मनुष्यायु के जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य अनुभागबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें हो यह सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। किसी स्त्रीवेदी जीवने देवायुका पचवन पत्य प्रमाण श्रायवम्ध किया। फिर वहाँ से श्राकर पूर्वकोटिप्रथक्तव काल तक परिभ्रमण कर तीन पल्यकी श्रायुके साथ उत्तम भोगभूमिमें स्त्रीवेदी हुत्रा त्र्यौर भवके अन्तमें देवायुका बन्ध किया। इस प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंमें देवायुके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अद्वावन पल्य प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। नरकगित श्रादिका जघन्य अनुभागबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें हो यह सम्भव है, श्रतः इनके जवन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थिति-प्रमाण कहा है। तथा देवीके और वहाँ उत्पन्न होने के पूर्व और बादमें अन्तम हर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक पचवन पत्य कहा है। मनुष्यगतिपञ्चक श्रीर तैजसशारीर श्रादिके जघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर नरकगति दण्डकके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्थामें मनुष्य-गतिपञ्चकका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६१३. पुरिसेसु पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० ज० अज० णिर्थ अंतरं । थीणगि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० कायदिदी० । अज० ओयं । णिद्दा-पचला०-पंचणोक०-अप्पसत्थव०४-उप०-तित्थ० ज० णित्थ अंतरं । अज० ज० ए०, णिद्दा-पचला० अंतो०, उ० अंतो० । सादासाद०-अरदि-सोग-पंचिदि०--तेजा०--क०--समचदु०--पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० कायदि० । अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अहक० ज० ज० श्रंतो०, उ० कायदि० । अज० ओयं । इत्थि० ज० ज० ए०, उ० कायदि० । अज० ओयं । ण्वंस०-पंचसंठा०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०-दूभग--दुस्सर--अणादे०--णीचा० ज० ज० ए०, उ० कायदि० । अज० ओयं । णिरयाणु० इत्थिमंगो । दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० कायदि० । देवाउ० ज० ज० एग०, उ० कायदि० । अज० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० । णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणु०-अदाव०-थावरादि०४ ज० ज० ए०, उ० कायदि० । अज० अण०भंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० ज०

६१३. पुरुपवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन ऋौर पाँच श्चन्तरायके जवन्य श्रोर त्र्यजवन्य श्रानुभागवन्धका त्र्यन्तरकाल नहीं हैं। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रमन्तानुबन्धी चारके जघन्य श्रात्भागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्चन्तर कार्यास्थितिप्रमाण है। तथा अजयन्य अनुभागबन्धका श्चन्तर श्रोघके समान है। निद्रा. प्रचला, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागवन्ध-का अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, निद्रा श्रीर प्रचलाका अन्तर्भ हुर्त है श्रीर सबका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्कं, अगुरुलंघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रास्थर, शुभ,श्रशुभ, सुभग, सुस्सर,श्रादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति, निर्माण श्रीर उचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। श्रजधन्य श्रनुभागवन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्राठ कपायोंके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्त-मु हुर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रान्तर श्रोघके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर-कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका श्रान्तर श्रोघके समान है। नरकायुका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। दो आयुत्र्योंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। देवायुके जघन्य श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकगित, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रातप श्रीर स्थावर श्रादि चारके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण

ए०, उ० कायहि०। अज० ओघं। मणुसगिद्धंच० ज० ज० ए०, उ० कायहि०। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपत्ति० सादि०। देवगिद०४ ज० ज० ए०, उ० कायहि०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। आहारहुग० ज० अज० ज० स्रंतो०, उ० कायहिदी०।

६१४. णवुंसगेसु पंचणाणावरणादिदंडओ इत्थिभंगो। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ओघं। अज० णिरयभंगो। सादादिदंडओ तिण्णिआउ०-अहक०-वेउन्वियछ०-मणुस०३ ज० अज० ओघं। इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्०। पुस०-इस्स-रिद०। ज० णत्थि श्रांतरं। अज० सादभंगो। अरदि-सोग० ज० ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल०। अज०

है। श्रज्ञघन्य अनुभागवन्धका भङ्ग अनुत्रृष्टके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हं और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। अज्ञघन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अज्ञघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अज्ञघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य और अज्ञघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य और अज्ञघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर कायस्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ — यहाँ सब अन्तरकाल पर प्रकाश न ढाल कर जो विशेषता है उसीका निर्देश करेंगे। कारण कि अब तक ओव व आदेशसे सब प्रकृतियों अज्ञान्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर है विश्वा है। यहाँ निद्रा और प्रचलाके अज्ञान्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर कुर्त कहनेका कारण यह है कि जो अपूर्वकरण उपशामक इनकी व्युच्छित्ति कर और अन्तर हूर्त में सबेदभागमें ही मर कर देव हो जाता है उसके इन प्रकृतियों अज्ञान्य अनुभाग- बन्धका अन्तर हूर्त सन्तरकाल देखा जाता है। देवायुके अज्ञान्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जो पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य प्रथम त्रिभागमें देवायुका अज्ञान्य अनुभागवन्ध करके तेतीस सागरकी आयुवाला विजयादिक चार अनुत्तर विमानों अत्वा होता है और वहाँ से च्युत होकर पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर अपने भवके अन्तमें अन्तर्भ हूर्त काल शेप रहने पर देवायुका अज्ञान्य अनुभागवन्ध करता है उसके देवायुके अज्ञान्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण ही देखा जाता है।

६१४. नपुंसकवेदी जीवोंमं पाँच ज्ञानावरणादि दण्डकका भङ्ग क्षीवेदी जीवोंके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर आघके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नारिकयोंके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक, तीन आयु, आठ कषाय, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान हैं। स्नीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। पुरुषवेद, हास्य और रितिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर साता-

सादमंगो । देवाउ० मणुसि०भंगो । तिरिक्खग०-तिरिक्खाण०-णीचा० ज० ओघं । अज० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्० । चहुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं । अज० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० सादभंगो । ओराहि०-ओराहि० झंगो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी देस्० । आहार०२ ज० अज० ओघं । पंचसंदा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ओघं । अज० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्० । तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० ज० ओघं । अज० ज० ए०, उ० वेस० । तित्थ० ज० णत्थि झंतरं । अज० ज० ए०, उ० झंतो ० ।

वेदनीयके समान है। श्रारति श्रीर शोकके जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। श्रजघन्य श्रद्धभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीय के समान है। देवायका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। तियञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीच-गोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका अन्तर श्रीयके समात है। अजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय हैं श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेनीस सागर है। चार जाति, श्रातप और स्थावर आदि चारके जवन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। अजवन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्चीन्द्रयजाति, पर-घात, उच्छवास त्रीर त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। श्रीदारिकशरीर श्रीर श्रीदारिकश्राङ्कोपाङ्कके जयन्य श्रनुभागबन्धका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल हैं। अजयन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आहार बद्धिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायागिति, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रनादेयके जघन्य त्रनुभागवन्धका अन्तर श्रोधके समान है। त्राजवन्य त्रनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्दृष्ट अन्तर कुछ कम तेनीस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जवन्य अनुसागवन्धका अन्तर ओघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है । श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदी जीवोंमें भी अन्य सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर पिछले कहे गये अन्तर को ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिए। जो अन्तर विशेषताको लिए हुए है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सम्प्रन्दृष्टि नारिक्योंके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होनेसे इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। अरित और शोकका जघन्य अनुभागवन्ध छटे गुणस्थानमें होता है और नपुंसक-वेदमें इसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यक्रगति आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टि नार्काके नहीं होता। इसलिए इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। चार जाति आदिका बन्ध नरकमें तथा अन्तर्यु हूर्त काल तक नरकके पूर्व और बादमें नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका

भा० प्रतौ भोमं। भाजा ज प्र उ० भंतो० इति पाठः।

६१५. अवगदवेदेमु सन्वाणं ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० उ० श्रंतो ० । ६१६. कोधकसा० पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-आहारदुग-पंचंत० ज० अज० णित्थ श्रंतरं । णिद्धा-पचला०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-तित्थ० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। एवं तिरिक्ख०३। णविर णिद्धा-पचला० अज० ज० उ० श्रंतो०। चदुआउ० मणजोगिभंगो । तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो०।

उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध जिन परिणामोंसे होता है उनका अनन्त कालके अन्तरसे होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। औदारिकद्विकके विषयमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि इनका जघन्य अनुभागबन्ध नारकीके होता है और नरक पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तथा सम्यग्द्रष्टि मनुष्य और तिर्यक्षके इनका बन्ध नहीं होता और नपुंसकवेदके साथ इनमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। उसमें भी सम्यक्त्व प्राप्त कराकर अन्तमें बन्ध करानेके लिए मिध्यात्वमें ले जाना है, क्योंकि ऐसा किये विना अन्तर नहीं प्राप्त होता अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। पाँच संस्थान आदिका बन्ध सम्यग्द्रष्टि नारकीके नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पर्ट ही है।

६१५. ऋपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य ऋनुभागवन्धका ऋन्तरकाल नहीं है। ऋजघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य ऋौर उत्कृष्ट ऋन्तर अन्तमु हूर्त है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका जवन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिमें गिरते समय अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है, अतः सब प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निष्ध किया है। तथा अपगतवेदी जीव इन प्रकृतियोंका अवन्धक होकर उपशमश्रेणिसे उतरते हुए पुनः इनका वन्ध करता है। अतः अवन्ध अवस्थाका काल अन्तर्मु हूर्त है अतः इनके अजधन्य अनुभागवन्ध का जबन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है।

६१६. कोधकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, आहारकि हिंक और पाँच अन्तरायके जयन्य और अज्ञवन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। निद्रा, प्रचला, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थंक्करके ज्ञवन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि निद्रा और प्रचलाके अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। चार आयुओंका भक्क मनोयोगी जीवोंके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके ज्ञवन्य और अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। शेप साता आदि प्रकृतियोंक ज्ञवन्य और अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञवन्य अनुनागवन्धका ज्ञवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है।

विशेपार्थ-पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शवरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच श्रन्तरायका जघन्य

१. आ॰ प्रती भ्राज्ञ ज॰ ए०, ४० अंतो॰ इति पाटः । २. भा॰ प्रती ज॰ ए० द० इति पाटः ।

६१⊏. मायाए पंचणा०--सत्तदंसणा०--मिच्छ०-चोइसक०--आहार<mark>दुग--पंचंत०</mark> ज० अज० णत्थि श्रंतरं । णवरि कोध-माणसंज० श्रज० ज० ए०, उ० श्रतो० ।

त्र्यनुभागवन्ध चपकश्रेणिमं होता है, इसलिए तो इनके जघन्य त्र्यौर त्र्यजघन्य त्र्यनुभागबन्धके त्र्यन्तर कालका प्रश्न ही नहीं। श्रव रही प्रथम दण्डककी शेप प्रकृतियाँ सो उनमें से स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारका जघन्य श्रनुभागबन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, आठ कपायोंका संयमके अभिमुख हुए जीवके जघन्य अनुभागवन्ध होता है और आहारक-द्विकका जवन्य श्रमुभागबन्ध प्रमत्तसंयतके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, यतः इन प्रकृतियोंका क्रोध कपायके रहते हुए दूसरी बार जघन्य अनुभागबन्ध प्राप्त होना सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रोध कपायका काल थोड़ा है. इसलिए यहाँ इनके भी जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकाल का निपंध किया है। तीर्थद्वर प्रकृतिके सिवा निद्रादिक प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध भी क्षपक-श्रेणिमं होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुसागबन्धके अन्तरका निपंध किया है। रही तीर्थंकर प्रकृति सो इसके जघन्य स्वामित्वको देखते हुए उसका अन्तरकाल भी सम्भव नहीं है, अतः इसके भी जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालुका निर्पेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें इनका एक समय या अन्तर्मुहर्त तक अवन्धक होकर और सरकर देव पर्यायमें इनका बन्ध सम्भव है। अतः इनके श्रजवन्य अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। मात्र निद्रा श्रीर प्रवला की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर श्रन्तम् हुत काल तक मरण नहीं होता, इसलिए इनके श्रजधन्य श्रत्भागवन्धका जवन्य श्रन्तर भी श्रन्तम् हुर्तं जानना चाहिए। तियंख्रगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है। यतः यह जघन्य अनुभागवन्य क्रोधकपायमें दो वार सम्भव नहीं खोर ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं, अतः इनका अन्तर कथन पाँच नोकपाय आदिके समान होनेसे उनके समान कहा है। शेव सातावेदनीय आदि प्रकृतियां एक तो परावर्तमान हैं और दूसरे इनका जघन्य अनुभागवन्ध एक समयक अन्तरसे सम्भवर्हे, श्रतः इनके जवन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तम् हर्न कहा है।

६१७. मानकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण मिश्यात्व, पन्द्रह कपाय, आहारक-द्विक श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं हैं। इतनी विशेपता है कि क्रोधसंज्वलनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुते हैं।

विशेषार्थ—उपशमश्रे शिमें मानकपायके उदयमें क्रोध संज्वलनकी वन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए इसमें क्रांध संज्वलनके अजघन्य अनुभागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त बन जाता है। शेप कथन क्रोधकपायके समान है।

६१८. मायाकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिश्यात्त्र, चौदह कषाय, आहारक-द्विक खौर पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि क्रोध और मान संज्वलनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है।

विशेषाथं—माया कषायके उदयमें क्रोध श्रीर मान कषायकी बन्धच्युच्छित्ति होकर एक समयके श्रन्तरसे या अन्तर्मु हूर्तके श्रन्तरसे मरकर इसके देव होने पर पुनः इनका बन्ध होने

६१६. लोभे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-बारसक०--त्राहारदुग-पंचंत० ज० अज० णित्थ श्रंतरं । णविर चदुसंजलणाणं अज० ज० ए०, ड० श्रंतो० । सेसाणं सव्वपगदीणं कोधभंगो ।

६२०. मिद-सुद० पंचणाणावरणादिधुविगाणं ज० अज० णित्थ अंतरं। सादादि-दंडओ ओघो। इत्थि०-अरिद-सोग--पंचि०--पर०-उस्सा--तस०४ ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-इस्स-रिद० ज० णित्थ अंतरं। अज० सादभंगो। चदुआउ०--वेउव्वियद्य०--मणुस०३ ज० अज० ओघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० ज० णित्थ अंतरं। अज० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० सादि०। णयुंस० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पिल०दे०। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं। अज० णयुंसगभंगो। ओरालि०-ओरालि० अंगो० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पिल०-के०-पसत्थवण्ण४-अगु०-

लगता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त कहा है। शेप एथन स्पष्ट ही है।

६१६. लोभकपायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कपाय, आहा-रकद्विक और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनोंके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। शेप सब प्रकृतियोंका भङ्ग कोधकपायके समान है।

विशेषार्थं—लोभकषायके उदयकालमें चारों संज्ञ्ञलनोंकी वन्धव्युच्छित्ति होकर एक समय या अन्तर्मु हूर्तके अन्तरसे मर कर इस कपायत्राले जीवके देव होने पर पुनः बन्ध होने लगता है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अज्ञ्ज्ञचन्य अनुभागवन्धका ज्ञचन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

६२०. मत्यज्ञानी और श्रुनाञ्चानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। सातावदनीय आदि दण्डकका भङ्ग आघके समान है। स्वीवद, अरित, शांक, प्रअन्त्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और असचतुष्कके जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तर्भाल है। अजघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भा हूर्त है। पुरुपवेद, हास्य, और रितके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तर सातावेदनीयके समान है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगितित्रकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तर आघके समान है। तिर्यक्रगिति और तिर्यक्रगत्यानुपूर्वींके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर का अवस्य अनुभागवन्थका अन्तर का नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर का नहीं है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर कुछ कम तीन पस्य है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर आघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर आघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर आघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागवन्थका जान्तर आघके समान है। का अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तर शावके समान है। का अजघन्य अनुभागवन्थका जान्तर आघके समान है। का अजघन्य अनुभागवन्थका जान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पस्य है। तैजसशरीर, कार्मण्डारीर,

णिमि॰ ज॰ ओघं। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेस॰। पंचसंठा०--पंचसंघ०-अप्पसत्थ॰-दूभग-दुस्सर-त्र्रणादे॰ ज॰ त्रोघं। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ तिण्णि पलि॰ देसू॰। उज्जो॰ ज॰ श्रोघं। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ एकक्तीसं॰ सादि॰। णीचा॰ ज॰ णित्थि श्रंतरं। श्रज॰ ज॰ ए॰, उ॰ तिण्णि पलि॰ देसू॰।

६२१. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अज० णितथ द्यंतरं । सादासाद०-चढुणोक०-पंचिदि०-ओरार्लि०-

प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, हुभैग, हुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। उद्योतके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर आंघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर साधिक इकतीस सागर है। नोचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। नोचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुववन्धवाली जिन प्रकृतियोंका प्रथम दण्डकमें प्रहण किया है उनका जघन्य अनुभागवन्य यहाँ संयमके त्र्राभिमुख हुए जीवके होता है त्र्यतः उनके जघन्य ऋौर श्रजवन्य श्रनुभागवन्यका श्रन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निपेध किया है। स्त्रीवेद आदिका जवन्य अनुभागवन्य एक सभयके अन्तरसे भी सम्भव है और यदि ऐसा जीव अनन्तकाल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें परिश्रमण करता रहे तो उतने कालके अन्तरसे भी सम्भव हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उःक्रप्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तथा ये परा-वर्तमान प्रकृतियाँ है, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रान्तर अन्तर्म हुर्त कहा है। पुरुषवेद आदिका जयन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, श्रतः इत् क अवन्य अनुभागवन्धके श्रन्तरका निषेध किया है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वी और नीचगोत्रका जबन्य श्रनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकमें होता है, इसलिए इनके जवन्य अनुभागवन्यके अन्तरका निपंध किया है। मात्र तिर्यक्रगतिद्विकका नौवें प्रैवेयक में इकतीस सागर तक आर आगे पीछे अन्तर्मुहूर्त तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इन दोके अज-घन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। तथा नीचगोत्रका बन्ध उत्तम भागभूमिमें कुछ कम तीन पत्य तक नहीं होता, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुष कहा है। इसी प्रकार नपुंसकवेद, चार जाति आदि, औदारिक-द्विक श्रीर पाँच सस्थान आदिके अजयन्य अनुभागवन्धक। उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परय घटित कर लेना चाहिए। तथा उद्यातकं अजघन्य अनुभागवन्धका उत्क्रष्ट अन्तर साधिक इकतीस मागर तिर्वञ्चगतिद्विकके समान घटित कर लेना चाहिए। शेप कथन सुगम है।

६२१. विभङ्गज्ञानो जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात खौर पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, पञ्चोन्द्रियजाति,

भाग्यती चतुःगोक० भ्रोरात्ति० इति पाठः ।

बस्संठा०-- ओरालि० श्रंगो०-- बस्संघ०-- पर०-- उस्सा०-- उज्जो० -- दोविहा० -- तस०४ -- थिरादिखयु० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० | श्रज० ज० ए०, उ० श्रंतो० | पुरिस०- हस्स-रिद-तिरिक्ख०३ ज० णित्थ श्रंतरं | अज० सादभंगो | णिरय-देवायु० मणजोगिभंगो | दोआंड० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो० | अज० ज० ए०, उ० बस्मासं देसू० | दोगिद-तिण्णिजादि-दोश्राणु०-सहुम-अपज्ज०-साधार० ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० | मणुस०-मणुसाणु० ज० ज० ए०, उ० वावीसं० | अज० सादभंगो | एइंदि०-आदाव-थावर० ज ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० | अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० | वेडिव्व०-वेडिव्व०श्रंगो० देवगिदभंगो | तेजा०-क०-पसत्थ०४ -- अगु०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० | श्रज० ज० ए०, उ० वेस० | उच्चा० ज० ण०, उ० ए०, उ० एकत्तीसं० देसू० | अज० सादभंगो |

श्रीदारिकशरीर, छह संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छवास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर ऋदि छह युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति और तिर्येख्नगतित्रिकके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। नरकाय श्रीर देवायका भङ्ग मनायोगी जीवोंके समान है। दो श्रायश्रोंके जवन्य श्रनुभाग-बन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुते है। अजयन्य अनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। दो गति, तीन जाति, दो त्रानुपूर्वी, सूदम, त्रपर्याप्त श्रीर साधारणके जघन्य श्रीर श्रजघन्य त्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर बाईस सागर है। श्रजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, स्रातप स्रोर स्थावरके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्र**जघन्य** श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मृहत है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिक श्राङ्गांपाङ्गका भङ्ग देवगतिके समान है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, श्रमुरुलघु श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय हैं श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। उचगोत्रके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजधन्य अनुभागबन्धका भक्क सातावेदनीयके समान है ।

विशेषार्थ — पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभागवन्ध संयमके श्रभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तरका निषेध किया है। विभक्ष ज्ञानके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें सातावेदनीय आदिका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तेजसशरीर श्रादिके जघन्य श्रनुभ

१. ता॰ प्रतौ बावीसं। [दोझा॰ जह॰] सादभंगो, घा॰ प्रतौ बावीसं। दोश्राउ॰ ज॰ सादभंगो । इति पाढः।

६२२. आभि०--सुद् - ओथि० पंचणा०--छदंसणा०--च दुसंज०--पंचणोक०-पंचिदि०--तेजा०-क०-समच दु०-पसत्थापसत्थ०४ - अगु०४ - पसत्थ०--तस०४ - सुभगसुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० ज० णित्थ अंतरं । अज० ज० ए०,
[णिइ-पचला० ज० अंतो०] उ० अंतो०। सादासाद०--अरदि-सोग-थिराथिरसुभासुभ-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० छाविह० सादि०। अज० ज० ए०,
उ० अंतो०। अहक० ज० ज० प०, उ० छाविह० सादि०। अज० ओघं।
मणुसाउ० ज० ज० ए०, उ० छाविह० सादि०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं०
सादि०। देवाउ० ज० ज० ए०, उ० छाविह० देसु०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं

भागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेनीस सागर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजयन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त कहा है। पुरुपवेद आदिका जयन्य अनुभागवन्ध यथायोग्य संयम और सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर होता है, अतः इनके जयन्य अनुभागवन्धके अन्तरका निष्ध किया है। दो गित आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका जयन्य अनुभागवन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जयन्य और अजयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त कहा है। मनुष्यगितिष्ठिकका बन्ध सातवें नरकमें नहीं होता, इसिलए इनके जयन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर कहा है, क्योंकि छटे नरकमें विभक्त- ज्ञानका उत्कृष्ट काल इतना ही है। एकेन्द्रियजाति आदिका जयन्य अनुभागवन्ध सार्धम-एशान कल्पमें होता है, अतः इनके जयन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियां हैं इसिलए इनके अजयन्य अनुभागवन्ध का उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हित कहा है। उचगोत्रका जयन्य अनुभागवन्ध नौवे प्रैवेयकमें सम्भव है, अतः इसके जयन्य अनुभागवन्ध नौवे प्रैवेयकमें सम्भव है, अतः इसके जयन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६२२. श्राभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविध्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त विद्यांगिति, त्रस्चतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभाग-बन्धका श्रन्तर कृति है। श्राजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है किन्तु निद्रा, प्रचलाका श्रन्तर्मु हूर्त है श्रोर सबका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। सातावेदनीय, श्रस्तावोदनीय, श्रप्तात, शोक, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रशुभ, यशाकीर्ति श्रोर श्रयशाकीर्तिक जघन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। श्राठ कपायोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। श्राठ कपायोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। श्राजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। वायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। वायुके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राचन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राचन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्राचन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है।

सादि०। मणुसगदिपंचग० ज० णित्थे श्रंतरं। अज० ज० बासपुघ०, उ० पुट्यकोडि०। देवगदि०४ ज० णित्थ श्रंतरं। अज० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०। आहारहुगं ज० अज० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०।

हैं। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्तव प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि प्रमाण है। देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-वन्धका जघन्य अन्तर् अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ- प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायहा क्षपकश्रीणमें तथा शेषका मिथ्यात्वके त्रभिमुख हुए जीवके जघन्य श्रनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभाग-बन्धके अन्तरकालका निपंध किया है। तथा उपशमश्रे णिमें एक समय तक इनका अवन्धक होकर श्रीर दूसरे समयमें मरकर देव होने पर इनका पुनः बन्ध होने लगता हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय कहा है और उपशमश्रे णिमें श्रन्तम हर्तकाल तक इनका बन्ध न होकर पुनः उतरते समय बन्ध होने पर इनके अजधन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्चन्तमुंहुर्त कहा है। मात्र निद्रा श्रीर प्रचलाके श्रजघन्य श्चनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्चन्तमु हूर्त जैसा पहले घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। इन मार्गणाश्रोंका उक्छ काल साधिक छचासठ स।गर है। यह सम्भव है कि सातावेदनीय त्रादिका जबन्य अनुभागबन्ध इसके प्रारम्भमें और अन्तमें हो मध्यमें न हो, इसलिए इनके जबन्य अनु-भागवन्धका जवन्य अन्तर साधिक छ्यासठ सागर कहा है। इसी प्रकार स्राठ कपाय स्रोर मनु-ब्यायुके जघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर घटित कर लेना चाहिए। मात्र देवायुकं जवन्य ऋतुभागबन्धका उत्कृष्ट ऋन्तर साधिक छ्यासठ सागर न होकर कुछ कम छचासठ सागर कहा है, क्योंकि यहाँ साधिकसे चार पूर्वकोटियाँ ली गई हैं परन्तु जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य अन्तमं देवायुका बन्ध करेगा वह पल्योपमसे कम नहीं हो सकती श्रीर फिर देव होनेके बाद मनुष्य भवका काल भी सम्मिलित करना है, इसलिए यह साधिक छ्यासठ सागर न होकर कुछ कम छचासठ सागर ही हा सकता है। जो देव छह महीना शेप रहने पर मनुष्यायुका श्रजघन्य अनुभागबन्ध करके मनुष्य हुआ और इसके बाद तेतीस सागरकी ऋायुवाला देव होकर अन्तमें उसने पुनः मनुष्यायुका त्राज्ञपन्य त्रानुभागबन्ध किया उसके मनुष्यायुके त्राज्ञघन्य त्रानुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर देखा जाता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार देवायके त्रजवन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर ले आना चाहिए। मात्र मनुष्य द्वारा देवायुका अज्ञचन्य अनुभागबन्ध कराके और तेतीस सागरकी आयुवाले विजयादिक में उत्पन्न कराकर पुनः मनुष्य होने पर देवायुका श्रजधन्य श्रनुभागवन्य कराना चाहिए। मनुष्य-गतिपञ्चकका जवन्य अनुभागवन्य मिथ्यात्वके अभिमुख हुए देव और नारकी करते हैं, इसलिए यहाँ इनके जयन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तरका निषेध किया है। तथा सम्यग्दृष्टि देवका जघन्य श्रन्तर वर्षप्रथक्तवप्रमाण है और उत्क्रष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। देवगति-चतुष्कका जघन्य अनुभागवन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए मनुष्य और तियञ्ज करते हैं इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें देवगति-

^{1.} ता॰ प्रती पंचग॰ वास्थि इति पाठः।

६२३. मणपज्जवे पंचणा०--छदंसणा०-चहुसंज०--पुरिस०-भय-दु०--देवगदिपंचिंदि०-वेडिव्व--तेजा०-क०--समचदु०--वेडिव्वि० झंगो०--पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग--सुस्सर-आदे०--णिभि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० ज०
णित्थ० झंतरं । अज० ज० उ० झंतो० । सादासाद०-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभजस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० पुच्चकोडी देस्० । अज० ज० ए०, उ० झंतो० ।
हस्स-रदि० ज० णित्थ झंतरं । अज० सादभंगो । देवाउ० ज० अज० ज० ए०, उ०
पुच्चकोडी तिभागा देस्० । आहारदुग० ज० ज० झंतो०, उ० पुच्चकोडी दे० । अज०
ज० उ० झंतो० । एवं संजदा० ।

चतुष्ककी बन्ध व्युन्छितिका उताते समय पुनः उनका बन्ध होनेमें अन्तर्मु हूर्तकाल लगता है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है और उपशमश्रीणमें इनकी बन्धव्युन्छिति कर और उत्तरते समय इनका बन्ध होनेके पूर्व मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देव होने पर इनका साधिक तेतीस सागर काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकिदकका जधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकिदकका जधन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयत गुण्मध्यानके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः यह अवस्था अन्तर्मु हूर्तके बाद पुनः प्राप्त हो सकती है, अतः इसके जधन्य अनुभागबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है और यदि आहारकिदिकका बन्ध करनेवाला जीय मर कर तेतीस सागरकी आयुवाला देव हुआ। तथा वहाँ से च्युत होकर जब संयमको प्रहण् कर पुनः आहारकिदिकका बन्ध करता है तब इसके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। यतः यह काल साधिक तेतीस सागर है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। यतः यह काल साधिक तेतीस सागर है, अतः इनके अजधन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। यतः यह काल साधिक तेतीस सागर है,

६२३. मनःपर्ययज्ञानमं पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्चोन्द्रयज्ञानि, वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, वैक्रियिक ब्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघृचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचनुष्क, सुभन, नुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उज्ज्ञगात्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूं ते है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशाकीति और अयशाकीति के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रितिक जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतरकाल नहीं है। आजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतरकाल नहीं है। आजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतरकाल नहीं है। आजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतरकाल कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। आहारकिदिक जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतर कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। आहारकिदिक जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनेतर अन्तर्मु हूर्त है। इसी प्रकारिक ज्ञानना चाहिए।

विशेषार्थे—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध क्षपकश्रीणमें और शेषका अस्यमके अभिमुख होने पर जघन्य अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके जघन्य अनु-भागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनका उपशमश्रेणिमें अन्तर्मु हुर्त काल तक बन्ध

१. द्या॰ प्रतो ज॰ ए॰ इ॰ इति पाठः !

६२४. सामाइ०-छेदोव० धुविगाणं० ज० अज० णित्थे श्रंतरं। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहारे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४— उप०-पंचंत० ज० णित्थ श्रंतरं। अज० ए०। अथवा ज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। देवगदिपसत्थपणुवीसं ज० अज० णित्थ श्रंतरं। सेसाणं मणपज्जव०भंगो। सुहुमे सन्वाणं ज० अज० णित्थ श्रंतरं। संजदासंजदे धुविगाणं ज० अज० णित्थ श्रंतरं। सेसाणं परिहार०भंगो।

नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। यह सम्भव है कि सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध प्रारम्भमें और अन्तमें हो, मध्यमें न हो. इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तम् हुर्त कहा है। हास्य त्रौर रतिका क्षपकश्रेणिमें जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्ध के अन्तरका निपंध किया है। इनके अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। यह स्पष्ट ही है। देवायुका जघन्य ऋौर ऋजघन्य ऋनुभागवन्य त्रिभागके प्रारम्भमें ऋौर ऋन्तिम अन्तम् हुर्त काल शेप रहने पर हो यह सम्भव है, अतः इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण कहा है। त्र्याहारकद्विकवा जघन्य अनु-भागवन्ध अन्तम् हुर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटिके अन्तरसे सम्भव है. इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तथा इनका अजवन्य अनुभागवन्ध अन्तम् हूर्तके अन्तरसे ही होता है. क्योंकि सातवेंसे छटेमें त्राने पर पुनः सानवाँ गुणस्थान एक अन्तर्मु हर्तके बाद प्राप्त होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुर्त कहा है। संयत जीवोंके अन्तर प्ररूपणामें इस प्ररूपणासे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए उनके कथनको मन:-पर्ययज्ञानी जीवोंके समान कहा है।

६२४. सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थानसंयत जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानायरण, छह दर्शनायरण, चार संज्वलन, पुरुपवंद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायक जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अथवा जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। देवगित और प्रशस्त पचीस प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेप प्रकृतियोंका मङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—सामायिक श्रौर छेदोपस्थानासंयम नौवें गुणस्थानतक होते हैं। श्रागे संयम बदल जाता है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागबन्धके श्रन्तरके समान अजघन्य श्रनुभागबन्धके श्रन्तरकालका निषेध किया है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके पाँच

१. ता० श्रा॰ प्रत्योः श्रज्ञ• ज॰ ग्रास्थि इति पाठः ।

६२५. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०--भय--दु०-ऋष्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अज० णित्थ श्रंतरं । थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० णित्थे० श्रंतरं । अज० णिरयभंगो । सादोदिदंडओ चदुआउ०-वेजिव्यछ०-मणुस०३ ज० अज० ओघं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ओघं । श्रज० [ज०] एग०, उ० तेत्तीसं० दे० । इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देस्० । पुरिस०-इस्स-रदि-अरदि-सोग० ज० अज० ओघं । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० श्रोघं । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । ओरालि०-ओरालि०श्रंगो०-वज्जरि० ज० अज० ओघं । तित्थ० ज• णित्थ श्रंतरं ।

हानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य सर्विवशुद्ध परिणामोंसे होता है। यह तो स्पष्ट है पर वे सर्विवशुद्ध परिणाम कव होते हैं इस विपयमें विकल्प हैं। यदि जो अन्तर्मु हुर्तमें अपकश्रेणि पर आरोहण करनेवाला है उसके होते हैं इस विकल्पको प्रधानता दी जाती है तो इस संयममें पाँच हानावरणादिके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर नहीं प्राप्त होता और इन प्रकृतियोंके अजयन्य अनुभागवन्थका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बनता है। आर यदि ये सर्वविशुद्ध परिणाम क्षपकश्रेणिपर आरोहण न करनेवालेके भी होते हैं इस विकल्पको प्रधानता दी जाती है तो इसके अनुसार इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि तथा अजयन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ दो प्रकारसे अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ दो प्रकारसे अन्तर प्रकृपणा की है। तथा इस संयममें देवगित आदि प्रशास्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्थ असंयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजयन्य अनुभागवन्थ संयमके अभिमुख होनेपर तथा तीर्थङ्करके सिवा दाप प्रशास्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्थ सिध्यात्वके अभिमुख होनेपर और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्थ असंयमके अभिमुख होनेपर और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्थ असंयमके अभिमुख होनेपर और अजघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य अनुभागवन्य इसलिए हो है।

६२५. श्रसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात श्रोर पाँच अन्तर।यके जघन्य श्रोर अजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व श्रोर अनन्तानुवन्धी चारके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। अजघन्य श्रनुभागवन्धका भन्न नारिकयोंके समान है। सातावेदनीय श्रादि दण्डक, चार श्रायु, वैक्रियिक छह श्रोर मनुष्यगतित्रिकके जघन्य श्रोर अजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। त्राज्ञचन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्राकके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्राकके जघन्य श्रीर श्राकके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। चार जाति, श्रात श्रोर स्थावर श्रादि चारके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। चार जाति, श्रातप श्रोर स्थावर श्रादि चारके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्राचन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्राचनय श्रनुभाग-वन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रोदारिकशरीर,

^{1.} बा॰ प्रतो ज॰ ज॰ सात्य इति पाठः।

अज० ज० उ० श्रंतो० ।

६२६. चक्खुदं० तस०पज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं । ओधिदं० ओधि-णाणिभंगो ।

६२७. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० दे०। अज० ज० ए०, उ० बेस०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० झंतो०, उ० तेत्तीसं० देसू०। सादा०-समचदु०-वज्जरि०--पसत्थ०--थिरादिछ० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०, एक्केण झंतो-मुहुत्तेण सादिरेयं णिरयादो णिग्गदस्स। अज० ज० ए०, उ० झंतो०। असादावेद०-

त्रौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग स्रोर वन्नर्पभनाराचसंहननके जघन्य त्र्योर श्रजघन्य त्रनुभागबन्धका स्रन्तर स्रोघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्रनुभागबन्धका स्रन्तरकाल नहीं है। स्रजघन्य स्रनुभागबन्धका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट स्रन्तर स्रन्तर्मु हूर्त है।

विशेषार्थ-यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्ध संयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निपंध किया है। स्त्यानगृद्धितीन त्रादिके जघन्य श्रनुभागका बन्ध संयमके सन्मुख होने पर होता है, इसलिए इनके भी जघन्य अनुभागवन्धके श्रन्तरका निपेध किया है। श्रसंयतके नरकमें कुछ कम तेतीस सागर तक सम्यग्दर्शनके साथ रहते हुए तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजवन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य अनु-भागबन्धके उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालका स्पष्टीकरण आंघकं समान यहाँ भी कर लेना चाहिए। तथा इनका सम्यग्दृष्टि नारकीके कुछ कम तेतीस सागर काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके श्चज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नारकी जीव नरकमें श्रीर वहाँ जानेके पूर्व अन्तम हुर्त काल तक और निकलनेके बाद अन्तर्महुत काल तक चार जाति **आदिका वन्ध नहीं करता, इसलिए इनके अअघन्य** अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। मिध्यात्वके श्रभिमुख हुत्रा सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थद्वर प्रकृतिका जवन्य श्रनुभाग बन्ध करता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है स्त्रीर ऐसा जीव मिध्यादृष्टि होकर अन्तम् हुर्त काल तक मिध्यात्वके साथ रहता हुआ उसका बन्ध नहीं करता, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हर्त कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

६२६. चत्तुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। अचत्तुदर्शनी जीवोंमें स्रोघके समान भङ्ग है। तथा अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

६२७. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, समचतुरक्षसंस्थान, वअपभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगित और स्थिर आदि छहके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकसे निकलनेवाले जीवके यह अन्तर एक अन्तर्म हूर्त अधिक है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है।

अथिर-असुभ-अजस० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सादि०, दोहि श्रंतोसुहुत्तेहि सादिरेयं। अज० सादभंगो। इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं ०
देस् ०। पंचणोक०-ओरालि०--ओरालि०श्रंगो० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं साग०
देस् ०। अज० सादभंगो। दोआउ० मणजोगिभंगो। दोआउ० ज० ज० ए०, उ०
श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० हम्मासं० देस् ०। णिरय-देवगदि-चहु जादि-दोआणु०आदाव-थावरादि०४ ज० अज० [ज०] ए०, उ० श्रंतो०। तिरिक्ख०३ ज० ज०
श्रंतो०, अज० ज० ए०, उ० दोण्णं पि तेत्तीसं० देस् ०। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा०
ज० प०, उ० वावीसं० सादि० श्रंतोसुहुत्तेण णिग्गद्स्स। अज० ज०
ए०, उ० तेतीसं देस्०। पंचि०-पर-उस्सा०-तस४ ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं
साग सादि०, पविसंतस्स सुहुनां । श्रज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। वेउव्व०वेउव्व०श्रंगो० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अज० ज० ए०, उ० ववीसं० सा०।
तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० पंचिदियभंगो। अज० ज० ए०, उ० बेस०।

श्रसात वेदनीय, अस्थिर, श्रशुभ श्रीर श्रयशःकीर्तिके जयन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो अन्तर्भ हुर्त अधिक तेतीस सागर है। अजवन्य अनुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, न्पुंसकवेद श्रौर उद्योतके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभाग-बन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पाँच नोकपाय, स्रोदारिकशरीर और स्रोदारिक स्राङ्गोपाङ्गके जघन्य स्रनुभागवन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय है ऋौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान है। दो त्रायुत्रोंका भक्न मनोयागी जीवोंके समान है। दा त्रायुत्रोंके जघन्य त्रानुभागवन्ध का जघन्य अन्तर एक समय है आर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्छष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। नरकगित, देवगित, चार जाति, दो त्रानुपूर्वी, त्रातप त्रौर स्थावर त्रादि चारके जघन्य त्रौर त्रजघन्य त्रानुभागवन्ध का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुर्त है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है, श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दोनोंका कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रके जघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट त्रान्तर निकलनेवाले जीवकी ऋपेचा अन्तर्मुहर्त श्रधिक वाईस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं। पश्चीन्द्रियजाति, परघात, उच्छवास श्रीर त्रसचतुष्कके जवन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मु हूर्त अधिक तेतीस सागर है। यह प्रवेश करनेवाले जीवके एक अन्तर्मु हूर्त अधिक होता है । श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-र्मु हूर्त है। वैक्रियिकशारीर छोर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट त्रान्तर श्रान्तमु हूर्त है। श्राज्ञघन्य श्रानुभागबन्धका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक वाईस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः साग॰ सादि॰ देसू॰ इति पाठः । २. ता॰ श्रा प्रत्योः सादि॰ दे॰ पंचिं-संतस्स मुहुर्श इति पाठः ।

चहुसंठा०-पंचसंघ० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०, णिग्गदस्स सादि०। अज० णवुंसगभंगो। हुंड०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादे० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्ते०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे०। तित्थ० ज० अज० णित्थ अंतरं।

अगुरुलघु श्रीर निर्माणके जघन्य अनुभागवन्यका अन्तर पञ्चोन्द्रयजातिके समान है। अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। चार संस्थान श्रीर पाँच संहननके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। यह साधिक निकले हुए जीवके होता है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त विहायांगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभागवन्य सर्वविश्रद्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है। ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे अौर अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे हो सकते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर एत्क्रप्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा इन प्रकृतियोंक ज्ञाचन्य अनुभागका जघन्य बन्ध काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट बन्धकाल दो समय है, इसलिए इनके अजघन्य श्रनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन का जघन्य श्रमुभागबन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख नारकीके होता है। तथा इसके सम्यक्त्व का जघन्य काल अन्तमु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रज्यन्य श्रनुभागबन्धका जयन्य श्रन्तर श्रन्तम् हर्त और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । मात्र जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर लाते समय मिथ्यात्वमें ले जाकर विवक्षित कालके भीतर पुनः सम्यक्त्वके सन्मुख ले जाकर यह अन्तर कहना चाहिए। सातांवदनीय आदि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध तीन गतिके जीवोंके परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी सम्भव हैं और जो कृष्णलेश्याके सद्भावमें सातवें नरकमें जाता है उसके नरकमें प्रवेश करने पर प्रारम्भमें सम्भव हैं स्त्रीर नरकसे निकलने पर स्नन्तमु हूर्तके बाद भी सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा ये परावतमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमु हुर्त कहा है। श्रमातावेदनीय श्रादिका भङ्ग इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ दो अन्तम् हुर्त श्रिधिक कहना चाहिए। एक प्रवेशके पूर्वका श्रीर एक निर्गमके बादका। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदका अधन्य अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विद्युद्ध परिणामोंसे श्रीर उद्योतका जघन्य श्रनुभागबन्ध संक्लिष्ट परिएामोंसे होता है। ये परिएाम एक समयके श्रन्तरसे भी सम्भव हैं श्रीर नारकीके प्रारम्भमें होकर मध्यमें न हों श्रीर श्रन्तमें हों यह भी सम्भव है। तथा सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता इसलिए इनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। पाँच नोकषायोंका सर्विवशुद्ध परिणामोंसे झौर झौदारिकद्विकका सर्वसंक्लिष्ट परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है। नारकीके ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे हाते हैं, अतः यहाँ इनके

जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। नरकाय और देवायका बन्ध मनुष्य श्रीर निर्यञ्चके होता है श्रीर इनके कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है, इसलिए इनके दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। शेप दो त्रायुत्रोंका जघन्य अनुभागवन्ध भी मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त कहा है। तथा इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर नारिकयोंमें उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है यह स्पष्ट ही है। नरकर्गात आदिका बन्ध मनुष्य और तिर्यक्कि ही होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमु हूर्त कहा है। तियंश्चगतित्रिकका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख नारकीके होता है श्रीर ऐसा जीव सम्यवत्वसे च्युत होकर पुनः सम्यवत्वके सन्मुख श्रन्तमु हुर्तसे पहले नहीं हो सकता, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्म् इत कहा है। तथा मनुष्य श्रीर तिर्यञ्चके ये परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके श्रज्ञचन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय कहा है श्रीर नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इनने काल तक इनका बन्ध नहीं होता। इसके बाद मिथ्यात्वमें इनका अजयन्य अनुभागवन्ध या भिथ्यात्वसे पुनः सम्यक्त्व-के सन्मुख होने पर जवन्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके जवन्य और अजघन्य अनु-भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति आदिका तीनों गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे जवन्य अनुभागबन्य करते हैं। ये परिणम एक समयके अन्तरसे भी होते हैं श्रीर छटे नरकमें प्रवेश करनेके वाद होकर वहाँसे निकलने पर श्रन्तम् हुतँमें हों यह सम्भव है, इसलिए यहां इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य त्र्यन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर एक श्रन्तमु हुत श्रधिक बाईस सागर कहा है। यद्यपि मनुष्यगति श्रादिका सातवें नरकमें भी बन्ध होता है, पर वहाँ यह सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए वहाँ जघन्य अनुसागबन्ध सम्भव न होने से यह छठे नरककी ऋपेक्षा कहा है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनके ऋजघन्य ऋनुभाग-बन्धका जधन्य अन्तर एक समय कहा है और जो सातवें नरकका नारकी प्रारम्भमें और अन्तमें श्रन्तमु हूर्त कालके लिए सम्यग्दृष्टि होता है श्रीर मध्यमें कुछ कम तेतीस सागर काल तक मिध्या-दृष्टि रहता है उसके इन प्रकृतियोंके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। पक्चे न्द्रियजाति श्रादिका जयन्य श्रनुभागवन्य सर्व संक्लिप्ट तीन गतिके जीव करते हैं। यह एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और नरकमें प्रवेश करनेके बाद होकर वहाँ से निकलने पर अन्तर्मु हूर्तके वाद भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हर्त कहा है। वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्ज श्रीर मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हर्त कहा है। तथा नरकमें जानेके पूर्व किसीने इनका बन्ध किया श्रीर छटे नरकसे सम्यक्तके साथ निकलकर इनका पुनः बन्ध करने लगा यह सम्भव है, इसलिए इनके अजधन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक बाईस सागर कहा है यहाँ एक समय अन्तर परावर्तमान प्रकृति होनेसे प्राप्त करना चाहिए। तैजसशरीर आदिका जघन्य स्वामित्व पञ्चे न्द्रियजातिके समान है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर पञ्चे न्द्रिय जातिके समान कहा है। तथा इनके जयन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट ६२८. णील-काऊणं पंचणाणावरणादिधुविगाणं पसत्थापसत्थ०४-ऋगु०-णिमि०उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, [उक्क० देसू० सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि | अज० ज० ए०]
उ० वेस० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४दंड्यो णिरयभंगो | साददंडओ
किण्णभंगो | ऋसाददंडओ किण्णभंगो | णविर सगिद्दि भाणिदच्वा | इत्थि०-णवुंस०उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू० | पंचणोक०-पंचि०ओरालि०-ओरालि०त्यंगो०-पर०-उस्सा०--तस०४ ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू० | ऋज० सादभंगो | चदुऋाउ०--दोगदि-चदुजादि--दोआणु०-आदावथावरादि०४ किण्णभंगो ! तिरिक्खग०३ ज० ज० ए०, उ० ऋंतो० | अज० ज०
ए०, उ० सत्तारस-सत्तसारोवमाणि दे० | मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० ज० ए०,

श्चन्तर दो समय कहा है। चार संस्थान श्चोर पाँच संहननका जघन्य श्चनुभागवन्ध तीन गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं। ये एक समयके श्चन्तरसे भी सम्भव हैं श्चोर नरकमें प्रवेश करने के बाद होकर वहाँसे निकलने पर भी सम्भव हैं, इसलिएइन के जघन्य श्चनुभागवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय श्चोर उत्कृष्ट श्चन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है तथा ये एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। दूसरे नरकमें सम्यग्दृष्टिक इनका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनके श्चजघन्य श्चनुभागवद्यका श्चन्तर नपुंसकवेदके समान प्राप्त होनसे वह उसके समान कहा है। हुण्डसंस्थान श्चादिके जघन्य श्चीर श्चजघन्य श्चनुभागवन्धका श्चन्तर चार संस्थानोंके समान ही घटित करना चाहिए। मात्र यहां जघन्य श्चनुभागवन्धके उत्कृष्ट श्चन्तरमें दो अन्तर्मु हूर्त श्चिक कहने चाहिए। एक प्रवेशके पूर्वका श्चौर एक निर्णमके वादका। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य श्चनुभागवन्ध मनुष्यके मिण्यात्वके श्वभिमुख होने पर श्चन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जघन्य श्चौर श्चजघन्य श्चनुभागवन्धके श्चन्तरका निपेध किया है।

६२८. नील ऋौर कापीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात अौर पाँच अन्तरायके जघन्य श्चनभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्चन्तर कुछ कम सन्नह सागर व कुछ कम सात सागर त्रपनी त्रपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। त्रज्ञचन्य त्रमुभागवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है **श्रोर उत्कृष्ट श्चन्तर दो समय है।** स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व श्रोर अनन्तानुबन्धी चार दण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग कृष्ण-लेश्याके समान है। त्रासातावेदनीय दण्डकका भङ्ग दृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि ऋपनी ऋपनी स्थित कहनी चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ऋौर उद्योतके जघन्य ऋौर श्रजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सन्नह सागर और कुछ कम सात सागर है। पाँच नाकषाय, पञ्चीन्द्रयजाति, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परवात, उच्छवास श्रीर त्रसचतुष्कके जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। ब्रजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। चार आयु, दो गति, चार जाति, दो स्नानुपूर्वी, स्नातप स्नीर स्थावर स्नादि चारका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तिर्यस्त्रगति तीनके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर क्रमसे कुछ कम सन्नह सागर त्रोर कुछ कम सात सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० णिग्गदस्स ग्रुहु० । अज० सादभंगो । वेउव्वि०-वेउव्वि०त्रंगो० ज० ज० ए०, उ० स्रतारस-सत्तसाग० वेउव्वि०त्रंगो० ज० ज० ए०, उ० स्तारस-सत्तसाग० सादि० । चदुसंटा०-पंचसंघ० ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । अज० णग्रंसकभंगो । हुंड०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । अज० इत्थिभंगो । णीलाए तित्थय० ज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अज० ज० ए ०, उ० बेसम० । काऊए तित्थ० णिरयभंगो ।

जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। यहां साधिक से निकलनेवालेका एक अन्तर्मु हूर्त लिया है। अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। चार संस्थान और पाँच संहननके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। चार संस्थान और पाँच संहननके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। अजयन्य अनुभागवन्धका अन्तर स्त्रीवेदके समान है। नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जयन्य अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर हो समय है। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

विशेषार्थ—नील लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक सन्नह सागर हैं और कापोत लेश्याका साधिक सात सागर है। इस हिसाबसे यहाँ अन्तरकाल ले आना चाहिए। उसमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्य नारकी जीव करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर कहा है। स्त्रीवेद आदि तीन प्रकृतियोंके जवन्य ऋौर अजवन्य ऋनुभागवन्यका उत्कृष्ट ऋन्तर भी उक्त प्रमाण कहनेका यही कारण है। मात्र जघन्य अनुभागवन्यका यह अन्तर प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागवन्ध कराके ले आना चाहिए और अजघन्य अनुभागबन्धका यह अन्तर मध्यमें उतने काल तक सम्यग-दृष्टि रख कर ले स्त्राना चाहिए। इसी प्रकार पाँच नोकपाय स्नादिके जघन्य स्त्रनुभागवन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए। तिर्येख्नगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्नि कायिक और वायुकायिक जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य ऋनुभागवन्धका जघन्य ऋन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि के इनका बन्ध नहीं होता श्रीर इन लेश्यात्रोंमें सम्यक्तवका उत्कृष्ट काल कुछ कम सत्रह सागर श्रीर कुछ कम सात सागर है, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यगति श्रादिका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागक्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर श्रोर साधिक सात सागर कहा है। कारणका निर्देश मूल्यमें ही किया है। वैक्रियिकद्विक, चार संस्थान त्रादि व हुण्डसस्थान त्रादिके त्र्यन्तरका खुलासा जिस प्रकार

^{1.} ग्रा॰ प्रती ग्रज्ज॰ ज॰ ज॰ ए॰ इति पाठः।

६२६. तेऊए पंचणाणावरणादिधुविगाणं अप्पसत्थ०४-उप०--पंचंत० ज० णित्थ अंतरं। अज० ए०। अथवा ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेस०। थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० णित्थ अंतरं। अज० ज० अंतो०, उ० बेसाग० सादि०। सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० दोहि सुद्धुते०। अज० ज० ए०, उक० अंतो०। अहक०-आहारदु० ज० अज० णित्थ अंतरं। इत्थि०-णग्नंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थिव०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० ज० अज० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि०। पुरिस०-हस्स-रदि० ज० णित्थ अंतरं। अज० सादभंगो। अरदि-सोग० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। देवाउ० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० वेसम०। दोआउ० देवभंगो। मणुस०-

कृटणलेश्यामें कर आये हैं उस प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए। नील लेश्यामें तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरिणामवाला मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिका जयन्य अनुभागबन्ध करता है, इसलिए इसमें इसके जयन्य अनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त तथा अजयन्य अनुभागबन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर हो समय बन जाता है। तथा कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जयन्य स्वामित्व सामान्य नारिक्योंके समान होनेसे उसके जयन्य और अजयन्य अनुभागबन्धका अन्तर नारिक्योंके समान कहा है। शेप अन्तर कृष्णलेश्याके अन्तरको देखकर यदित कर लेना चाहिए।

६२६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और पाँच श्रन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य श्रनुभाग-वन्धका जघन्य त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर एक समय है त्राथवा जघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर त्रान्तमु हूर्त है। त्राजघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार के जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्त-मुर्हूर्त है स्त्रोर उत्कृष्ट स्त्रन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, स्रसातावेदनीय, स्थिर, स्त्रस्थिर, हुम, ब्रह्मुम, यशःकीति ब्रौर ब्रयशःकीतिके जघन्य ब्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो मुहूर्त श्रधिक दो सागर है । श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है। आठ कपाय और आहार कि क्रिक के जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यस्त्रगति, एकेन्द्रिय-जाति, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, त्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जवन्य श्रीर अजयन्य अनुभागबन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। पुरुपवेद, हास्य श्रीर रतिके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयसे समान है। अरति ख्रौर शोकके जघन्य ख्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है ख्रौर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुते हैं। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। दो श्रायुश्रोंका भङ्ग देवोंके समान है। मनुष्यगति, पश्चे न्द्रियजाति, समचतुरस्र

१. ग्रा॰ प्रती ज॰ ए॰ श्रंतो॰ इति पाठः।

पंचिं ॰-समचढु॰-ओरालि॰ श्रंगो॰--वज्जिरि॰-मणुसाणु॰-पसत्थवि॰-तस-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज॰-उच्चा॰ ज॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेसाग॰ सादि॰। अर्ज॰ सादभंगो। देवगदि॰४ ज॰ ज॰ ए॰, उ॰ श्रंतो॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेसाग॰ सादि॰। अथवा ज॰ णित्थ॰ श्रंतरं यदि लेस्ससंकमणं कीरदि। श्रज॰ ज॰ पिलि॰ सादि॰, उ॰ बेसाग॰ सादि॰। ओरालि॰-तेजा॰--क॰--पसत्थ॰४-अगु॰३-बादर-पज्जत्त--पत्ते॰-णिमि॰-तित्थ॰ ज॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेसाग॰ सादि॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेस॰। एवं पम्माए वि। णवरि पंचि॰-ओरालि॰श्रंगो॰-तस॰ तेजइगादीहि सह धुवं भाणिद्वा।

संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गांपाङ्ग, वर्श्वपंभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रौर उच्चगोत्रके जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर सातावदनीयके समान है। देवगितचतुष्कके जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर। एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त- मुंहूर्त है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रथवा जवन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है यदि लेश्या संक्रमण कर लेता है तो। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर साधिक एक पल्य है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रौर तीर्थङ्करके जवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ पश्चे न्द्रियजाति, श्रौदारिकशाङ्गोपाङ्ग श्रौर त्रस इन प्रकृतियोंको तैजसशरीर श्रादिके साथ ध्रुव कहना चाहिए।

विशेषार्थ--यहाँ पीनलेश्यामें सर्वविशुद्ध श्रशमत्तसंयत जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभागवन्य करता है ऐसा स्वामित्वमें कहा है। इसके दो विकल्प होते हैं-एक श्रन्तमु हूर्तके बाद त्तपकश्रेणि पर चढ़नेवाला और दसरा स्वस्थान त्रप्रमत्त । प्रथम विकल्प प्रह्ण करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका न्य्रन्तरकाल नहीं प्राप्त होता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा दूसरा विकल्प प्रहण करने पर इन प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त तथा श्रजघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय त्रीर एत्कृष्ट त्रान्तर दो समय प्राप्त होता हैं। स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिका जवन्य त्रनुभागबन्ध संयमके त्राभिमुख हुत्रा मनुष्य करता है किन्तु श्चन्तमु हूर्तमें लौटकर श्रीर मिध्यात्वमें ठहरकर यदि पुनः संयमके श्रीभमुख होता है तो उसके लेश्या बदल जाती है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निपेध किया है। तथा इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है यह स्पष्ट ही है। यहाँ इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर मनुष्योंके और उत्कृष्ट अन्तर देवोंके घटित करना चाहिए। साता आदिका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं पर जब इसका उत्कृष्ट श्चन्तर लाना हो तब मनुष्यगतिमें श्चन्तिम श्चन्तम् हुर्तमें जघन्य श्रनुभागबन्ध करावे श्रीर साधिक दो सागर तक देव पर्यायमें रखकर पुनः मनुष्य होनेपर जघन्य श्रनुभागबन्ध करावे। इससे इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका जो दो अन्तर्भाहर्त अधिक साधिक दो सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है वह

१. ता॰ प्रतौ उ० सादि॰ श्रज्ज॰ इति पारुः।

६३०. सुकाए पंचणाणावरणादिधुवियाणं पढमदंडओ ओघो। णवरि तित्थय०

त्रा जाता है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट् अन्तर श्रान्तम् हर्त कहा है। श्राठ कषाय श्रीर श्राहारकद्विकके जघन्य श्राह्मागबन्धके स्वामित्वको देखते हुए यहाँ उनके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं प्राप्त होता, श्रतः उसका निषेध किया है। स्त्रीवेद स्त्रादिके जघन्य स्त्रनुभागबन्धका जो स्वामित्व बनलाया है उसके स्त्रनुसार इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर कहा है। जो पीतलेश्याके श्रपने उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें जघन्य श्रनुभागबन्ध करानेसे उपलब्ध होता है। तथा मध्यमें इतने काल तक सम्यग्दष्टि रखनेसे इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजधन्य अनु-भागवन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर भी साधिक दो सागर कहा है। पुरुषवेद, हास्य त्र्यौर रतिका जधन्य श्रनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध श्रप्रमत्तसंयत करता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागबन्धके श्रन्तरकाल का निपेध किया है। यहाँ जो पीतलेश्यावाला अप्रमत्तासंयत अन्तम् हुर्तके बाद् लेश्या बदलकर चपकश्रे शिपर चढ़नेवाला है उसीकी अपेक्षा जघन्य अन्तरका निषेध किया है। तथा ये परावर्त-मान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। श्रारति श्रीर शोक भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका दोनों प्रकार का श्रान्तर जघन्य एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तमु हूर्त कहा है। देवायुका जघन्य श्रनुभागबन्ध तिर्येश्च श्रीर मनुष्य करते हैं त्र्यौर इनके पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है, अतः इसके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त कहा है। मनुष्यगति आदिके स्वामित्वको देखते हुए इनके जवन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर कहा है; क्योंकि पीतलेश्याके उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें श्रीर श्रन्तमें यथायोग्य इनका जघन्य श्रनुभागवन्ध हो यह सम्भव है। तथा ये परावर्तमान प्रश्र-तियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। देवगति चतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वसंक्लिष्ट तिर्यञ्ज और मनुष्य करता है। इनमें पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कहा है। अौर ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। तथा देव पर्यायमें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उन्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। यहाँ पर यह मानकर कि पीतलेश्यामें जधन्य श्रनुभागवन्ध होनेके बाद यदि लेश्या वदल जाती है तो इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता और अजधन्य अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर साधिक एक परुय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर प्राप्त होता है, क्योंकि जब मनुष्य और तिर्यक्कोंमें जघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर नहीं बना तो श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका श्रन्तर देवोंमें उत्पन्न करा कर लाना चाहिए, इस ऋभिप्रायको ध्यानमें रखकर यह ऋन्तर कहा है। देवगतिके समान ऋौदा-रिकशरीर त्रादिके जघन्य त्र्यनुभागवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर जानना चाहिए । मात्र इनका जघन्य अनुभागबन्ध सौधर्म-एशान कल्पमं कराकर यह अन्तर लाना चाहिए। पद्मलेश्या में इसी प्रकार श्रन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसका काल साधिक श्रठारह सागर होनेसे इसे ध्यानमें रखकर यह : अन्तरकाल लाना चाहिए। तथा इस लेश्यामें पक्चोन्द्रियजाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर त्रस इन प्रकृतियोंको ध्रव मानकर श्रन्तरकाल लाना चाहिए, क्योंकि एक तो पद्मलेश्यामें एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका बन्ध न होनेसे ये दोनों प्रकृतियाँ धुव हैं दूसरे पद्मलेश्यामें श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गका धन्ध देवोंके ही होता है तथा इनके एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका वन्ध नहीं होता इसलिए यह भी ध्रुव है।

६३०. शुक्ल लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका प्रथम दण्डक श्रोघके

वज्जः । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० णित्थ श्रंतरं । अज० उविरमगेवज्ज-भंगो । सादादिचहुगुग॰ ज० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० । अज० ओघं । इत्थि-णवुंसगदंडस्रो उविरमगेवज्जभंगो । अहक०-पंचणोक०-दोआउ० तेष्ठभंगो । मणुस-गदि०४ ज० ज० ए०, उ० अहारस० सादि० । अज० ज० ए०, उ० वेस० । देवगदि०४ ज० [ज०] ए०, उ० श्रंतो० । श्रज० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि०-तित्थ० ज० ज० ए०, उ० अहारस सा० सादि० । अज० ज० एग०, उ० वेस० । आहारदु० ज० णित्थि श्रंतरं । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-श्रादे०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० देसू० । अज० साद्भंगो ।

६३१. भवसिद्धि० ओघं। अब्भवसिद्धि० धुवियाणं ज० ज० ए०, उ०

समान है। इतनी विशेषता है कि नीर्थङ्कर प्रकृतिका छोड़कर कहना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व त्र्यौर त्रमन्तानुबन्धी चारकं जवन्य त्रानुभागवन्धका त्रान्तरकाल नहीं है। त्राजघन्य अनुभागवन्वका अन्तर उपरिम प्रैवेयकके समान है। सातावदनीय श्रादि चार युगलके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। त्रजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। खीवेद श्रीर नपुंसकवेद दण्डकका भङ्ग उपरिम प्रैवेयकके समान है। आठ कपाय, पाँच नोकपाय श्रीर दो आयुत्रोंका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। मनुष्यगतिचतुष्ककं जघन्य अनुभागबन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और एत्हुष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। देवगतिचतुष्कके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अजयन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रौर तीर्थङ्करके जघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रम्तर साधिक श्रठारह सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर-काल नहीं है। अजयन्य अनुभागवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-मु हुर्त है। समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्धभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्यका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—मिण्यात्व त्रादिका त्रौर स्त्रीवेद त्रादिका बन्ध उपरिम प्रैवेयक तक ही होता है, इसिलए इनका विचार इसी दृष्टिसे किया है। मनुष्यगित त्रादि चारका त्रौर पक्रे निद्रयज्ञाति त्रादिका जघन्य त्रनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, इसिलए इनके जघन्य अनुभाग- बन्धका उत्कृष्ट त्रान्तर साधिक त्रायह सागर कहा है। समचतुरस्रसंस्थान त्रादिका जघन्य अनुभागबन्ध मिण्यादृष्टि करता है, इसिलए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। शेप कथन स्पष्ट है।

६३१. भन्य जीवोंमें त्रोघके समान भङ्ग है। त्राभन्योंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य

ता● श्रा० प्रत्योः श्रज्ज० ज० साद्यमंगो इति पाठः ।

अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० बेसम० । सादासाद०-समचढु०-पसत्थ०-थिराथिरसुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा ।
अज० ओघं । इण्णोक० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ०
इतो० । णवुंस०-ओरालि०-ओरालि०इंगो०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० ।
अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपिलि० देसू० । चढुआयु०-वेउन्वियछ०-मणुसग०३ ज०
अज० ओघं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० ।
अज० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० सादि० । चढुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं ।
अज० णवुंसगभंगो । पंचसंटा०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादे० ज०
ओघं । अज० मिद्०भंगो ।

श्चनुभागबन्धका जघन्य त्रपन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। श्रजघन्य त्रानुभागवन्धका जघन्य त्रन्तर एक समय है त्र्यौर उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावदनीय, श्रसातावेदनीय, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, यशःकीर्तं त्रौर त्रयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं और उत्क्रष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। छह नोकपायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट त्रान्तर त्रानन्त काल है। त्राजघन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर श्रन्तमु हूर्त है। नपुंसकवंद, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गापाङ्ग श्रौर नीचगात्रके जधन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है त्रीर उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनु-भागबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोघक समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी स्रौर उद्योतके जघन्य स्रनुभागवन्धका जघन्य स्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हैं श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक इकतीस सागर है। चार जाति, श्रातप श्रौर स्थावर श्रादि चारके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोघके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रनादेयके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तर मत्यज्ञानियों-के समान है।

विशेषार्थ — अभन्यों पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य संज्ञी जीव करता है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसिलए इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि और पाँच संस्थान आदिके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर जिस प्रकार आघमें स्पष्ट करके कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। अह नोकषायों के जघन्य स्वामित्वको देखते हुए इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। इसी प्रकार नपुंसकवेद आदिके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए। तथा नपुंसकवेद आदिका बन्ध उत्तम भागभूमिमें कुछ कम तीन पत्य तक नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य कहा है। तिर्यक्रगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्य सातवें नरकका नारकी करता है, इसिलए इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तथा नोवें प्रैवेयकमें इनका बन्ध नहीं होता,

६३२. सम्मादिद्दी० ओधिभंगो । खइगसम्मादिद्दी० पंचणाणावरणादि-दंडओ श्रोघो तित्थयरं वज्ज । सादासाद०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४-अग्र०३—पसत्थवि०-तस०४—थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अदृक० ज० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अज० ओघं । मणुसाउ० देवभंगो । देवाउ० [ज० श्रज० ज० ए०, उ० पुन्वकोडितिभागा देसूणा ।] मणुसगदिपंचग० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० वेस० । देवगदि०४ ज० अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सा० सादि० । आहारदुग० ज० श्रज० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० ।

इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। यहाँ साधिकसे नौवें मैवेयकमें जानेसे पूर्वका और आनेके वादका अन्तर्मुहूर्त काल लेना चाहिए। शेप कथन स्पष्ट ही है।

६३२. सम्यग्दृष्टि जीवोंका भङ्ग त्राभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डकका भङ्ग त्र्योघके समान है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर कहना चाहिए। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रीर उचगोत्रके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुर्त है। आठ कषायोंके जघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजवन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रांघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुके जघन्य श्रौर श्रजघन्य त्रानुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्चन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रजघन्य श्रनुभागबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर दो समय है। देवगतिचतुष्कके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। ब्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हुर्त है श्रीर उत्क्रष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्ररूपणा श्रामिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही हैं। ज्ञायिकसम्यक्तवका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय श्रादिका जघन्य श्रनुभागवन्ध इसके प्रारम्भमें श्रोर श्रन्तमें हो श्रोर मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा उपशमश्रीणमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद श्रन्तमु हूर्त काल तक बन्ध नहीं होता और श्रसातावेदनीय परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इनके श्रजचन्य श्रनुभागवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त कहा है। श्राठ कषायोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध होनेके वाद पुनः जघन्य श्रनुभागवन्ध कमसे कम श्रन्तमु हूर्तके पूर्व सम्भव नहीं है श्रोर श्रधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर कालके बाद सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य

१. भा॰ प्रतौ सम्मादिद्वो॰ मदिभंगो॰ इति पाठः।

६३३. बेदगे धुविगाणं ज० णित्थ श्रंतरं । अज० एग० । सादादिचदुयुग०अरिद-सोग० ज० ज० ए०, उ० छाविह० देसू०। अज० श्रोघं। अहक० ज० ज० श्रंतो०,
उ० छाविह० दे० । अज० [ओघं ।] हस्स-रिद० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ओघं ।
दोआउ० ज० ज० ए०, उ० छाविह० दे० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०।
मणुसगिद्पंचग० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० वासपुघ०, उ० पुन्वकोडी० । देवगिद०४ ज० णित्थ श्रंतरं । श्रज० ज० पित्दो० सादि०, उ० तेत्तीसं । पंचिदि०तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४—सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०उच्चा० ज० अज० णित्थ श्रंतरं ।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। जो पूर्वकोटिकी आयुवाला त्रिभागके प्रारम्भमं देवायुका बन्ध करके पुनः अन्तमें अन्तर्भु हूर्त आयु शेप रहने पर उसका बन्ध करता है उसके देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण दिखाई देता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा मनुष्यगितपञ्चकका जघन्य अनुभागबन्ध देव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवगितिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवगितिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध करके कोई मनुष्य सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहाँसे आकर मनुष्य होने पर उसने इनका जघन्य अनुभागबन्ध किया, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। आहारकि हिकका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करके कोई प्रमन्तसंयत हो गया। पुनः उसके अप्रमन्तसंयत होकर आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करनेमें अन्तर्भु हूर्त काल लगता है, इसलिए तो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर इन्तर्भ हित कहा है। और यदि ऐसा जीव देवोंमें उत्पन्न हो जावे तो साधिक तेतीस सागर अन्तर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

६३३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सातावेदनीय आदि चार युगल, अरित और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छचासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर कोघके समान है। आठ कपायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर आंघके समान है। हास्य और रितके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल आंघके समान है। हास्य और रितके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल आंघके समान है। दो आयुश्चोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छचासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगितपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर वर्षप्रथक्त है और उन्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि है। देवगितिचतुष्क के जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उन्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है। पञ्चित्रयजाित, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थद्वर और उन्कृष्ट और उन्कृष्ट अन्तरकाल नहीं है।

६३४. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०--चहुसंज०--पंचणोक०--पंचिदि०-तेजा०क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु० [४-] पसत्थिव०-तस०४-सुभग--सुस्सरआदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचत० ज० णित्थ अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०।
सादासाद०--अरदि-सोग०-तिण्णियुग०-तित्थ० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।
मणुसगदिपंचग० ज० अज० णित्थ अंतरं। अहक०-आहारदुगं० ज० अज० ज० उ०
अंतो०। देवगदि०४ ज० णित्थ अंतरं। अज० ज० उ० अंतो०।

विशेपार्थ-जो अप्रमत्तसंयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अन्तुम् हुर्तमें ज्ञायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर क्षपकश्रेणि पर त्रारोहण करनेवाला है वह सर्वविशुद्ध होकर पाँच ज्ञानावरणादि ध्रववन्धवाली प्रकृतियोंका ज्ञघन्य त्रमुभागवन्ध करता है। यह त्र्यवस्था पुनः प्राप्त होना सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निपंध किया है। श्रीर इनका जघन्य अनुभागवन्ध एक समय तक होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है, इसलिए यहाँ सातावेदनीय त्रादिके जवन्य त्रानुभागवन्धका उक्षष्ट त्रान्तर कुछ कम छ्यासठ सागर कहा है। इसी प्रकार त्राठ कपायोंके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर घटित कर लेना चाहिये। हास्य ऋौर रतिके जघन्य अनुभागवन्यके अन्तरके निपेधका वही कारण है जो पाँच ज्ञानावरणादि के कह त्रायं हैं। दो त्रायुश्रोंके जघन्य त्रानुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर जो कुछ कम छत्र।सठ सागर कहा है सो इसका कारण यह है कि जो देव या मनुष्य क्रमसे वेदकसम्यक्त्वके श्रारम्भ होनेपर मनुष्याय और देवायुका जघन्य अनुभागवन्य करता है। पुनः उसकी समाप्तिके पूर्व इनका जघन्य अनुभागवन्ध करता है उसके इनके जघन्य अनुभागवन्यका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण ही देखा जाता हैं। तथा इनके अजघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर जिस प्रकार श्राभिनिवोधिक ज्ञानीके स्पष्टकर श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मनुष्यगति पञ्चक श्रीर देवगतिचतुष्कके जवन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागवन्धका अन्तर भी श्राभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान यहाँ घटित कर लेना चाहिए। मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर आरो-हण नहीं करते, इसलिए इनके देवगतिचतुष्ककं अजधन्य अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर अन्त-मुंहर्त न होकर साधिक एक पत्य जानना चाहिए। स्त्रीर उत्कृष्ट स्रन्तर पूरा तेनीस सागर जानना चाहिए। पञ्चीन्द्रयजाति त्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध मिध्यात्वके त्राभमुख होने पर होता है, इसलिए इनके ज्ञायन्य स्त्रीर स्त्रज्ञायन्य स्त्रनुभागवन्धके स्त्रन्तरकालका निपेध किया है। शेष कथन मगम है।

६३४. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञ्ञलन, पाँच नोक्षाय, पञ्च न्द्रियज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रमचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है! अज्ञघन्य अनुभागवन्धका ज्ञघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शोक, तीन युगल और तीर्थक्कर प्रकृतिके ज्ञघन्य और अज्ञघन्य अनुभागवन्धका ज्ञचन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगितपञ्चकके ज्ञघन्य और अज्ञघन्य अनुभागवन्धका अन्तर नहीं है। आठ क्षाय और आहारकद्विकके ज्ञघन्य और अज्ञघन्य अनुभागवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगितचितुष्कके ज्ञघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अज्ञघन्य अनुभागवन्धका ज्ञचन्य और उत्कृष्ट अन्तर

६३५. सासणे धुवियाणं ज० अज० णित्थ श्रंतरं । पुरिस०-इस्स०-रदि-तिरिक्ख०३-ओरालि०श्रंगो०-उज्जो० ज० णित्थ श्रंतरं । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । तिण्णिआउ० मणजोगिभंगो । सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । श्रम्तर्भुहुर्त है ।

विशेपार्थ-यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिमें अपनी अपनी बन्धच्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निपेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें इनका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक श्चन्तम् हुर्त तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हूर्त कहा है। सातावेदनीय श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं श्रीर इनका एक समयके अन्तरसे जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य श्रनुभागबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त कहा है। मनुष्यगति पख्चकत्रा जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख देव और नारकी करते हैं, इसलिए इनके जघन्य त्रौर त्राजघन्य त्रानुभागवन्धके त्रान्तरकालका निषेध किया है। त्राठ कपाय त्रौर त्राहारक-द्विकका जघन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मु हूर्त के अन्तरसे ही सम्भव है तथा यथायोग्य गुणस्थान प्राप्त होने पर अन्तम हुर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कहा है। यहाँ उपशमसम्यक्त्वके कालमें यह अवस्था प्राप्त कर अन्तरकाल ले आना चाहिए। देवगतिचतुष्कका जयन्य अनुभागवन्ध मिथ्यात्व-के अभिमुख हुए तिर्येश्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकाल का निषेध किया है और उपशमश्रीणमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद उतर कर उसी स्थानके प्राप्त होने तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागबन्धका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हर्त कहा है।

६२५.सासादनसम्यक्त्वमं ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध-का श्रन्तरकाल नहीं है। पुरुपवेद, हास्य, रित, तिर्यञ्चगितित्रक, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गो-पाङ्ग श्रौर उद्योतके जघन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। तीन श्रायुश्रोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। शेप प्रकृतियों के जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमु हूर्त है।

विशेपार्थ — सासादनसम्यक्त्वमें चारों गतिके सर्वविशुद्ध जीवके पाँच ज्ञानावरणादिका ख्रोर चारों गतिके सर्वसंक्लिष्ट जीवके पद्धे द्रियजाित ख्रादिका जघन्य ख्रनुभागवन्ध होता है, इसिल्ए इनके जघन्य ख्रोर ख्रजघन्य ख्रनुभागवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। पुरुषवेद ख्रादिका जो जघन्य स्वामित्व बतलाया है उसके ख्रनुसार इनके जघन्य ख्रनुभागवन्धका भी ख्रन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसिल्ए इसका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसिल्ए इनके ख्रजघन्य ख्रनुभागवन्धका जघन्य ख्रन्तर एक समय ख्रोर उत्कृष्ट ख्रन्तर ख्रन्तमुं हूर्त कहा है। तीन ख्रायुद्योंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही हैं। तथा शेष प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसिल्ए इनके जघन्य ख्रोर ख्रजघन्य ख्रनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय ख्रोर ख्रुष्ट ख्रम्तर ख्रन्तमुं हूर्त कहा है।

१. ता॰ श्रा० प्रत्योः श्रज्ञ० ज० उ० श्रंतो० । सासग्रे पंचग्रागावरणादिद० एवं सन्वाणं उक्कस्स-भंगो० सासग्रे इति पाठः ।

६३६. सम्मामिच्छ० धुवियाणं ज॰ अज० णित्थ श्रंतरं । सादासाद०-अरिद-सोग-थिरादितिण्णियुग० ज० श्रज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । हस्स-रिद० ज णित्थ श्रंतरं । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । मिच्छादिही० मिद०भंगो ।

६३७. सिण्णि० पंचिदियपज्नत्तभंगो । असण्णीसु धुवियाणं पसत्थापसत्थ-पगदीणं ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० वेसम० । सत्तणोक०-तिरिक्ख०-पंचिदि०--ओरालि०-ओरालि० अंगो०--तिरिक्खाणु०-पर०--उम्सा०-आदा-उज्जो०-तस०४-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० श्रंतो० । चदुआउ०-वेउन्वियद्य०-मणुस०३ तिरिक्खोघं । सेसाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० ए०, उ० अंतो० ।

६३६. सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के जवन्य और अजवन्य अनु-भागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शांक, और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रितके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुंहूर्त है। मिण्यादृष्टि जीवों का भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेपार्थ — जिस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ध्रु वबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तरकालके निपेधका कारण वतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए, क्योंकि इनमेंसे श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख जीवके श्रोर प्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व मिश्यात्वके अभिमुख जीवके होता है। साता-वेदनीय श्रादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं श्रोर इनका जघन्य श्रनुभागवन्ध एक समयके श्रन्तरसे हो सकता है, इसलिए इनके जघन्य श्रोर श्रज्ञागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर कहा है। हास्य श्रोर रितका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्यक्त्वके श्रभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागवन्धके श्रन्तरक लका निपेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके श्रज्ञघन्य श्रनुभागवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर कृत्तर हो। मिध्यात्व मत्यज्ञानीके ही होता है और प्रायः इनका साहचर्य है, श्रतः मिध्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा मत्यज्ञानी जीवोंके समान कही है।

६३७. संज्ञी जीवोंमें पद्मे निद्रय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रशास्त और अप्रशास्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सात नोकपाय, तिर्यक्चगित, पद्मोद्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्यास, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और नीचगात्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मूह्त है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभावन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभावन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थं--पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध पद्धे न्द्रिय जीव सीर

६३८. आहारएसु धुविगाणं तित्थयरस्स च ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०अणंताणु०४ ज० ज० श्रंतो०, उ० श्रंगुल० असंखे०। अज० श्रोघं। सादासाद०अरदि-सोग-पंचिंदि०--तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थिव०-तस०४थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि० ज० ज० ए०, उ०
श्रंगुल० असंखे०। अज० ओघं। अहक० ज० मिच्छत्तभंगो। अज० ओघं। तिण्णिआउ०-वेउव्वियद्य०-मणुस०३ ज० अज० ज० ए०, उ० श्रंगुल० असंखे०। तिरिस्वायु० ज० सादभंगो। श्रज० ओघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० ज० मिच्छत्तभंगो।
अज० श्रोघं। उज्जो० ज० सादभंगो। अज० ओघं। इत्थि० मिच्छत्तभंगों। णवरि

प्रशास्त ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध सर्वसंक्लिष्ट पञ्चोन्द्रय जीव करता है। इसलिए इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। इसी प्रकार सात नोकषाय आदिके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र ये अध्यवनिधनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर प्रकृतियाँ हैं। चार आयु आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका सामान्य तिर्यक्चोंके जो अन्तर कहा है। चार आयु आविकल बन जाता है, इसलिए यह उनके समान कहा है। शेष जो सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ हैं उनका जघन्य अनुभागवन्ध बादर एकेन्द्रियों-के भी सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

६३८ श्राहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृतिका मङ्ग श्रोधके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हुते हैं श्रोर उत्कृष्ट अन्तर अङ्गलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर श्रोधके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अर्रात, शोक, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थर, अस्थर, श्रुभ, अशुभ, सुभग, सुभग, सुन्दर, आदेय, यशःकीति, अयशःकीति और निर्माणके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय हें और उद्धृष्ट अन्तर अङ्गलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर श्रोधके समान हें। आठ कथायोंके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर मिथ्यात्वके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यक्रायुके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सोधके समान है। तिर्यक्रगति और तिर्यक्रात्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सिध्यात्वके समान है। त्रावक्र समान है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य अनुभागवन्धक समान है। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य अनुभागवन्धक समान है। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य अनुन

१. ता॰ भ्रा॰ प्रत्योः श्रज्ज॰ भ्रोघं। याविर तिरिक्खगिंदुर्गं ज॰ ज॰ श्रंतो॰। इत्थि॰ मिच्छुत्त-भंगो इति पाढ;।

ज० ज० ए०। णवुंसगदंडओ ज० सादभंगो। अज० ओघं। सेसाणं ज० सादभंगो। अज० ओघं अप्पप्पणो। ऋणाहार० कम्मइगभंगो। एवं जहण्णयं समत्तं।

एवं अंतरं समतं।

भागवन्थका जघन्य अन्तर एक समय है। नपुंसकवेददण्डकके जघन्य अनुभागवन्थका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तर आघके समान है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवन्थका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागवन्थका अन्तर अपने अपने आघके समान हैं। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—त्राहारक मार्गणामें सर्वप्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व श्रोघके समान है और इसका उत्कृष्ट काल श्रङ्गलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इन दो विशेपतात्र्योंको ध्यानमें लेकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल समाप्त हुआ। इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

शुद्धिपत्र

| स्था भविद अयांतायांतायां वयायायां वयायायां स्थाप्त स्थाप | a a | पंति | ह अशुद्ध | गुद |
|---|-------------|------------|--------------------------------|--|
| हर है उवसास्त अवसास्त अवसायाण अवसायाण अवसायाण अवसाय के विश्वास्त के श्री उवसाय के अवसाय का प्रकार के साम है । अवसाय अवसाय और उव्हृष्ट काल दो साम है । अवसाय अवसाय और उव्हृष्ट काल दो साम है । अवसाय अवसाय है । अवसाय अवसाय है । अवसाय का प्रकार के साम है । अवसाय अवसाय का प्रकार के साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का प्रकार के साम है । अवसाय अवसाय अवसाय और उव्हृष्ट काल दो साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय है । अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय के साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय के साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय अवसाय का साम है । अवसाय के साम है । अवसाय के अवसाय के अवसाय अवस | २ | ૭ | | |
| १६ १२ जनमधंवर जन्ना पुजार पर्वाचित व्यक्तिया मिलामा माजामा मा | | | | |
| र से से प्रमाण परवत्तियाववतीए महिलागाए महिलागाए महिलागाए महिलागाए महिलागाए महिलागाए परवत्तियाववतीए महिलागाए परवत्तियाववतीए महिलागाए परवत्तियाववतीए महिलागाए परवातियाववतीए महिलागाण परवात्वियाववतीए महिलागाण परवात्वियाववतीए महिलागाण परवात्वियाववतीए महिलागाण परवात्वियाववतीए महिलागाण परवा्वियाववती महिलागाण परवा्वियाववती महिलागाण परवा्वियाववताच महिलागाण परवा्वियाववताच महिलागाण परवा्वियाववताच महिलागाण परव्याव्वयाव्वयाव्वयाव्वयाव्वयाव्वयाव्वया | १२ | 3 | उव समस्स | उ वसमयस्स |
| स्विस्मान पञ्चतियावविष्य मिल्समन । स्राव कह स्राप्त कह समा है। स्राप् | | | | उ वसमसुहुमसंप॰ |
| श्रणाण व वक्तचियायवादीए गीर विश्व परियामवाला जान्य प्रायुक्तिकै पर्युक्तिकै पर्युक्तिकै पर्युक्तिकै प्रायुक्तिकै पर्युक्तिके प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिकै पर्युक्तिकिकिकिके प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिके प्रायुक्तिके प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिके प्रायुक्तिके प्रायुक्तिकै प्रायुक्तिके प्राय | | | | |
| २६ १ परिणामवाला जनन्य परिणामवाला जीव स्वामी है। आयुक्तमंके जनन्य असुमागनन्यका स्वामी केन हैं। जमस्य अयुक्तमंके जनन्य असुमागनन्यका स्वामी केन हैं। जमस्य अयुक्तमंके जनन्य असुमागनन्यका स्वामी केन हैं। जमस्य अयुक्तमंके गोत्र गोत्र गोत्र गोत्र गोत्र गोत्र गोत्र कर्माण है। जममण | २६ | ₹ | मार्क्समण्यज्ञतागुव्वताए | |
| रहे १६ परिणामवाला जनस्य परिणामवाला जीव स्वामी है। आयुक्तमें जघर अनुमागवरणका स्वामी कन है। जघर स्वामी कन है। जघर अनुमागवरणका स्वामी के किया अनुमागवरणका स्वामी के स्वामी के अनुमागवरणका स्वामी के किया अनुमागवरणका स्वमी के किया अनुमागवरणका स्वामी के | 23 | 3 | श्चाउ०-गोद ० | |
| श्री अस्त कर्मों के आयु आर गोत्र गोत्र गोत्र श्री उत्कृष्ट काल दो समय है । अज्ञान्य आतु उत्कृष्ट काल एक समय है । अज्ञान्य अर उत्कृष्ट काल दो समय है । अज्ञान्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य कार उत्कृष्ट अरान्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य है । अराम्य अर उत्कृष्ट काल एक अराम्य है । अराम्य अराम्य अराम्य अराम्य अराम्य इत्कृष्ट अरान्य एक समय है । अराम्य है । अराम्य अराम्य अराम्य इत्कृष्ट अरान्य एक समय है । अराम्य अराम्य की अराम्य है । अराम्य अराम्य अराम्य की अराम्य है । अराम्य इत्वष्ट अरान्य इत्य समय है । अराम्य है । अराम्य है । अराम्य है । अराम्य की अराम्य है । अराम्य की अराम्य की अराम्य की अराम्य की । | | - | | परिगामवाला जीव स्वामी है। श्रायुकर्मके |
| रहे १७ श्रामु श्रीर गीत्र १६ उक्त कर्गके गोत्रक्रमके गोत्रक्रमके श्रापु ॰ श्रे समाए १५ ३ कर्माणं गिरयोधमंगो । कर्मोणं उक्क श्रियोधमंगो । कर्मोणं उक्क श्रीरथमंगो । कर्मोणं उक्क श्रीरयोधमंगो । कर्मोणं उक्क श्रीर अनुस्वर्ध पार्ट्रिक श्रीर अनुस्वर्ध पार्ट्यक श्रीर अनुस्वर्ध व्याप्त श्रीर अनुस्वर्ध काल एक समय है । श्रीय अनुस्वर्ध व्याप्त श्रीर अनुस्वर्ध काल एक समय है । श्रीर अनुस्वर्ध काल एक समय है । श्रीर अनुस्वर्ध व्याप्त श्रीर अनुस्वर्ध काल एक समय है । श्रीर अनुस्वर्ध काल प्रक समय है । श्रीर अनुस्वर्ध काल प्रक श्रीप अनुस्वर्ध काल प्रि समय है । श्रीर अनुस्वर्ध काल प्रक श्रीप अनुस्वर्ध काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल प्रवर्ध काल प्रवर्ध काल प्रवर्ध काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल व्याप काल काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल व्याप काल काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल काल प्रवर्ध काल काल काल प्रवर्ध काल काल काल काल प्रवर्ध काल काल काल काल काल | | | | जघन्य ऋनुभागबन्धका स्वामी कन है! जघन्य |
| र श्रिण क्यांग (गरियोधभंगी । क्यांग (गरिय भंग । अवांग (गरिय भंग) यांग (गरियोधभंगी । क्यांग (गरिय भंग वे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग (गरियोधभंगे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग (गरिय भंग । अवांग (गरियोधभंगे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग वे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग वे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग वे । अवांग वे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग वे । अवांग वे । अवांग (गरिय भंग वे । अवांग वे | | | | श्रायुक् में के |
| र प्रसु श्रिण श्रिमाण | | | | _ |
| रुष ३ कम्माणं गिरशेषमंगो । कम्माणं उक्कः विरायोपमंगो । कम्माणं उक्कः विराय । व्यादि ४ श्रोघ । व्यादे थ्याद विष्ट एगः । श्राव व्याद विष्ट य श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद व्याद उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद श्री उत्कृष्ट काल एक समय है । श्राव व्याद व् | ુંપ્ | | | |
| २७ २७ कार्गै आ मङ्ग वादि ४ उद्धार मङ्ग वादि ४ उद्धार मङ्ग वादि ४ उद्धार अप्रत्य वादि ४ उद्धार अप्रत्य वादि ४ अप्रत्य वादि १ अप्रत्य वाद्य वा | | | = | • |
| श्र वातिकार्गे उत्हृष्ट वातिकार्गे उत्हृष्ट विसार विश्वास विश | | • | | |
| शहर जहर जहर एगर, उहर वेसमर श्रावर कहर एगर। अवर कहर एगर। अवर कहर एगर, उहर वेसमर। अवर कहर एगर। अवर अवस्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवप्रय आवर्य आवर्य आवर्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवप्रय आवर्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवप्रय अवप्रय और उत्कृष्ट अव्य अवप्रय अवप्रय अवप्रय अवप्रय अवप्रय और उत्कृष्ट अवप्रय | २६ | 5 | घादि ४ उद्घ० श्रोधं० । | घादि ४ श्रोघ । |
| बहु जहु जहु प्रात्, उक्क वेसमा । श्राव जहु प्राव । श्राव ग्राव । श्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव । श्राव ग्राव । श्राव ग्राव । श्राव । श्रा | રદ | ३२ | | घातिकमेंकि उत्कृष्ट श्रीर श्रनुतकृष्ट |
| इह ह जह जह एगि , उहा वेसमा । अजः जह एगा । अजः जह एगा । अजः जान्य कोल एक समय है और उत्हाध कान या और उत्हाध काल एक समय है । अज्ञधन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधन्य अज्ञधन्य अज्ञधन्य अज्ञधन्य अज्ञधनन्य अज्ञधन्य अज्ञधनन्य अज्ञधननन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधनन्य अज्ञधननन्य अज्ञ | | * | | |
| श्र अवस्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अवस्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य काल एक समय है। अवध्य अवध्य अवध्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अवध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अध्य अध्य उत्कृष्ट काल एक समय है। अध्य अध्य उत्कृष्ट अवत्य और उत्कृष्ट अत्य अध्य अध्य उत्कृष्ट अत्य अध्य अध्य अध्य उत्कृष्ट अव्य अध्य उत्कृष्ट अव्य अध्य उत्कृष्ट अव्य अध्य अध्य अध्य उत्कृष्ट अध्य अध्य उत्कृष्ट अध्य अध्य अध्य अध्य अध्य अध्य अध्य अध्य | - | | | |
| कात दो समय है । अजघन्य ३६ ३३ जवन्यकार एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य ३६ ३७ जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है । अजघन्य अघन्य अघ | | | | - |
| काल दो समय है । श्रजघन्य श्रजघन्य जघन्य जघन्य जघन्य है । अजघन्य जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रजघन्य श्रण्ठ जघन्य है । श्रजघन्य श्रादा अजघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रजघन्य श्रादा उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रजघन्य श्रादा उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रादा उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रादा उत्कृष्ट काल एक समय है । श्रादा उत्कृष्ट श्राव श्रादा उत्कृष्ट श्राव श्रादा अञ्चय श्रीर उत्कृष्ट श्रनतर श्रोघके श्राव श्राद उत्कृष्ट श्रनतर श्रोघके श्राव समय है । श्राद अचन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रनतर श्रोघके श्राव समय है । श्राद अचन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रनतर श्रोघके समान है । श्राय समय समय है । श्राय समय है । श्राय समय है । श्राय समय है । श्राय समय समय है । श्राय समय समय समय समय समय समय समय समय समय सम | इष्ट | 48 | कात दो समय है। श्रजघन्य | |
| वार समय है। अजघन्य अञघन्य अञघ | 38 | ३३ | | |
| चार समय है। अजघन्य ४० ५, ८,१० जह० वह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० ४० २२,२८,३३ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य ४१ १,३,५ जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज० ४१ १२,१६,२० जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य ४४ ४ गोदा० जह० एतिय ४६ प्रजाव० जह० एतिय ४६ ८ आउ० [जह० एग०] ५३ १ अगु० जह० एग०] ५३ १ अगु० जह० एग०, उक्क० चत्तारिस म०। अगु० जह० ५१ २३ जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर भोषक अगु० जह० ५१ २६ जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर भोषक अगु० जघन्य अगु० जह० ५१ २६ जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर भोषक अगु० जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर भाषक अगु० जघन्य अगु० जघन | | ٠. | • | _ |
| प्रः २२,२८,३३ ज्ञान्य काल एक समय है और उत्कृष्ट ज्ञान्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य अज्ञान्य ज्ञान्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ज्ञान्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञान्य अज्ञाय अञ्ञान्य अज्ञाय अज्ञान्य अज्ञाय अज्ञा | ₹ ₹. | ३७ | | |
| ४० २२,२८,३३ जन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट जन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य अज्ञन्य काल एक समय है। अज्ञन्य जह एए।। अज्ञ जह एए।। अज्ञ जह एए।। अज्ञ जिस्य है। अज्ञन्य जन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अज्ञन्य अज | ٧s | भ्र, ८,१० | जहर जहर एगर, उक्तर वेसमर । अजर | ज० एग०। ऋज० |
| ४१ १,३,५ जह जह ० एग०, उक्क० बेसम०। श्रज० ४१ १२,१६,२० ज्ञान्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल ज्ञान्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्राचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य ज्ञाचान्य श्राचान्य श्र | | | | |
| ४१ १२,१६,२० व्यन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल व्यय श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। दो समय है। श्रवचन्य श्रवचचन्य श्रवचन्य श्रवचचन्य श्रवचन्य श्रवचचन्य श्रवचन्य श्रवचचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य श्रवचन्य | | | _ | |
| दो समय है। श्रवघन्य श्रवघन्य श्रवघन्य श्रवघन्य श्रवघन्य श्रवघन्य गोदा० उक्क णित्य गोदा० उक्क णित्य श्राउ० [वह० एग०] श्राउ० उ० व० ए० श्रव्य श्राउ० वह० ए० श्रव्य श्रव० वह० एग०, उक्क चत्तारिस म०। श्रव० श्रोघ०। श्राउ० एवरि गोद० उ० वेसम०।] श्राउ० वघन्य श्राव० वघन्य वघन्य श्राव० वघन्य वघन | | | | |
| ४६ ८ म्राउ० [जह० एग०] म्राउ० उ० ज० ए० ५३ १ म्राउ० जह० ग्राउ० म्राउ० जह० ७१ ४ म्राज० [जह० एग०, उक्क० चतारिस म०। म्राज० म्राउ० एवरि गोद० उ० बेसम०।] म्राउ० ७१ २३ जघन्य म्रान्तर एक समय है म्रीर उत्कृष्ट जघन्य म्रोर उत्कृष्ट म्रान्तर मायके । म्रान्तर चार समय है। इतनी विशेषता है समान है। म्रायु | ४१ | १२,१६,२० | | |
| १ श्राणु ० जहरुगु ० श्राणु ० जहरु । श्राणु ० | ** | K | · | गोदा० उक्क० णित्य |
| ७१ ४ अजि [जहर एगर, उक्षर चतारिस मर । अजि ओघंर । आउर गार्थर गोदर उर बेसमर ।] आउर अधर । आउर अधर गोदर उर बेसमर ।] आउर अधर अपन्य और उर अधर अन्तर आधिक । अपन्य और उर अध्याप अपन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है समान है। आयु | 38 | 5 | | আ ৰিও ৰও লও ত্ ও |
| गुर्वार गोद० उ० बेसम०।] आउ० ७१ २६ जघन्य ग्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर भोषके व ग्रन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है समान है। आयु कि गोत्रका उत्कृष्ट ग्रन्तर दो समय है। आयु | | | <u> </u> | • |
| ७१ २६ जघन्य ग्रन्तर एक समय है ग्रीर उत्कृष्ट जघन्य ग्रीर उत्कृष्ट ग्रन्तर भीषके । ग्रन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है समान है। ग्रायु कि गोत्रका उत्कृष्ट ग्रन्तर दो समय है। ग्रायु | ७१ | ¥ | | শ্বজ০ প্লাঘ০। শ্বাবত |
| श्चन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है समान है। आयु | | _ | | |
| कि गोत्रका उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयु | ७१ | ₹ ೩ | | जघन्य त्रार उत्कृष्ट ग्रन्तर श्रीघके ह |
| | | | | - |
| | 30 | ٤ | _ | |

लाल नहानुर भारती राष्ट्रीय प्रणासन अभावनी, पुरत्यालय Lal Bahadar Shastri National Academy of Administration Library

स्तम्बरी MUSSOORIE

| अवाष्ति सं• | |
|-------------|--|
| Acc. No | |

कृपया इस पुस्तक को निम्न लिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें ।

Please return this book on or before the date last stamped below.

| दिनांक Date | उधारकर्ता की संख्या Borrower's No. | दिनांक Date | उधारकर्ता की मख्या Forrower's No |
|----------------|---|----------------|---|
| | | | <u>-</u> |
| | | | - |
| | | | |
| | | | |



| -Cove, | |
|--|---------------------------------------|
| | |
| ± 1 ≈ v | अवाधित मं ० 🕶 |
| वर्ग स. | A(C.) |
| Class No | पर करते हैं। ··· Book No |
| लेखक Author | |
| र्णापंक 🚉 | *** |
| Titie | **** |
| | ********* |
| निर्गम दिनांक उधार Date of Issue Born | कर्ता की सं. हरनाक्षर |
| Born | Signature |
| | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · |

Sans 294.4

J-0 1826

LIBRARY LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration MUSSOORIE

Accession No. 125260

- Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
- 2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
- Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
- Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
- 5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving